विचार दृष्टि

वर्ष : 10 अंक : 37 अक्टूबर-दिसम्बर 2008 25 रुपये

With Best Compliments From

Rajinder Parshad Gupta

B-1/31, Paschim Vihar
New Delhi-110063

बिहार के मुख्यमंत्री

द्वारा

बिहार संस्कृत शिक्षा बोर्ड

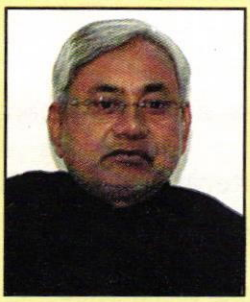

के अध्यक्ष पद पर

श्री सिद्धेश्वर प्रसाद

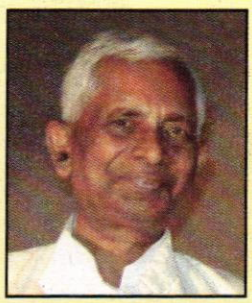

की नियुक्ति हेतु

माननीय श्री नीतीश कुमार जी को

हार्दिक बधाई

और

श्री सिद्धेश्वर जी को

हमारी शुभकामनाएँ

सत्यनारायण प्रसाद
संपादक एवं प्रकाशक
प्रतियोगिता किरण

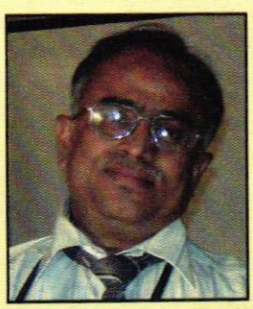

डॉ. शाहिद जमील
उप-संपादक
विचार दृष्टि-दिल्ली

"विचार दृष्टि सुरक्षित निधि" के दाता सदस्य बनकर प्रेरणा के स्रोत बने

डॉ0 नायर, डॉ० मिश्र और प्रो० सिन्हा

"विचार दृष्टि" के सफलतापूर्वक और नियमित प्रकाशन हेतु राष्ट्रीय विचार मंच और पत्रिका के संचालक-मंडल द्वारा स्थापित **विचार दृष्टि सुरक्षित निधि** में दस-दस हजार रुपये की मुक्त हस्त से राशि प्रदान कर केरल के डॉ0 एन0 चन्द्रशेखरन नायर, हेदराबाद की डॉ0 अहिल्या मिश्र तथा पटना के प्रो0 एम0 पी0 सिन्हा और लोगों के लिए प्रेरणा के श्रोत बने।

प्रेरणा के स्रोत

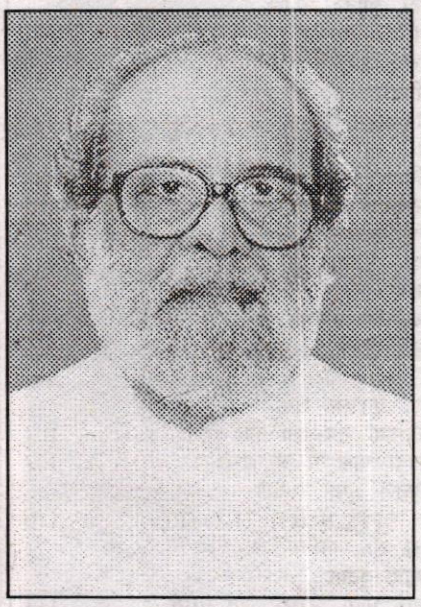

डॉ० एन० चन्द्रशेखरन नायर

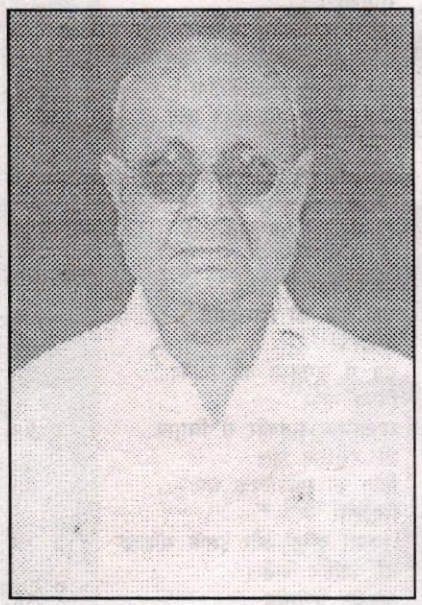

प्रो० एम० पी० सिन्हा

डॉ० अहिल्या मिश्र

विचार दृष्टि सुरक्षित निधि के इन तीनों दाता सदस्यों (Donor Members) के प्रति मंच तथा विचार दृष्टि के संचालक मंडल की ओर से हार्दिक आभार इनकी उदारता, सहृदयता और सदाशयता के लिए ।

नंदलाल
राष्ट्रीय अध्यक्ष
सह
संपादकीय सलाहकार

सिद्धेश्वर
राष्ट्रीय महासचिव
सह
संपादक विचार दृष्टि

पत्रिका-परामर्शी

❑ श्री यू.सी. अग्रवाल ❑ पद्मश्री डॉ. श्यामसिंह 'शशि' ❑ प्रो० राम बुझावन सिंह ❑ प्रो. धर्मेंद्र नाथ 'अमन' ❑ श्री जियालाल आर्य ❑ डॉ० बालशौरि रेड्डी ❑ डॉ० अहिल्या मिश्र ❑ डॉ० सुंदर लाल कथूरिया ❑ डॉ० देवेन्द्र आर्य ❑ डॉ० एन. चन्द्रशेखरन नायर

पत्रिका-परिवार के सभी सदस्य अवैतनिक हैं। रचनाकारों के विचारों से पत्रिका-परिवार का सहमत होना आवश्यक नहीं।

प्रिय पाठको! प्रकाशित रचनाओं तथा अंक के प्रस्तुति पक्ष पर आपकी प्रतिक्रिया, पत्रिका परिवार के लिए एक संबल है। हमें आपकी प्रतिक्रिया का बेसब्री से इंतजार रहता है। चेतना-संपन्न, विवेकशील और जाग्रत पाठकों से अनुरोध है कि वे सच्चे आलोचक की तरह इतने विवेकपूर्ण किसी रचना/ रचनाओं पर अपनी बेबाक राय से पत्रिका को अवगत कराएँ और प्रतीक्षा करें कि संपादक उसकी बेबाक टिप्पणी को सम्मान भाव से प्रकाशित करने का साहस दिलाए। विश्वास मानिए, 'संपादकीय कोप' का भाजन बनने का खतरा उन्हें बिल्कुल नहीं होगा। प्राप्त प्रतिक्रियाओं से हम केवल उन्हीं प्रतिक्रियाओं को शामिल कर पाते हैं, जिनमें वस्तुनिष्ठ, कृतियों से संदर्भित संक्षिप्त समीक्षा/टिप्पणी या मार्ग-दर्शक बिंदु आदि होते हैं। भ्रामक प्रशंसा और ईर्ष्या-दर्शी विचारों के प्रेषण से डाक-ख़र्च ज़ाया होता है।

○ उप संपादक

रेड्डी राष्ट्रीय दृष्टि से सोचते

'विचार दृष्टि'-36 अंक मिला। धन्यवाद। इस अंक को उत्तरदक्षिण के साहित्य-सेतु डॉ० बाल शौरि रेड्डी को समर्पित करके आपने दक्षिण भारत की हिंदी-साधना का अभिनंदन किया है। हिंदी भाषा एवं साहित्य के विकास के लिए दक्षिण भारतीयों का जो योगदान है, उसे भुलाया नहीं जा सकता, बल्कि उसे सदैव याद रखने की आवश्यकता है, क्योंकि हिंदी सबकी भाषा है और उसे क्षेत्रों में बाँटा नहीं जा सकता। डॉ० रेड्डी से मेरे संबंध भी 30-35 वर्ष पुराने हैं और मैंने पाया कि वे सदैव हिंदी के विकास-प्रचार के लिए ही चिंतित रहते हैं। उनका मन सरल और पवित्र है और वे जब सोचते हैं तो राष्ट्रीय दृष्टि से ही सोचते हैं। आपने जो उनका इन्टरव्यू लिया है वह उनके व्यक्तित्व एवं कृतित्व की एक झांकी प्रस्तुत करता है और रेड्डी के विचारों तथा कार्यों की प्रामाणिक जानकारी देता है। ऐसे उपयोगी तथा सुंदर अंक के लिए मेरी बधाई। वैसे यह अंक कई और दृष्टियों से भी महत्त्वपूर्ण है। यह अंक संग्रहणीय है और शोध की दृष्टि में भी काम आने वाला है। रेड्डी पर शोधकर्ताओं को यह अंक देखना ही होगा।

-डॉ० कमल किशोर गोयनका
ए-98, अशोक बिहार, फेज-प्रथम,
दिल्ली-110052

स्वतंत्र विचारों की पत्रिका

आपकी प्रतिष्ठित पत्रिका 'विचार दृष्टि' त्रैमासिक स्वतंत्र विचारों की पत्रिका लगी। स्वतंत्र विचारों को जनता के समक्ष विचारार्थ प्रस्तुत करने का महनीय कार्य जो आप कर रहे है उस हेतु साधुवाद स्वीकार करें।

डॉ. गार्गीशरण मिश्र 'मराल'
प्रधान संपादक, 'दीप शिखा'
146/बी, सरस्वती कॉलोनी
चेरीताल वार्ड, जबलपुर-482002
मो. 9425899232

रचनाएँ मूल्यबोधपरक

अप्रैल-जून-08 अंक देखा। संपादकीय में राष्ट्रय एकता की जरूरत पर बहुत गहरा चिंतन है। चीन-पाकिस्तान की बदनीयत से लेकर 370 धारा, द्विराष्ट्रवाद की विरासत के साथ धर्म, जाति, वर्ग, के खास मर्म को छुआ है। जिससे अलगावबाद को हवा मिल रही है।

प्रो०कुमार रवीन्द्र की ''मानुषी उत्तरदायित्व-दशा-दिशा, सुरेन्द्रनाथ तिवारी जी की कविता 'बिहार', डॉ. राम निवास 'मानव' की लघुकथाएँ प्रभावी हैं। डॉ. देवेन्द्र आर्य की मुक्तकें, सुरेन्द्र वर्मा का हाइकू संग्रह, यह सच है (पुस्तक समीक्षा सिद्धेश्वर), यथार्थ/आदर्श का योगनिर्माण का सत्य (डा. सुंदरलाल कंथूरिया) मूल्य बोधपरक हैं दोहा रचनावली (डॉ० वीर बाढय भावसार) शब्दों-भावों का सुंदर निरूपण है। समय का सच दर्शाता है। लेख-अजमेर यात्रा, भारत रत्न का मखौल, वाक् (डॉ० सुधीश पचौरी) की समीक्षा डॉ० कमल किशोर गोयनका द्वारा सटीक बेबाक वाक् प्रहार है।

डॉ० हितेश कुमार शर्मा का लेख- ''बलात्कार: महिलाएँ स्वयं भी जिम्मेदार एक पक्षीय और उथले हैं। 'कुवारी/औरतों के साथ आये दिन खबरों में सामुहिक दुष्कर्म, हत्या, आदि के छपते है। बुद्धिजीवियों ने अवश्य ही सोचा होगा, परंतु लिखने, मंच से बोलने का साहस नहीं कर सके कि इसके लिए जिम्मेदार कौन है?''-जबकि हमने सोचने, मंच पर बोलने से आगे घातक प्रहार युक्त विरोध और निंदा प्रस्ताव, समाज-प्रशासन को निरंतर लिखा। यथासंभव पीड़ितों से मिलकर अपराधियों को कटघरे में लाने का प्रयास किया है।

लेखक के अनुसार पुरुष प्रकृति में नारी आकर्षण बहुत होता है, नारी में पुरुष आकर्षण सहज नहीं होता (आकर्षण दोनों में बराबर होता है स्त्री बाहरी दबावों एवं शीलता वश प्रगट नहीं करतीं) लेखक का मानना है कि सह शिक्षा, यौन शिक्षा, महिला आरक्षण (पुलिस, पंचायत, नौकरी, राजनीति आदि) के कारण महिलाएँ हवश की शिकार होती हैं- ऐसा नहीं है वे लिखते हैं- ''पुलिसवर्दी में माँ को देखकर 20 साल का बेटा शर्म से सिर झुका लेता है- आरक्षण के कारण महत्त्वाकांक्षी युवतियाँ राजनीति में प्रवेश पा जाती हैं और काण्ड होते हैं पुलिस वर्दी में माँ को बेटा, यदि 20 साल की उम्र में देखे और शर्मिन्दा हो जाये, तो वह अव्वल दर्जे का असभ्य पुत्र होगा, दिक्कत यह है कि महिला पुलिस को बेटा 20 साल से पहले क्यों नहीं देखेगा? अगर देखेगा तो 20 साल होने पर ही शर्मायेगा? अनर्गल प्रलाप है। सहमति से यौनाचार कहीं भी जुर्म नहीं है। क्लब और होटल परंपरा केवल मौज मस्ती का है। समाज, संस्कृति से सरोकार नहीं होता।

महिला ग्राम प्रधान का पति कार्य संपादन के दौरान अन्य स्त्रियों को देखकर कामुक होता है- ऊटपटांग सोच है। मसलन वह पति, पंचायत कार्यों के दौरान ही अन्य स्त्रियाँ देखता है। सुंदर था कि फैशनेवल स्त्री देखकर कामुक होना ही पुरुष को पुरुषार्थ, साबित किया गया है, जो सर्वथा बकवास है।

आधुनिक परिधानों से अंग उभार के विरूद्ध पुरुष कामुक होता है तो उन्हीं छबीलियों' का बलात्कार होना चाहिये पर ऐसा नहीं है, सीधी सरल, मर्यादित, लाचार युवती/महिला ही अधिक वासना वहशियों की शिकार होती हैं। इसके लिए सुझाव दिया गया है कि पहले जमाने में औरतों के अंग ढंके हुए होते थे। इसलिए व्यभिचार कम होते थे महिला के प्रति श्रद्धा उपजती थी। पुराण कथा में आता है कि शिव पार्वती विवाह में ब्रम्हाजी पुरोहित थे। फेरे लेते समय पार्वती की एड़ी देखकर ब्रम्हा जी कामुक हो उठे, वीर्य स्खलन से हजारों औरस पुत्र पैदा हुये। अर्थात पहले जमाने में स्त्री-पुरुष दोनों मर्यादित होते थे, मौखिक आचार संहिता पर अटल होते थे। कहीं चूक करने पर स्वयं पश्चाताप करते थे, अपनी अस्मिता के प्रति जागरूक थे। बलात्कार के लिए कहीं भी स्त्री जिम्मेदार नहीं है। वहशी पुरुष की नामर्दी ही एकमात्र कारण है। मर्दानगी, अस्मिता संवर्धन में है।

किसान दीवान, अध्यक्ष/सचिव,
मु०+पो०-नर्रा (बागबहरा),
जिला-महासमुन्द, छत्तीसगढ़
फोन: 07707-242698,
मो०-9926866935

राष्ट्रीय चेतना की पत्रिका

यह एक उच्च कोटि की राष्ट्रीय चेतना की विचार प्रधान पत्रिका है; इसमें साहित्य की सभी विधाओं को स्थान दिया गया है जो प्रसन्नता सूचक है। क्या साहित्य, क्या समीक्षा, क्या काव्य-कुँज, क्या कहानी, क्या व्यंग और क्या राजनीतिक विचारधाराएँ और संस्मरण/सभी एक से एक बढ़कर समीचीन उपादेय, संग्रहणीय एवं परीक्षोपयोगी है। मैं इसके लिए संपादक महोदय को साधुवाद एवं आशिर्वचन देता हूँ। पत्रिका को हिंदी साहित्य की पत्रिकाओं में उच्चत्तम शिखर पर आसीन होने की हार्दिक मनोकामना करता हूँ।

-बनारसी चौधरी 'वीरेश'
नई सराय, भावानी गली
पो० बिहारशरीफ नालन्दा, बिहार
पिन-803101

अंक सर्वथा संग्रहणीय

जुलाई-सितंबर 08 का अंक मिल गया है। आभार। मेरे मुक्तक-संग्रह ''कुछ अंगारे कुछ फुहारे'' की समीक्षा प्रकाशित की है आपने। कृतज्ञ हूँ।

'गतिविधियाँ' के अंतर्गत दूर दूर के साहित्यिक समाचार पढ़ने को मिले। ''उनकी राष्ट्र भाषा' में हिंदी को लेकर जीवंत मुद्दे उठाये गये हैं।'' हिंदी की रोटी खाने वाले साहित्यकार भी वही कर रहे हैं, जो साम्राज्यवादी ताकतें चाहती हैं'' वाक्य यह लोगों के सीने में तीर जैसा चुभेगा।

डॉ. बाल शौरि रेड्डी पर पर्याप्त पठनीय जानकारी से परिपूर्ण सामग्री है। दक्षिण भारत में वे हिंदी से जलती हुई मशाल हैं। समीक्षाएँ भी हैं। अंक सर्वथा संग्रहणीय बन पड़ा है।

-चन्द्रसेन 'विराट'
'समय' 121 वैकुण्ठधाम कॉलोनी
ओल्ड पलासिया, खजराना कोठी
आनन्द बाजार के पीछे
इन्दौर 452018, म.प्र.

सुखद अनुभूति

'विचार दृष्टि' का जुलाई-सितंबर-08 अंक परसों मिला। इस अंक में डॉ० बाल शौरि रेड्डी पर आपने विशेष आलेख दिए हैं। बहुत अच्छा है। पत्रिका पर आप बहुत ध्यान दे रहे हैं। यह हिंदी साहित्य के लिए एक सुखद अनुभूति देता है।

आपकी दक्षिण भारत की यात्रा का कार्यक्रम देखा। आप बहुत व्यस्त रहते हैं। मेरी शुभकामनाएँ आपके साथ हैं।

-राजनारायण चौधरी
प्रोफेसर कॉलोनी, हाजीपुर,
वैशाली-844101

कुरीतियों के प्रति ज़बरदस्त आक्रोश

देहरादून की मेरी यह पहली यात्रा थी, जो काफ़ी सुखद रही। प्रस्तावित कार्यक्रम अपनी जगह था, लेकिन सुबह-सुबह पथिक होटल में आपने जिस तरह सभी का स्वागत किया वह किसी से छिपा नहीं है कोई भी अन्जान व्यक्ति यही समझता रहा कि आप 'साहित्य प्रभा' संस्था के सहयोगी होंगे। पूरा दिन बीत जाने के पश्चात् यह ज्ञात हुआ कि आप दिल्ली से पधारे हैं। आपके बारे में समग्र रूप से घर आने पर महसूस किया कि आप एक व्यक्ति नहीं, अपने आप में एक संस्था हैं। आपको और अपनी पत्रिका को पढ़ने से पता चलता है कि समाज में व्याप्त कुरीतियों के प्रति कितना ज़बरदस्त आक्रोश है, आप जीती जागती संत कबीर जी की प्रतिमूर्ति हैं। आपको तो महसूस किया जा सकता है। अपने शब्दों में आपके बारे में यही कह सकता हूँ-

उन्नत भाल वही है प्रकृति करे जिसका अभिनंदन
जीवन खुशहाल वही है प्रकृति करे जिसका अवलोकन
लिखा है जिसके हाथों में स्वयम् प्रकृति ने ओऽम् २
तन है उसका बसुधामय मन है उसका व्योम्-व्योम्

मैं अपनी पुस्तक ''वक्त की आवाज़'' ग़ज़ल संग्रह तथा कुछ ग़ज़लें नवीनतम आपकी सेवा में प्रेषित हैं आप जैसा चाहें जब चाहें इनका उपयोग किया जा सकता है। मुझे तो बस आपका आशीष चाहिए। 'वक्त की आवाज़' संग्रह अलग से इसी के साथ भेज रहा हूँ।

-आज़ाद कानपुरी
114, एल.आई.जी, आवास विकास,
कानपुर-208017, उ.प्र.

संपादकीय प्रेरक एवं विचारणीय

'संपादकीय' पठनीय, प्रेरक एवं 'विचारणीय' बन पड़ा है। यह निश्चय ही आपकी बहुज्ञता एवं अध्ययनशीलता का परिचायक है। आपने इस अंक को उत्तर एवं दक्षिण भारत के साहित्य-सेतु तथा यशस्वी विद्वान्-साहित्यकार डॉ० बालशौरि रेड्डी पर केन्द्रित किया है। यह शीर्षक है। डॉ० बाल शौरि रेड्डी के बारे में डॉ० मधु धवन, डॉ० पी०वी० नरसा रेड्डी तथा डॉ०पी०के० बालसुब्रह्मण्यन का लेखन प्रभाव छोड़ रहा है। डॉ० रेड्डी के लेखन के बारे में मेरी यह निश्चित धारणा है कि-''लेखकीय व्यक्तित्त्व साधना-साध्य होता है।'' भारतीय मनीषी भर्तृहरि की निम्नस्थ मान्यता हमारे इस प्रातिभ साहित्यकार के बारे में शत-प्रतिशत चरितार्थ होती है-

परिवर्त्तिनि संसारे मृत: को वा न जायते।

स जातो येन जातेन याति वंश: समुन्नतिम् ॥

श्री सिद्धेश्वर-कृत 'दरकती रिश्तों की दीवारें' नाम्नी रचना को मैं आज के युग-सन्दर्भ की दृष्टि से उल्लेखनीय एवं दिशाबोधक कहना चाहता हूँ। उदय कुमार 'राज़'-कृत 'हिन्दी की दुर्दशा' नाम्नी कविता आज के युग-बोध को हमारे सामने रख रही है।

संपर्क : डॉ० महेश चन्द्र शर्मा, 'अभिवादन', 128-ए, श्याम पार्क (मेन), साहिबाबाद, ग़ाज़ियाबाद,

विवेकपूर्ण रचना चयन

अप्रैल-जून 08 अंक के कुछ आलेख पढ़ गया रचनाओं का चयन विवेकपूर्ण है। इस अंक के दो आलेखों की चर्चा विशेष रूप से करना चाहूँगा।

डॉ० हितेश कुमार शर्मा ने विस्तार से महिलाओं के साथ होने वाले बलात्कार पर चर्चा की है। बलात्कार आज की ज्वलंत समस्या है। उन्होंने निष्कर्ष निकाला है कि इसके लिए जिम्मेदार स्वयं महिलाएँ हैं। मैं उनके विचारों से पूर्णत: सहमत हूँ। नग्नता ही बलात्कार का उद्दीपन है। रूप-यौवन का प्रदर्शन सामाजिक जीवन के लिए ग्राह्य नहीं है। डॉ० शर्मा ने जिन तथ्यों को पाठकों के सामने रखा है, उनसे पाठकगण अवश्य लाभान्वित होंगे।

आत्मीय संबंधों के टूटने-छूटने की व्यथा सिद्धेश्वर जी ने अपने आलेख में किया है। आज हम जिस अप संस्कृति के चंगुल में हैं वह मानव जीवन के लिए श्रेयस्कर नहीं है। युवा वर्ग को बुजुर्गों का ध्यान रखना होगा, उन्हें सम्मान देना होगा। पारिवारिक और सामाजिक जीवन के इस पक्ष पर लेखक ने गहराई से चिंतन किया है। रिश्तों के बेमानी होने पर जीवन में बचता ही क्या है। महानगरीय जीवन में तो रिश्ते और विलुप्त होते जा रहे हैं जो भविष्य के लिए घातक हैं। लेखकों को हार्दिक बधाई। ये लेख हमें सोचने पर मजबूर करते हैं।

रमाशंकर श्रीवास्तव
आर-7, उत्तमनगर, नई दिल्ली

दोनों लघुकथाएँ श्रेष्ठ

अप्रैल-जून 2008 की 'विचार दृष्टि' का अंक मिला। डॉ० रामनिवास 'मानव' की दो लघुकथाएँ पढ़ीं। दोनों ही श्रेष्ठ हैं। 'टालरेंस' जहाँ एक असामान्य मनोविज्ञान के सिद्धांत को प्रतिपादित करती है, तो दूसरी 'मुक्ति' आज के जीवन के कटु यथार्थ को पूरी ताक़त से प्रस्तुत करती है।

डॉ० सतीशराज पुष्करणा महेन्द्रू,
पटना-800006
मो०-9835283820

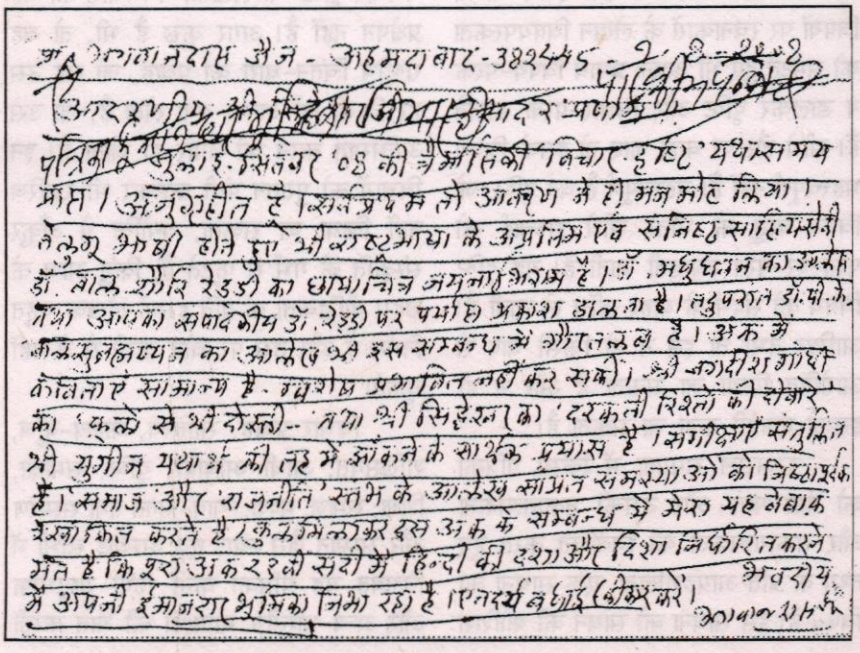

ज़रा इनकी भी सुनें

❑ आने वाले दशकों में भारत और चीन को बड़े पैमाने पर ऊर्जा की जरूरत पड़ेगी। **-बराक ओबामा**

❑ सरकार बाढ़ग्रस्त क्षेत्रों में पर्याप्त राहत मुहैया करा रही है **-नीतीश कुमार**

❑ बदलते पारिवारिक-सामाजिक संबंधों के कारण पश्चिमी समाज में भविष्य में बहुत से ऐसे बच्चे होंगे जिन्हें यह पता नहीं होगा कि उनके माता-पिता कौन हैं?-**डॉ. गौतम सचदेव, स्तंभकार**

❑ गुजरात के मुख्यमंत्री नरेन्द्र मोदी भारत में ही नहीं, अपितु विदेशों में भी एक चर्चित एवं विवादस्पद नाम हैं।-**रेणु राजवंशी गुप्ता, स्तंभकार**

❑ समय के साथ भाजपा का लोकतांत्रिक स्वरुप नष्ट हो गया है।-**राजनाथ सिंह सूर्य, स्तंभकार**

❑ आर.एस.एस. पर भी सिमी की तरह लगे प्रतिबंध।-**मुलायम सिंह यादव**

❑ भारत में आज़ादी के बाद पंथनिरपेक्षता की सबसे बड़ी विफलता कश्मीर में दिखाई दे रही है-**अरुण जेठली**

❑ 1950 की भारत-नेपाल व्यापार एवं पारगमन संधि की समीक्षा की जरुरत है।-**नेपाल के प्रधान मंत्री प्रचंड**

❑ जल-प्रलय की घड़ी में भी राजनेताओं को वोट बैंक की चिंता सताए जा रही है और वे राजनीतिक विलाप कर रहे हैं।-**लाल कृष्ण आडवाणी**

'विचार दृष्टि' के दस वर्ष

भारतीय पत्रकारिता के गौरवशाली इतिहास में हिंदी पत्रकारिता का इतिहास भी पुराना है जिसकी शौर्यगाथा की मिसाल पूरी दुनिया में नहीं है। 1857 की जंगे आजादी के वक्त संपादक, प्रकाशक सहित पत्रकारों ने गोली-बंदूक तथा तोप-तलवार से लड़ने की बजाय कलम से क्रांति की चिंगारी को ज्वाला में बदल दिया। पत्र-पत्रिकाओं के जरिए जनमानस को आंदोलित कर फिरंगियों के विरुद्ध चिंगारी सुलगाने में पत्रकारों ने अहम भूमिका निभाई जिसके परिणामस्वरुप आजादी की पीठिका तैयार हुई। यानी आजादी की पहली क्रांति कलम से ही आई जिसका सच आज भी पत्र-पत्रिकाओं के इतिहास में दर्ज है। आजादी के बाद इस देश में पनपीं विभिन्न समस्याओं का निदान भी वैचारिक क्रांति द्वारा निकाला जा सकता है जिसकी भूमिका पत्र-पत्रिकाएँ बखूबी निभा सकती हैं।

हिंदी भाषा में पत्र-पत्रिकाओं को प्रकाशित करने के पीछे कारण है समसामयिक गतिविधियों से जनता को अवगत कराना, क्योंकि मनुष्य ज्ञान-विज्ञान की नवीन उपलब्धियों के प्रति भी विशेष जिज्ञासु हो उठता है। अन्य पत्र- पत्रिकाओं सहित दिल्ली से प्रकाशित राष्ट्रीय चेतना की वैचारिक संवाहिका 'विचार दृष्टि' भी एक ऐसी ही पत्रिका है जिसका उद्येश्य है देश की राष्ट्रीय और सांस्कृतिक चेतना को जाग्रत करते हुए हिंदी भाषा एवं साहित्य की अभिवृद्धि में अपना महत्त्वपूर्ण योगदान देना। इन्हीं उद्देश्यों को मूर्तरुप प्रदान करने हेतु विगत दस वर्षों से अपने विभिन्न स्तंभों व आलेखों के जरिए यह राष्ट्रमानस में नई स्फूर्ति व प्रेरणा संचारित करती रही है।

'विचार दृष्टि' मौजूदा दौर की ऐसी पत्रिका है जिसकी दृष्टि साफ, पूर्वाग्रहमुक्त और राष्ट्रीयता की सांस्कृतिक अवधारणा से विनिर्मित है। यह उन मूल्यों के प्रति अडिग और आस्थावान है जिसकी समसामयिकता का लोप होता जा रहा है और बाजारवादी सभ्यता जिसे तिरस्कृत कर रही है। व्यावसायिकता की इस मरुभूमि में पत्रकारिता की इस मूल्यपरक कसौटी पर 'विचार दृष्टि' उन गिने-चुने नखलिस्तानों की तरह है, जिसने हाँफती-भागती मनुष्यता के लिए थोड़ा पानी बचा रखा है। इसके सारे सरोकार सामाजिकता और राष्ट्रीयता की संवेदनात्मक अनुभूतियाँ हैं। इसके लेखों व अग्रलेखों में राजनीति से आक्रांत होकर बिखरते समाज, साहित्य, संचार माध्यम, धर्म और संस्कृति के सार्वकालिक सरोकारों के मानदंडों से जुड़े सवाल हैं, उभरते प्रश्न और संदर्भों से जुड़ी सूचनाएँ हैं।

'विचार दृष्टि' के लिए पत्रकारिता निराशा का कर्त्तव्य भाव नहीं है। इसलिए इसका दायरा वहाँ तक है, जहाँ अभी भी थोड़ी बहुत रोशनी बाकी है। यह उन आवाजों को सुनती है, जिनपर भरोसा किया जा सकता है और तेजी से उजड़ते पास-पड़ोस में ठहरते हैं, जहाँ संग-साथ की गरमाहट थोड़ी बची रह गई है। इसे विश्वास है कि अँधेरा व्यक्ति और समाज की अंतिम नियति नहीं है। यही कारण है कि इसमें वर्णित विषयों पर रचनाकारों के लेखन विषयपरकता को समेटते हुए भी अपना प्रभाव विषय-परक न डालकर दृष्टि और विचार-परक डालते हैं। सीधे तौर पर कहा जाए तो इसके विषय महत्त्वपूर्ण नहीं हैं। महत्त्वपूर्ण है वह दृष्टि, जो विषय-वस्तु के भीतर सीधे सच्चाई को परत-दर-परत उघाड़ती जाती है। यह दृष्टि विषय को संदर्भ के बाहर खींच ले जाती है। आखिर तभी तो इसे न तो किसी वाद से आरोपित किया जा सकता है और न ही इसको एकांगी कहा जा सकता है।

दरअसल समग्रता में किसी पत्रिका को देख पाना और उसकी नकारात्मकता और सकारात्मकता को विवेचित करते हुए तथ्य के प्रति आग्रहशीलता, एक साधना का विषय है। इस साधना को साधने की कोशिश पिछले दस सालों से इस पत्रिका ने भरपूर की है। इस चिंतन-धारा की समग्रता उसे अलग-अलग रंगों का एक ऐसा इंद्रधनुष थमाती है, जिसके रंग अलग-अलग अवश्य हैं, लेकिन उसके जुड़ाव को किसी सीमा रेखा से विभाजित कर पाना बहुत मुश्किल है।

पिछले एक दशक में 'विचार दृष्टि' ने चिंतन और विचार के हर पक्ष को छूने का प्रयास किया है। इसके विषय और लेख अलग-अलग होते हुए भी चिंतन का धरातल एकरस और समतल है। प्रश्न को प्रश्न रहने देना और आँकड़ेबाजी का खेल-खेलकर पाठक पर विद्वता का गुरुडम स्थापित करना इसके लेखकों को पसंद नहीं है। इसके सहयोगी रचनाकार यदि प्रश्न उठाते हैं, तो उत्तर देने का साहस भी करते हैं। साहस इस माने में कि आज का लेखकीय सच वह चाहे साहित्यकार हो या पत्रकार और चाहे अपने विचारों को जितना ही विद्रोही तेवर देने की घोषणा करता हो, असलियत यह है कि वह कहीं न कहीं से प्रक्षेपित हो रहा है। 'विचार दृष्टि' के लेखकों में विचारों का वह प्रक्षेपन नहीं है। अगर कुछ है भी, तो वह राष्ट्रीय चिंतन-धारा का प्रवाह, जो वह उस हर किसी को अपना बना लेता है, जो उसे आत्मसात करने को तैयार हो जाता है। इन विचारों को पुरातन पंथी कहकर भी खारिज नहीं किया जा सकता, क्योंकि ये अँकुर संस्कृति के गर्भ से फूटते हैं, किंतु आज के छद्म बौद्धिकता के प्रति इसके लेखक बहुत निर्मम हैं और उस पर चोट करने से वे नहीं चूकते।

विचार प्रवाह, साहित्य, काव्य-कुँज, शख्सियत, आधी आबादी, दृष्टि, समीक्षा, शिक्षा, समाज, मुद्दा, न्याय-जगत तथा संस्मरण और सम्मान जैसे स्थाई एवं अस्थाई स्तंभों में विभक्त यह पत्रिका कहीं हिंदी राष्ट्रभाषा और अन्य भारतीय भाषाओं की बात करती

है, तो कहीं गीत-संगीत और लोकगीतों की चर्चा करती दिखाई देती है। समाजवादी एवं प्रगतिवादी विचारों के साथ-साथ गाँधीवादी विचारधारा के प्रभावों का अँकन भी इसने किया है। काव्य-कुँज के तहत चिंतन और यथार्थ का अनोखा संयोग है तथा इसकी कविताओं में जीवन का सम्यक दर्शन दिखाई देता है। साथ ही राष्ट्रीय, सामाजिक एवं सांस्कृतिक स्वरों की गूँज भी देखने-सुनने को मिलती है। प्रेमचंद परिवार के सबसे अधिक उम्र के जीवंत कथाकार श्री कृष्ण कुमार राय इसके 'कहानी' स्तंभ के चहेते रहे हैं, जिन्होंने न केवल अपनी कहानियों के माध्यम से 'विचार दृष्टि' के पाठकों को एक अच्छी-खासी मानसिक खुराक प्रदान की है, बल्कि हिंदी साहित्य को समृद्ध करने में भी महत्त्वपूर्ण योगदान किया है। संपादक मंडल की ओर से मैं श्री राय के प्रति हार्दिक आभार व्यक्त करता हूँ।

इसी प्रकार 'आधी आबादी' शीर्षक स्तंभ के माध्यम से महिलाओं की युगीन एवं समकालीन समस्याओं तथा उनके समाधाान प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है। हमारी पूरी कोशिश रही है कि 'संस्मरण' स्तंभ के अंतर्गत दिवगंत साहित्यकारों, पत्रकारों, राजनेताओं, कलाकारों, संस्कृतिकर्मियों तथा समाजसेवियों के समग्र व्यक्तित्व व कृतित्व के सारे आयामों को पाठकों के समक्ष प्रस्तुत किए जाएँ। यदि 'विचार दृष्टि' के सहयोगी रचनाकारों की साहित्य सृजना को समझना हो, तो उनके हृदय की गहराइयों में उतरकर ही उनकी संवेदनाओं को समझा जा सकता है। इसके प्राय: सभी लेख विभिन्न चिंतन की अभिव्यक्ति के प्रतीक हैं। इस संदर्भ में यहाँ यह कहना कदाचित युक्तिसंगत होगा कि पिछले दस वर्षों में 'विचार दृष्टि' में आए लेख प्रबुद्ध वर्ग के समक्ष एक गरिमा प्रस्तुत करते हैं, क्योंकि यह पत्रिका व्यक्ति की चिंता नहीं कर समष्टि की चिंता करती है और भारत की सबसे बड़ी शक्ति इसकी लोकशक्ति को मानती है। इसकी विचार-धारा 'सर्वेजना: सुखिन: भवन्तु' की है। पिछले दस सालों के दौरान जिन सहयोगी रचनाकारों की रचनाओं के बल पर यह पत्रिका नियमित रुप से प्रकाशित होकर देश भर के पाठकों को आकर्षित करती रही है उनमें सर्वश्री कृष्ण कुमार राय, प्रो. कुमार रवीन्द्र, डॉ. राम निवास 'मानव', डॉ. बाल शौरि रेड्डी, डॉ. महेश चंद्र शर्मा, डॉ. दया कृष्ण विजयवर्गीय 'विजय', कविवर चंद्रसेन 'विराट', डॉ. मध धवन, प्रो. राज चतुर्वेदी, डॉ. मंजुला गुप्ता, डॉ. सुषमा शर्मा, डॉ. नरेन्द्र शर्मा 'कुसुम', डॉ. एस. एफ. राव, डॉ० साधु शरण, डॉ. शाहिद जमील, उदय कुमार 'राज', मेहरबान सिंह नेगी, राजभवन सिंह, युगल किशोर प्रसाद, मनु सिंह, वंशीधर सिंह, कविवर सत्यनारायण, डॉ. सतीश राज पुष्करणा, डॉ. शिववंश पाण्डेय, डॉ. धर्मेन्द्र नाथ 'अमन', डॉ. रमाशंकर श्रीवास्तव, प्रो. पी.के. झा 'प्रेम', डॉ. निर्मला एस. मौर्य, डॉ. देवेन्द्र आर्य, यू.सी. अग्रवाल, डॉ. एन.के.पी. श्रीवास्तव, डॉ. रामदेव प्रसाद, डॉ. हितेश कुमार शर्मा, नचिकेता, डॉ. लखन लाल सिंह 'आरोही', आर.एस. पटेल, एन.एस. शर्मा, प्रो. राम बुझावन सिंह, डॉ. डी.आर. ब्रह्मचारी, डॉ. शिवनारायण, जियालाल आर्य, सुरेन्द्र नाथ तिवारी, डॉ. वरुण कुमार तिवारी, गिरीश चंद्र श्रीवास्तव, वीणा जैन, चंद्रमौलेश्वर प्रसाद, प्रो. ऋषभदेव शर्मा, प्रो. नेहपाल सिंह वर्मा, कविता वाचक्नवी, शुक्ला चौधरी, पुष्पा जमुआर, नीलम साहू, डॉ. रेखा मिश्र, डॉ. शशि, राम गोपाल राही, चंद्रदेव सिंह, नागेश्वर शर्मा, ओमप्रकाश 'मंजुल' आदि का नाम उल्लेखनीय है। हम हृदय से आभारी हैं आप सभी सहयोगी रचनाकारों की उदारता एवं सदाशयता के लिए और विश्वास करते हैं कि भविष्य में भी इनका स्नेह 'विचार दृष्टि' के साथ बना रहेगा।

उल्लेख्य है कि सन् 1997 में राष्ट्रीय विचार मंच, बिहार की ओर से इसके मुख-पत्र के रुप में पटना से प्रकाशित 'राष्ट्रीय विचार पत्रिका' के दो वर्षों में कुल छह अंक निकलने के पश्चात् भारत के समाचार पत्रों के पंजीयक (आर.एन.आई.), दिल्ली द्वारा 'विचार दृष्टि' शीर्षक का अनुमोदन हुआ और फिर दिल्ली पुलिस के उपायुक्त के माध्यम से अग्रसारित मंच के आवेदन के आधार पर आर.एन.आई. द्वारा 'विचार दृष्टि' का पंजीयन राष्ट्रीय चेतना की वैचारिक संवाहिका के रुप में स्वीकृत करने पर मंच को इसलिए प्रसन्नता हुई कि आर.एन.आई. द्वारा अनुमोदित 'विचार दृष्टि' शीर्षक में पत्रिका के उद्देश्यों के अनुरुप 'विचार' और 'दृष्टि' दोनों का समावेश है, जिन पर पत्रिका प्रकाश डालना चाहती है। पंजीयन के साथ ही मंच तथा 'विचार दृष्टि' का राष्ट्रीय कार्यालय पटना से राष्ट्रीय राजधानी नई दिल्ली के झंडेवालान तथा कुछ ही महीनों के बाद शकरपुर के यू-207 स्थित 'दृष्टि' फ्लैट में स्थानांतरित हो गया, किंतु 'विचार दृष्टि' के प्रवेशांक का लोकार्पण 31 अक्टूबर, 1999 को लौह पुरुष सरदार वल्लभभाई पटेल के 124वें जयंती-समारोह के अवसर पर पाटलिपुत्र के सुधी श्रोताओं एवं सधे साहित्यकारों व पत्रकारों से खचाखच भरे सभागार में संपन्न हुआ।

'विचार दृष्टि' ने अब तक दस वर्ष सफलतापूर्वक पूरे किए हैं। इस बीच इसने न जानें कितने उतार-चढ़ाव देखे, पर न तो कभी इसका प्रकाशन अनियमित हुआ और न ही संयुक्तांक निकला। यह इस बात का द्योतक है कि इसके संचालक एवं संपादक-मंडल की निष्ठा और सक्रियता काम कर रही है। कहना नहीं होगा कि यह पत्रिका पूर्णरूप से अव्यावसायिक है, जिसका देश भर में फैला एक बहुत बड़ा-सा पाठक परिवार है। साहित्य व समाज को समृद्ध और स्वस्थ रखने तथा आमजन में राष्ट्रीय चेतना जाग्रत करने के उद्देश्यों को पूरा करने के इस पावन कार्य में भारत के प्राय: सभी भाषाओं के रचनाकारों से इसे नैतिक, आर्थिक और रचनात्मक सहयोग मिलता रहा है, क्योंकि इन सब ने इसकी भूमिका को स्वीकार किया है। साथ ही प्रकाशन के दौरान तमाम खट्ठे-मीठे अनुभवों को प्राप्त करते हुए देश भर के पाठकों एवं लेखकों का स्नेह और सहयोग इसके पीछे एक मजबूत स्तंभ की भाँति खड़ा रहा। वैसे भी इतिहास साक्षी है कि देश को नई राह हमेशा रचनाकारों एवं पत्रकारों ने दिखाई है। इसी के आलोक में देश के खोए हुए अतीत का गौरव पुन: प्राप्त करने में तथा लोगों के साथ कदम से कदम

मिलाकर चलने में 'विचार दृष्टि' ने पिछले दस सालों में अपनी अहम् भूमिका निभाई है।

कुल मिलाकर देखा जाए, तो यह पत्रिका अपनी वैचारिक, सर्जनात्मक, विश्लेषणात्मक पाठ्य सामग्री के साथ-साथ एक साहित्यिक व राजनीतिक मुद्दों पर भी प्रभावोत्पादक संपादकीय अग्रलेख के लिए भी संभवत: याद रखने लायक बन पड़ी है। यह पत्रिका साहित्य को जहाँ निर्मलता प्रदान करती है, वहीं समाज को लोगों तक अनूठे अंदाज में पहुँचाती है। पत्रिका के जरिए लोगों की बातें, उनकी जीवनी के अंश, साक्षात्कार, संस्मरण, कविता, कहानी आदि साहित्य की तमाम विधाएँ एक साथ कम खर्च में उपलब्ध हो जाती हैं। इसके साथ ही देश और दुनिया में बढ़ते आतंकवाद-नक्सलवाद के माहौल में यह पत्रिका एक दूसरे के बीच मैत्री, शांति, अहिंसा, सद्भाव, समभाव एवं सामाजिक समरसता का भाव जगाने में एक अहम्-भूमिका निभा रही है और जनजीवन में सर्जनात्मकता पैदा कर बेरोजगारी और बेकारी की हालत में युवा शक्ति का रचनात्मक उपयोग कर विनाश के तांड़व से बचाने का भरसक प्रयास कर रही है।

यह कहने की आवश्यकता नहीं कि पत्र-पत्रिकाओं का आधुनिक स्वरुप व्यक्ति की सामाजिक आवश्यकताओं, उपलब्धियों, मध्यवर्गीय संभावनाओं, लोकतांत्रिक इच्छाओं, व्यक्ति स्वातंत्र्य और व्यावसायिक मानदंडों के विकास का प्रतिफल है। सामाजिक प्राणी बनने के साथ ही व्यक्ति के लिए संचार ने एक आवश्यकता का रूप आज ले लिया है। संचार सृजन के माध्यम से समाज को नई चीज, नए विचार देते हैं, नई दिशा देते हैं, क्योंकि उनमें न केवल इतिहासबोध अच्छा है, बल्कि उत्कृष्ट स्तर की युग चेतना भी है। ऐसी स्थिति में हमारे सहयोगी रचनाकारों से यह उम्मीद की जाती है कि उनकी रचनाएँ उत्तम श्रेणी की होंगी और वे अपनी दांभिक मानसिकता से मुक्त होकर अधिकाधिक खोज-बीन करके लेखन की ओर प्रवृत्त होंगे और उनके रचना जगत का स्तर बढ़ा हुआ होगा।

संपादक के रुप में मुझे रचनाकारों, सहयोगियों तथा तथाकथित शुभेच्छुओं के ऐसे पक्षों को भी निकट से देखने का अवसर मिला, जिसे पचाने का मुझमें सामर्थ्य कदापि नहीं हो सकता। उनकी चतुराई और व्यावहारिक युक्ति मुझे नहीं भायी। इस तरह के और भी कई प्रसंग आए, जो साहित्य व साहित्यकारों के बदरंग पहलुओं को उजागर करते हैं। मगर इस बीच ऐसे सुधी सलाहकार भी आए, जिन्होंने न केवल मुझे रास्ता दिखाया, बल्कि आर्थिक रुप से 'विचार दृष्टि' के डगमगाते कदमों को नजदीक से देखा, संपादक की पीड़ा को महसूस किया और उस पर विजय पाने में अपनी निष्ठा का परिचय दिया। इस सिलसिले में यदि भारतीय लेखा एवं लेखा परीक्षा सेवा के वरिष्ठ अधिकारी तथा 'विचार दृष्टि' से पिछले दस वर्षों से समर्पण भाव से जुड़े श्री नंदलाल जी की हार्दिकता और सदाशयता को मुक्त कंठ से दाद दूँ, तो इसमें कतई अतिशयोक्ति नहीं होगी। दरअसल असलियत में पत्रिका टीमवर्क और संकल्प से भी चलती है। मैं अपने को इस माने में खुशनसीब मानता हूँ कि संपादक परिवार के रूप में मुझे एक अच्छी टीम तो मिली ही है, संपादकीय सलाहकार के रूप में 'विचार दृष्टि' की बागडोर को श्री नंदलाल जी ने मजबूती से संभाला है, जिनके समर्पण और लगन की वजह से इसका 35वाँ अंक न केवल नयनाभिराम निकला, बल्कि इसकी सामग्रियाँ भी सारगर्भित तथा प्रभावोत्तेजक रहीं। दस वर्षों के इस कालखंड के अपने अनुभवों को यदि एक शब्द में मैं व्यक्त करना चाहूँ तो वह शब्द होगा 'गौरवपूर्ण' और सहयोगियों के मार्गदर्शन में इसकी गरिमा भविष्य में भी बरकरार रहेगी, इसी विश्वास के साथ 'विचार दृष्टि' का यह दस-वर्षांक, जो पत्रकारिता के विविधा पहलुओं पर केंद्रीत है और इसके साथ ही राष्ट्रीय अधिवेशन विशेषांक पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करते हुए मैं अतिप्रसन्नता का अनुभव कर रहा हूँ। अपनी दस वर्षों की सारस्वत यात्रा पूरी करने में और इसके सफल एवं नियमित रूप से प्रकाशन के लिए तमाम लेखकों एवं पाठकों सहित इसके उपसंपादक डॉ. शाहिद जमील तथा सहायक संपादक उदय कुमार 'राज़' के प्रति हम विशेष रुप से आभारी हैं।

इन दस वर्षों की अवधि में हमने अपने पाठकों को वर्तमान के साथ-साथ अतीत से भी जोड़ने का एक विनम्र प्रयास किया और इस दौरान इस पत्रिका में अनेक ऐसी रचनाएँ प्रकाशित हुईं, जो हमारे साहित्य की अमूल्य निधि हैं। पत्रिका के विभिन्न अंकों में ऐसी बहुत-सी सामग्रियाँ बिखरी पड़ी हैं, जिसे साहित्यप्रेमी संजोकर रखना चाहते हैं और वे रचनाएँ पाठकों को साहित्य व विचार के एक पूरे दौर एवं परंपरा से परिचित कराती हैं। दस वर्षों के दौरान यों तो राष्ट्रीय एकता, कविवर गोपी वल्लभ स्मृति अंक तो प्रकाशित हुई ही, पर हमारी एक और विशेष उपलब्धि रही '1857 जंगे आजादी विशेषांक', जो संघर्ष के 150 साल के विभिन्न आयामों से जुड़ी-स्मृतियों तथा ऐतिहासिक दौर की घटनाओं को आज के संदर्भ में गहरी संवेदनशीलता के साथ देखने-परखने को प्रेरित करता है। तकरीबन 40 लेखों का यह विशेषांक 1857 की घटनाओं के नामकरण विवाद के पचड़े से अलग रहकर यह उन घटनाओं की वस्तुपरक प्रस्तुति करता है और पाठकों को स्वयं निष्कर्ष पर पहुँचने के लिए स्वतंत्र छोड़ देता है। इसी क्रम में उत्तर एवं दक्षिण के साहित्य सेतु डॉ. बाल शौरि रेड्डी के अस्सी वर्ष पूरे होने पर संपादक मंडल ने उनकी सारस्वत यात्रा को समग्र रूप से समझने के लिए पत्रिका के 36वें अंक में विशेष प्रकाशित कर उनके प्रति सम्मान प्रदर्शित किया है।

हिंदी में साहित्यिक व वैचारिक पत्रिकाओं का जीवन लंबा नहीं होता। आपने देखा नहीं धर्मयुग, दिनमान, रविवार, साप्ताहिक हिंदुस्तान जैसी श्रेष्ठ पत्रिकाएँ काल के गाल में समा गईं, जबकि उनके समक्ष आर्थिक तंगी नहीं थी। विषम परिस्थिति में भी 'विचार दृष्टि' किसी भी वाद, गुट या धड़े का समर्थन अथवा विरोध किए बिना निरंतर संतुलित और मर्यादित ढंग से केवल साहित्य, समाज, संस्कृति और विचार को समृद्ध करने की राह पर अनवरत बढ़ती जा रही है। इसने सत्ता से बिना कुछ पाए और उसकी लालसा

किए बिना राजनीतिक व प्रशासनिक हस्तक्षेप अथवा दबाव से मुक्त रहकर नए-पुराने रचनाकारों की रचनात्मक और सकारात्मक रचनाएँ प्रकाशित की हैं। वित्तीय दबाव और सरकारी विज्ञापनों के बिना नियमित रूप से सुरुचिपूर्ण साज-सज्जा एवं साहित्य की प्राय: सभी विधाओं की सतरंगी सामग्री के साथ समय पर यह पत्रिका प्रकाशित हो रही है। ऐसी पत्रिका के संपादक के दायित्व का निर्वहन करते हुए मुझे प्रसन्नता, संतुष्टि और गौरव की अनुभूति होना स्वाभाविक है, किंतु गर्व व हर्ष की इस अनुभूति के बीच मन-मस्तिष्क पर एक दबाव सदैव रहा कि 'विचार दृष्टि' के नाम, प्रतिष्ठा व परंपरा पर आँच नहीं आने पाए।

मैं यह सहर्ष स्वीकार करता हूँ कि यह दायित्व मुझे मेरे अनुभव या दक्षता की वजह से नहीं, बल्कि उपलब्ध लोगों में बेहतर मानते हुए दिया गया था। हालांकि यह भी सही है कि भारतीय लेखा एवं लेखा परीक्षा विभाग के कार्यालय, प्रधान महालेखाकर (लेखा परीक्षा), बिहार, पटना से प्रकाशित विभागीय पत्रिका 'प्रहरी' के संस्थापक-संपादक का दायित्व संभालते हुए स्वैच्छिक सेवा निवृत्ति के कवल लगभग दस वर्षों का अनुभव मुझे प्राप्त था, फिर भी डॉ. साधुशरण, जिया लाल आर्य, यू.सी. अग्रवाल, चंद्रमौलेश्वर प्रसाद, प्रो. ऋषभदेव शर्मा, डॉ. मधु धवन, डॉ. बाल शौरि रेड्डी, पद्मश्री डॉ. श्याम सिंह 'शशि', प्रो. राम बुझावन सिंह, डॉ. देवेन्द्र आर्य, डॉ. शाहिद जमील, मनोज कुमार, उदय कुमार 'राज़', प्रो. पी.के. झा 'प्रेम', राजेन्द्र कुमार प्रसाद, राजभवन सिंह, युगल किशोर प्रसाद, मनु सिंह, शिव कुमार सिंह आदि शुभेच्छुओं का सदैव सहयोग तो मिला ही, इधर-दिल्ली विकास प्राधि करण के श्री नंदलाल जी के अपेक्षित मार्गदर्शन एवं सहायता से 'विचार दृष्टि' की नौका को खेने में मैं आजतक गर्व का अनुभव कर रहा हूँ और इसका उच्च एवं गौरवपूर्ण स्तर बनाए रखने का प्रयास कर रहा हूँ। वैसे भी संपादक परिवार और सहयोगी रचनाकारों के सहयोग को ही मैं अपनी पूँजी मानता हूँ, हम इसे संजोकर रख पाएँ, तो यही हमारे लिए बड़ी बात होगी।

''टी.वी. के बढ़ते चैनलों के चलते लोगों को पत्रिका पढ़ने का समय नहीं है,'' सुप्रसिद्ध पत्रकार सुरेन्द्र प्रसाद सिंह के इस कथन को सत्य मानते हुए मेरा यही प्रयास रहा है कि 'विचार दृष्टि' की मूल्यवत्ता में कमी न हो और सामाजिक एवं वैचारिक नैतिक मानदंड विलुप्त न होने पाए। आज विचारहीनता का दौर चल रहा है और विचारहीनता के दौर में समाज न तो स्वस्थ हो सकता है और न राष्ट्र सबल। साहित्य, कला, दर्शन, नैतिक मूल्य, विज्ञान आदि के स्रोत भी तो चिंतन और विचार ही हैं। जब किसी प्रभावशाली व्यक्ति के क्रांतिकारी चिंतन व विचार के द्वारा सामाजिक परिदृश्य बदलता है, तो वह बदलाव सामाजिक परिवर्तन की संज्ञा पाता है। संपादक परिवार इस बात से अवगत है और इसी से वह दिशा पाता है।

'विचार दृष्टि' अपनी सेवा के दस वर्ष पूरे कर ग्यारवें वर्ष में प्रवेश कर रही है। इस पूरी अवधि में हमें आप पाठकों व लेखकों से जो स्नेह और सहयोग मिला, उसके लिए हम आपके प्रति हृदय से आभार व्यक्त करते हैं। साथ ही हम यह भी विश्वास रखते हैं कि आप अपना स्नेह पूर्ववत् बनाए रखेंगे। दस वर्ष की सेवावधि में हमने राष्ट्रीय चेतना जगाए रखने की वैचारिक पहल करने में कभी कोई कोर-कसर नहीं उठा रखा है। 'तब' और 'अब' की अगर हम तुलना करते हैं तो हमें सुखद अनुभव यह सोचकर होता है कि कालक्रम में कितने उतार-चढ़ाव से गुजरते हुए आज हम जिस पड़ाव पर आ खड़े हैं वहाँ 'विचार दृष्टि' के शुभेच्छुओं की सोच में काफी बदलाव आया है और लोगों ने न केवल एक संपादक-प्रकाशन की पीड़ा को देखा-समझा है, बल्कि उसे महसूस करते हुए उस पीड़ा से मुक्ति के लिए उपाय भी सोच रहे हैं, यह इस पत्रिका के लिए एक शुभ संकेत है, क्योंकि इसमें नजर आता है सुंदर भविष्य और मुझे होता है सुखद अहसास। शुभेच्छुओं के सकारात्मक और रचनात्मक सोच से पत्रिका के नियमित व स्तरीय प्रकाशन का मार्ग प्रशस्त होता है। पिछले एक-दो अंक की जो साज-सज्जा और सामग्रियाँ हैं उसमें मुझे शीतलता और आशा की एक किरण नजर आती है। पत्रिका के परिदृश्य में परिवर्तन का श्रेय नि:संदेह इसके संपादकीय सलाहकार श्री नंदलाल जी को जाता है, जो भारतीय लेखा एवं लेखापरीक्षा सेवा के न केवल एक वरिष्ठ अधिकारी हैं, बल्कि दिल्ली विकास प्राधिकरण के वित्त सदस्य जैसे महत्त्वपूर्ण पद का दायित्व बखूबी निभा रहे हैं। दरअसल इस पत्रिका से ये विगत दस वर्षों से जुड़े रहे हैं और प्रारंभ में ही उसकी आजीवन सदस्यता स्वीकार कर पत्रकारिता के प्रति अपनी दिलचस्पी का परिचय दे चुके हैं। इनकी सदाशयता और सहृदयता के लिए मैं इनके प्रति अपनी कृतज्ञता इसलिए ज्ञापित करता हूँ कि इन्होंने समय पर और समय के साथ उच्च पद पर रहते हुए भी पत्रिका को आगे बढ़ाने में परहेज नहीं किया, जो आमतौर पर नहीं देखने को मिलता है।

'विचार दृष्टि' का भावी रुप क्या होगा? इस प्रश्न का उत्तर एक ही हो सकता है कि 'विचार दृष्टि' अपनी साहित्यिक, सांस्कृतिक एवं सामाजिक थाती के साथ-साथ सच का सच और गलत को गलत कहने की आदत को कभी नहीं छोड़ेगी और राष्ट्रीयता की भावना को जागृत करते रहने का हर संभव प्रयास करेगी।

वर्तमान सामाजिक संदर्भ में तिरुक्कुरल की प्रासंगिकता

○ डॉ० एन. सुंदरम

तिरुवळ्ळुवर का जीवनकाल लगभग दो हज़ार वर्ष पूर्व का है। किन्तु ऐसा प्रतीत नहीं होता कि उनका अवसान हो चुका है। वे तमिल प्रदेश में सम सामयिक जीवन में निरंतर विद्यमान हैं। तिरुवळ्ळुवर ने तमिल साहित्य को जितना पल्लवित एवं पुष्पित किया उतना किसी अन्य तमिल रचनाधर्मी ने नहीं किया। तमिलनाडु के बौद्धिक और साहित्यिक चिन्तन क्षेत्र पर उनका प्रभुत्व बना रहा तथा तिरुवळ्ळुवर के जीवन काल से लेकर वर्तमान समय तक संभवत: कंबर के अतिरिक्त अन्य कोई भी ऐसा रचनाकार नैतिक और आध्यात्मिक दृष्टि से इतना प्रभावशाली नहीं हुआ कि तिरुवळ्ळुवर की ऊँचाइयों को छू सके। अधिकार और न्याय की संकल्पना एवं चिन्तन मूल्यों की प्रस्तावना के लिए प्लेटो, अरस्तु, कन्फ्यूशियस एवं रूसो ने जिस धरातल पर विचार किया था तिरुवळ्ळुवर भी उसी चिन्तन स्थल पर विचार करते रहे। अब प्रश्न यह है कि मानवता के संबंध में उनकी क्या धारणा थी? जब हम तिरुवळ्ळुवर की जीवन-दृष्टि के आधार पर मानवीय जीवन का दर्शन करते हैं तो आश्चर्य चकित रह जाते हैं। उन्होंने भावनात्मक परिवर्तनों पर अपना ध्यान केंद्रित किया जो मानवीय अंत:संबंधों यथा पिता-पुत्र, पति-पत्नी नागरिक-राज्य और ब्रह्म एवं आत्मा के बीच मानवीय आचरण के प्रत्येक स्तर पर घटित होते हैं।

तिरुवळ्ळुवर द्वारा प्रणीत तिरुक्कुरल के 133 अध्यायों में सन्निमिष्ट 1330 कुरळों की संरचना पर दृष्टिपात करते हैं तो हमें उसकी समग्रता का बोध होता है।

तिरुवळ्ळुवर में रचनाकार ने अत्यंत संक्षिप्त सीमा में अपने भावों की अभिव्यक्ति की है। तमिल कवयित्री अव्वैय्यार ने तिरुवळ्ळुवर काव्य शिल्प और काव्यात्मक रचना धर्म पर प्रभावित होकर कहा है–

''तिरुवळ्ळुवर ने अनुवत् कुरळों का निर्माण किया है जिसकी सूक्षमता में सातों समुद्रों का विराट गांभीर्य समाहित है।''

तिरुवळ्ळुवर ने अपने युगीन समाज में प्रचलित कठोर आचार व्यवस्थाओं की तीव्र भर्त्सना की है। उन्होंने कहा-

''सभी मनुष्य जन्म से बराबर है ।
कर्मभेद से ही वे अलग-अलग जाने जाते हैं।''
(792)

प्रेम के सातध्य स्वरूप को वळ्ळुवर ने स्पष्ट किया है-

''उपकार के बदले प्रतिदान की आशा न करो। जल बरसाने वाले बादलों को वर्षा के बदले संसार उसे क्या दे सकता है।''

तिरुवळ्ळुवर द्वारा रचित तिरुक्कुरल का अनुवाद विश्व की अनेक भाषाओं में हुआ है। कुरळों के रूपान्तर के संबंध में डॉ० ग्रवुल कहते हैं-

''वास्तव में कुरळ स्वर्ण से निर्मित उस सेब के अनुरूप है जो मंजूषा या पेटिका में रखा हुआ है। सन् 1854 में डॉ. ग्रवुल ने जर्मन में तथा 1866 में लेटिन में कुरळ् का अनुवाद किया था। इस जमन विद्वान को निम्नलिखित कुरळ् ने अधिक प्रभावित किया।

''इस नायिका की काज़ल लगी हुई आँखों में दो ही दृष्टियाँ हैं।''

एक से मुझे बीमार करना है। दूसरे से उस बीमारी के लिए दवा के रूप में काम आना है। (1091)

फ्रेंच विद्वान एरियल ने सन् 1848 में फ्रेंच भाषा में तिरुक्कुरल का अनुवाद किया था।

रेवरेंड जी.यू. पोप ने अंग्रेजी भाषा में कुरळ् का अनुवाद कर उससे प्रभावित होकर कहते हैं-

''वे वाक्य विन्यास शिल्पी थे। कुरळ् स्वयंपूरित नैतिक संचिकाएँ हैं।''

अंग्रेजी साहित्य के एक सुप्रसिद्ध समालोचक रेवरेंड फ़ादर पेरसुवेल ने कहा है-

''मानवीय अभिव्यक्ति और भाषा के संपूर्ण परिसर में कुरळों में अभिव्यक्ति कविता की तरह अन्य कोई दूसरा उदाहरण नहीं है।''

तमिळ् साहित्य ग्रन्थों में तिरुक्कुरल ही एक ऐसा काव्य ग्रन्थ है जिसका विश्व की अनेक भाषाओं में सर्वाधिक अनुवाद हुआ है। तिरुक्कुरल के अनुवाद लेटिन, फ्रेंच, जर्मन, डच, फिनिश, पोलिश, रूसी, चीनी, फ़िजी, मलाई तथा बर्मी भाषाओं में उपलब्ध है। भारत की सभी भाषाओं में इस काव्यग्रन्थ के अनुवाद उपलब्ध हैं।

तिरुवळ्ळुवर के व्यक्तित्व का पुनर मूल्यांकन करें तो हमें कई तथ्य हमारे सामने उभरकर आते हैं। वळळवर बच्चों की तोतली-बोली के बारे में कहते हैं-

''अपने बचचों के शरीर का स्पर्श, तन को सुखद है। उनकी तोतली बोली सुनना कान के लिए सुखद है।'' [65]

तिरुवळ्ळुवर कहते हैं वंशानुक्रम से ग्रहीत संस्कार व्यक्तित्व निर्माण के लिए इतने महत्वपूर्ण नहीं है। अपने धारणाओं को स्पष्ट करते हुए कहते हैं-

''पानी मिट्टी के गुण को प्रकट करता है। ज़मीन पर बहता है। और उसी के समान हो जाता है।

इसी प्रकार-मनुष्य की बुद्धि भी संगति के अनुरूप बदल जाती है।'' (452)

वळळुवर ने शब्द के सुंदरतम और संक्षिप्तम रूप के प्रयोग पर विचार किया है। वे मानते हैं कि शब्द, आध्यात्मिक ओज एवं प्रदीप्ति को प्रकट करनेवाला समर्थ माध्यम है। वे वाक् शक्ति पर कहते हैं-

''इस प्रकार शब्द का प्रयोग करो

कि उस शब्द के स्थान पर, दूसरे पर्यायवाची शब्द का प्रयोग नहीं करना पड़े।'' (645)

वळ्ळुवर अपशब्दों और भर्त्सनामूलक शब्दों के प्रयोग को दूषित मानते थे। उनकी धारणा थी कि जब शब्दाभिव्यक्ति होती है तब वह असंस्कृत एवं अस्थिर मन स्थिति के दिग्दर्शन के उद्देश्य से नहीं होती। शब्दोच्चारण में आत्मा में व्याप्त शांतिमय गहराइयों का सन्निवेश होता है। इस शब्द प्रयोग पर वळ्ळुवर कहते हैं-

''सुनने वालों की क्षमता को ध्यान में रख शब्दों को प्रयोग करो, अन्यथा धर्म-अर्थ का कोई मूल्य नहीं।'' (644)

इसी शब्द प्रयोग पर वळ्ळुवर कहते हैं कि ''सीखे हुए ग्रन्थों को दूसरों को समझाने में जो असमर्थ है वे उस फूल के बराबर हैं जो विकसित होने पर भी अपनी सुगंध को फैला नहीं सकते।'' (650)

वळ्ळुवर चेतना शून्य, विवेकहीन तथा अनुत्तरदायी श्रोता समाज के समक्ष संभाषण करते हुए क्रोधित भी हो जाते हैं। कहते हैं-

इतना ही नहीं संभाषण के प्रति कहते हैं-

''जो निरर्थक शब्दों का बार-बार प्रयोग करता वह मनुष्यों में कूड़े के समान है।'' (196)

कुरळ् का तृतीय अध्याय ''कामत्तुप्पाल'' है। यह प्रेम के सभी अंगों की चित्रावलियों को प्रकट करता है। कुरळों में प्रेम का वर्णन दैहिक आधारों पर किया गया है। लेकिन इस दैहिक आधार में सर्वत्र वळ्ळुवर ने पवित्रता को निभाया है। एक वियोगी प्रेमी कहता है-

''आग तो छूने पर ही जला सकती है। किन्तु काम-ज्वर तो बिछुड़ने पर जलाता है।'' (1159)

प्रेम के वर्णन में परंपरागत उपमानों को वळ्ळुवर ने अपनाया है। नायक कहता है-

''मैं उसकी ओर दृष्टिपात करुँ तो वह सर झुकाकर ज़मीन को देखती है। उसकी ओर न देखने पर वह मुझे देख गद्‌गद् होती है।'' (1094)

इसी प्रकार एक दूसरा उदाहरण देखिए- ''मैंने अपने प्रतिमा से कहा, ''मैं तुमको सबसे बढ़कर प्यार करता हूँ। इसे सुनकर वह बहुत गुस्से में भर गई और रूठ गई, कहने लगी, ''फिर तुम किस-किसको प्यार करते हो भला।'' (1314)

कुरळ की संरचना के विधान का अध्ययन अत्यंत आकर्षक है। कुल 133 अध्याय हैं। प्रत्येक अध्याय में 10 कुरल हैं। तीन खण्ड हैं। प्रथम खण्ड का शीर्षक 'अरत्तुप्पल' है। (धर्म से संबंधित। इसमें धर्म और कर्तव्य से संबंधित 380 कुरल सन्निबद्ध हैं। दूसरे खण्ड में 70 कुरळ हैं। इसका शीर्षक 'पोरुट्पाल' है। (संपत्ति से संबंधित है।) तीसरा खण्ड 'काम' से संबंधित है। इसे 'कामत्तुप्पाल' कहते हैं और इसमें 250 कुरळ हैं।

तिरुक्कुरळ-1330

धर्म (अरम)	अर्थ (पोरुळ)	काम (काम)
380	700	250

133-अध्याय 133 × 10 = 1330

कुल 1330 कुरळ हैं।

वळ्ळुवर ने मोक्ष (वीडू) के संबंध में कोई भी अभिव्यक्ति नहीं की है। यह बड़े आश्चर्य का विषय है। कहते हैं वळ्ळुवर ने अपने कुरळों में व्यावहारिक जीवन की स्थितियों तथा वस्तु व्यापारों को चित्रित करने का कार्य किया है। इसलिए उन्होंने मोक्ष पर ध्यान नहीं दिया है।

धर्म के संबंध में उनकी विचारधारा विश्वव्यापी एवं विराट है। तिरुवळ्ळुवर का पोरुट्पाल संस्कृत के अर्थ से तनिक भी संबंधित नहीं रहता। उन्होंने अर्थ-शास्त्र में केवल प्रशासन-संचालक के संबंध में विचार किया है। तृतीय खण्ड कामत्तुप्पल है। यह खण्ड संस्कृत के कामशास्त्र से पूर्णरूप से भिन्न है। इस खण्ड के दो उपखण्ड हैं। एक 'कळवियळ' दूसरा 'करपियल'। कळवियल वह धर्म-विधान है जो विवाह पूर्व संपादित होता है। करपियल में विवाहोपरान्त प्रेम-भाव के स्वरूप का विश्लेषण हुआ है। वे इस प्रेम को गरिमापूर्ण ढंग से प्रकट करते हैं। कहते हैं-

''मधु पीने पर ही नशीला प्रतीता होता है पर काम तो
दर्शन मात्र से उन्मत्त कर देता है।'' (1090)

अलेक्साण्डर पोप के अनुसार- ''कुरळों में निहित अभिव्यक्ति को देखने से ऐसा लगता है जैसे वे मामल्लपुरम के पत्थरों पर उत्कीर्णित शिलालेख हों और अत्यधिक श्रमपूर्वक उकेरे गए हों।

वास्तव में प्रत्येक पंक्ति में शब्दों की संरचना 'संगमरमर की कलाकृति की तरह सम्मोहक और आकर्षक है।''

तिरुवळ्ळुवर अशिक्षित व्यक्ति के असंस्कृत व्यवहार को भी अपनी शिक्षा का आधार बनाया है-

''अशिक्षित व्यक्ति का भाषण देने की इचछा रखना उसी प्रकार है जैसे-
स्तनों से वंचित कोई रमणी,
सुमुखी होने का दावा करें। (402)

इसी प्रकार आगे कहते हैं-

''अशिक्षित व्यक्ति भी भाग्यशाली हो, यदि विद्वानों की सभा में व्यख्यान देने का साहस न करें।'' (403)

वळ्ळुवर ने मूर्खों से मित्रता की भर्त्सना करते हुए कहते हैं-

''सज्जनों की सभा में मूर्ख का प्रवेश करना इस प्रकार है जैसे साफ़-सुथरी शय्या पर बिना धोए पैर रखना।'' (840)

वळ्ळुवर कंजूसों पर टिप्पणी करते हुए कहते हैं-

''धनी व्यक्तियों का धन निर्धनों का काम न आवें यह तो ऐसा ही है कि बहुत सुंदर स्त्री अविवाहिता रहे और बूढ़ी हो जाए।'' (1007)

वळ्ळुवर ने उपदेशात्मक विचारों को व्यक्त करने के लिए विशेष उपमा का आश्रय लिया है। कहते हैं-

''पानी पर तैरने वाला फूल पानी की ऊँचाई जितना ही ऊपर ऊँचा होगा।

उसी प्रकार मनुष्य की महानता मन जितना ऊँचा होगा उतनी ही ऊँची होगी।''(595)

खेतीबाड़ी के संबंध में कहते हैं-

''दूसरों के अन्नदाता
हम चलनेवाले किसान ही हैं ।
वे इस दुनिया में आराम से जीते हैं।
शेष सब उसके पीछे हाथ जोड़े जाते हैं। (1033)

मित्रता के संबंध में वहळुवर का यह कथन बहुत ही श्लाघनीय है-

''जैसे अधोवस्त्र खिसकते समय हाथ उसे थामने के लिए तेज़ी से जाता है। वैसे ही कठिनाई के समय तत्काल मित्र की सहायता करनी चाहिए।'' (788)

वळळुवर ने अक्षर और अंकों की खोज, मानव की बहुत बड़ी खोज और उपलब्धि मानते हैं। वे इसलिए कहते हैं-

''जीवित मनुष्य की दो आँखें होती हैं- वे हैं एक तो अंक दूसरा अक्षर।'' (392)

वळळुवर ने एक भाषा वैज्ञानिक की तरह कहा है कि अक्षरों के क्रम में 'अ' वर्ण सर्वप्रथम आता है। विश्व सत्य के साथ इस वर्ण की तुलना करते समय वळळुवर ने अत्यन्त मौलिक उपमा का उपयोग करते हुए अपना विचार व्यक्त किया है।

''अ'' के स्थान सभी अक्षरों की आदि में है।
उसी प्रकार लोग का आदि तो आदिभगवन है।'' (1)

मांसाहार के प्रति और अहिंसा के प्रति अत्यंत सहज सुंदर रूप में वळळुवर ने अपने विचार व्यक्त किए हैं-

''जीवों को न मारने की अपेक्षा धर्म और क्या हो सकता है, जीवों को मारने से सब प्रकार के पाप अपने आप आ जाते हैं।'' (321)

आत्म त्याग की भावना गार्हस्थिक जीवन में अत्यन्त पवित्र है। अपना ही बच्चा सबको प्यारा है। उसकी गंदगी को गंदा नहीं मानते।

अपने नन्हे-मुन्न के हाथ से
बिलगा भात
माता-पिता को
अमृत में स्वादिष्ट लगता है।'' (64)

वळळुवर अतिथि-सत्कार को श्रेष्ठ मानते हैं। वे कहते हैं-

''अनाघात फूल सूंघने से मुरझा जाएगा। पर अतिथि को अप्रसन्न देखने मात्र से उसका मुख सूख जाएगा।'' (90)

इसी प्रकार परोपकारिता के बारे में कहते हैं-

''उपकार के बदले, प्रत्युपकार की
कभी आशा न करो,
जल बरसाने वाले बादलों को
वर्षा के बदले भला, संसार क्या दे सकता है।'' (211)

वळळुवर ने संपत्ति की अस्थिरता के संबंध में कहा है:-

''रंगभूमि से ज्यों-ज्यों
दर्शकों की भीड़ एकत्रित होती है
त्यों-त्यों प्रचुर संपत्ति भी
एकत्रित होती है।
नाटक खतम होने के बाद
जैसे भीड़ गायब हो जाती है
वैसे ही संपत्ति भी देखते-देखते विलीन हो जाती है।'' (332)

वळळुवर मूलत: आशावादी थे। उन्होंने सबसे पहले अहिंसा का प्रतिपादन किया। दूसरा महत्वपूर्ण योगदान उन्होंने जो वैचारिक जगत को दिया है वह अत्यंत मौलिक और नैसर्गिक है। वळळुवर ने ईश्वर को शुद्ध एवं शाश्वत् प्रेम के सम तुल्य माना है। इनकी तुलना तिरुमूलर के साथ कर सकते हैं। तिरुमूलर वास्तव में तिरुवळळुवर के आध्यात्मिक वंशज हैं। तिरुमंदिरम में तिरुमूलर ने कहा है-

''प्रेम और ईश्वर भिन्न-भिन्न हैं।
ऐसा कहने वाले ज्ञानहीन हैं। वे यह जानते ही है कि-
प्रेम और ईश्वर अभिन्न हैं
एक ही तत्व हैं'' (तिरुमंदिरम)

इसी तत्व को वळळुवर ने भी प्रचार किया है। उन्होंने अपने सक्षम अवलोकन प्रक्रिया, मेधा शक्ति पांडित्य, मान्य व्यवहारिकता, गंभीरता, विनोदप्रियता, विवेकपूर्ण तथा साहसपूर्ण भावों से समाज की वास्तविकताओं में वळळुवर ने समाज और जीवन में एक जादूगर अथवा संमोहक की भूमिका का निर्वाह किया है। उनका यह दृढ़ विचार है कि विशुद्ध नैतिक मूल्यों से ईमानदार और निष्ठावान व्यक्तित्व का निर्माण होता है। वळळुवर ने नए मुहावरों का निर्माण किया है तथा नई भावधारा का आविष्कार किया है। इसके लिए उन्होंने भाषा और दर्शन का समावेश अपनी अभिव्यक्ति में अत्यंत कुशलता के साथ किया है। उनकी भाषा में दार्शनिक चिन्तन के संकेत निहित हैं तथा उनका दार्शनिक चिन्तन के संकेत निहित हैं तथा उनका दार्शनिक चिन्तन के संकेत निहित हैं तथा उनका दार्शनिक चिन्तन के संकेत निहित हैं तथा उनका दार्शनिक चिन्तन में भाषा भी दर्शन-सिक्त हो गई है। उन्होंने सभी अनुभव सत्यों का संचयन कर उन्हें अभिव्यक्त कर दिया है। वळळुवर के कुरळों में एक प्रकार की आंतरिक शुचिता और परिपक्वतापूर्ण स्थितियों के दर्शन होते हैं जो असाधारण, प्रतिभा तथा कोमलता में अद्‌भूत है।

तिरुवळळुवर का सिद्धांत विश्व-मैत्री पर आधारित है। तमिळ् कवि पूङ्कुन्ड्रनार जो तिरुवळळुवर के समकालीन थे वे भी इस विचार से सहमत थे। उनके विचार भी तिरुवळळुवर के विचारों के ही समान है। उन्होंने कहा है-

''प्रत्येक प्रदेश मेरी अपनी भूमि है,
प्रत्येक मनुष्य मेरा अपना बंधु है।''

इन उपर्युक्त तथ्यों के आधार पर हम कह सकते हैं कि तिरुवळळुवर के वचनों को स्वर्णाक्षरों में अंकित कर सकते हैं। वळळुवर अद्वितीय हैं। जी.यू. पोप के उनके बारे में ठीक ही कहा था-

''विश्व मानतवता का चारणा''।

संपर्क : बालाजी नगर,
चेंन्नई

कथा

'अधूरा मुक्ति संग्राम'

○ डॉ0 बी0 बालाजी

'नमस्कार साथियो! कैसे हैं? इस पेड़ पर आए आप सबको बहुत दिन हो गए हैं। है ना? आपको आश्चर्य हो रहा होगा, मैं पहली बार आप लोगों से बात कर रही हूँ। आप लोगों ने तो सोचा होगा, मैं कितनी घमंडी हूँ। किसी से बात नहीं करती हूँ। इसमें आपका कोई दोष नहीं है। मेरे साथ पिछले दिनों कुछ ऐसा हुआ है कि मैं इन दिनों शांत हो गई हूँ। हम सब की बढ़ती संख्या देखकर, आज कुछ बोलने की ताकत जुटा पाई हूँ। यदि आप सब लोग मुझे अनुमति दें, तो मैं कुछ कहना चाहती हूँ। कहानी सुनाना चाहती हूँ अपनी। मेरे बीते दिनों की सुखद और दुखद घटनाएँ आप सबसे बाँटना चाहती हूँ।' इतना कहकर वह चुप हो गई। दूसरी कठपुतलियाँ आपस में कुछ खुसुर-फुसुर करने लगीं।

ये सारी कठपुतलियाँ एक पेड़ पर धागे से बँधी डालियों पर लटकी हुई थीं। यह पेड़ गाँव की सटवई माता के मंदिर के बाहर था। मंदिर की दीवारें टूटी-फूटी थीं। इस मंदिर पर छत नहीं थी। यह माता की इच्छा थी, मंदिर न बने। गाँववाले तो यही मानते थे। दीवारें और छत बनवाने की गाँववालों ने बहुत कोशिश की थी, पर वे कभी सफल नहीं हुए। दिन में दीवार बनाते, रात में अपने-आप गिर जाती। अंततः माता की जीत हुई। गाँववालों को हार से ही संतुष्ट होना पड़ा।

यही कठपुतली सबसे पहले इस पेड़ पर लटकाई गई थी।-लटकाई क्या गई, अरे! मैं ही सब कुछ बोल दूँगा तो बेचारी उस कठपुतली के पास क्या बचेगा कहने के लिए।

पेड़ पर लटकती कठपुतलियों ने आपस में बात की और तय कर लिया। सबने एक साथ उससे अपनी कहानी सुनाने के लिए कहा। उसने कहना शुरू किया। वह बोली- 'मेरा नाम सुग्गी कठपुतली है। मेरा मालिक कठपुतलीवाला धनीराम था। उसने मुझे शामू बढ़ई से बनवाया था। उसने मेरी रचना की थी। मुझे सुंदर-सुंदर वस्त्र दिए थे। रहने को सुंदर-सा घर और परिवार भी दिया था। मेरी ही तरह अन्य कठपुतलियों की रचना हुई थी। उन्हें भी अच्छे वस्त्र, शृंगार का सामान और घर परिवार मिला था। हम सब साथ रहते, गाते, नाचते, मज़े में अपना जीवन बिता रहे थे। हम में से किसी को भी यह आभास तक न हुआ था कि हमारी रचना गाना-बजाना करके लोगों का दिल बहलाने के लिए हुई है। यह काम हमें जबरन करना पड़ता है। हमारे हाथ-पैर धागे से बँधे हैं। कोई और हमें जैसा चाहता है वैसा नचाता और गवाता है।'

इतना कहकर वह कुछ क्षण रुकी। उसने यह सब एक साँस में कह दिया था। उसने फिर से कहना शुरू किया-'एक बार की बात है। भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन के समय एक गाँव में कठपुतली का खेल रखा गया था। हमारा मालिक हमें लेकर उस गाँव में पहुँचा। गाँव का वातावरण बड़ा लुभावना था। मैं गाँव को देखकर उछल पड़ी थी। शहरों को देख-देखकर, वहाँ के विषाक्त वातावरण से मैं बचना चाहती थी। मन कह रहा था इसी गाँव में बस जाऊँ। मेरी मुराद पूरी हुई। कई दिनों तक हम गाँवों की सैर करते रहे थे।'

गाँव की बात ही निराली होती है। गाँव सादे जीवन का प्रतीक है और शहर बनावट का। यहाँ लोग एक-दूसरे का सम्मान करते हैं। राम-राम, दुआ-सलाम करते हैं। वहाँ किसी की पूछ नहीं होती। यहाँ किसी के घर में कार्य हो, मातम हो लोगों की भीड़ जम जाती है, हाथ बटाती है। वहाँ तमाशा देखने आती है। यहाँ पेड़ों की कतारें हैं। वहाँ पेड़ों का कटाव है। और! और न जाने कितनी ही ऐसी विपरीतताएँ हैं। पर कुछ भी हो, सुग्गी को गाँव भा गए। केवल उसी को नहीं, उसके साथियों को भी।

'शाम करीब सात बजे कठपुतली का खेल शुरु हुआ। मैं और मेरे साथी खूब खिलवाए गए। हमारी और हमारे मालिक धनीराम की खूब वाहवाही हुई। प्रशंसा सुनकर मैं और मेरे साथी फूले नहीं समाते थे। ऐसा लगा हमें अपने जीने का मकसद मिल गया। गाँव-गाँव घूम कर लोगों में स्वतंत्रता के लिए जागृति फैलाना बड़े पुण्य का कार्य समझने लगे। लोग हमारे अभिनय को देखकर प्रोत्साहित होने लगे। प्रेरित होकर उत्साह से भरकर आंदोलनों में बड़ी तादाद में सम्मिलित होने लगे। जितनी प्रसन्नता से, जितनी संख्या में लोग कठपुतली का खेल देखने आते थे, उससे कई गुना अधिक आंदोलन में शरीक होने लगे थे। इसका पता हमें हमारे मालिक से चलता था। वह रोज़ सबेरे अख़बार पढ़ता था। हम सब एक जगह बैठकर चुपचाप सुनते थे। 'बाल गंगाधर तिलक ने कहा 'स्वतंत्रता मेरा जन्म सिद्ध अधिकार', 'गाँधीजी के नेतृत्व में विदेशी कपड़ों का बहिष्कार', 'असहयोग आंदोलन ने जोर पकड़ा', 'दो सौ से अधिक पकड़े गए', 'स्त्रियाँ भी गिरफ्तार' इत्यादि न जाने ऐसी कितनी ही खबरें हमने सुनीं, और उछल-उछलकर, और जोश में आकर, देशभक्ति के गीत गाते हुए अभिनय करने लगे थे।'

'दिन बीतने लगे। स्वतंत्रता आंदोलन जोर पकड़ चुका था। 'अँग्रेज़ों भारत छोड़ो', वंदेमातरम्', जैसे आकाश को भेदने वाली ध्वनियाँ रोज़ सुनने में आती थी। हम खुशी के मारे कभी तालियाँ बजाते, सीटी बजाते, उछलते, गले मिलते। एक दिन रात को धनीराम का बेटा छोटूराम हिंदी की कविता याद कर रहा था। न जाने क्यूँ मुझे नींद नहीं आ रही थी। कई दिनों से ऐसा हो रहा था। जब से देश आज़ाद हुआ था, तभी से हम लोगों का काम हलका- इससे भी मेरा मन खिन्न था।'

छोटू राम कविता याद कर रहा था-

'कठपुतली गुस्से से उबली,
बोली ये धागे–
क्यों हैं मेरे पीछे-आगे?
इन्हें तोड़ दो,
मुझे मेरे पाँव पर छोड़ दो।'

'यह कविता मेरे मन को छू गई। हम लोगों ने देश की आज़ादी में प्रत्यक्ष न सही परोक्ष रूप से अपना योगदान दिया था। लोगों में जागृति लाई थी। हममें यह चेतना क्यों नहीं आई। यही विचार करते-करते न जाने कब मेरी आँख लग गई, मुझे पता ही न चला।'

सबेरे जब मुर्गे ने बाँग लगाई, तब जाके मेरी आँख खुली। उठते ही मैंने सबसे पहला काम अपने साथियों को जगाने का किया। उन्हें जगाया। रात में मेरे साथ घटी बातों का ब्यौरा दिया। कविता सुनाई- 'कठपुतली/गुस्से से उबली/....।'

मेरे साथियों ने भी कविता के भाव को समझ लिया। एक ने पूछा- 'अब हमें क्या करना चाहिए।'

दूसरी ने कहा-'करना क्या चाहिए? असहयोग आंदोलन, और क्या?'

तीसरी ने कहा- 'लेकिन क्या ऐसा करके हम अपने विलासी जीवन पर आप ही कुल्हाड़ी नहीं मारेंगे?'

एक ने कहा- 'हाँ, यह ठीक कह रही है। अपनी सुनेगा कौन? हम इतने कमज़ोर हैं कि बिना धागे के हम उठ-बैठ नहीं सकते।'

मैंने कहा- 'ठीक है। माना कि बिना धागे के हम उठ-बैठ नहीं सकते। पर कब तक। हमें पहले से ही इसकी आदत डाली गई है। इसीलिए हम डर रहे हैं। एकबार कोशिश तो की जा सकती है।'?तीसरी ने कहा- 'पर पहल कौन करे? कब करे? हर वक्त तो हम घर में पड़े रहते हैं। खेल के समय मालिक धागे बाँधता है। धागे कौन तोड़ेगा और कैसे?'

धीरे-धीरे सब कठपुतलियों की बातें समझ में आने लगी थीं। आज़ाद होना सभी चाहती थीं। पर डरती थीं। भविष्य की भी चिंता उनमें साफ दिखाई दे रही थी।

मैंने कहा-'आज से ठीक एक सप्ताह बाद 15 अगस्त है। आज़ादी का पहला साल। राजधानी में बड़ा जलसा होने वाला है। इस गाँव में भी होगा। तिरंगा फहराया जाएगा। सरपंच जी भाषण देंगे। अपने मालिक धनीराम को उस जलसे में कठपुतली का खेल दिखाने का काम सौंपा गया है। मुझे मालूम है उसके हाथों से बचके निकलना मुश्किल है, पर नामुमकिन तो नहीं? वह उसी खेल की तैयारी में लगा हुआ है। कविता याद कर रहा है। 'झाँसी की रानी' का खेल है- 'खूब लड़ी मरदानी वह तो झाँसीवाली रानी थी।'

दूसरी ने कहा- 'अरे! यह वही कविता है न, जिस पर हमने एक खेल खेला था? आज़ादी के पहले। 'चमक उठी सन् सत्तावन में वह तलवार पुरानी थी।'

सभी ने कहा- हाँ! हाँ! हाँ। हमें याद है। एक स्वर में कहा था। सभी ने 'हमें तो वह कविता भी याद है।'

मैंने कहा-'हाँ। वही कविता। वही खेल। पर इस बार सिर्फ खेल नहीं होगा। हमारी मुक्ति का संग्राम होगा। मालिक की उँगलियों में बँधे धागे और उँगलियाँ हमारी शत्रु होंगी। हमें उनसे आज़ादी चाहिए। आज़ादी हमारा जन्म सिद्ध अधिकार है और हम उसे लेकर ही रहेंगे।'

मुझे तिलक जी का खेल याद आ गया था। मैंने ही तिलक जी का अभिनय किया था। संवाद भी कुछ ऐसा ही था- 'स्वतंत्रता मेरा जन्म सिद्ध अधिकार है और मैं उसे लेकर ही रहूँगा।' यही मेरा पहला स्वतंत्रता आंदोलन से जुड़ा खेल था। शायद उसी दिन से कहीं मेरे मन में आज़ादी का अँकुर पैदा हो गया था, जो अब वृक्ष बनकर दूसरों को फल-फूल-छाँव देने के लिए तैयार हो गया था।

मेरे साथ सभी कठपुतलियों ने एक स्वर में कहा था-'आज़ादी हमारा जन्म सिद्ध अधिकार है और हम उसे लेकर ही रहेंगे।'

मैंने आगे कहा- 'साथियो। मैंने योजना बना ली है। मालिक मुझे झाँसी की रानी की पोशाक और घोड़ा पहनाएगा। तुम-तात्या टोपे बनने वाले हो, तुम-नाना साहेब।' इस तरह मैंने सबके किरदार बता दिए थे और योजना भी समझा दी थी।

एक सप्ताह तक रियाज चलता रहा था। मालिक हमारे रियाज से बहुत खुश था। गाँव में ही नहीं आस-पास के गाँव में भी वह अपनी कला के लिए प्रसिद्ध था। उसका खेल देखने लोग दूर-दूर से आते थे। इसी खेल की बदौलत उसने अपनी कोठी बनवाई थी। बच्चों को अच्छी शिक्षा दिलाने में सफल हुआ । पत्नी को गहने बनवाए और आज़ादी के बाद गाँव के बड़े लोगों में गिना जाने लगा था। यही बात मैंने अपने साथियों से कही थी।

तीसरी ने कहा था- 'क्या हम मालिक से प्रार्थना नहीं कर सकते कि वह हमें बंधन से मुक्त करें। हमें अपने पाँवों पर खड़े होने की आज़ादी दे दे।'

मैंने समझाया था- 'नहीं! ऐसा नहीं हो सकता, क्योंकि उसके लिए अब हम सोने का अंडा देने वाले मुर्गी हो गए हैं। इतनी आसानी से हमारी बात नहीं मानेगा।' और समझाने के लिए उसकी उन्नति की कहानी सुनाई थी। तब जाकर सभी ने मेरी सलाह स्वीकार की थी। मेरा साथ देने का वादा किया था।

शमियाने लगने लगे थे। मंच बनाया जाने लगा था। कुर्सियाँ मँगवाई गईं। लोगों में बड़ा उत्साह दिखता था। आज़ादी का पहला साल था। बच्चे तिरंगे की झंडियाँ लेकर यहाँ-वहाँ 'बंदेमातरम्-वंदेमातरम्' के नारे लगाते हुए दौड़े चले जा रहे थे। बड़े आपस में दुआ-सलाम, राम-राम की जगह 'जय हिंद' कह रहे थे। लॉउडस्पीकरों पर देशभक्ति के गीत सुनाए जा रहे थे। सबके चेहरों पर अजब-सी शान दिखाई देती थी। चिंतित और बेचैन हम ही थे।

एक सप्ताह पूरा हो गया। वह दिन आ ही गया। 15 अगस्त, 1948। मैं मन ही मन भावी दिनों की कल्पना करने लगी थी। मैं और मेरे साथी बिना धागे के खेल दिखा रहे हैं। लोग तालियाँ बजा रहे हैं। सीटियाँ बजा रहे हैं। एक बार और, एक बार और, की आवाज़ आ रही है.....।

पर्दा उठ गया। मालिक ने धागे अपनी उँगलियों में बाँध लिए थे। हमें मंच पर उतारा गया। कविता शुरु हुई- 'चमक उठी सन् सत्तावन में वह तलवार पुरानी थी।' मैंने अपने हाथ के बँधन को तलवार से काट दिए थे।

'बूढ़े भारत में भी फिर से आई नई जवानी थी'।

मैं अपने साथियों के बँधन काटने लगी। कविता की एक-एक पंक्ति पर मैं एक ही झटके से बँधन काटने लगी थी। मेरा मालिक और दर्शक अवाक हो, देखने लगे थे। 'क्या कभी ऐसा हुआ था।' कदाचित किसी ने नहीं सोचा होगा। दर्शकों में खुसुर-फुसुर शुरु हो गई थी। मालिक परेशान हो रहा था। अब क्या करे? पर यह क्या मेरे अलावा दूसरी कठपुतलियाँ जिन के धागे मैंने अभी-अभी काटे थे, धड़ा-धड़ नीचे गिरने लगी थीं। मुझसे किए गए वादे का क्या हुआ? उनमें आत्मविश्वास की कमी दिखाई देने लगी थी। उन्हें समझाने का मुझे मौका भी नहीं मिला। पर्दा गिर गया। मालिक ने मुझे उठाकर गुस्से से वही मंच के एक कोने में फेंक दिया था। 15 अगस्त का जलसा खत्म हो गया। लोग अपने घरों को चले गए। शामियानेवाले और मंच बनाने वाले कारीगर आकर अपना सामान ले जा रहे थे। किसी ने जूतों से मुझे जोर की ठोकर मारी और यहाँ मैं इस पेड़ पर आकर गिरी। तब से यहीं पर हूँ। लोगों ने सोचा किसी ने मनौती माँगकर पेड़ पर लटकाया है। मुझे देखकर और भी लोग कठपुतलियाँ बाँधने लगे। अब मैं अकेली नहीं हूँ। पर क्या मुझ में वही हिम्मत है जो कभी हुआ करती थी। मैं तब से भगतसिंह की तरह फाँसी की रस्सी से लिपटी पेड़ पर झूल रही हूँ। और, न जाने कब तक झूलती रहूँगी, इसका निर्णय तो आप ही कर सकते हैं.....!

संपर्क: हिंदी अध्यापक,
श्री स्वामि नारायण गुरुकुलअंतरराष्ट्रीय
विद्यालय, हैदराबाद-500075
मो० नं-92907222756

कहानी

अनाथ

○ मराठी मूल लेखकः मंगल सुभाष राजे
○ अनुवादः डॉ अनुपमा

आश्रम की पहली घंटी सवेरे 5.30 बजे होती थी। बच्चों को जगाने और 6.30 बजे तक, बच्चे प्रातः विधि, स्नान निबटाकर प्रार्थना के लिए हॉल में एकत्र होते थे। पर आज राहुल घंटी होने से पहले ही तैयार होकर हॉल में आ गया था। सच तो यह था कि वह रात भर सो नहीं सका था। हॉल के बीचोबीच छोटा सा मंदिर था। वहीं खड़े होकर, हाथ जोड़कर राहुल प्रार्थना कर रहा था। आज उसका 18 वाँ जन्मदिन था। आज से उसके जीवन को एक नया मोड़ मिलने वाला था। आगे का जीवन मंगलमय हो इसकी आशा वह भगवान के सामने प्रकट कर रहा था।

आज आश्रम का आखिरी दिन था, इसके बाद वह मीना मौसी के साथ रहने का सपना देख रहा था उसकी आँखों के सामने गोरी, घुंघराले बालोंवाली मीना मौसी का चेहरा आ गया। उसका छोटा-सा सजा हुआ बंगला, बंगले में तरह-तरह के पेड़, पौधे, फूल साथ ही बगीचे में झूलता झूला, राहुल का मन भी झूलने लगा था। घर क्या होता है? कैसा होता है यह सब मौसी के घर ने उसे सिखाया था।

राहुल ने जबसे होश संभाला तब से वह इसी अनाथ आश्रम में पल रहा था। उसके जैसे अनेक छोटे, बड़े बच्चें वहाँ थे। खाना बनाने वाली शांताबाई, बच्चों को संभालने वाली सुनंदाबाई, माली का काम करने वाले रामू काका और आश्रम के ऑफिस का काम करने वाले साने काका इन सबके बीच वह बड़ा हो रहा था। छोटे से हाथों से खाना खा रहा था, अपने काम कर रहा था। जब स्कूल जाने लगा तब वह यह भी जानने लगा कि दूसरे बच्चों के साथ कभी उनकी माँ आती है या कभी पापा। जैसे जैसे वह बड़ा हो रहा था अनाथ शब्द का अर्थ जानने लगा था। बचपन से ही वह शांत, गंभीर था और धीरे-धीरे अंतर्मुख होने लगा था। कल्पना के आधार पर वह अपने मम्मी, पापा का चित्र बनाता। शांताबाई को राहुल के स्वभाव की जानकारी थी, इसीलिए वे उसके लिए हमेशा चिंतित रहती थी। वह उसे सबसे अधिक चाहती थी, परंतु कई बार काम की व्यस्तता के कारण नजर अंदाज हो जाता था।

कभी-कभी आश्रम में एक सेठजी आया करते थे। वे बच्चों के लिए फल और मिठाइयाँ लाते थे। कभी छोटे बच्चे अपने माँ, पापा के साथ आश्रम में जन्मदिन मनाने के लिया आया करते थे। उस समय सारे बच्चे केक, वेफर्स, गुब्बारों के साथ खशियाँ मनाते थे। बड़े बच्चे छोटे बच्चों से मिठाई छीन लेते थे, लड़कियों से भी माँगा करते थे ऐसे में राहुल खामोशी से अपने हिस्से की मिठाई दे देता। वह कभी न लड़ाई, न कभी विरोध करता। ऐसे संवेदनशील राहुल को बच्चों के प्यार और स्नेह की ज्यादा जरूरत थी। हर महीने के पहले इतवार के दिन आश्रम का वातावरण कुछ और हो जाता था, क्योंकि उस दिन बच्चों से मिलने उनके रिश्तेदार आया करते थे। मेहमान आते समय साथ मिठाई या किताबें लाते थे जिसे पाकर बच्चें बड़े खुश होते थे। पर राहुल और उसके जैसे पाँच-छह बच्चे बड़े उदास होते थे, क्योंकि उनसे मिलने कोई नहीं आता था। फिर राहुल शांताबाई से जिद करता था कि उसे भी कोई मिलने के लिये आए।

ऐसे ही एक इतवार के दिन 5-6 महिलाएँ आश्रम में आयीं। आश्रम के ऑफिस में साने सर से काफी समय तक चर्चा करती रहीं। आश्रम की महिलाओं ने बच्चों से कहा, देखो तुम्हें मिलने के लिए ये मौसियाँ आयी हैं। अब वे हर महीने के पहले इतवार के दिन मिलने आया करेंगी? राहुल से कहा गया कि उसके सवाल का जवाब मिल गया था। उस समय राहुल की आयु 5-6 वर्ष की होगी। उसकी आँखों में चमक आयी और वह बहुत खुश हुआ वह भागकर एक महिला से चिपट गया। वह थी नाजुक सी गोरी गोरी मीना मौसी। राहुल और मीना मौसी की दोस्ती हो गई।

मीना मौसी तयानुसार इतवार को आती थी। साथ में राहुल के लिए ढेर सारी मिठाई लाती थी। कई कहानियों की किताबें उसने राहुल को लाकर दी थी। उसे भी राहुल के साथ बातचीत कर बड़ा आनंद आता था, वह उसके स्कूल की भी जानकारी लेती थी। राहुल के दोस्तों से भी बातें किया करती थी। वह उन सबसे तरह-तरह के प्रश्न पूछती और उनके उत्तर एक कापी में लिख लेती थी। कभी-कभी साने सर से पूछकर राहुल को गाड़ी में घुमाने भी ले जाया करती थी। कभी अपने घर भी ले जाती थी। उसके घर में उसके दो बच्चें थे, पर वे राहुल से जयादा बात करने में रुचि नहीं दिखाते थे। राहुल सोचता कोई बात नहीं, मीना मौसी तो मेरे साथ बड़े प्यार और स्नेह से रहती है और वह इसी में खुश रहता था। मीना मौसी उसके लिए भगवान ही बन गई। एक बार टी.वी पर उसने मौसी का साक्षात्कार देखा उस कार्यक्रम में उसका अनाथों के प्रति प्रेम, करुणा देखकर उसका मन अभिमान से भर उठा। मैं भी मौसी के जैसा बहुत बड़ा बनना चाहता हूँ उसके लिए मेहनत भी करूँगा और बड़ा बनूँगा ऐसा निश्चय उसने किया।

कुछ समय पश्चात् मौसी के पति नौकरी के निमित्त अमेरिका चले गए। दोनों बच्चे भी पढ़ने के लिए वहीं चले गए। साथ ही मौसी के साथ आने वाली अन्य महिलाओं ने आना-आना धीरे-धीरे छोड़ दिया। पर मीना मौसी लगातार राहुल से मिलने आश्रम आती रही। मौसी मेरी कितनी देखभाल करती है इस भावना ने राहुल को उसके और निकट ला दिया और उसकी भरोसे वह अपना जीवन बिता रहा था। राहुल ने 10वीं

की परीक्षा उत्तम अंकों से उत्तीर्ण कर ली। मौसी ने अपने खर्चे से उसका दाखिला कॉलेज में करवा दिया। राहुल के जैसे ही पास होने वाले उसके दोस्त मंदार और सोहन की पढ़ाई की जिम्मेदारी शहर के एक प्रतिष्ठित सेठ जी ने ली थी। राहुल की मीना मौसी शोध कार्य कर रही थी। उसके अनेक लेख समाचार पत्र और पत्रिकाओं कमें छपकर आते थे। टी.वी. पर भी उसका साक्षात्कार कई बार होता था। उसकी वजह से आश्रम को हर प्रकार की मदद मिलने लगी थीं यह सब देखकर राहुल बड़ा खुश होता था। परंतु उसे एक बात खटक रही थी। मौसी अकेली होने के बावजूद उसे घर ले जाने की बात नहीं कर रही थी। राहुल ने जब उससे पूछा तो उसने पढ़ाई पर ज्यादा ध्यान देने की बात कहीं। उसने अपने मन की बात शांताबाई से कही, उन्होंने उसे समझाया और कहा कि वे बड़े लोग हैं उनसे दूर रहना ही ठीक है।

आश्रम के नियम के अनुसार केवल अठारह साल तक ही आश्रम में रह सकते थे। उसके बाद कई बच्चों को उनके रिश्तेदार ले जाते थे जिसका इस दुनिया में कोई नहीं था उनका निर्णय साने सर किया करते थे। अठारह साल पूर्ण होने पर मौसी उसे घर ले जाएगी ऐसा विश्वास राहुल को था। कॉलेज की दो साल की पढ़ाई समाप्त हो कर परीक्षा भी हो गई और मीना मौसी का आश्रम में आना धीरे-धीरे कम होने लगा था। राहुल के मन में भी संदेह आता, पर वह उस विचार को झठक देता था। इंटर का परीक्षाफल निकला और राहुल को 70 प्रतिशत अंक मिले। मीना मौसी उसके लिए मिठाई, उपहार ले आयी और साने सर से मिलने चली गई। सर उसे 18 साल पूर्ण होने में अभी एक महिना है तब तक मैं कोई न कोई व्यवस्था करूँगी। यह सुनते ही राहुल का मन खुशी से उछलने लगा। मुझे बर्थडे के दिन खास गिफ्ट मिलने वाली है। मौसी उसी दिन मुझे पने घर ले जाएगी। राहुल का मन हिलोरे लेने लगा। उसके साथवाले बच्चे आश्रम छोड़कर जाने लगे थे। मंदार और सोहन की आगे पढ़ने की व्यवस्था सेठजी ने कॉलेज के छात्रावास में कर दी थी। कपिल, स्वप्निल को पढ़ने में रुचि नहीं थी सो एक मिल मालिक उन्हें अपने साथ काम करने के लिए ले गया।

रोज राहुल मीना मौसी का इंतजार करता। आज उसका 18वाँ जन्मदिन था। आज मौसी आएगी और उसे जीवन भर याद रहने वाली चीज मिलने वाली है। उसका अकेलापन, अनाथ होना, समाप्त होगा बस कुछ घंटों का समय बाकी था। राहुल ने अपना सामान तैयार रखा था। प्रात: विधि निपटाकर वह रामू काका, सुनंदाबाई, सोनसर, शांताबाई से मिलकर विदाई ले रहा था। शांताबाई ने उसे गले लगाया, उनके मन में विचित्र विचारों ने हलचल मचा दी थीं। इस भोले, मासूम बच्चे का संसार उजड़ न जाये। वह मन ही मन भगवान से प्रार्थना करने लगी थी। छोटे बच्चे बड़े उदास थे क्योंकि उनका प्यारा दोसत राहुल आरम छोड़कर जा रहा था। राहुल का मन भी बेचैन था। उसकी नज़र बार-बार घड़ी पर जाती, वहाँ से रास्ते पर मुड़ती। लगभग 11 बजे मौसी की कार आराम की ओर गेट में से अंदर आयी, पर केवल ड्राइवर था फिर मौसी कहाँ गई? वह घर पर मेरे स्वागत के जन्म दिन की तैयारी में व्यस्त होगी, राहुल ने मन को समझाया। एक बंद लिफाफा साने सर को थमाकर ड्राइवर चला गया। गाड़ी जाने से उड़ने वाली धूल को राहुल बस देखता रहा। कई विचार उस के मन में उथल-पुथल मचाने लगे।

कुछ समय के बाद राहुल को साने सर ने ऑफिस में बुलाया था। उसके नाम का लिफाफा उसे थमाकर उसकी पीठ पर हाथ फेरते हुए कहा 'शांत मन से पढ़ो राहुल'। राहुल एक क्षण के लिए डर गया। उसके दिल की धड़कन तेज़ हो गयी। हाथ काँपने लगे। थरथराते हाथों से उसने लिफाफा खोला। उसमें मीना मौसी के मोती जैसे सुंदर अक्षरों में लिखा पत्र था-

''प्रिय राहुल'

आज तुम्हारा 18वाँ जन्मदिन है, पर जनमदिन की शुभकामनाएँ देने मैं स्वयं नहीं आ सकी, क्योंकि मैं आज ही सवेरे की उड़ान से हमेशा के लिए अमेरिका जा रही हूँ। मेरे पति और बच्चे मेरा इंतजार कर रहे हैं। मेरा 'समाज सेवा और अनाथाश्रम' इस विषय पर शोधकार्य पूर्ण हो चुका है। जल्द ही मुझे पी-एच.डी. मिल जाएगी। मैं अमेरिका जाकर वहाँ के अनाथाश्रमों में काम करूँगी। तुम्हारे साथ बिताये हुए समय के कारण मुझे काफी जानकारी मिली और मेरा शोधप्रबंध पूर्ण करने में सहायक हुई। तुम्हारी इस मदद के लिए मैं तुम्हारा आभार मानती हूँ और उसके बदले में मैं तुम्हारी आगे की पढ़ाई का खर्चा करूँगी। मैंने ऐसी ही व्यवस्था कर साने सर को समझा दिया है। वे तुम्हें आज ही छात्रावास में दाखिल करेंगे। किसी भी चीज की जरूरत हो, तो बेहिचक साने सर से कहना।

मीना मौसी

पत्र पढ़ते ही राहुल की आँखें डबडबा गईं। होंठ गुस्से से काँपने लगे। ऐसी व्यवस्था तो मंदार और सोहन की भी की गई थी। मौसी ने मेरे लिए नया क्या किया? उसने मेरा फायदा उठाया और अपने शोध प्रबंध के लिए इस्तेमाल किया। मुझे झूठी उम्मीद दिखाई। तरह-तरह के विचारों से उसका सिर सुन्न हो गया। उसकी दुनिया उजड़ गयी थी। उसे शांताबाई के शब्द याद आने लगे, उसे लगा कि उनके गले लगाकर वह शांत हो सकता है, पर उसी समय साने सर का हाथ पीठ पर महसूस किया। उनका स्पर्श उसे बहुत कुछ बता गया। 'राहुल! चलें?'' साने सर के इन शब्दों से वह होश में आया और अपना सामान लेकर अपने आपको घसीटते हुए साने सर के पीछे-पीछे आश्रम के बाहर निकला। फिर से अनाथ होकर..!

संपर्क: प्राध्यापिका, हिंदी विभाग, विवेक वर्धिनी महाविद्यालय, हैदराबाद-95
मोबाईल- 09885828086

ग़ज़ल

○ भगवानदास जैन

इस ज़माने का चलन अब तो बदलना चाहिए,
घुप अँधेरा चीर कर सूरज निकलना चाहिए।
ख़ून जो तेरी रगों में बर्फ़-सा है जम गया,
है ज़रूरी बनके लावा वह पिघलना चाहिए।
इस तरह चीखों लगाकर ज़ोर मेरे साथियो,
आसमाँ का भी कलेजा अब दहलना चाहिए।
सिर्फ़ अँधी दौड़ भी वाजिब नहीं है राह में,
ठोकरें भी हैं बहुत उनसे संभलना चाहिए।
सैकड़ों विषधर हमारे चार सू हैं, होशियार,
जो भी फन फैलाए उसका फन कुचलना चाहिए।
इस अँधेरी रात में जलते दिये काफ़ी नहीं,
रौशनी के वास्ते अब दिल भी जलना चाहिए।
तुम अगर उछलो तो अब के ऐसे उठलो दोस्तो,
तख़्त शाहे वक़्त का भी अब उठलना चाहिए।
यूँ तम्हें शिव की तरह गंगा नहीं मिल पाएगी,
चुग का विष हँसते हुए पहले निगलना चाहिए।
अब सरापा मुल्क की सूरत बदलने के लिए,
शर्त है पूरज़ोर इक तूफ़ान चलना चाहिए।

संपर्क: बी-105, मंगलतीर्थ पार्क,
कैनाल के पास, जशोदानगर रोड,
मणीनगर (पूर्व), अहमदाबाद-382445
(गुजरात)

पत्रकारिता : दोहो में

○ डॉ0 रामनिवास 'मानव'

पत्रकारिता थी कभी, सचमुच मिशन पुनीत।
त्याग तपस्या से भरा, इसका सकल अतीत।।
बालमुकुन्द, विद्यार्थी, एक-से-एक अनन्य।
पाकर जिनको हो गई, पत्रकारिता धन्य।।
क़लम बनाकर हाथ को, लिखे रक्त से लेख।
बदली भारत देश की, तभी भाग्य की रेख।।
काँटों भरे थे रास्ते, मंजिल भी थी दूर।
पत्रकार थे सब मगर, हिम्मत से भरपूर।।
देश हुआ स्वाधीन जब, बदला सकल स्वरूप।
पत्रकारिता का हुआ, अब तो रूप कुरूप।।
पत्रकारिता अब बनी, 'ग्लैमर' का पर्याय।
मिशन रही थी जो कभी, आज बनी व्यवसाय।।
अब परोसता मीडिया, कुछ ऐसी : कवरेजी'
कोई भी हो मामला, लगे सनसनीख़ेज।।
गलाकाट प्रतियोगिता, तथ्यों से खिलवाड़।
पत्रकारिता अब बनी, अपराधों की आड़।।
है 'ब्लैकमेलिंग' कहीं, कहीं स्वार्थ का खेल।
पत्रकार की नाक में, डाले कौन नकेल।।
यूँ तो चौथे स्तंभ का, अब भी ऊँचा नाम।
काली भेड़ों ने किया, मगर इसे बदनाम।।
पत्रकारिता यदि बने, उजला दर्पण आज।
बिंबित हों इसमें तभी, सारा देश, समाज।।
राजनीति हो, खेल हो, हो अथवा व्यापार।
सबकी उन्नति के लिए, सर्वोत्तम अख़बार।।

706, सेक्टर-13, हिसार-125005

"मकड़जाल मौत का"

○ हीरालाल प्रसाद

अर्थ की तंगी कैसी तंगी है?
जिससे मुक्ति नहीं मिलती है।
समस्या पर समस्या बढ़ती है,
पर जिंदगी उसे हल नहीं कर पाती है।
ज़रिया पाने के दरवाज़े बहुत खुले हैं,
पर सच्चाई और कुछ ही बतलाती है।
आमहत्या का यह युग है,
जहाँ बेबश ज़िंदगी नित मरती है।
चाहती थी वह ख़ुशी से जीना,
मगर मौत के मकड़जाल में फँसती है।
किसान, मजदूर आदि की नित घटना है,
पर सक्षम रहते, सरकार भी कहाँ कुछ करती है?

संपर्क : वर्नपुर, प०बं०

पिता

○ विजय रंजन

पिता ने
वर्षों नाइट शिफ्ट करके
बनाये थे पैसे
और ली थी एक कट्ठा ज़मीन,
पिता जाते थे दौरे पर
बचाते थे पैसे
ख़रीदते थे सीमेंट, छड़ ईट. . .
पैसे पिता ने क़र्ज़ लिए थे,
ऑफ़िस से
सवारी और घर अग्रिम के खाते में
फिर खड़ी की थी दीवारें
पिता ने
बेच दिये थे माँ के गहने
माँ हो गयी थी क्षत-विक्षत
इस प्रकार ढली थी छत,
पिता
बैठे हैं उसी घर के बाहर
जिनके लिए कोई भी कमरा
खाली नहीं है,
पिता सोते हैं ओसारे में
चरमराती चारपाई पर
पीते हैं बीड़ियाँ
बकते हैं गालियाँ
चिड़चिड़े हो गये हैं इन दिनों
माँ भी नहीं रहीं अब,
खड़ी हो गयी हैं दीवारें कमरों के बीच
बेटे सिर झुकाए
अपने-अपने हिस्से में प्रवेश करते हैं,
छोटी बहू सोचती है
आज बड़की/मंझली/संझली
कोई न कोई
दो रोटी दे ही देंगी पिता को
कल ही तो उसने दी थी
आज फिर... ना बाबा ना...
घर नहीं रह गया पिता का
पिता नहीं रह गए बेटों के
कितनी तेजी से बदल गया सब कुछ
इसी जीवन यात्रा में
ताड़ के रिश्ते तले
बोनसाई हो गया पिता।

संपर्क: द्वारा-मुक्तेश्वर प्रसाद,
प्रकाश नगर, बिरसा चौक, राँची

असमरसता मेरे जीने की

○ मोहनलाल मगो

क्यों चरण चूमता जगत पिता के आशीर्वाद पाने?
क्यों अपने पिता के चरण न पखारूँ, आशीर्वाद पाने?
क्यों सत्य की विजय निश्चित है फिर भी इस सत्य को झुठला रहा हूँ?
नोबेल पुरस्कार से सम्मानित हूँ, इतना शिक्षित हूँ
क्यों नहीं पढ़ सकता अपने मन की उड़ान को?
विकलांगता अभिषाप है, वर्षों से अपंग समाज को समझा रहा हूँ
ईर्ष्या-द्वेष से विकलांग मन अपने को क्यों नहीं समझा सका?
ईश्वर है
ईश के वर से मेरा वजूद है
लांघ के कृतज्ञता की हद को
अपना बता रहा हूँ अपने इस वजूद को क्यों?
प्रकृति मुझे निहार रही है
मैं प्रकृति को नहीं निहार रहा, क्यों?
प्रकृति प्रगति में मस्त
मैं अप्राकृतिक बनाई आपदाओं से त्रस्त क्यों?
यही तो जीवन की विसंगति है
विवेकहीन पशु में विवेकशील मनुष्य की मंदगति है
कमाल है

संपर्क: 132-ए, मार्केट-I मयूर
विहार-I, दिल्ली-110091

लड़ाई

-राधेलाल बिजधावल

मैं लड़ाई लड़ता हूँ
अपनी ही देश मिट्टी गिट्टी थी
और संवेदना के स्तर पर जिंदा रहता हूँ।
जिंदा रहता हूँ
आग हवा पानी मै अपने अस्लिस्व थी
तमाम उम्र लड़ाई लड़ते हुए।
मैं भूख से लड़ाई लड़ता हूँ
प्यास से लड़ता हूँ
अभावों विपदाओं दुखों की लड़ाई लड़ता हूँ
और अपने वजूद को जिंदा रखता हूँ।
जिंदा रखता हूँ
अपने स्वभाव और स्वाभिमान को
समाज संस्कृति
राजनीति और अर्थनीति की सुरक्षा के लिए
अंतिम सांस तक लड़ाई लड़ते हुए।
मैं लड़ाई लड़ता हूँ
नाते रिश्तों दोस्तों से
अपने ही आत्म विश्वास को सुरक्षित
और जिंदा रखते हुए।
मैं लड़ाई लड़ता हूँ
मौसम के लहरों से
धूप ठंड और बरसात की
विपदाओं से जूझते हुए
अपने साहस को जिंदा रखते हुए।
मैं लड़ाई लड़ता हूँ
अपनी ही जालीला देश भक्ति शक्ति
माटी थी गंध की सुरक्षा के लिए
और जिंदा रहता हूँ।
जिंदा रहता हूँ
अपनी ही मौत के विरुद्ध लड़ते हुए।
मैं लड़ाई लड़ता हूँ
फूलों से गंधों से
कोमल आत्म संवेदनों
कोयल की कुहुक से
आकाश के विरुलार
और हवा की स्वतंत्रता से
और निराश हो कुम्हला गया हूँ।
जब अपने से लड़ता हूँ तो/वो मौत और
वे मौसम मारा जाता हूँ।

संपर्क : ई-8/73 भरत नगर (शाहपुरा) धरेवा कालोनी कोपाल 462039 (म.प्र.)

ooo

ग़ज़ल

-आजाद कानपुरी

पत्थरों को तोड़ने का वक़्त आ गया
दुनियादारी छोड़ने का वक़्त आ गया
काम तो मशीन ही करेगी अब यहाँ
ज़हन को सिकोड़ने का वक़्त आ गया
कुछ ज़रूर है जो चलके आप आ गए
क्या हमें भी जोड़ने का वक़्त आ गया
थपकियों से कैसे क़ौम जाग जाएगी
इसको अब झिझोड़ने का वक़्त आ गया
ये पसीना बहके सूख जाएगा जनाब
अब लहू निचोड़ने का वक़्त आ गया
क़ब्ज़ा हो गया ग़रीब की ज़मींन पर
नारियल के फोड़ने का वक़्त आ गया
जिसके चलते ज़िन्दगी को मिल रही सज़ा
रूख़ उधर से मोड़ने का वक़्त आ गया

संपर्क: 1144, एल.आई.जी., आवास विकास-3, कानपुर-208017

ooo

देशभक्ति गीत

-श्रीमती आर. राजपुष्पम पीटर

भारत देश हमारा प्यारा
सदियों से गाता यश गाथा
हिलमिल-हिलमिल सबसे मिलजुल
जोड़ता जाता गहरा नाता
भारत देश हमारा प्यारा
ताज-हिमालय ऊँचा-ऊँचा
नभ को छूता है
कल-कल करती नदियाँ पायल
बोली झन-झन-झन
हरियाली ही हरियाली
कालीन जैसा है
सुंदर सुकोमल मंजुल देश
हमारा भारत है-हमारा भारत है
नाना-धर्म वेष-भाषा
फिर भी मन है एक
हिंदू-मुस्लिम सिख ईसाई
सब हैं भाई-भाई
बापू जवाहर लाल जी का प्यार-प्यारा देश
सुंदर सकोमल मंजुल देश
हमारा भारत है-हमारा भारत है।

संपर्क: एल.सी.भवन, टी.सी. 9/836 वेल्लमबलम, तिरुवनंतपुरम-10

ooo

सबकी नज़रों.....

-उदय कुमार 'राज़'

चोट खाकर भी मुस्कराना है
ज़ख़्में दिल उनको क्या दिखाना है
दर्द सीने में दफ़न करते चलो
बहुत बेरहम ये ज़माना है
वो तो रोते हैं दिखावे के लिए
उनका रोना तो इक बहाना है
मुस्कराते हैं जो हालत पे मेरी
आईना उनको भी दिखाना है
हमको आते हैं नसीहत देने
जिनका ख़ुद और न ठिकाना है
लूटते हैं वही फ़क़ीरों को
जिनका अंदाज़ सुफ़ियाना है
क्यूँ वो शोलों को हवा देते हैं
जिनका तिनकों का आशियाना है
छोड़ देना न वफ़ा का दामन
'राज़' के, साथ गर निभाना है

संपर्क- एस.107 स्कूल ब्लॉक शकरपुर दिल्ली-92 मो० 9868105864

ooo

चलो राष्ट्र प्रेम का द्वीप जलाएँ

-मो० टिंकू, वर्ग-१२

हिंदू, मुस्लिम सिख, ईसाई आपस में हाथ मिलाएँ
चलो आपस में एकता बढ़ाएँ
सभी को देश भक्ति का गीत सुनाएँ
नवज़वानों अगर सोए हैं तो उन्हें जगाएँ
वीरों की कहानी भूल गए हैं तो
चलो उनको कुर्बानी हम-जवानी बताएँ
धीरे-धीरे अपना कदम बढ़ाएँ
चलो राष्ट्र प्रेम का दीप जलाएँ
अगर कोई अख्तियार को हिंसा का रास्ता
उसे हम अहिंसा की कहानी सुनाएँ
अगर कोई उठाए हमारे झंडे पर आँख
तो उसे हम प्यार से समझाएँ
चलो राष्ट्र प्रेम का दीप जलाएँ।

ooo

निबंध साहित्य के भविष्य को आलोकित करता ग्रंथ

सहसा आकर्षित करने एवं चौकाने वाले शीर्षक 'संस्कृति का अपहरण' के अंतर्गत निबद प्रस्तुत ग्रंथ के प्रणेता हैं डॉ० सुरेन्द्र वर्मा दर्शन के प्रसिद्ध विद्वान् और यशस्वी साहित्यकार लेखक। ग्रंथ चार खण्डों में विभक्त है, जिसका प्रारंभ, लेखक ने अन्य पुस्तकों से विलक्षण अर्थात लीक से हटकर, बिना किसी भूमिका या प्रस्तावना के किया है। इसका मतलब साफ है कि जब सुस्वादु व्यंजकों से भरी हुई थाली सामने परोसी रखी हो, तो भोजन और भोक्ता के बीच मेजबान का भाषण बेमतलब है।

पुस्तक के प्रथम खण्ड में ग्यारह लघु लेख हैं, जो भरपेट भोजन के पूर्व 'सूप' का जायका देते हैं। आदमी की पहली आवश्यकता रोटी है, अत: वर्माजी आरंभ में ही 'रोटी--राग' अलापते हैं।

इस खण्ड में डॉ० वर्मा ने विषय सामान्य लिए हैं। ये विषय ऐसे हैं जिनका संबंध समाज के प्रत्येक वर्ग से है। उन विषयों के संबंध में लेखक के ज़ेहन में जितनी जानकारियाँ हैं, उन्हें इतनी ख़ूबी के साथ लेख में सजोया है कि रोचकता के साथ पाठक की जिज्ञासा भी बढ़ जाती है। अदभूत वर्णनाशक्ति का सहज ही अनुभव होता है और हमें मिलती है निबंध में भी एक गज़ब की निराली क़िस्सागोई की अनसूँघे महक। प्राय: सभी लेखों का समापन, एक लंबी डोर में बंधी घण्टी की 'खनक' के सामान होता है, जिसकी अनूगँज बहुत देर तक पाठक के कानों से होती हुई मस्तिष्क में मँडराती रहती है। उदाहरण के लिए, 'रोटी राग' के अंत में लेखक कहता है--"रोटी भोज्य पदार्थ ही नहीं, वह हमारी संस्कृति का एक अंग है। हमारी भूलों--बिसरी स्मृतियाँ जगा देने की जितनी सामर्थ्य रोटी में है, शायद ही किसी दूसरी चीज़ में हो।"

अगले दो लेख आम पर है। आम और उसकी प्रजातियों के बारे में तमाम रोचक सूचनाएँ देने के साथ ही डॉ० वर्मा ने ग़ालिब के आम-प्रेम का भी उल्लेख किया है। आम के संदर्भ में बादशाह और बीरबल का रोचक वृतांत भी आ गया है। लेखक ने 'आम का नाम ही काफी है मुँह में पानी भर आने के लिए' से लेख को समाप्त करते हुए आम को सलाम किया है। विश्व के सर्वाधिक चहेते पेय चाय की संस्कृति भी क़लमबंद हुई है। लेखक ने न केवल चाय के इतिहास पर अपितु उसके दर्शन पर भी अच्छी क़लम चलाई है। मिर्च के इर्द-गिर्द चक्कर लगाते समय लेखक ने मिर्च के मनोवैज्ञानिक असर को दिखाने में कोई कसर नहीं छोड़ी है। 'नमक नामा' में कृष्ण और उनकी रानियों

ग्रंथ नाम	-	**संस्कृति का अपहरण**
प्रणेता	-	डॉ. सुरेन्द्र वर्मा
पुष्ठ सं.	-	104,
मूल्य	-	रुपया 124
प्रकाशन	-	उमेश प्रकाशन, 100 लूकरगंज, इलाहाबाद

के वृतांत को जोड़कर वर्मा जी ने लेख को और भी जायकेदार बना दिया है। वस्तुत: व्यंग लेखक 'घावों पर नमक नहीं छिड़कता' वह जो 'जोक के मुँह पर नमक की डली रखता है।' मसाला मज़ा' लेख के अंहत में' अर्थान्तहरन्यास' का मज़बूत मशाला लगाते हुए वे कहते हैं-"मिर्च और मसाला दोनो का चोली-दमन का साथ है। (सामान्य बात)।" मज़े में आँसू न आ जाएँ तो मज़ा काहे का।"(विशेष बात) वाह वर्मा जी, आपका यह मज़ा तो ख़ूब 'जमा'। प्रथम खण्ड का अंतिम लेख 'मेंवा हो तो मूँगफली' में मूँगफली की चट-चट सुनाकर आपने न जाने कितनी नज़रें अपनी ओर कर लीं।

द्वितीय खण्ड में कुल छ: लेख हैं और ये सभी भावनात्मक हैं। ये लेख क्रमश: 'दर्द', 'नींद', मूड', 'उबासी', 'युवा स्वास्थ्य', 'बुढ़ापा' को लेकर लिखे गये हैं। 'उब ही नहीं हे उबासी' शीर्षक लेख में डॉ० वर्मा ने उबासी आने के वैज्ञानिक पक्षों पर विमर्श किया है। अंत में उन्होंने लिख है- "यह लेख लिखते समय मुझे दो बार उबासी आई। क्या आपको इसे पढ़ते समय भी उबासी आई "मैने तो यह लेख कुल तीन बार पढ़ा, किंतु एक बार भी उबासी नहीं आई। मुझे आपकी पूरी पुस्तक पढ़ने की अवधि में एक बार भी उबासी नहीं आई।

तृतीय खण्ड के सभी दसों लेख प्रकृति और पर्यावरण को समर्पित हैं। 'फूलों से करे बात', 'कैक्टस उगाना भी बुरा नहीं हैं', 'फसल का रखवाला है बिजूका', 'पक्षी पर्यावलोकन', 'सारसों का संरक्षण', 'मोर मचाते शोर', 'कछुए की गति और गत', 'सुंदर है कीटपतंगो का संसार भी', 'तोता राग' और 'बरगद में बरकत है।' ये लेखों के शीर्षक हैं।

गांव के लोग तो 'बिजूका' से भलीभाँति परिचित है, किंतु नगरवासियों के लिए तो यह एक अजूबा ही होगा। एक उपेक्षित विषय को आकर्षक रूप से प्रस्तुत कर लेखक ने ग्रामवासी पाठकों को चौकाने के साथ नगर वासियों के मन में भी एक कौतूहल पैदा किया है। कला और संस्कृति के रखवालों का ध्यान खेत के इन निर्जीव रखवालों की ओर अवश्य जाना चाहिए। कीटपतंगों का भी अदभुत अद्वितीय संसार है। वर्मा जी ने कई कीट पतंगों की जानकारी दी है किंतु 'जुगनू' को भूल गए जिसका लुप-लुप चमकना बहुत मनमोहक होता है। वे बच्चों को इतना भाते हैं कि बच्चे उन्हें मुटठी में पकड़ कर जेब में रख लेते हैं।

पुस्तक के चतुर्थ खण्ड का प्रथम निबंध चित्तको सहसा झकझोर देने वाले शीर्षक 'संस्कृति का अपहरण' है। मानवीकृत संस्कृति की बेबसी और दुर्दशा देखकर अंतर्मन में एक असह्य टीस उठती है, वेदना

भी करहाने लगती है। आज (भारतीय) संस्कृति हिन्गलिश बोल रही है। वह फूहड़ समय के साथ भटकी नहीं है और खुद ही खुद को ढूंढ़ रही है। क्योंकि उसका नाम, उसकी पहचान, उसकी आत्मा-सब कुछ खो गया है, अपहृत हो गया है, वह अपनों से ठगी गई है, अपनों से ही हार गई है। 'मुखौटा मीमाँसा' निबंध में लेखक ने अत्यंत सूक्ष्मता पूर्वक मुखौटे का भौतिक, आर्थिक, संस्कृतिक, धार्मिक, दार्शनिक और अध्यात्मिक अर्थ तलाशा है। वह मुखौटे को अनिर्वचनीय मानते हुए कहता हैं- ''मुखौटा माया है।'' 'घड़ा महात्मय' एक सुघड़ निबंध बन पड़ा है। 'घड़ा' जीवन मंगल के साथ ही नश्वरता का भी संदेश देता है। यह सामान्य सा घड़ा साहित्य और दर्शन को खूब भाया। इसे लेकर इन दोनों ने न जाने कितनों को भरमाया, समझाया और सुलझाया। 'बाजार की गति न्यारी' शीर्षक निबंध में लेखक ने बड़े ही सहज ढंग से सरलतया बाज़ार के विविध रुपों को समझाया है। उसकी व्यंजकत ही और अंत के व्यंजना से बाज़ारी की असलियत बताई है-'नाम लो, बाजार में सब कुछ मिलेगा।'

इस पुस्तक का अंतिम निबंध-'बिसन्त का संदेश' पं० विद्यानिवास मिश्र के ललित निबन्धों की एक खुशनुमा बानगी पेश करता है। बसंत का संदेश है हर हाल में मस्ती बेफिक्री, सामाजिक समरसता और अद्वैत' के रंग मे रंग जाना। अंततः परिशिष्ट के रूप में युवा लेखकों के लिए दो मार्गदर्शक आलेख हैं- 'फीचर लेखन' और 'रिपोर्ताज'।

डॉ० सुरेन्द्र वर्मा का यह निबंध संग्रह निःसंदेश निबंध साहित्य के भविष्य पथ को सदा आलोकित करता रहेगा। एक सहृदय पाठक या अध्येता या श्रोता के लिए वाँछित आनंद के समस्त उपादानों से संकलित हैं ये निबंध। लघुकलेवर लेखों में मनोरंजकता के साथ ही ज्ञानवर्धन की सामग्री भरपूर है। लेखों में अर्थगाम्भीर और भावप्रणता के साथ ही व्यञ्जना की अनूठी छाप है। विषय की वर्णना अन्विति का शैथिल्य कहीं नहीं होता। भाषा सरल, सुबोध, प्रवाहमयी और प्राञ्जल है। कहीं-कहीं मुहावरों और तुकबंदी (अन्तयानुप्रास) के प्रयोग से उसके चारूत्व में निखार आ गया है।

डॉ० सुरेन्द्र वर्मा जी को उनकी इस अनूपम गद्यकृति के लिए हार्दिक वर्धापन। कोटिशः शुभकामनाएं कि उनकी लेखनी सरस्वती के कण्ठहार में ऐसी ही मोतियाँ पिरोती रहे। इतिशम्।

कवि आज के साहित्य और मनीषा के क्षेत्र में उच्चादृह

○ समीक्षकः प्रो० प्रेम मोहन लखोटिया

कवि ने अपने वैदूष्य और कल्पनाशीलता के सामासिक अभिमुखीन आलेख 'कविता के संदर्भ में बहुत सारी व्याख्याएँ एवम् स्पष्टीकरण और कविता रचना में भटकाव एवम् विसंगतियों का उल्लेख किया है।

दो काल खण्डों में रचित और संकलित 51 कविताएँ (वाजपेयी धारा से चमत्कृत 51 का आंकड़ा) सटीक है, पर उनके विषय में प्राक्कथन और अन्य विद्वनों के अभिमत और शुभाशंसा वादर होकर कविताओं के पाठक की रस-तृप्ति को भंग करते से लगे। ये पाठक को पहले ही आग्रहों से बाँध देते हैं।

समीक्ष्य संग्रह	:	यह सच है
कवि	:	सिद्धेश्वर
समीक्षक	:	प्रो० प्रेम मोहन लखोटिया
प्रकाशक	:	सरदार पटेल साहित्य प्रकाशन, दिल्ली-92
पृष्ठ संख्या	:	
मूल्य	:	

मुझे लगता है कि कवि आश्वस्त नहीं है कि उनकी कविताएँ उनकी बात पूरी तरह से कह सकेंगी। मेरा ख्याल है कि कविता ऐसा परम तृप्ति अथवा प्रेरणा या उद्वेलन देने वाला पकवान होना चाहिए कि उसके बाद रसोई और रसोइए की विशेषता जताने की जरूरत ही न रह जाए।

कवि आज के साहित्य और मनीषा के क्षेत्र में उच्चादृह हैं, भाषा के लिए अंतरराष्ट्रीय सम्मेलन में प्रतिनिधित्व कर चुके हैं अतः कविताओं के संदेश और संवाद प्रभावशाली होंगें- यह तो सहज अपेक्षा भी है और तथ्य भी है। पुस्तक के प्रथमांश के 23 पन्नें कविताओं के शेष में भी रखे जा सकते थे।

भाषा एवं लिपिकरण में पर्याप्त सुधार की संभावना भी रेखांकित की जा सकती है। आँचलिकता के नाम पर शब्दों की शुद्धता और वाक्यों के विन्यास से छूट लेना कोई लब्ध-प्रतिष्ठित रचनाकार के अनुरूप नहीं लगता। किंचित से उदाहरण आरंभिक पृष्ठों से-

पृष्ठ 29-गूद-गूदाहट, झूंड पृष्ठ 31 -झाड़ियों /उसका पृष्ठ 35 - फरमाईश, कबतक, कबतक.. ....ऐसे ही प्रायः हर किसी पृष्ठ पर संग्रह में मंतव्यों वाली सपाटबयानी है- यह सच है- सच अख़बारी रपट बनेगा-कविता के परिधान में। गीत-गंध के खोने का एहसास कहीं जा छुपा है चेहरे पर या पाठक के अंतर की गुंजन से दूर कहीं।

बौद्धिक नज़रिया ख़ासियत तो रखता है, मगर निढाल भी करता है। यह मानी हुई बात है कि श्री सिद्धेश्वर बौद्धिक प्रखरता में सिद्धहस्त हैं, पर मेरी अपनी धारणा में कविता के लास्य में इसे मुखर होकर प्रस्तुत करना एक विसंगति बन कर संघर्ष की क्षमता का अवक्षण कर सकती है।

तब भी श्री सिद्धेश्वर के साहित्य-सृजन की उत्कर्षता में काव्यात्मक पड़ावों की गंभीर अपेक्षा सदा बनी रहेगी।

संपर्कः विद्या बिहार, ख/61/अ, भवानी नगर, सीकर रोड, जयपुर-302023

सत्य को उजागर करने वाले रोचक व्यंगालेख

पुस्तक का नाम: **अपने अपने अधबीच**
लेखक: डॉ० सुरेन्द्र वर्मा
समीक्षक :
प्रकाशक: उमेश प्रकाशन, इलाहाबाद, 2007
पृष्ठ संख्या 128, मूल्य 140/-

प्रस्तुत पुस्तक 'अपने अपने अधबीच' के लघु निबंध व्यंग के ऐसे प्रकाश पुँज हैं जिसकी रोशनी में समाज की विद्रूपताओं को स्पष्ट देखा जा सकता है। डॉ० सुरेन्द्र वर्मा के ये व्यंग लेख उनकी देश, समाज एवं व्यवस्था के प्रति गहरी सोच का परिणाम है तथा इस बात का सशक्त प्रमाण है कि लेखक अपने व्यंग्यों के द्वारा इन्हीं विसंगतियों पर प्रहार करना चाहता है।

इस लघु निबंधमाला में व्यंगकार ने बहुत चुन चुन कर मोती पिरोए हैं। समसामयिक विषय का शायद ही कोई मनका छूटा हो। लेखक ने समसामयिक, राजनीतिक एवं सामाजिक सरोकारों पर अपने परिहासपूर्ण व्यंग्यों की जो छींटाकशी की है, वह समाज सुधार की दिशा में एक सशक्त प्रयास है। डॉ० वर्मा के लघु निबंध एक आम आदमी के अंतर्मन को जिस प्रकार हौले से कुरेद देते हैं वह उनकी अद्‌भुत लेखन क्षमता को प्रमाणित करता है।

डॉ० सुरेन्द्र वर्मा की 128 पृष्ठ की यह पुस्तक 'अपने अपने अधबीच' इनकी अन्य रचनाओं को पढ़ने के लिये बाध्य करती है। 'अधबीच' एक ऐसी स्थिति है, जो समाज के प्रत्येक क्षेत्र में दिखायी पड़ रही है। कारण है, मनुष्य के मन में एक साथ, एक ही समय में दो भावों का संचरण, प्रथम- महत्त्वाकांक्षा, द्वितीय मौका परस्ती। आज का मानव लक्ष्य तक पहुँच कर अपने जीवन का 'थ्रिल' जीतपसस नहीं समाप्त करना चाहता। गंतव्य के दुर्गम पथ का एक भी शूल पाँव में चुभते ही वह तुरंत किसी छायादार वृक्ष का आश्रय ढूँढ़ लेता है। लेखक ने आरंभ और अंत के बीच स्थित जिस अध बीच का परिदृष्य अपने संक्षिप्त व्यंग्य के माध्यम से हमारे समक्ष प्रस्तुत किया है, वह आज के समाज का कटु सत्य है। इस अध बीच का धरातल कठोर न होकर लचीला है, तभी तो सुहावना है। यह बात और है कि इस अधबीच के नीचे गहरा दलदल है।

डॉ० वर्मा के लघु निबंधों की एक अन्य विशेषता है उनका मनोवैज्ञानिक आधार। उन्होंने आज के परिप्रेक्ष्य में, प्रचलित उक्तियों एवं मुहावरों के परिवर्तित स्वरूप को जिस प्रकार प्रस्तुत किया है वह समाज के बदले हये मानदण्डों को ही प्रदर्शित करता है।

व्यंगकार ने अपने लघु लेखों में बदली हुई राजनीतिक एवं सामाजिक स्थिति के साथ-साथ साहित्य के भी बदले हुए स्वरूप पर निशाना साधा है। फास्ट फूड की संस्कृति का प्रभाव साहित्यिक क्षेत्र पर भी दिखायी दे रहा है। किंतु फास्ट फूड को संतुलित भोजन की श्रेणी में नहीं रखा जा सकता है। यदाकदा इसका आस्वादन कर लेना अलग बात है।

इनके निबंधों में दार्शनिक चिंतन की अभिव्यक्ति नितांत सरल एवं सहज रूप में की गयी है। 'आना और फिर जाना उनका' नामक लेख इसका प्रमाण है।

उनके व्यंग्य सहज, स्वाभाविक एवं सटीक हैं। व्यंग्यकार ने आलस्य के पक्ष में विभिन्न उदाहरण दिए हैं, किंतु व्यंगकार, स्वयं ही, यदि सौ फीसदी आलसी हो जाता, तो इन मनोरंजक व्यंग्य लेखों के लुत्फ़ से पाठक वंचित रह जाता।

डॉ० वर्मा की भाषा शैली में चित्रात्मकता का एक ऐसा अद्‌भुत गुण है जो पाठक को पूरे समय बाँधे रखता है। उनके स्तरीय व्यंग्य किसी भी दृष्टि से चुभने वाले न होकर सत्य को उजागर करने वाले हैं तथा रोचक भी।

संपर्क: 42, न्यू बैराना, इलाहाबाद, उ०प्र०, फोन: 604801

पृष्ठ २४ का शेषांश

शब्दानुशासन से ही संभव हैं, बिंबों और प्रतीकों की संरचना भी जीवन और प्रकृति के चिरपरिचित उपकरणों से की गई है। चाँद, दीप, बादल, रात, आँसू कवि के बदलते मनोभावों के सवाहक बनकर उभरे हैं जो सहज ही हृदय को छू देते हैं।

यों तो इन गीतों के प्रेरक-भाव मौलिक रुप से एक है, लेकिन हर गीत एक नई भाव-दशा से जन्म लेता है। 'मैं रात-रात भर जागूँ' में कवि करुणा से बोझिल हृदय का संकेत कुछ इस तरह देता है–

क्यों रोम-रोम में वह मेरे
अज्ञात बना छाया है[2]
मेरे जीवन के सपनों में
वह बार-बार आया है[2]

या फिर-

हर प्रात सुनहली किरणों में
जग को जीवन देता है।
वह कौन सितारों में सजकर
मुझको कुछ कह देता है[2]

प्रेम की 'पीड़' कवि की इन्द्रियों को परिमार्जित कर इस कदर संवेदनशील बना देती है कि उसे ससीम में भी असीम नजर आने लगता है। इस गीत के अनुत्तरित प्रश्न इसी तरफ इशारा करते हैं। अँग्रेजी के महान् कवि विलियम ब्लैक ने सच ही कहा है–

If the doors of perception were cleansed,
everything would appear as it is—Infinite.

इस तरह इन गीतों में भाव और भाषा का जो गुंफन है उसमें एक उभरते हुए कवि की पदचाप सुनाई पड़ती है।

संपर्क: समता कॉलोनी, हाजीपुर, वैशाली-844101

हिंदी कविता में अकेला और अलबेला स्वर

○ समीक्षक : सिद्धेश्वर

इतिहास अपने को दुहराता है यह धारणा अन्य संदर्भों की तरह साहित्य में भी लागू होती है। सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' ने छंदबद्ध काव्य रचना के साथ ही छंद के बँधन भी तोड़े। 'निराला' की यह पहल 'नई कविता' की पूर्व पीठिका थी, जिसे बाद में अज्ञेय ने सप्तकों के संपादन में प्रस्तावित और स्थापित किया। इसी प्रकार नई कविता के व्याख्याकार नामवर सिंह ने विधिवत 'कविता के नए प्रतिमान' लिखकर नई कविता के एक सार्थक और वैज्ञानिक व्याख्याता की भूमिका निभाई। वे तो स्वयं भी शुरुआत में गीत लिखते रहे और बाद में आलोचक बन गए। नामवर सिंह ने स्वयं स्वीकार किया है कि 'गीतों' ने ही जनमानस को बदलने में क्रांतिकारी भूमिका भी अदा की है।' यह तो 'रामचरित मानस' और 'विनय पत्रिका' के मर्मी भी मानते हैं कि तुलसी के पदों में पूरे युग की वेदना व्यक्त हुई है और इनकी चरम वैयक्तिकता ही परम सामाजिकता है। तुलसी के अतिरिक्त कबीर, मीरा, सूर, नानक, रैदास आदि अधिकतर संत कवियों ने प्राय: दोहे और गेय पद ही लिखे हैं। यदि विद्यापति के गीत को देखें, तो मुझे लगता है कि हिंदी कविता का उदय ही गीत से हुआ । इस संदर्भ में नामवर सिंह लिखते हैं–''गीतों के साथ हिंदी कविता का उदय कोई सामान्य चेतना नहीं, बल्कि एक नई प्रगीतात्मक (Liricism) के विस्फोट का ऐतिहासिक क्षण है, जिसके धमाके से मध्ययुगीन भारतीय समाज की रूढ़ि जर्जर दीवारें हिल उठीं, साथ ही जिसकी माधुरी सामान्य जन के लिए संजीवनी बनी।'' इसके आगे की पंक्तियों में वह कहते हैं कि ''प्रगीतात्मकता का दूसरा उन्मेष बीसवीं सदी में रोमांटिक उत्थान के साथ हुआ, जिसका सीधा संबंध भारत के राष्ट्रीय मुक्ति संघर्ष से है।'' लेकिन उसके बाद उनका कहना है कि ''प्रगीतात्मकता का अर्थ हुआ– 'एकांत संगीत' अथवा 'अकेले कंठ की पुकार' अर्थात् नितांत वैयक्तिक और आत्मपरक कविता।''

'मेघा मन' नाम्नी प्रस्तुत काव्य संग्रह के कवि उमेश्वर सिंह की नई कविता भी एकांत संगीत और अकेले कंठ की पुकार की तरह है जिसका मकसद संपूर्ण छंदलोक, ऊर्जावान, सामाजिक ताजगी और राष्ट्रीयता की भावना को आम जनमानस में भरना ही नहीं है, बल्कि इसका मकसद है आज की उस काव्यधारा को भी रेखांकित करना जिसकी प्राय: उपेक्षा हुई है और इस उपेक्षा की वजह से शंभुनाथ सिंह, शिव मंगल सिंह 'सुमन', ठाकुर प्रसाद सिंह तथा वीरेन्द्र मिश्र सरीखे छंदबद्ध लयवता के प्रसिद्ध कवि हाशिए पर डाल दिए गए, क्योंकि कहा गया कि इनके गीत आमजन के लिए नहीं लिखे गए। दरअसल इतना कहकर कि कविता आज अलोकप्रिय हो रही है तो उसका कारण है कि 'हम आमज़न के लिए नहीं लिखते' कविता या गीत को खारिज नहीं किया जा सकता। ऐसा कहना कविता को छोटा बनाना, अपनी कमियों-खामियों को ढकना और हीन ग्रंथि का शिकार होना है। जरूरत है तो इस बात की कि छंदमुक्त और छंदबद्ध कविता में से बेहतर को छाँटा जाए। इस दृष्टि से वीरेन्द्र मिश्र के गीतों को आप पढ़ेंगे, तो प्रगतिशील लेखन को पाएँगे। उनके सद्य: प्रकाशित संग्रह 'अंतराल' में गीत-नवगीत तो हैं ही, लेख, रूपक, टिप्पणियाँ तथा पत्र आदि भी हैं। ठीक इसी प्रकार कवि उमेश्वर सिंह के प्रस्तुत काव्य-संग्रह 'मेघा मन' की कविताओं व गीतों में भी प्रगतिशील लेखन देखने को मिलते हैं। 'अपना देश महान' शीर्षक कविता की निम्न पंक्तियों में तो यही झलकता है–

''रामकृष्ण रहमान की धरती,
गीता और कुरआन की धरती।
शेख ब्राह्मण ज्ञान की धरती,
मीरा और रसखान की धरती।
इन बगिया के फल साथियो, हिंदू-मुसलमान रे।
अपना देश महान साथयो, प्यारा हिंदुस्तान रे।''

और फिर हम आज बाजारवाद और भूमण्डलीकरण के चलते जिस अपसंस्कृति का दंश झेल रहे हैं, उससे तो कवि वीरेन्द्र मिश्र ने कई दशक पूर्व ही हमें सावधान रहने का इशारा कर दिया था–

''चकमक पत्थरवाले अँधे युग से
वापसी तुम्हारी जरूरी है
अपसंस्कृति के ठहरे-ठहरे जल से,
जीवन की कितनी-कितनी दूरी है।''

कवि उमेश्वर की कविता 'शहीदों का नमन' की इन पंक्तियों को भी देखें–

''सीमा पर, षडयंत्र चल रहा,
तेज करो अभियान।
कदम-कदम पर लड़ो काल सा,
काँपे जुल्मिस्तान ।''

क्या इन पंक्तियों को आप आमजन के लिए लिखी कविता नहीं मानेंगे? निश्चित रूप से कवि मिश्र तथा उमेश्वर की इन कविताओं को न केवल आमजन के लिए रची गई कविता कही जाएँगी, बल्कि इन कवियों ने इन गीतों के माध्यम से गीतात्मक काव्य को अस्तित्ववान बनाए रखा और उसे अर्थवत्ता भी प्रदान की। इनके पास गीतों की विविधता के साथ-साथ इनके गीतों में गहरी सामाजिक संलग्नता, जटिल सामाजिक यथार्थ को सहज ढंग से व्यक्त करने की अपार क्षमता और छंदों के

पुस्तक का नाम: **मेघा मन**
कवि: उमेश्वर सिंह
समीक्षक : श्री सिद्धेश्वर
प्रकाशक: सरदार पटेल साहित्य प्रकाशन, दिल्ली-92

अद्‌भुत प्रयोगों का भंडार भी है।

कवि वीरेन्द्र मिश्र की तरह 'मेघा मन' के कवि उमेश्वर भी केवल कंठ तक ही सीमित नहीं हैं, बल्कि लेखनी की ताकत से भी अवगत हैं और केवल अपने स्वर पर ही केंद्रीत नहीं, वरन् कविता के आंतरिक और बहारी लयवत्ता के महत्त्व को भी समझते हैं। यही कारण है कि इनके गीतों में विषय गत विविधता तो है ही, शब्दों के सार्थक प्रयोग भी हैं जिसकी वजह से पाठक निरंतर एक ताजगी का अहसास करते हैं। एक और विशेषता जो इस कवि की कविता में दिखाई देती है वह यह कि शक्ति के वर्चस्ववाद के खिलाफ है। यह आदमी और समाज की नैतिकता को निर्धारित करने में सहयोग करती है। भूख, गरीबी, लाभ-हानि, छल-कपट आदि विद्रूप स्थितियों के बीच यह समकालीन समाज में मौजूद विसंगतियों को बड़ी तत्परता के साथ उजागर करती है। कवि का मन उस पीड़ा से आविष्ट है, जो उनका व्यक्ति अपने रोजमर्रा के जीवन में सह रहा है। कवि यह महसूस करता है कि संकट व्यक्ति के विवेक पर है, उसकी स्वाधीनता पर है, उसके ईमान पर है। ऐसे में हमें याद आती हैं कविवर राजेश जोशी के कविता-संग्रह 'नेपथ्य में हँसी' की निम्न पंक्तियाँ जिसमें वे कहते हैं कि मूल्यों के जीते हुए व्यक्ति मारे जाएँगे-

कठघरे में खड़े कर दिए जाएँगे, जो विरोध में बालेंगे
जो सच-सच बोलेंगे, मारे जाएँगे ।
धकेल दिए जाएँ तो कला की दुनिया से बाहर,
जो चारण नहीं, जो गुन नहीं पाएँगे।

इन पंक्तियों में कवि आदमी की नियति का कितना तल्ख अहसास कराता है। इसी प्रकार त्रिलोचन शास्त्री की बहुत उम्दा पंक्तियों याद आती हैं कि-

उस जनपद का कवि हूँ जो भूखा दूखा हूँ
अनजान है, कला नहीं जानता ।

यह कहने की आवश्यकता नहीं कि कवि मनुष्य के जीवन की सबसे ज्यादा अपमानित और आक्रांत करने वाली भीषण सच्चाइयों से टकराता है। कवि उमेश्वर ने कविता को सदैव जीवन से जोड़े रखा है और मुश्किलों से भरे जीवन की राह पर यथार्थ का दर्शन कराते हैं। इन्होंने अपनी कविताओं के माध्यम से क्या नहीं कहा है-

जीवन के कटू सच को, गिरते संबंध और बिखरते रिश्ते को।

दरअसल विभिन्न आंदोलनों से गुजरती हुई हिंदी कविता और हिंदी गीत आज जिस भाव-भूमि पर खड़ा है, उसमें जीते, संघर्ष करते, लड़ते, तड़पते, गरजते तथा ठोकर खाकर सोचते असली आदमी का परिदृश्य है। यह कविता अपने कालखंड में घटित घटनाओं को पाठकों के सामने रखती है। मौजूदा दौर के वैश्वीकरण, बाजारवाद और तकनीकी के विकट माहौल की वजह से हिंसात्मक गतिविधियाँ बढ़ रही हैं, राष्ट्र की सभ्यता और संस्कृति पर खतरे मंडरा रहे हैं, परंतु इस संकट काल में भी कविता बड़ी निडरता और साहस के साथ आगे बढ़ रही है। यथार्थबोध के साथ इस अँधी दौड़ में भी कविता व गीत गहरे उतरकर समाज व मानवीय मूल्य-मर्यादाओं के प्रति अधिक सजग है। तेजी से बदलते समय और समाज की कविताओं में सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक गतिविधियों का वास्तविक बिंब स्पष्ट नजर आता है। सच तो यह है कि यह आम आदमी की पीड़ा, सुख, दुख, चिंता, आशा-निराशा, संवेदना आदि सच्चाइयों का आईना है।

पिछले कई दशक तक इस काव्य-संग्रह के कवि व गीतकार उमेश्वर सिंह भारतीय लेखा एवं लेखापरीक्षा विभाग (Indian Audit & Accounts Department) में हमारे सहकर्मी रहे हैं और अंकों की दुनिया में रहने के बावजूद हम दोनों अक्षरों से खेलते रहे हैं। उसी का प्रतिफल है यह गीत-संग्रह जिसके गीतों में एक खास किस्म की लयबद्धता है, जो पाठकों की संवेदना को तो झकझोरती ही है, उन पर, इसके शब्दमारक प्रभाव छोड़ते हैं। इनके गीत न केवल मन को छूते हैं, बल्कि सुसंस्कृत चेतना जाग्रत करने को उकसाते भी हैं-

हो न इन्कलाव, तो जनवाणी किस बात की
लाज शरम पी गए, तो ग्लानि किस बात की ।
धिक्कार युवा वर्ग को, जवानी किस बात की,
लाज शरम पी गए, तो ग्लानि किस बात की।

समय, समाज और संस्कृति के पक्षधर कवि उमेश्वर सिंह काल-सापेक्ष विचार रखते हैं। समाज व देश के प्रति श्रद्धा व सम्मान से भरे कवि पश्चिमी चकाचौधी संचार माध्यमों के दौर में अपनी कविताओं में यथार्थ का पूरी समग्रता और गतिशीलता के साथ चित्रण करता है। श्री सिंह का कवि सौंदर्य और प्रेम की वायवीय भावुकता की चुटकी लेता हुआ उसे सामाजिक व राष्ट्रीय यथार्थ से जोड़ता है। इनकी कविताएँ पाठकीय संवेदना और पृष्ठभूमि की एक सामान्य समझ की माँग करती है। कवि उमेश्वर इसलिए भी आकृष्ट करते हैं कि हमें गुलामी और चापलूसों की अपेक्षा स्वाधीनता, आत्म, सम्मानी और राष्ट्र के प्रति श्रद्धा व सम्मान रखने वाला आदमी ज्यादा आकर्षित करते हैं, क्योंकि मुझे भी आत्मसम्मानी होने पर गर्व महसूस होता है। इस संग्रह के कवि की भी यही प्रकृति बन गई है और किसी व्यक्ति की मूल प्रकृति में आमूल परिवर्तन संभव नहीं।

इसे महज संयोग कहा जाएगा कि केंद्र सरकार की चाकरी करते-करते और हिंदी के लिए संघर्ष के उन दिनों में उमेश्वर अंकों के थपेड़े सहते-सहते भावुक बन गए और कविता करने लगे। उन्होंने कभी अपने बारे में नहीं सोचा होगा कि वह तुकबंदी कर सकते हैं। हाँ, इतना जरूर था कि पढ़ने-लिखने का शौक और कलम के धनी होने के चलते इनमें संस्कार आया और हिंदी साहित्य को कुछ देने की भूख की आग ने इनको जो भाव दिए वे ही गीतों में फूटने लगे। वैसे सच कहा जाए, तो गीतों से इनका लगाव प्रारंभ से ही था। आखिर तभी तो अपने आत्मकथ्य में ये लिखते हैं कि छठे वर्ग की छमाही संगीत परीक्षा में अपनी पाठ्य पुस्तक की कविता-'युग युग से है अपने पथ पर, देखो कैसा खड़ा हिमालय' अपने धुन और सुर में गाया, तो संबंधित शिक्षक ने इन्हें अजूबा विद्यार्थी से संबोधित किया। यही कारण है कि इनके गीतों में संगीत की अद्‌भुत गूँज-अनुगूँज सुनाई पड़ती है। कहा जाता है

कि एक श्रेष्ठ गीतकार के लिए संगीत का ज्ञान बहुत जरूरी है, क्योंकि संगीत का ज्ञान किसी भी कविता को फिर चाहे वह छंदयुक्त हो या छंदमुक्त– संघन आंतरिक लयवत्ता प्रदान करता है। उमेश्वर इसके प्रमाण हैं।

मुझे अच्छी तरह याद है कि सेवावधिके दौरान चाहे राँची का महालेखाकार कार्यालय हो या पटना का, वहाँ के केंद्रीय सचिवालय हिंदी परिषद, बदमे अदब और मनोरंजन क्लब के संयुक्त तत्त्वावधान में प्राय: प्रतिवर्ष आयोजित अखिल भारतीय कवि व मुशायरा सम्मेलन में हम दोनों की भूमिका अहम होती थी और राष्ट्रीय स्तर के जिन कवियों व शायरों को सादर आमंत्रित किया जाता रहा था उनमें कविवर वीरेन्द्र मिश्र, ब्रजेन्द्र अवस्थी, काका हाथरसी, सोम ठाकुर, बशीर बद्र, मालिकजादा मंजूर अहमद, नीरज, संतोषानंद, बेकल उत्साही, सुश्री नीलू मेघ, हंस कुमारी तिवारी, अजमल सुल्तानपुरी, गोपी वल्लभ सहाय तथा सत्यनारायण आदि का नाम उल्लेखनीय है।

संभव है कवि उमेश्वर जी को इन्हीं कवियों व गीतकारों से प्रेरणा भी मिली हो जिसके परिणामस्वरूप इनका काव्य-संग्रह 'मेघा मन' आप पाठकों के सामने है।

कवि ने सदैव यह महसूस किया है कि अनुभव में पकी हुई मौखिक परंपरा की जड़ें गहरी होती हैं, जहाँ आत्मीयता और रागात्मकता से ओत-प्रोत भाषा की अनुगूँज पाठक देख-पढ़ सकते हैं। असल में कविता की एक संपूर्ण भाषा होती है जहाँ तत्सम और तद्भव से बने-बनाए खाने व्यर्थ हो जाते हैं। उमेश्वर जी लेखन को एक सामाजिक कर्म मानते हैं, वरना कोई लिखे ही क्यों ?

खैर, जो हो! उमेश्वर जी ने राजधानी पटना में रहकर न केवल हमारे द्वारा संपादित विभागीय पत्रिका 'प्रहरी' के संपादन-प्रकाशन में सहयोग किया, बल्कि कवि व मुशायरा सम्मेलनों को स्तरीय बनाया तथा गीत का परचम लहराते रहे। सच मानिए ऐसे अक्खड़, तुनुकमिजाज, अभिमानी मगर श्रेष्ठ, गीतकार के रूप में मैंने जाना है अपने सहकर्मी कवि को और आज जब इन्होंने अपने काव्य-संग्रह 'मेघा मन' की भूमिका लिखने का प्रस्ताव मेरे समक्ष प्रस्तुत किया, तो इस किताब का स्वागत करते हुए मुझे-अत्यंत प्रसन्नता का अनुभव हो रहा है। यह आत्मीयपूर्ण टिप्पणी मैं मुक्त भाव से व्यक्त कर रहा हूँ। उनकी विनम्रता तथा सहजता ने मानो मेरे मन से उनका समस्त आतंक धोकर रख दिया। मेरे हृदय में इस गीतकार के प्रति कितना सम्मान एवं अपनापन विद्यमान है इसका अनुमान मेरी इन पंक्तियों से लगाया जा सकता है–

उमेश तुम मेरी पीड़ा के सचमुच भागीदार,
विधि का कैसा विधान कि फिर भी मिलते नहीं विचार।
मेरे और तुम्हारे पश्चिम की साक्षी हिंदी परिषद,
वक्त बताएगा तुम थे सहकर्मी याकि बरगद ।

सचमुच उमेश्वर जी को सहकर्मी न कहकर बरगद कहना कहीं ज्यादा सटीक, साभिप्राय और समीचीन इसलिए लगता है कि उनकी तुनुकमिजाजी, अप्रत्याशित रूखापन, असहज अक्खड़ता, शालीनता की हदों को पार कर जाने वाली अनौपचारिकता, बेलगाम तीखापन, किसी को भी आहत करके यह कहने पर मजबूर कर सकता था कि क्या यह भी कोई इंसानियत है। मगर उनमें इतनी क्षमता निश्चित रूप से थी कि वह अपनी मौजूदगी का अहसास ही नहीं कराते थे, बल्कि अपनी बेबाकी और प्रतिभा का लोहा जरूर मनवा लेते थे और मुझे बरगद की छांव देते थे। मैं क्या बताऊँ उनके बारे में, बल्कि सच तो यह है कि वह खुद भी नहीं जानते कि वह क्या हैं। तो मैं भी उनके स्वर में स्वर मिलाकर इतना ही कहना चाहूँगा कि केवल उमेश जी का व्यक्तित्व ही नहीं, पूरा जीवन ही असंगतियों से रंगा हुआ है। उनके आत्मकथ्य से भी यही विदित होता है, हालांकि इस पुस्तक का वह आत्मकथ्य नहीं उनकी आत्मकथा है। वस्तुत: इनके बारे में दोस्तों, परिचितों, प्रशंसकों और सहकर्मियों की राय हमेशा एक रही है। पहली मुलाकात में निहायत कठिन-सा लगने वाला व्यक्तित्व जब खुल जाता है, तो बहुत जल्दी आत्मीय बन जाता है। बात-बात पर जुम्ले कसना, बहुत धीमे-धीमे मुस्कराते हुए हँसना इनके व्यक्तित्व को बहुत सामान्य बनाते हैं, मगर संवेदनाओं की छुअन, गीतों में पिरोई गई तर्कपूर्ण भावुकता तथा उदास जीवन की विभिन्न छवियाँ अंतर्मन को झकझोरने में समर्थ हैं। इन्होंने कविता के रूप में जो कुछ लिखा गीत की शक्ल में ही लिखा। ये गीत के अनन्य साधक होने के साथ-साथ गीत के प्रबल समर्थ भी हैं।

आज जबकि मूल्यों के क्षेत्र में अराजकता की स्थिति उत्पन्न हो गई है, साहित्य को भी आस्थाओं की रक्षा करते हुए जनजीवन का अंग बनना है। मुझे इस बात की खुशी है कि कवि उमेश्वर जी हिंदी कविता के माध्यम से ऐसी विषम परिस्थिति में जनमानस को झकझोरने और उन्हें जाग्रत करने के लिए अपनी आवाज बुलंद कर अपने दायित्व का निर्वहन कर रहे हैं। इनके गीतों में स्वाधीनता आंदोलन और उसके नायकों की अनुगूँज के साथ-साथ जनता की इच्छा, आकांक्षाओं एवं सपनों की प्रतिध्वनि सुनी जा सकती है। इनकी कविता व गीतों को पढ़ने-सुनने का अपना ही सुख है। विश्वास है इनके गीत जिंदगी के उदास क्षणों में सबसे गहरे दोस्त साबित हो सकते हैं और सात्विक आनंद प्रदान कर सकते हैं। हिंदी कविता व गीत में ऐसे अकेले और अलबेले स्वर के लिए कवि को हार्दिक साधुवाद और दीर्घायु होने की मंगलकामना।

संपर्क : 'बसेरा', पुरन्दरपुर,
पटना-800001
दूरभाष : 0612-2510519

दर्द जो बन गए गीत

○ प्रो० रामजी राय

'A good heart is better than all the heads in the world,'

एडवर्ड लिटन के ये शब्द बड़े महत्त्वपूर्ण हैं, क्योंकि ये मस्तिष्क के बढ़ते दौड़ में हृदय की अहमियत को बड़ी संजीदगी और वेवाकपन से रेखांकित करते हैं। मशीनीकरण के इस युग में मनुष्य भी एक मशीन बनकर रह गया है। उसके हृदय के सारे स्रोत सूख गए हैं, उसकी सारी संवेदना मर चुकी है। ऐसी विषम परिस्थिति में कवियों की बड़ी ही अहम भूमिका है, क्योंकि यही वे लोग हैं, जिन्होंने हृदय के धरोहर को बचा कर रखा है। यही वे लोग हैं, जो हृदय के खोये वैभव को लौटा सकते हैं, उसकी संवेदना के टूटे तारों को फिर से जोड़ सकते हैं। श्री राजनारायण चौधरी के गीतों की समीक्षा अगर हम इस परिप्रेक्ष्य में करें तो वह ज्यादा मौजू और समीचीन होगा।

'मँजर गया ठूँठ पेड़' कवि के किशोरावस्था में लिखे गए रुमानी प्रेम के गीतों का संकलन है। हम जब इसे पढ़ना शुरु करते हैं तो हमारी नजर संकलन के शीर्षक पर ही अँटक जाती है। लेकिन इसका अर्थ तब साफ होता है जब हम इस पुस्तक में संकलित गीतों को पढ़ते हैं। प्रेम हृदय का मूल भाव है। जब सर्वप्रथम इसका मधुर स्पंदन होता है, तो सूने हृदय में भी एक रसोद्रक होता है ठीक वैसे ही जैसे ठूँठ पेड़ में मँजर आ जाते हैं। यह बहुत ही प्रभावशाली प्रतीक हैख क्योंकि जब यह भावनात्मक क्रांति होती है, जब यह चमत्कार घटित होता है तब चारों ओर संगीत बजने लगता है, फूल खिलने लगते हैं और चाँद मुस्कुराने लगता है। एक अँग्रेज लेखक ने ठीक ही कहा है–

There is nothing so sweet as the first awakening of love'.

वर्त्तमान संकलन कुल अड़तालीस गीतों की लंबी श्रृंखला है जो एक अभिनव भाव-लोक का सृजन करती है। यह भाव-लोक अनेक रुप-रंगों में हमारे हृदय-पटल पर उतरता है। किशोरावस्था में लिखे गए ये गीत कवि के हृदय के प्रेम-प्रसून हैं। अभी कवि ने यौवन की दहलीज पर कदम ही रखा था कि उसके हृदय में एक अनाम रुप के प्रति 'प्यार' जगा। वह प्यार मिलन में तो नहीं बदल सका। हाँ, अपने पीछे एक प्यास छोड़ गया-एक अबुझ प्यास जो कभी सपने बनकर हृदय को गुदगुदाती रही, कभी याद बनकर जेहन में सुलगती रही, तो कभी दीप बनकर रातभर तन-मन जलाती रही। हृदय के इन्हीं दर्दीले क्षणों को, एहसास की इसी दौलत को चौधरी ने अपने गीतों में पिरोया है। कवि के शब्दों में उसके गीतों की यही कहानी है–

दुनिया ने छीना प्यार, छला खुद अपनों ने,
कल उमड़ी थी जो प्यास नहीं बुझ पायी है।

पुस्तक का नाम: ??
कवि: राज नारायण चौधरी
समीक्षक : प्रो० रामजी राय

अंतर के नील निलय को घेर-घुमड़कर अब गीतों की मृदुल घटा मृदु-मृदु मुस्कायी है।

यों तो करुणा और प्रेम काव्य के चिरंतन स्रोत रहे हैं, लेकिन प्रेम-जनित वेदना को लेकर सबसे अधिक काव्य-सृजन अँग्रेजी भाषा के रोमांटिक कवियों ने किया। इसकी स्पष्ट छाया हिंदी के छायावादी कवियों पर पड़ी। राजनारायण चौधरी का किशोर कवि छायावाद की छाया में ही विकसित हुआ। संकलन के पुरोवाक् में इसका संकेत करते हुए हिंदी के प्रख्यात आलोचक डा. विजेन्द्र नारायण सिंह ने कहा है कि 'वेदना ही उनके गीतों का स्रोत है।' यथा–

प्यार की जो प्यास उमड़ी थी कभी
वह वेदना का गान बनकर रह गई।

इनको पढ़ते ही 'प्रसाद' जी के 'आँसू' की प्रारंभिक पंक्तियाँ सहज ही जेजन में उभर आती हैं–

जो घनीभूत पीड़ा थी
मस्तक में स्मृति सी छायी।
दुर्दिन में आँसू बनकर
वह आज बरसने आयी।

यह बेदना अपने विभिन्न आयामों में समय-समय पर कवि के अंतर में उमड़ती रही है जिन्हें उसने एक अति संवेदनशील कैमरे की तरह अपने गीतों में कैद किया है। शब्द, बिंब, प्रतीक, लय और छंदों का जो चयन है वह छायावादी गीतों का खुशबू भरा एहसास जगाता है। संकलन की पहली कविता का शीर्षक है- 'व्यथा की रागिनी' जो बरबस पंत जी की प्रसिद्ध पंक्ति 'आह से उपजा होगा गान' की याद ताजा कर देती है। प्रेयसी के रुप में जो रोमांच है, उसमें जो जीवंतता है उसे कवि चाँद और चाँदनी जैसे चिर-परिचित प्रतीकों के माध्यम से व्यक्त करता है। लेकिन एक नए अंदाज से प्रस्तुत कर उन्हें स्वानुभूत भावों का संवाहक बना देता है–

रुप का सुंदर सुहावन चाँद उभगे
मैं तुम्हारी चाँदनी में डूब जाऊँ।

और तभी कवि के हृदय से तुलसी की 'चली उमगी कविता सरिता सी' की तरह गीत के स्वर फूट पड़ते हैं–

कल्पना के पंख पर
सोयी कला के प्राण जागे।
गीत की स्वर-साधना में
भाव के भगवान जागे।

'भाव के भगवान जागे'-सृजन के एक अनोखे क्षण में कवि ने एक अनुपम पंक्ति गढ़ डाली है। भाव की भगवत्ता को स्वीकार कर कवि हमें इस बात का एहसास कराता है कि भाव ही वह संबल है जो मनुष्य को चेतना के उच्चतम शिखर पर ले जाती हैं।

दु:ख है सिर्फ इस बात का कि यह संकलन बहुत बाद में निकला। अगर यह संकलन अपने रचना-काल में आज से चालीस वर्ष पहले निकलता, तो निश्चित रुप से छायावादी परंपरा की अगली कड़ी के रूप में इसकी पहचान होती। संकलन के कुछ गीत तो छायावादी युग के कुछ प्रसिद्ध गीतों की याद दिलाते हैं। जैसे-'पूछ मन की बात' में 'मैं हृदय की बात रे मन', 'ओ एकांकी दीपक' में 'दीप मेरे जल अचंल', 'किसने आ चुपके' में 'कौन तुम मेरे हृदय में' की अनुगूँज सुनाई देती है। भावानुकूल छंदों की संरचना करना कवि की प्रमुख विशेषता है जो

शेष पृष्ठ २० पर

जनसेवा की जिम्मेवारी भूल गए निजी टी.वी. चैनल

○ सिद्धेश्वर

ब्रेकिंग न्यूज की वजह से अथवा उसकी होड़ के कारण निजी टेलीविजन जनसेवा की अपनी जिम्मेदारी को भूलते जा रहे हैं। भारतीय संविधान और यहाँ के लोकतंत्र ने यह बात कई बार साबित कर दी है कि देश के मीडिया को पूरी आजादी प्राप्त है; लेकिन निजी टी.वी. चैनल अपनी मूलभूत जिम्मेदारियों को पूरा करने में विफल रहे हैं। इराक पर हमले के दौरान बीबीसी के शीर्ष अधिकारियों को अपनी नौकरी से सिर्फ इसलिए हाथ धोना पड़ा था, क्योंकि उन्होंने ब्रिटिश सरकार की अपेक्षाओं के अनुरुप समाचार नहीं दिए थे और वहाँ की संसद ने इसके खिलाफ एक शब्द भी नहीं कहा था। जबकि भारत की स्थिति उसके ठीक विपरीत है। यहाँ तो जब शिल्पा शेट्टी को, कोई आलिंगनबद्ध कर लेता है, तो निजी टेलीविजन चैनलों के लिए यह ब्रेकिंग न्यूज बन जाता है तथा उसे लगातार बार-बार दिखाया जाता है, मगर विज्ञान भवन में प्रधानमंत्री पुरस्कार वितरण करते हैं, तो यह उनके लिए न्यूज नहीं होती। इसी प्रकार किसी मंत्री का मंच से गिर जाना भी उनके लिए, न्यूज बन जाती है। सच तो यह है कि इस बचकाने ब्रेकिंग न्यूज के गेम का मतलब किसी की समझ में नहीं आता। दरअसल, भारत के टीवी चैनल संविधान द्वारा प्रदत्त स्वतंत्रता के अधिकारों का इस्तेमाल नहीं कर पा रहे हैं जो चिंता का विषय है।

मीडिया के इस वर्ग की प्राथमिकताएँ भी बदल गई हैं। सबसे सेक्सी महिला या पुरुष के बारे में तो रिपोर्टों की भरमार रहती है पर जो लोग, देश को बदलने के लिए मर मिट रहे हैं, उनके बारे में देखने-सुनने को कुछ नहीं मिलता।

वर्तमान दौर में निजी दूरदर्शन चैनल जिस तरह से समाज को सेक्स परोस रहे हैं- वह किसी भी तरह से काम परिष्कृति की राह नहीं है, काम विकृति की ही राह है। देश में बलात्कार और शोषण की जो घटनाएँ दिन प्रतिदिन बढ़ती जा रही हैं, वे चिंता से ज्यादा सभ्य समाज की हमारी अवधारणा पर भी प्रश्न चिन्ह लगाती हैं। एक ओर जहाँ हमारा तमाम सूचना-समाज तकनीकी उन्नति की पराकाष्ठा पर पहुँची इक्कीसवीं सदी के उस दौर में प्रवेश कर विजयगाथा गा रही है, जहाँ मध्यकालीन मानसिकता की मुक्ति की बात जोर-शोर से की जाती है, 'उत्तर आधुनिक' पद के प्रयोग बिना कोई विमर्श पूरा नहीं होता, वहीं दूसरी ओर नारी देह इस तरह के गर्हित यौन-शोषण की खबरें चैनलों की 'ब्रेकिंग न्यूज' और अखबारों की सुर्खियाँ बनती हैं। सोचने की बात यह है कि ये दोनों स्थितियाँ हमारी सोच में किसी बुनियादी खोट की ओर इंगित करती हैं या फिर हम जिस विकास, उन्नति और प्रगति की बात करते हैं, ये घटनाएँ उस विकास की स्वाभाविक और अनिवार्य परिणति न सही तो उसका एक हिस्सा जरूर है। बदली हुई सामाजिक परिस्थितियों में नि:संदेह कुछ ऐसे उपाय किए जाने की जरूरत है जिससे समाज में फैली बुराइयों, कुरीतियों तथा दिन प्रतिदिन बढ़ती जा रही बलात्कार, छेड़छाड़ तथा यौन-शोषण जैसी घटनाओं पर लगाम कसी जा सके।

वैश्विक ग्राम (Global Village) में तेजी से बदलती आज की दुनिया में जन संचार माध्यमों में से इलेक्ट्रॉनिक मीडिया अधिक गति से हमारे जीवन को प्रभावित कर रहा है। इस देश की भूमि पर सन् 1959 में एक सरकारी महकमें के रुप में पाँव रखने वाला दूरदर्शन 20 वीं सदी को पार करते-करते सरकारी सीमाओं को लांघकर अब निजी हाथों में खेलने लगा है। दूरदर्शन की दौड़ का आज यह आलम है कि वर्त्तमान दौर में तीन सौ से अधिक चैनल चल रहे हैं जिनमें से अधिकांश चैनल चौबीसों घंटे अपने नए-पुराने कार्यक्रमों से दर्शकों को आकर्षित करते रहते हैं। समाचार चैनलों की संख्या ही तकरीबन 75 से अधिक है। सभी चैनल एक-दूसरे से आगे निकलने की होड़ ने कार्यक्रमों की गुणवत्ता और स्तर को बहुत क्षीण कर दिया है। निश्चित रूप से वे गंभीर मनोरंजन की बजाय हल्के मन बहलाव और उत्तेजना के वाहक बनते जा रहे हैं। ज्यादा से ज्यादा राजस्व अर्जित करने और दिल्ली की ब्लू लाइन बसों की तरह एक दूसरे से आगे बढ़ने में वे समाज को दिशा देने की बजाय पीछे ले जाने वाले कार्यक्रम प्रसारित कर रहे हैं। इनके तकरीबन आधे से अधिक कार्यक्रमों में तो फिल्मी और फिल्मी सितारों के निजी-जीवन की चटपटी खबरों के साथ उनके अर्द्धनग्न शरीर दिखाए जा रहे हैं। और तो और 'कैटवाक' के दरम्यान मॉडल अपने शरीर के ऊपर से वस्त्र सरक जाने के धारावाहिक को सालों-सालों घसीटा जाता है जिनकी कहानी सर्पाकार मोड़ लेती हुई अभिनव कहीं से कहीं पहुँच जाती है। यहीं नहीं, अँधविश्वास, धार्मिक कर्मकांड, ज्योतिष, संपन्नता का भोंड़ा प्रदर्शन, पारिवारिक कलह और अवैध संबंधों के महिमा मंडन का चित्रण करके यह आभास दिया जा रहा है कि भारतीय समाज के मध्य वर्ग के समक्ष पारिवारिक कलह और व्यावसायिक स्पर्धा की सिवाय कोई और समस्या नहीं है। जबकि सच तो यह है कि आज के बदलते परिवेश में भारतीय समाज के सामने अनेक समस्याएँ मुँह बाए खड़ी हैं। सेक्स के भौंड़े और उत्तेजक चित्रण की वजह से सरकार की ओर से दो चैनलों पर आंशिक प्रतिबंध लगाया जा चुका है। हालांकि यह भी सच है कि कुछ निजी चैनलों पर गीत-संगीत तथा नृत्य प्रतियोगिताएँ अच्छे स्तर की आई हैं। इससे नई पीढ़ी में संगीत के प्रति रुचि जगाने में मदद मिली है। किंतु यहाँ भी कार्यक्रम में सनसनी लाने की कोशिशें दिखाई देती हैं जैसे एक कार्यक्रम का नाम देखें- 'संगीत का महायुद्ध'।

आज स्थिति यह है कि आम जनता से जुड़ी खबरों की अनदेखी ही नहीं की

जाती, वरन् लगभग सभी राष्ट्रीय और स्थानीय चैनल घंटों तक गैर-समाचार कार्यक्रम दिखाकर दर्शकों के साथ-साथ अपने पेशे से भी छल कर रहे हैं। हर छोटे-बड़े समाचार को 'ब्रेकिंग न्यूज' घोषित कर दिया जाता है। जानी-मानी टी.वी संवाददाता बरखा दत्त ने अपने एक लेख में इस चिंतनीय पहलू पर चिंता व्यक्त करते हुए टिप्पणी की है कि अब तो किसी ट्रैफिक पर बत्ती का न जलना भी 'ब्रेकिंग न्यूज' हो गया है। आपने देखा नहीं टी.वी चैनल के एक प्रमुख संवाददाता ने 'ब्रेकिंग न्यूज' का तमगा लगाकर दर्शकों को यह सूचना दी थी कि अमिताभ बच्चन अपने बेटे अभिषेक और होने वाली बहू एश्वर्या के साथ बनारस में विश्वनाथ मंदिर में विशेष पूजा-अर्चना करने पहुँच रहे हैं। वह उनकी हर गतिविधि की बराबर सूचना देते रहने का वादा करके अपने साथी संवाददाता के पास ले चलता है जो हमें रात को साढ़े ग्यारह बजे यह 'खबरों की खबर' परोसता है कि अमिताभ अपने परिवार तथा मित्र मण्डली के साथ थोड़ी देर में विशेष विमान से उतरने वाले हैं। उसके बाद बाकी चैनलों की भी नींद खुलती है और वे भी एक अभिनेता के निजी पूजा-पाठ को देश की प्रमुख घटना के रूप में प्रस्तुत करने में जुट जाते हैं। एश्वर्य-अभिषेक की शादी से जुड़ी हर महत्त्वपूर्ण घटना को महीनों तक सभी चैनलों पर दिखाया जाता रहा। शादीवाले दिन तो मर्यादा की सारी हदें ही पार हो गईं।

इसी प्रकार शिल्पा शेट्टी और हॉलीवुड के अभिनेता गेर के चुबंन को रात-दिन आधुनिकता और प्रगतिशीलता का पाठ पढ़ाने वाले इन चैनलों के लिए यह घटना तूफान बन गई और उसे एक घंटे में बीस-पच्चीस बार दिखाया गया। कुछ यही हाल हुआ राखी सावंत के चुबंन का भी जिसे बेशर्मी के साथ बार-बार दिखाया गया। समाचार चैनलों का दुर्भाग्यपूर्ण पहलू यह है कि ग्रामीण विकास और गाँवों का पिछड़ापन, निरक्षर और पिछड़े वर्ग, किसान, मजदूर तथा शोषण और उत्पीड़न की शिकार औरतें समाचार के राडार पर तभी आती हैं जब कुछ सनसनीखेज घट जाए। साक्षरता का मुद्दा तभी उठेगा जब कोई घोटाला सामने आएगा। बलात्कार की घटना को एक मानवीय त्रासदी की बजाय गुदगुदी पैदा करने वाली सनसनी की तरह पेश किया जाता है। अब तो चैनलों पर ज्योतिष की दूकानें भी सजने लगी हैं। चैनल वैज्ञानिक सोच को बढ़ावा देने की बजाय अँधविश्वास और भाग्यवाद को प्रोत्साहित कर रहे हैं। साहित्य, शास्त्रीय संगीत और नृत्य, लोक कथाएँ, लोक संस्कृति से जुड़े कार्यक्रमों के बारे में समाचार देना तो यहाँ अपराध माना जाता है। हद से हद फूहड़ हास्य कवि-सम्मेलन दिखाए जा सकते हैं। कहने का अर्थ यह है कि आज सारे चैनलों में चुटकुलेवाजों की चाँदी हो रही है। क्रिकेट, क्राइम, सिनेमा, सेक्स और सनसनी ही तो समाचार नहीं हैं। टी.वी. पत्रकारिता की मर्यादा और मीडिया धर्म का उल्लंघन तो सहन किया जा सकता है, मगर उनकी हत्या की इजाजत कैसे दे दी जाए।

रात में जुगनुओं की मानिंद चमकती है

○ विष्णु नागर

हिंदी साहित्य और विचार की जब भी बात की जाती है, तो वह घूम फिर कर लघु पत्रिकाओं तक जा पहुँचती हैं। दूसरी तरफ से देखा जाए तो ये हिंदी साहित्य की हर धड़कन, विमर्श, सांस्कृतिक गतिविधियों और देश भर में फैले हिंदी लेखक समुदाय को मंच प्रदान करती हैं। व्यावसायिक पत्रिकाओं की बड़ी उपस्थिति के बावजूद भी इनकी प्रासंगिकता आज भी बनी हुई है। इन तथ्यों से बिल्कुल इंकार नहीं किया जा सकता कि व्यावसायिक पत्र-पत्रिकाओं के समानांतर एक दुनिया लघु पत्रिकाओं की भी है, जो अँधेरी रात में जुगनुओं की मानिंद चमकती रहती है। आजादी के बाद जो भी प्रतिरोध, विरोध और सार्थक हस्तक्षेप है, वह सारा इन्हीं पत्रिकाओं में बिखरा हुआ है।

यह काफी हद तक पाठकों की सोच पर निर्भर करता है कि वह पत्रिकाओं में क्या चाहते हैं। जहाँ तक साहित्येत्तर योगदान की बात है तो यही पत्रिकाएँ दबे कुचले राज्यों की वास्तविक छवि जनता-जनार्दन तक पहुँचाती हैं। झारखंड की ज्वलंत समस्याओं से लेकर राजनीति की ताजा घटना से रू-ब-रू कराती हैं। साथ ही आर्थिक, धार्मिक, सांप्रदायिक एवं राजनीतिक समेत तमाम मुद्दों और चुनौतियों के सवालों को उठाकर पाठकों को जागरूक, संघर्षशील बनाने में भी सकारात्मक हस्तक्षेप किए हैं।

बड़े घरानों की पत्रिकाएँ मसलन धर्मयुग, दिनमान, माया, सारिका, कादंबिनी तथा गंगा की भूमिका काफी रचनात्मक रही है। आज प्रतिस्पर्धा का युग है और जब कोई चीज अपनी काबिलियत या हुनर से आगे बढ़ती है तो समाज उनपर आरोप जरूर लगाता है। हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि उपरोक्त पत्रिकाओं ने अपने दौर में मध्यम वर्ग के समाज और उसके संस्कारों को काफी प्रभावित किया है। इन पत्रिकाओं के सरोकार ने व्यावसायिक होते हुए भी समाज को दिशा देने और जागरूक करने का काम किया है। पत्रिकाओं की बुनियाद मनुष्य के प्रति पूरी सामाजिक जिम्मेदारी और सामाजिक परिवर्तन की उम्मीद से रखी गई थी, यही आज भी, कल भी और उसके बाद आने वाले कल के लिए बीज मंत्र होना चाहिए। स्वतंत्रता के बाद हिंदी साहित्य का विकास मुख्यत: उन साहित्यिक पत्रिकाओं के जरिए हुआ, जिन्हें लघु पत्रिका कहा जाता है। लघु पत्रिका प्राय: सीमित संसाधनों से निकलने वाली वह पत्रिका होती है, जिनका उद्देश्य आर्थिक लाभ कमाना या किसी धर्म, राजनीतिक दल, संस्था आदि का प्रचार करना अथवा संपादक की निजी अकांक्षाओं की पूर्ति करना नहीं, बल्कि अपनी भाषा का विकास करना, उसे समृद्ध बनाना होता है।

सामाजिक सरोकार से विमुख मीडिया

○ डॉ. हरिसिंह पाल

यह सर्वमान्य तथ्य है कि रेडियो और टेलीविजन की आधुनिकतम जनसंचार क्रांति की बदौलत सूचना, ज्ञान, शिक्षा तथा मनोरंजन की विधाओं का सशक्त प्रचार-प्रसार हुआ है। दुनिया सूचनाओं के माध्यम से अधिक नजदीक आ गयी है और 'वैश्विक ग्राम' की संकल्पना साकार सिद्ध हो चुकी है। लेकिन इस संचार क्रांति ने कुछ सामाजिक समस्याओं को भी जन्म दिया है। उपभोक्तावाद इनमें से एक प्रमुख समस्या बन गई है।

हम जानते ही है कि संचार माध्यम, लोगों की अभिवृत्तियों, विचारों, आचार-व्यवहार तथा जीवनशैली में परिवर्तन को सक्रिय रूप से प्रभावित करते हैं। ये जन संचार माध्यम न सिर्फ संदेश प्रसारित करते हैं, बल्कि उनका सचित्र प्रदर्शन भी करते है इसलिए ये अधिक प्रभावशील होते हैं जिनसे समाज में अनुकरण की संस्कृति विकसित होने लगती है। उपभोक्तावाद, अनुकरण की संस्कृति का विशेषगुण है। उपभोक्तावाद, सार्वजनिक विकास के उद्देश्य से समाज के एक बड़े वर्ग को उदासीन भी बनाता है। जबकि पूँजीवादी व्यवस्था में जनसंचार माध्यम सामाजिक उदासीनता के रूप में छद्म आत्म संतोष के प्रणेता बन जाते हैं।

एक पूँजीवादी व्यवस्था में उत्पादों की बाजार में बेचकर अधिक से अधिक लाभ कमाने की प्राथमिकता रहती है। इस व्यवस्था में केवल उन्हीं वस्तुओं और सेवाओं का उत्पादन होता है जिनकी बाजार में बिक्री के लिए माँग है। इसका अर्थ यह हुआ कि वस्तुएँ तथा सेवाएँ मात्र उनके लिए है जो इनके दाम चुका सकते है। प्रारंभ में रेडियो और टी.वी. सूचना, शिक्षा और मनोरंजन के ही साधन थे, लेकिन पूँजीवादी व्यवस्था में प्रौद्योगिकी के चरम विकास की बदौलत अब ये साधन एक वैश्विक उद्योग बन गए हैं। ऐसा जन कल्याण की भावना से नहीं, बल्कि व्यावसायिक उद्देश्य से ही हुआ। अब रेडियो-टेलीविजन की सार्वजनिक सेवाएँ, 'बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय' की न रहकर बड़ी-बड़ी मीडिया कंपनियों में बदल गई हैं। ये मीडिया कंपनियाँ सिर्फ संदेश ही प्रसारित नहीं कर रहीं, बल्कि अब इनकी इच्छा दुनिया भर के बाजारों पर कब्जा करने की बन गई है।

अब बाजार की माँग का नियंत्रण अथवा प्रबंधन, एक बड़े गतिमान उद्योग में परिवर्तित हो गया है। इसमें जनसंचार माध्यमों का एक बड़ा हिस्सा, बाजार में बिक्री के लिए विज्ञापन तथा अन्य संबद्ध सेवाओं की विशाल मशीन के रूप में कार्य कर रहा है।

उपभोक्तावादी विज्ञापन संस्कृति के मूल में रेडियो तथा टेलीविजन के माध्यम से अपने व्यावसायिक लाभ के लिए एक ऐसी मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया आरंभ करना है जिसके परिणामस्वरूप व्यक्ति आवश्यक हो या न हो विज्ञापित उत्पाद को खरीद अवश्य ले। विज्ञापनों की इस मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया के प्रभावस्वरूप, व्यापारिक लाभ अवश्य हो सकते हैं, किंतु इससे सामाजिक प्रभाव के रूप में व्यक्तियों की उच्च अभिलाषाओं के जाग्रत होने की संभावना बढ़ जाती है। और यह प्रवृत्ति आडंबरपूर्ण आचार-व्यवहार तथा उच्च अभिलाषाओं की असफलता की दशा में अपराधों तथा सामाजिक उदासीनता को भी जन्म दे सकती है।

जनसंचार माध्यमों पर बहुप्रचारित विज्ञापनों के 'बैंड वैगन' विधि यह प्रचार करती प्रतीत होती है कि बहुत से लोग इस विज्ञापित वस्तु का उपयोग सफलतापूर्वक कर रहे हैं, इसलिए अन्य लोगों को भी उसका उपयोग करना चाहिए। अपने जीवन में भले ही अभिताभ बच्चन 'नवरत्न' तेल न लगाते हों, लेकिन उनके प्रशंसक तो उन्हें इस तेल का विज्ञापन करते देख, इसी तेल को अपनाने का संकल्प लेते हैं। हमारे यहाँ तो कहा ही गया है-'यद्यदाचरित श्रेष्ठ: तत्तद्वैक्त रोजना:' अर्थात् श्रेष्ठजन (बड़े आदमी) जो आचरण करते हों इतर जन भी उसी का अनुसरण करते हैं। जब बड़े-बड़े स्टार और खिलाड़ी किसी वस्तु का बड़ी मुस्कान के साथ विज्ञापन करते हैं, तो आम आदमी तो उस वस्तु का दीवाना हो ही जाएगा भले ही उसकी अनिवार्य आवश्यकता न हो वह तो अपने और अपने परिवार के आवश्यक खर्चों में कटौती करके उस वस्तु को खरीदने का प्रयास करेगा ही। उसे लगता है कि जब उसका प्रिय स्टार या खिलाड़ी इस वस्तु का उपयोग कर रहा है, तो वह भी इसका उपयोग कर उसी स्टार या खिलाड़ी के समकक्ष हो जाएगा।

इस प्रकार उच्च वर्ग की जीवन शैली का अनुकरण मध्य वर्ग तथा निम्न वर्ग भी 'बैंड वैगन प्रभाव' के अंतर्गत करने लगते हैं। उच्च वर्ग दंभ या स्नाव प्रभाव के कारण नई जीवनशैली अपना लेता है। यह दौड़ अंत में सामाजिक उदासीनता को जन्म देती है। दरअसल उपभोक्तावाद मात्र उत्पादों की बिक्री भर नहीं है, बल्कि इसका उद्देश्य उच्च वर्ग के अहं की संतुष्टि के साथ-साथ समाज के कमजोर तथा वंचित वर्गों में हीनता के बोध का प्रसार भी होता है। जबकि उपभोक्तावादी जनसंचार माध्यम, अनुकरण की प्रक्रिया को नहीं, बल्कि अँधी तथा विचारहीन नकल की प्रवृत्ति को बढ़ावा देकर मात्र काल्पनिकस्वर्ग की रचना करते हैं। नकल की गंभीर प्रवृत्ति के चलते, विज्ञापन के कारण लोगों की स्वंय अपनी और सामूहिक पहचान ही कठिन हो चली है। विज्ञापनों ने उन सभी प्रतीकों को नुकसान पहुँचाया है जिनसे व्यक्ति की समाज में पारंपरिक आधार पर पहचान होती थी।

जैसाकि हम कह ही चुके हैं कि नई जीवनशैली के सपने हमेशा उच्चतर समूह से उधार लिए जाते हैं। लेकिन जब ये सपने पूरे नहीं होते या टूट जाते हैं, तो या तो सामाजिक उदासीनता की स्थिति उत्पन्न

होती है या सामाजिक विचलन की। इस स्थिति में व्यक्ति के अनुशासन का बाँध टूट जाता है और वह विचलित व्यवहार कर सकता है। अपराध की ओर कदम बढ़ने में देर नहीं लगती। उसे अपनी मन पसंद चीज खरीदने के लिए या उच्च जीवन शैली जीने के लिए पैसा तो चाहिए। उन्मुक्त पैसा ईमानदारी से तो मिल नहीं सकता तब सिर्फ रास्ता बचता है बेईमानी का। फलत: व्यक्ति का यह विचलित व्यवहार सांस्कृतिक संघर्ष का रूप ले विद्रोह में (अपराध के रूप में) बदल सकता है।

आज के जन संचार माध्यम उपभोक्तावाद बाजार के दबाव में एक ऐसी तथाकथित लोकप्रिय संस्कृति को जन्म दे रहे हैं जिसका उद्देश्य समाज को मूल्यवान विचारों से अलग कर, कोरी भावुकता की ओर प्रेरित करना है। बाजार के दबाव के कारण कोरी भावुकता के ये कार्यक्रम (फिल्म और धारावाहिक) व्यक्ति को आत्मकेंद्रीत मनोविनोद की ओर ही सीमित करते हैं। पाश्चात्य संस्कृति से आया यह प्रभाव भारतीय परिवारों को टूटने की स्थिति में ले आया है। अश्लीलता, अपराध, हिंसा विशेषकर बच्चों व स्त्रियों के विरुद्ध हिंसा ही नहीं फूहड़ हास्य भी उपभोक्तावादी जनसंचार माध्यमों के सामाजिक विचलन की ही देन है। अनेक अपराधियों विशेष रूप से किशोर अपराधियों ने अपना जुर्म स्वीकारते हुए कहा है कि यह अपराध करने की प्रेरणा उन्हें फलां फिल्म या धारावाहिक से मिली है।

वस्तुत: उपभोक्तावाद का मूल मंत्र है-"पैसा ही सब कुछ है।" आधुनिक समाज में सम्मान और प्रतिष्ठा की कसौटी मात्र पैसे पर ही आधारित होने के कारण, व्यक्ति पैसा कमाने के लिए नैतिक-अनैतिक सभी साधनों को येन-केन प्रकारेण उचित मानता है। भ्रष्टाचार रिश्वतखोरी, चोरी, डकैती, ठगी अपहरण, तस्करी, ब्लैकमेल जैसे अपराधों की बढ़ोत्तरी उपभोक्तावाद की ही देन है। उपभोक्तावाद ऋण प्रवृत्ति को भी बढ़ावा देता है। समय पर ऋण चुका न कर पाने की स्थिति में आत्महत्या जैसी घटनाएँ बढ़ रही हैं। रेडियो और टी०वी० जैसे शक्तिशाली जनसंचार माध्यमों पर उपभोक्तावादी बाजार के नियंत्रण का अर्थ है समाज के एक बड़े वर्ग को सामाजिक लोक प्रसारण सेवाओं से वंचित कर देना। प्राइवेट रेडियो और टी०वी० चैनल अपने हर लोकप्रिय कार्यक्रम में श्रोता और दर्शकों की एस०एम०एस० पर प्रतिक्रिया माँगते हैं, जिसमें श्रोता या दर्शक की जेब तो खाली होती चली जाती है और उसके हाथ कुछ नहीं आ पाता। आप जागरूक श्रोता या दर्शक तभी माने जाएँगे जब आप निरंतर एस०एम०एस० करते रहें। अब यह व्यापार करोड़ों पर पहुँच गया है। सिर्फ मनोरंजन के लिए सिर्फ अपना नाम सुनने के लिए प्रतिमाह हजारों के एस०एम०एस० किए जाते हैं विशेष रूप से किशोर और युवावर्ग इसी में अपनी वाह-वाही मानता है।

रेडियो-टी०वी० की उपभोक्तावादी संस्कृति से जुड़ी एक और नई समस्या इस नई सदी में प्रस्फुटित हुई है। यह समस्या है-'समाचारों के विस्फोट की'। संवाद, संदेश या समाचार 'जनसंचार माध्यमों की प्रमुख विधा है। त्वरित सही तथा संतुलित संदेश आम आदमी तक पहुँचाना संचार माध्यमों का प्राथमिक कार्य है। अब समाचारों के संग्रहण और वितरण में उपग्रह संचार प्रणाली का उपयोग हो रहा है। इससे समाचारों को गति मिली है, समाचारों की मात्रा में वृद्धि हुई है और समाचारों के विषय भी बढ़े हैं। घटनाओं के जीवंत कवरेज तथा त्वरित प्रसारण के कारण इन माध्यमों की विश्वसनीयता बढ़ी है। लेकिन विभिन्न टी०वी० चैनलों की वृद्धि और उनके बीच व्यावसायिक प्रतिद्वंदता के चलते समाचारों के विस्फोट की स्थिति आ गई है।

आज न केवल एक ही घटना से संबंधित समाचार व जानकारियाँ अलग अलग चैनलों से सुबह से शाम तक और रात भर प्रसारित की जा रही हैं। उन समाचारों के विश्लेषण की बौछार भी लक्षित श्रोता-दर्शक वर्ग (ओडियन्स) पर की जा रही है। वस्तुत: घटनाओं के समाचारों का उपयोग भी, उपभोक्तावादी बाजार ने खेल तथा मनोरंजन के कार्यक्रमों की तरह अपने स्वार्थ के लिए करना शुरू कर दिया है। हर अच्छी-बुरी घटना के समाचारों का उपयोग विज्ञापन कार्यक्रमों के रूप में हो रहा है। अब विज्ञापनों के माध्यम से एक ऐसा उपभोक्ता बाजार बन गया है जिसका कहने को तो उद्देश्य केवल घटनाओं की जानकारी तथा उनका विश्लेषण प्रस्तुत करना है, लेकिन वास्तव में मुख्य उद्देश्य उपभोक्ताओं को विज्ञापनों के माध्यम से अपने उत्पाद की ओर आकर्षित करना रहता है। केबल तथा उपग्रह प्रसारण में प्रायोजकों की उपस्थिति का परिणाम यह हुआ है कि समाचार भी टी०वी० की व्यावसायिक मंडी में एक उत्पाद बन गए हैं। जिन्हें बेचने के लिए संवेदनाओं और सहानुभूति की नहीं, बल्कि सिर्फ व्यापारिक उत्साह की आवश्यकता है।

अब विश्व बाजार और खुली मंडी नीतियों से प्रेरित बहुराष्ट्रीय निजी टी०वी० चैनलों ने जनसंचार के लोक प्रसारण उद्देश्यों की अवहेलना कर उसे व्यापार का विषय बना दिया है। चौबीसों घंटे, घटनाओं के जीवंत कवरेज के कारण उपजी समाचारों के विस्फोट की समस्या भयंकर रूप से सामने आ रही है। अनेक स्थानों पर हुई आगजनी, सांप्रदायिक आक्रमण, जातीय तनाव केवल एक छोटी सी घटना को विस्तार देकर दिन रात प्रसारित कार्यक्रम के फलस्वरूप ही हुए हैं। जीवंत प्रसारणों ने आग में घी डालने का ही कार्य किया है। कभी कभी अलग अलग चैनल परस्पर विरोधी समाचार प्रसारित कर देते हैं जिससे समाज के सामने भ्रम की स्थिति उत्पन्न हो जाती है, जिससे सामाजिक तनाव पैदा हो जाते हैं। समाचारों के त्वरित विश्लेषण की अविवेकपूर्ण प्रतियोगिता के चलते कई बार न केवल विश्लेषण गलत सिद्ध हुए है, बल्कि समाज के लिए घातक भी हुए हैं। समाचारों और अनुमानों की बाढ़ में दर्शकों की मौलिक विचार चिंतन क्षमता कम होती जा रही है। वह अधिक से अधिक जनसंचार माध्यमों पर आश्रित होता जा रहा है। जल्दी जल्दी समाचार प्रसारण की प्रतियोगिता के कारण समाचारों की विश्वसनीयता संकट

शेषपृष्ठ ३० पर

हिंदी का साहित्यिक समाज और पत्र-पत्रिकाएँ

○ सिद्धेश्वर

साहित्यकार अथवा रचनाकार अपनी अनुभूति और अभिव्यक्ति को समाज से अभूर्त रूप से जोड़कर चलता है। उसे उसके पाठक श्रोता नहीं मालूम होते। हिंदी का साहित्यिक समाज एक लंबे अरसे से अपने ही जंजाल के संकीर्ण चक्र में आर्नंदित रहता है। समाज की ज्ञानात्मक जरूरतें उसका विषय ही नहीं है। दरअसल, जनता को इन दिनों भूमंडलीकरण और बाजारवाद के दौर में नए से नए ज्ञान-विज्ञानों की, सूचना की, मनोरंजन की जरूरत है। हिंदी का साहित्यिक समाज भी अपनी रोजी-रोटी की लड़ाई से लेकर ज्ञान की लड़ाई में एक साथ लगा है। सच तो यह है कि हिंदी समाज ज्ञान पूँजी संचय के पहले से मध्यवर्ती चरण में है इसलिए वह यूरोप की तरह नहीं हो सकता। लेकिन वह किताब अथवा पत्र-पत्रिकाओं का दुश्मन नहीं है। उसके लिए उसे ज्ञान चाहिए। हाँ, उसके लिए उसे सीमित ही सही मगर धन है। आखिर तभी तो कहा जाता है कि बिहार में सबसे अधिक पत्र--पत्रिकाएँ पढ़ी जाती हैं। वह चाहे प्रतियोगिता की हों, सामान्य ज्ञान की हों अथवा वैचारिक हों। महिलाएँ अपनी जरूरत की चीजें-कढ़ाई-बुनाई से लेकर सौंदर्य-प्रशासन संगीत, व्रत कथाएँ, काम सिखाने वाली पत्रिकाएँ पढ़ती हैं।

आजकल पत्र-पत्रिकाओं में पाठकों की जरूरत की तकरीबन तमाम सामग्री छपती हैं। स्वास्थ्य, मनोरंजन, साहित्य, शिक्षा, न्याय, समाज वगैरह सबके लिए पत्रिकाओं में अलग से पृष्ठ निर्धारित हैं। पाठकों को इस प्रकार की सारी चीजें पत्रिकाओं से उपलब्ध हो जाती हैं। यही कारण है कि पत्रिकाओं को पृष्ठों की संख्या भी काफी बढ़ गई है। यही नहीं समकालीन साहित्य समाचार भी मिल जाते हैं। प्रकाशकों द्वारा इसी उद्देश्य से 'समकालीन साहित्य समाचार' नाम्नी एक मासिक पत्रिका भी प्रकाशित की जाती है। इसी प्रकार 'विचार दृष्टि' सहित अनेक पत्रिकाओं में 'साहित्य समाज' शीर्षक से स्थाई स्तंभ भी निर्धारित हैं।

समाचार पत्रों को हिंदी का साहित्यिक समाज जहाँ खबर जानने के लिए पढ़ता है, वहीं पाक्षिक, मासिक व त्रैमासिक पत्रिकाएँ उनके ज्ञान-विज्ञान तथा साहित्य के साधन भी हैं। हिंदी के साहित्यिक समाज में आजकल हिंदी के प्रति लोगों की रुचि बढ़ रही है। साहित्य और विज्ञान की पत्रिकाएँ पाठक ज्यादा रुचि के साथ ले रहे हैं, अगर पत्रिकाएँ अच्छी और सहज तरीके से उपलब्ध होती हैं। इधर हाल के वर्षों में वैचारिक पत्रिकाओं में भी हिंदी का साहित्यिक समाज दिलचस्पी लेने लगा है।

नई पीढ़ी इन्हें पढ़ना चाहती है। जिस प्रकार हिंदी पत्र-पत्रिकाओं के पाठकों की संख्या बढ़ रही है, उसी-हिसाब से पत्र-पत्रिकाओं की संख्या भी बढ़ती जा रही है। मुझे लगता है दिल्ली के यमुना पार के पूर्वी इलाके-लक्ष्मीनगर तथा शकरपुर से अकेले नहीं कुछ तो हजार पत्र-पत्रिकाएँ निकलती हैं।

यह कहने की आवश्यकता नहीं कि हिंदी भाषा, समाज और क्षेत्र की जो सामाजिक और आर्थिक स्थिति है उसका पूरा असर पत्र-पत्रिकाओं पर है। हिंदी के शिक्षित बौद्धिक लोग भी पत्रिकाओं में रुचि लेते हैं। हाँ, शिक्षक, साहित्यकार, लेखक, पत्रकार जैसा तबका पत्रिकाओं को खरीदकर पढ़ना शायद इसलिए अपनी तौहिनी समझते हैं कि लेखक और पत्रकार होने के नाते तो उन्हें नि:शुल्क पत्रिकाओं की सद्भावना प्रति चाहिए। उनकी उदासीनता के चलते भी पत्रिकाओं की बिक्री में थोड़ी कमी आ जाती है। दूसरी बात यह है कि ज्यादातर पत्रिकाओं में हिंदी भाषा का मौलिक लेखन जनता और जीवन से काफी कटा हुआ दिखता है।

आज से लगभग सात साल पूर्व हिंदी और अँग्रेजी सहित नौ भाषाओं में खबरों व लेखों के अतिरिक्त ई मेल जैसी सुविधाएँ प्रदान करने वाला नेटजाल.काम नाम से एक महापोर्टल शुरू हुआ था, लेकिन एक-डेढ़ साल के भीतर ही वह बंद हो गया। फिर इसके बाद निहार ऑन लाइन रेडिफ कॉम, जीडी नेट कॉम, लिटरेट वर्ल्ड. कॉम आदि के हिंदी संस्करण भी उत्कृष्ट होने के बावजूद पाठक और आय के अभाव में बंद हो गए। भारतीय भाषा-भाषियों में कम्प्यूटर और इंटरनेट दोनों का प्रसार देर से हुआ। कारण कि मंहगा कम्प्यूटर व इंटरनेट का बिल मध्यवर्गीय भारतीय परिवार के लिए एक मंहगा सौदा था। मगर आज भारतीय भाषाओं की बेब साइटों, पोर्टलों आदि को इंटरनेट पर लाने के रास्ते की अधिकतर रुकावटें दूर हो चुकी हैं और माइक्रोसॉफ्ट के नवीनतम ऑपरेटिंग सिस्टम विंडोज विस्टा के लोकप्रिय होने के बाद तो शायद हम यह भूल चुके हैं कि किसी जमाने में कम्प्यूटर पर हिंदी में काम करना बहुत मुश्किल होता था। यूनिकोड ने कम्प्यूटर के क्षेत्र में भाषाई सीमा को समाप्त कर दिया है। यूनिकोड के आने के बाद कम्प्यूटर पर हिंदी या गुजराती में काम करना भी उतना ही आसान है जितना कि अँग्रेजी में। हिंदी बेबसाइटों-पोर्टलों आदि को देखने-पढ़ने के लिए या तो फ्रोंट डाउनलोड करना होता था या फिर बेबसाइट प्रकाशक डाइनेमिक फोंट का प्रयोग करते थे, लेकिन भाषाई फोंटों का डाइनेमिक रूप भी बहुत अच्छा नहीं होता था। अब तो यदि आपके कम्प्यूटर

में विंडोज 2000, विंडोज एक्सी, विंडोज विस्ता, रेड हैटलिनक्स या मैकिंटोश का नया ऑपरेटिंग सिस्टम मैक ओ एस टेन इंस्टाल्ड है, तो आपको यूनिकोड हिंदी में बनी बेबसाइटों, तथा पोर्टलों को देखने के लिए न तो फोंट डाउन लोड करने की जरूरत है और न ही बेब निर्माताओं का। यही कारण है कि बेब दुनिया, जागरण, प्रभासाक्षी और बीबीसी हिंदी के दैनिक पाठकों की संख्या अब बीस-पचीस लाख प्रतिदिन तक हो गई है। इससे आने वालों दिनों का अंदाजा लगाया जा सकता है। हिंदी के साहित्यिक समाज को बेबसाइट पर पत्र-पत्रिकाओं की सुविधा उपलब्ध होने की वजह से उनके पाठकों की संख्या काफी बढ़ी है जो हिंदी के प्रचार-प्रसार का शुभ संकेत है।

मगर निराशा तब होती है जब हिंदी के साहित्यिक समाज में भी पत्र-पत्रिकाओं के ज्यादातर स्तंभ सनसनी खेज; नकारात्मक और मशालेदार सामग्रियों से भरे मिलते हैं। दूसरी तरफ ऐसी सामग्री जो समाज में प्रेरक का काम करती है, खुशियाँ बाँटती है और लोगों पर सकारात्मक प्रभाव छोड़ती है उन्हें बहुत कम जगह दी जाती है। विकास से जुड़ी खबरें तथा सामग्रियाँ हाशिए पर ढकेल दी जाती है।

पृष्ठ २८ का शेषांश

में पड़ने लगी है।

दरअसल टी०वी० चैनल ये भूल रहे हैं कि वे सिर्फ माध्यम भर हैं और माध्यमों का कार्य, घटनाओं तथा नीतियों से संबंधित समाचारों का एकत्रीकरण, विश्लेषण और वितरण करना ही घटनाओं का तथा नीतियों का निर्धारण करना नहीं। समाचार संदेशों से संबंधित कार्यक्रमों के प्रसारण में विशेष सावधानी की आवश्यकता होती है। इसीलिए जनसंचार कर्मियों से यह अपेक्षा की जाती है कि वे खराब गलत व अरुचिकर कार्यक्रम प्रसारित की वजाय कोई भी कार्यक्रम ही प्रसारित न करे तो ज्यादा अच्छा है, क्योंकि ये जन संचार माध्यम सामाजिक व्यवहारों को अपने कार्यक्रमों के माध्यम से प्रभावित करने वाले सामाजिक परिवर्तन तथा प्रगति के प्रभावशाली अभिकरण है। बल्कि अब तो इन माध्यमों में स्थानीय तथा क्षेत्रीय विषयों की तुलना में राष्ट्रीय तथा अंतरराष्ट्रीय विषयों को अधिक स्थान होने तथा राजनैतिक घटनाओं का बाहुल्य होने के कारण एक सामाजिक असंतुलन की स्थिति उत्पन्न होने लगी है।

कई बार तो विज्ञापनों को देखकर दर्शक असमंजस में पड़ जाता है कि वह कौन सा उत्पाद खरीदे और कौन सा नहीं। एक स्लॉट में दस प्रकार के टूथपेस्ट और साबुनों के विज्ञापनों को ठूँस दिया जाता है जो अपने उत्पाद को ही सर्वोत्कृष्ट बताते हैं। बच्चे और किशोर तो तुरंत ही इनसे प्रभावित हो जाते हैं। कभी कभी विज्ञापन विशेष रूप से एड्स और गर्भ निरोधक के विज्ञापन इतने अशोभनीय ढंग से दर्शाए जाते हैं कि युवा पीढ़ी न चाहते हुए भी इनका उपयोग करना शुरू कर देती है। जो कल तक पर्दे के अंदर की बात थी आज सार्वजनिक हो गई है। उच्छृंखलता और स्वच्छंदता को मीडिया बढ़ावा दे रहा है कभी विज्ञापनों के माध्यम से तो कभी धारावाहिकों स।

समाचारों के विस्फोट में लोक संस्कृति, लोक संगीत, लोक परंपराओं और लोकभाषा बोली की तो बलि ही चढ़ा दी गई है। अब पाश्चात्य संस्कृति का प्रचार प्रसार ही आधुनिकता का मापदंड बन गया है। अब अदमी अपने गाँव, नगर, जिले, प्रदेश और राष्ट्र का न रहकर 'वैश्विक व्यक्ति' बना दिया गया है। भारत की गरीबी, आर्ट फिल्म या 'आयटम' के रूप में विदेशों में बेची जा रही है। सफलता की कहानियाँ उपलब्धियों के प्रयास अब कहीं नजर नहीं आते, अब तो भयावहता के दृश्य, क्रूरता के दृश्य, आक्रामक छवि के दृश्य वीडियो गेम्स के माध्यम से बच्चों को रुचिकर लगने लगे हैं तभी तो विद्यालयों में बच्चों को जरा सी बात पर अपने सहपाठी पर गोली की बौछार करने में कोई एतराज नहीं होता है। जैसा हम बो रहे हैं वैसा ही काटने को विवश हैं। मीडिया इन्हें बढ़ाकर पेश कर और बच्चों को ऐसा करने का मार्ग प्रशस्त करने में कोई कोताही नहीं कर रहा है। समय अभी भी है चेतने का, सुधरने का और उच्छृंखल मीडिया पर नियंत्रण करने का। सामाजिक सरोकारों के बिना कोई भी मीडिया लोकतांत्रिक समाज का चौथा स्तंभ बना नहीं रह सकता। सामाजिक वैकासिक संचार ही मिडिया का आधार स्तंभ हो सकता है।

संपर्क : 684, इन्डापार्क,
पालम मार्ग, नई दिल्ली-110045
मो० 9810981398

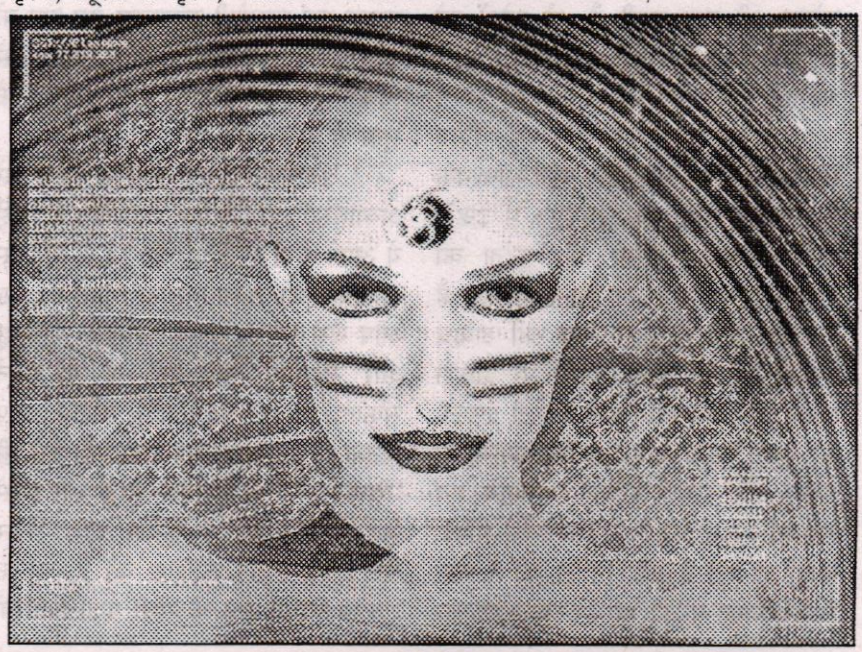

'विचार दृष्टि' और इसके संपादक

○ डॉ0 शाहिद जमील

'विचार दृष्टि' हिंदी की एक ऐसी पत्रिका है जो पूरी-तरह विचार को समर्पित है। ऐसा नहीं है कि हिंदी में इससे पूर्व विचारों पर केंद्रीत पत्रिका न निकली हो, मगर संभवत: आधुनिक दृष्टि और बिना कोई चटपटी मसालेदार सामग्री प्रस्तुत करते हुए यह पहली पत्रिका है, जो हिंदी पत्रकारिता में आने वाले परिवर्तनों का कुछ आभास देती है। उसमें भी तब जब इसके संपादक के पास न तो रसूख है और न संसद व विधानमंडल के गलियारों में घूमकर अपने लिए ताकत और पैसे बटोरने की कुव्वत। ये तो एक मामूली सामाजिक कार्यकर्ता और हिंदी साहित्य के एक अदना सेवक हैं, लेकिन इनके इरादे चट्टानी और आम हैं। यह बात सही है कि इस पत्रिका को निकालने में ये आर्थिक कठिनाई महसूस करते हैं, मगर अपने रास्ते का रोशनी करना भी ये जानते हैं। बड़े स्तर पर समाज या संचार माध्यम इसे तवज्जों दें या नहीं, परंतु प्रबुद्ध और साहित्यकार मन को इसमें लौ लग चुकी है जिसके बल पर इन्हें लगता है कि बारिश की मामूली फूहार से यदि एक कोपल भी फूट जाती है, तो लोगों को अहसास होगा कि जमीं पर किसी ने मुट्ठी भर तारे बटोर लाए हैं।

दरअसल पत्रकारिता के लिए संपादकीय समझ और दृढ़ता बहुत आवश्यक है। 'विचार दृष्टि' के प्रकाशन में इन्होंने इसी संपादकीय समझ और दृढ़ता का परिचय दिया है। इनका यह प्रयास रहा है कि बीते वर्षों में समय चक्र की अबाध रुप से निगलने वाली प्रवृत्ति पर अँकुश लगाए जाएँ और इस निगलने वाली प्रणाली को ध्वस्त किया जाए। क्योंकि समाज का सबल और समर्थ आदमी असहाय एवं असमर्थ आदमी का भिन्न भिन्नार्थक शोषक बनता जा रहा है और निर्बल को न जाने कितनी जगह पटकी मारकर लहुलुहान कर रहा है। 'विचार दृष्टि' ने उन अनेक पटकियों पर प्रहार कर दुष्प्रवृत्तियों को खत्म तो नहीं, पर कम करने की कोशिश अवश्य की है। 'विचार दृष्टि' अपने उद्येश्यपूर्ण जीवन जीने और मन तथा आत्मा की तृप्ति के लिए उसी तरह स्वच्छ, स्वस्थ और सत् साहित्य व अन्य सामग्री पाठकों को मुहैया कर रही है जिस प्रकार जीवनयापन और पेट की क्षुधा को शांत करने के लिए रोटी की आवश्यकता होती है। बिना कोई सरकारी आर्थिक सहयोग के यह पत्रिका अपने उद्येश्यपूर्ण संघर्ष के लिए अग्रसर है यह सोचकर कि-

कहीं न कहीं से, किसी न किसी को,
शुरुआत तो करनी होगी,
भारत की तस्वीर, बदलनी होगी,
अपनी लड़ाई, खुद लड़नी होगी।

हम सब इस बात से अवगत हैं कि पत्रिका खासकर वैचारिक, सामाजिक, साहित्यिक और सांस्कृतिक पत्रिका निकालना दुरुह कार्य है, फिर भी इस दूभर कार्य को वे नियमित रुप से संपन्न कर रहे हैं इसलिए कि आप जैसे मनीषी साहित्यानुरागी पाठक एवं सहयोगी रचनाकार हम सब के साथ हैं। साहित्यकार सत्य के झरोखे से झाँकते हुए इनके दु:ख से दु:खी और इनके सुख से सुखी होते हैं।

'विचार दृष्टि' विशुद्ध रूप से अव्यावसायिक वैचारिक अभियान है जिसे ये अपने कंधों पर लिए चल रहे हैं और इस अभियान को ताउम्र चलाना चाहते हैं। बस आप जैसे सहृदय पाठक, लेखक, शुभेच्छु और सहयोगी साथ रहें, तो ये अपने संकल्प-पथ पर बढ़ते रहेंगे, क्योंकि आप पाठक ही हमारे एकमात्र संबल हैं। वैसे भी 'विचार दृष्टि' के संपादक-समूह और इससे जुड़े सदस्यों को न केवल साथ लेकर चलने की इन्होंने कोशिश की है, बल्कि राष्ट्रीय विचार मंच के सभी पदाधिकारियों तथा कार्यकारिणी के सदस्यों ने सदैव इनका साथ दिया है। वैसे भी कोई संस्था या पत्रिका कोरी सदस्य संख्या से नहीं चलती उसके प्रति लोगों में समर्पण, आस्था और श्रद्धा चाहिए। व्यक्ति और समुदाय में यही अंतर है। इस प्रकार सब में परस्पर सहयोग व सामंजस्य की भावना विकसित करने में इन्होंने कामयाबी हासिल की है और सभी सहयोगियों ने भी अपने कुशल प्रबधन एवं क्षमता का परिचय दिया है। जहाँ कहीं भी इनसे काम करने के दरम्यान गलतियाँ हुईं इन्होंने उसे महसूस कर स्वीकार किया और उससे सीख लेकर उसे नहीं दुहराने का संकल्प लिया। लोगों ने भी अपनी उर्जा पत्रिका की भलाई और उसके माध्यम से आमजन की भलाई में लगाई, क्योंकि हमलोगों का मूल धर्म भी वही है। हालात जहाँ कहीं भी खराब रहे, मिलजुलकर सभी काम किए जिसका संतोषप्रद नतीजा निकलना स्वाभाविक था। मिलजुलकर काम करने की ऐसी भावनाओं का स्रोत संवेदनात्मक साझेदारी के साथ अनुभव की निजता में होता है और जहाँ प्रलोभन नहीं होता है। जहाँ प्रलोभन होता है, वहाँ उपलब्धियाँ नहीं होती हैं। इसी का प्रतिफल है कि पत्रिका का हर बार एक अलग ही मिजाज और तेवर बनता जा रहा है, ऐसा कहना है इसके पाठकों का। इसके कलेवर और विषय-वस्तु के परिवर्तन से पत्रिका की लोकप्रियता बढ़ी है। सामयिक लेखों और संपादकीय अग्रलेखों ने पत्रिका के स्वरूप को और अधिक निखारा है। संदेह नहीं कि इसके नए-नए स्तंभों के समावेश से पत्रिका प्रत्येक वर्ग के पाठकों में लोकप्रिय हो रही है।

हिंदी में इधर हाल के वर्षों में पत्र-पत्रिकाओं की बाढ़ ने ऐसा लोकतंत्र विकसित किया है जो अराजकता की सीमा तक जाता है। कुछ भी लिखिए-छप जाएगा।

भले ही राजनीति और राज्य प्रणाली के लिए लोकतंत्र एक मूल्य हो सकता है और है भी, मगर सृजनात्मक विधाओं के लिए लोकतंत्र बहुत अधिक अच्छा नहीं माना जा सकता। महावीर प्रसाद द्विवेदी अगर इतने लोकतांत्रिक हुए होते तो आज 'सरस्वती' का कोई नामलेवा भी न होता। संपादक सिद्धेश्वर जी का भी यह प्रयास रहा है कि 'विचार दृष्टि' में चटपटी और मसालेदार चीजों के साथ-साथ फूहड़ सामग्रियों का समावेश न किया जाए और सस्ती लोकप्रियता से बचा जाए। ऐसा करने में इन्हें अपने अत्यंत आत्मीय मित्रों व लेखकों का समय-समय पर नाराजगी (Displeasure) का भी सामना करना पड़ता है, क्योंकि ये प्रयास करते हैं कि पाठकों के समक्ष कोई वैचारिक उसमें भी सामाजिक व राष्ट्रीय चेतना से संबंधित सामग्रियाँ ही प्रस्तुत की जाएँ। वैसे भी सजग एवं सहृदय पाठक किसी पत्रिका में सबसे पहले विचार, दृष्टि और कल्पनाशीलता ही देखना और पढ़ना पसंद करता है, मगर आज चमक-दमक भरे ऐश्वर्यशाली कलेवर में प्रकाशित अधिकतर पत्रिकाएँ इस दृष्टि से कम ही आश्वस्त कर पा रही हैं। ऐसी स्थिति में हमारी 'विचार दृष्टि' पत्रिका तटस्थता और अमुखरता के बरक्स एक साथ कई समकालीन सवाल उठाती है और देश, लोक और समाज को एक सटीक यथार्थ के रूप में पाठक की संवेदना को झकझोरती है। 'विचार दृष्टि' बड़ी सहजता से चीजों को सही परिप्रेक्ष्य में समझने की कोशिश करती है।

इस पत्रिका के संपादकीय अग्रलेख भी कुछ अलग तरह से पाठकों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित करते हैं। बेशक इस बदलते युग और परिवेश में नैतिकता और आदर्शों की दुहाई देते हुए यह पत्रिका स्वतंत्र और सजग है। इसने समय की अनेकानेक चिंताओं के साथ-साथ समाज की विकृत्तियों को स्वीकारने के फैशन को भी समझा है और समय एवं स्थितियों का झूठा आकलन करने वाले तात्कालिक ताकतवर लोगों की छत्रछाया में रहकर स्वयं को प्रतिष्ठित करने वाले प्रवृत्ति-प्रवर्तन का दम भरने वालों पर भी गिद्ध-दृष्टि रखते हुए बहुत बड़ी पहरेदारी का काम किया है, क्योंकि पत्रकारिता का सर्वाधिक

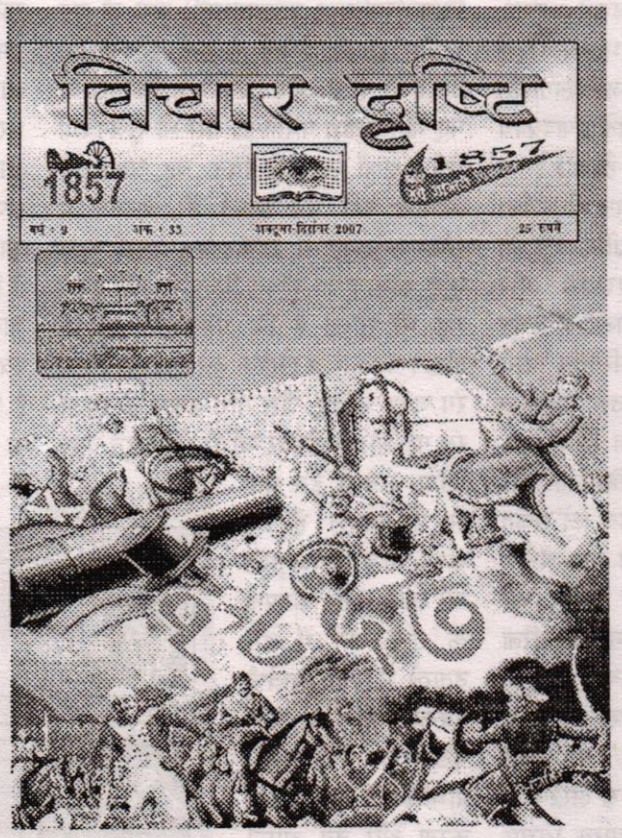

आनंद स्रोत, मूल्यों का हृदयस्थ होना, मस्तिकष्थ होना है। इस पत्रिका और इसके लेखक को पाठक की समझ पर अथाह विश्वास है। इस पत्रिका ने अपने इस दायित्व को अच्छी तरह समझा है कि उसे अपने समय को, अपने राष्ट्र और समाज को देखने और देखी हुई जटिलताओं के साथ व्यक्त करना है। 'विचार दृष्टि' की रचनाओं में परिवेश बोलता है, समाज प्रतिबिंबित होता है और समकालीन चिंतन व्यवहार की झलक दिखती है।

साथ ही यह पत्रिका एक निर्भीक व बेबाक पत्रकारिता एवं एक साहसी संपादक के स्वाभिमान की मिसाल है, क्योंकि इसने स्वतंत्र पत्रकारिता की मर्यादा के लिए हिम्मत से मुकाबला किया है इन दस वर्षों में और इस मर्यादा को कायम रखने के लिए अपना बहुत कुछ दांव पर लगा दिया। पत्रकारिता को मानवीय संबंधों को समझने और सामाजिक स्थिति की खोज का एक अच्छा खासा जरिया मानते हैं। इसलिए अच्छी पत्रकारिता को ये सम्मान करते हैं और भ्रष्ट पत्रकारिता के उतने ही विरोधी हैं। पत्रकारिता के प्रति इनकी प्रतिबद्धता के हम सब कायल हैं।

मनुष्यता के प्रति हो रही घिनौनी घटनाओं की सच्ची चीर फाड़ करने से भी इसने कभी परहेज नहीं किया। 'विचार दृष्टि' ने अपने 34 वें अंक में अपनी पत्रकारिता के दायित्व का निर्वाह करते हुए अपने घर से, धरती, हवा-पानी परिवार, सबसे बेदखल कर दी गई तस्लीमा नसरीन की अभिव्यक्ति की आजादी की आँच को अपने संपादकीय अग्रलेख में प्रस्तुत कर साहस का परिचय दिया है। यह पत्रिका अपने यक्ष प्रश्नों का हल तथा अपनी निजी से निजीतम गुत्थी को सुलझाने के लिए अर्जुन बनकर उत्तर माँगती है। आज की अपसंस्कृति के प्रचार और प्रसार को लेकर दूरदर्शन की मुट्ठी में बंद हमारे युवा या महिला समाज को लेकर संवेदनाओं के माध्यम से अनुभूतियों के गहरे तक उतरकर समाज के लिए संदेश उत्पन्न करने का काम इसने बखूबी किया है। भारत जैसे छद्म प्रधान सत्तावाले देश में यह पत्रिका अत्यंत सक्रिय है, क्योंकि यहाँ कोई भी बहुत ही नगण्य टकों में बिकने को उद्धत हैं। क्या राजनेता, क्या साहित्यकार, क्या बुद्धिजीवी और क्या पत्रकार राष्ट्र मूल्य और मूल्यवान संस्कृति की पहरेदारी

किसी के लिए प्रथम नहीं। पद और पैसे के लिए सभी चुप और अकर्मण्य से हो उठते हैं। मगर 'विचार दृष्टि' और इसके संपादक सिद्धेश्वर के लिए ये ही चिंताएँ चुनौतियाँ हैं।

संपादक की चिंताओं में है, वैश्वीकरण, उदारीकरण, आर्थिक सुधार, बाजारवाद और है उनके प्रतिफल–विकराल गरीबी, बेरोजगारी, भुखमरी के अभिशाप और विचारधारात्मक धुँध जिसमें पश्चिमी उपभोक्तावाद के अँधानुकरण की वजह से अपसंस्कृति पनप रही है और उसमें सच्चाई, नैतिकता, मूल्यबोध, दायित्वबोध तथा रिश्तों को संदेह की नजर से देखा जाने लगा है। संपादक ने बड़ी गहराई से अपने संपादकीय में इन बिंदुओं पर दृष्टि डाली है और इनके द्वारा अभिव्यक्त विचार एक सजग, चेतनशील और तर्कशील पत्रकार के प्रतीक होते हैं। इन्होंने अलगाववादी विचारधारा और संकीर्णतावादी सोच व मान्यताओं से बचने पर बल देते हुए किसी भी परिवर्तन वास्ते जनमानस को झकझोरने और उसे आंदोलित करने का सुझाव प्रस्तुत किया है जो एक निष्ठावान सच्चे पत्रकार व साहित्यकार होने की ओर संकेत करता है। समाज को सजग बनाने और उसमें परिवर्तन की एक बेचैनी उत्पन्न करने के साथ-साथ मनुष्य को ज्यादा मानवीय बनाने का काम पत्रकारिता के माध्यम से अबतक इन्होंने बखूबी करने का प्रयास किया है। इस प्रकार समग्रता में देखा जाए तो 'विचार दृष्टि' में अपनी बेबाक लेखनशैली के माध्यम से लेखक ने अपने सारगर्भित तथ्य व सूचनापरक विचार प्रस्तुत कर हमें अपने गौरवशाली इतिहास, परंपरा, राष्ट्रभक्ति एवं भारतीय संस्कृति की महानता व पवित्रता की याद दिलाई है और अनेक ऐसे तथ्यों को रेखांकित किया है जिनसे पाठकों को भरपूर प्रकाश मिलता है अपनी दिशा तय करने और दशा बदलने की। 'विचार दृष्टि' के नियमित और सफल संपादन के लिए भाई सिद्धेश्वर जी के प्रति हम हार्दिक आभार व्यक्त करते जुए अनवरत रूप से इनकी कलम चलती रहे इसके लिए इनके स्वस्थ एवं दीर्घायु होने की मैं मंगल कामना करता हूँ।

'विचार दृष्टि' के संपादक सिद्धेश्वर वैयक्तिक और सामाजिक जीवन में नए-नए विचारों और परिवर्तनों का भरपूर स्वागत करते हैं। सामाजिक जीवन में गतिशीलता की लहर पैदा करने के ये हिमायती हैं। इनकी रचनात्मक बेचैनी जीवन की बेचैनी से घुल-मिलकर इनके निबंधों तथा अग्रलेखों के माध्यम से पाठकों तक पहुँचती है। इनकी बेचैनी न तो इन्हें सृजन के प्रति अनासक्त बनाती है और न ही किंकर्त्तव्यविमूढ़ पलायनधर्मी। सच तो यह है कि इनकी बेचैनी ने इन्हें सृजनात्मक आसक्ति दी है और रचनात्मक विकास के नए मार्ग तलाश करती है। वैसे भी सृजनधर्मी बेचैन क्षणों से गुजरे बिना वह वक्त की आवाज नहीं बन सकते हैं। वास्तव में संपादक-समूह में रहकर हमें इनसे बहुत कुछ सीखने का मौका मिला है। मैंने इनसे यह भी सीखा है कि पत्रकारिता हो या लेखन पत्रकार व लेखक को पात्र के रंग में रंग जाना चाहिए, जैसे मीरा श्याम के रंग में रंग गई थी। सिद्धेश्वर जी से मैंने बहुत कुछ लिया। उनकी इस बात से मैं कायल हूँ कि कथ्य, तथ्य और अनुभूति की खोज और कल्पना के ताने बाने में उसे उतारने में एक अन्वेषी पत्रकार की तरह जाँच पड़ताल करना, प्राथमिकता की परख करना और तब अपनी कलात्मकता के सूत्रों में उसे पिरोने की अद्वितीय कला सिद्धेश्वर जी की कलम की खासियत है।

मगध-माटी के संपादक सिद्धेश्वर की भाषा सहज सामान्य है जिसमें मगध-माटी की गँध का अहसास होता है। इनकी संपादन-कला और सशक्त भाषा-शैली 'विचार दृष्टि' को विशिष्ट स्वरूप प्रदान करती है। इसके अलावा सशक्त शायरों की ग़ज़लों, सुप्रसिद्ध कवियों की कविताएँ व गीतों तथा विचारों पर केंद्रीत लेखों का चयन पत्रिका को न सिर्फ मुकाम देता है, बल्कि सुखन के नए अनुभवों से भी परिचित कराता है। यही नहीं यह पत्रिका बौद्धिक प्रतिवाद का मंच है और साहित्य को संवरने के लिए यह एक कायदे का प्लेटफार्म देती है। इससे लोक के प्रतिरोध का स्वर मजबूत हो रहा है। वैसे भी साहित्य आमजनों की आवाज होता है और हम सब इस बात से अवगत हैं कि सत्ता ने लोक की आवाज दबाने के लिए अबतक भरपूर चालें चली है, क्योंकि 'आम' की आवाज की कब्र पर ही तो 'खास' के सपने उतरते हैं। 'विचार दृष्टि' ने इस आवाज को और बुलंदी देने का काम किया है जिसका श्रेय इसके संपादक को इसलिए जाता है कि वह निर्भीक एवं निष्पक्ष पत्रकारिता में विश्वास रखते हैं। यही कारण है कि साहित्य-जगत के लोग इस पत्रिका के निकलने की प्रक्रिया में सहभागी बनते

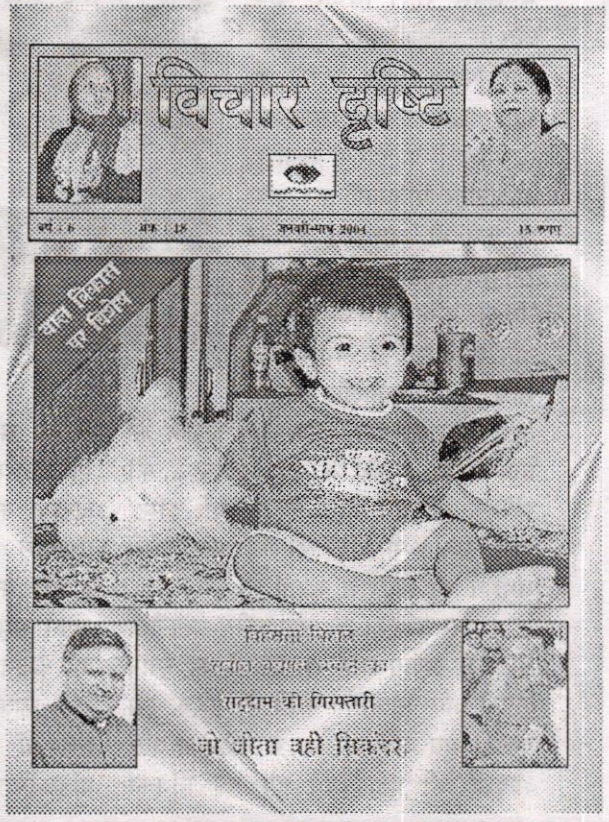

हैं। इसी प्रकार 'विचार दृष्टि' की खूबी यह भी है कि एक ओर जहाँ यह संपादक के राजनीतिक लेखों के आलोक में लोगों का मार्गदर्शन होता है, वहीं इसका सांस्कृतिक व साहित्यिक पक्ष भी उतना ही मजबूती के साथ संवेदनशील पाठक के अंतरतम को छूता है। मोटे तौर पर कहा जाए, तो यह पत्रिका संपादक के अथक प्रयास तथा सूझबूझ से तत्कालीन व वर्तमान राजनीति, संस्कृति और साहित्य के बीच की एक प्रच्छन्न यात्रा है। समाज, शिक्षा, आधी आबादी, साहित्य, संस्मरण आदि के समय साक्ष्य अनुभव के पन्नों से झाँक पाठक के ज्ञान को विकसित करने के साथ इन्हें और बेहतर इन्सान बनने की ओर प्रेरित करते हैं। इस प्रकार ऐसी पठनीय एवं संग्रहणीय तथा महत्त्वपूर्ण पत्रिका के लिए संपादक सिद्धेश्वर का प्रयास निश्चित तौर पर सराहनीय है।

'विचार दृष्टि' के संपादक के साथ रहकर मैंने देखा है इनकी संपादकीय दृष्टि केवल अच्छी रचनाओं को संकलित कर इसमें समावेश करने की रही है। समकालीन पत्रकारिता के तहत इनमें मानवीय चिंताओं से जूझने का जहाँ अनुभव है, वहीं जीवन को यथार्थवादी दृष्टिकोण से देखने-परखने की कोशिश भी। इसी का प्रतिफल है कि यह पत्रिका आज इतनी सयानी हो गई। ऐसे वक्त मुझे याद आती है प्रभात शंकर की दो पंक्तियाँ–

मैंने खिलौनों की दूकानों का पता पूछा
और मेरे फूल-से बच्चे सयाने हो गए ।

हालांकि यह भी सही है कि लघु पत्र-पत्रिकाओं की जिंदगी बड़े कम दिनों की होती है, क्योंकि आम तौर पर मूलतया धनाभाव में लघु पत्र-पत्रिकाएँ दम तोड़ देती हैं, मगर 'विचार दृष्टि' के संपादक में इतना दम मैंने देखा है कि धनाभाव के वक्त अपनी पेंशन राशि भी इस पत्रिका में खर्च करने से ये कभी नहीं हिचकिचाए।

'विचार दृष्टि' में एक साथ जितनी सूचनाएँ और विचार पाठकों को उपलब्ध कराए जाते हैं वह अन्यत्र देखने को कम मिलते हैं। इसकी वजह यह है कि संपादक स्वयं भी अग्रलेख के अतिरिक्त 'दृष्टि' तथा 'राजनीति' आदि स्तंभों के अंतर्गत निरंतर अपनी लेखनी चलाते रहते हैं। वास्तव में एक स्वतंत्र पत्रकारिता करते हुए इतने विषयों पर कोई संपादक इतना लिख सकता है, इसकी कल्पना करना मुश्किल है। पत्रिका को पूर्णता प्रदान करने के लिए संपादक की यह विशिष्टता विरले देखने में आती है। इसलिए जो लोग विशेष अध्ययन या किसी पर शोध करना चाहते हैं, उनके लिए यह पत्रिका काफी उपयोगी है। दरअसल इसके संपादक को पद्मश्री डॉ. श्याम सिंह शशि, प्रो.(डॉ.) सुदरलाल कथूरिया, डॉ. बालशौरि रेड्डी, डॉ० देवेन्द्र आर्य, श्री यू.सी. अग्रवाल, डॉ. विजय नारायण मणि त्रिपाठी, डॉ. धर्मेन्द्र नाथ 'अमन', डॉ. नरेन्द्र शर्मा 'कुसुम', प्रो. सत्येन्द्र चतुर्वेदी, डॉ. मधु धवन, डॉ. निर्मला एस. मौर्य, डॉ. ऋषभ देव शर्मा, श्री चन्द्र मौलेश्वर प्रसाद, डॉ. महेश चंद्र शर्मा, प्रो. नेहपाल सिंह वर्मा, प्रो. रामबुझावन सिंह, डॉ. कुमार विमल, श्री जियालाल आर्य, डॉ. रमाशंकर श्रीवास्तव, डॉ. महेन्द्र कर्णावट, डॉ. एन. चंद्रशेखरन नायर, डॉ. सतीशराज पुष्करणा, डॉ. शिववंश पाण्डेय जैसे विद्वत्जनों का सान्निध्य इन्हें प्राप्त है। संपादक स्वयं भी इस बात को स्वीकार करते हैं कि इन प्रबुद्धजनों से न केवल इन्हें प्रेरणा मिलती है, बल्कि इनसे निरंतर ये मार्गदर्शन भी प्राप्त करते हैं और सिद्धेश्वर जी जैसे कर्मयोगी और निष्ठावान संपादक को सहयोग प्रदान करने में वे सभी प्रसन्नता का अनुभव करते हैं। पत्रिका के स्तर और महत्ता में वृद्धि के लिए आप सभी विद्वत्जनों के प्रति मैं भी अपनी कृतज्ञता प्रकट करता हूँ और विश्वास करता हूँ इनका सहयोग और स्नेह भविष्य में भी इस पत्रिका और इसके संपादक को पूर्ववत मिलता रहेगा। साथ ही पत्रिका-परिवार के संबंधों और समस्याओं के बीच संपादक माधुर्य को बचाए रखने, प्रेम, त्याग, सहानुभूति जैसी सामाजिक अच्छाइयों को सहज ढंग से उकेरते रहेंगे।

सिद्धेश्वर जी द्वारा संपादित इस पत्रिका को पढ़ने पर पाठक कहीं भी हल्कापन नहीं महसूस करता है, बल्कि इसे पढ़ते समय नाना रसों की अनुभूति होती है। इसमें बहुत से ऐसे लेखक हैं, जो हिंदी के सुविख्यात साहित्यकारों के साथ प्रकाशित होकर स्वयं को गौरवान्वित महसूस करते हैं। संपादक पुरानों के साथ नए एवं उदीयमान लोगों को स्थान देकर अपनी उदार एवं उदात्त भावना का परिचय देते हैं। प्राचीन एवं नवीन हस्ताक्षरों के बीच सामंजस्य के मापदंड की जो कसौटी ये प्रस्तुत करते हैं, वह समकालीन हिंदी पत्रकारिता में एक महत्त्वपूर्ण दौर का बोध कराता है। पत्रिका की स्तरीयता में उत्तरोत्तर वृद्धि को देखते हुए हम भविष्य में इससे भी अच्छी पत्रिका की उम्मीद कर सकते हैं।

दिल्ली के राष्ट्रीय कार्यालय में बैठकर और पटना को अपनी कर्मभूमि मानकर सिद्धेश्वर जी पत्रकारिता और हिंदी यज्ञ का सफलतापूर्वक सम्मान कर रहे हैं और मैं अपने को इस माने में धन्य मानता हूँ कि इनके सान्निध्य में रहकर इनके कर्म सराहने का हमें सुअवसर प्राप्त हुआ है। इनका सारा समय व्यस्तता में लगा हुआ है और इनके पटना पहुँचने पर मैं भी इनके साथ व्यस्त हो जाता हूँ ठीक उसी तरह जैसे इनके दिल्ली पहुँचने पर 'विचार दृष्टि' के सहायक संपादक उदय कुमार 'राज़'। इसके बाद अब और कुछ कहने को नहीं रह जाता इसलिए अब मैं अपनी कलम को विश्राम देता हूँ संपादक की कलम को दाद देते हुए।

संपर्क : सी-6,
पथ सं० 5,
आर० ब्लॉक, पटना-1

अंतहीन ऐपीसोड

○ हितेश कुमार शर्मा

लगता है दूरदर्शन, हमारी सरकार और सारा शासन तंत्र कुछ टी.वी. चैनलों के हाथ बिक गया है। मेरी जानकारी के अनुसार सीरियल आरंभ करने से पहले दूरदर्शन और चैनल के बीच में एक अनुबंध होता है जिसमें लिखा जाता है कि यह सीरियल कितने ऐपीसोड का होगा, किंतु देखा जा रहा है कि एक सीरियल बनाने वाली कंपनी अंतहीन ऐपीसोड के सीरियल बना रही है। सीरियल में काम करने वाले कलाकार बदल गये हैं। देखने वाले बहुत से दर्शक परलोकवासी हो गये हैं। सीरियल में कथानक के अनुसार पहली पीढ़ी दिवंगत हो चुकी है, दूसरी पीढ़ी निष्क्रिय हो गई है और तीसरी पीढ़ी उन्हीं पुराने षड्यंत्रों को दोहरा रही है जिसके आधार पर वह सीरियल शुरू हुआ था। बाप को कुचक्र रचता दिखाया गया है। पुत्र भी उसी को दोहराता है। माँ अलग खेल खेल रही है, भाभी-भाई, भतीजे सभी षड्यंत्र में लिप्त दिखाई गये हैं और इन कथानकों से ऊबकर कलाकारों ने सीरियल निर्माताओं से क्षमा माँग ली है। ऐसे सभी सीरियल ऊब पैदा कर रहे हैं, दर्शकों को इनमें से दुर्गंध आने लगी है, किंतु मँहगे विज्ञापनों के आधार पर यह सीरियल चल रहे हैं।

जिस सीरियल में महानायक मास्टर ब्लास्टर हॉकी के जादूगर, अंतरिक्ष यात्री विज्ञापन में हों वह विज्ञापन बंद नहीं हो सकता, क्योंकि आरंभ में ही इतना पैसा यह तथाकथित विज्ञापन के नायक-नायिका ले लेते हैं कि विज्ञापन चलाना ही पड़ता है। यह जानकर आश्चर्य नहीं होना चाहिए कि कुछ सीरियल तो विज्ञापन के आधार पर चल रहे हैं और कुछ विज्ञापन सीरियल के आधार पर चल रहे हैं। युवा पीढ़ी उस सीरियल को देखना पसंद करती है जिसमें उनकी पसंद का व्यक्ति विज्ञापन में आ रहा है। जिस विज्ञापन में महानायक या मास्टर बलास्टर होते हैं युवा पीढ़ी उसी को पसंद करती है। महिलाएँ अक्सर अपनी पसंद की अभिनेत्रियों को विज्ञापन में देखना चाहती हैं और इसलिए मँहगे विज्ञापन के आधार पर सीरियल के अंतहीन ऐपीसोड निर्मित होते हैं। नये-नये षड्यंत्र, नए-नए कुचक्र इन अंतहीन ऐपीसोड में दिखाए जाते हैं। जो बात संभव नहीं है वह अंतहीन ऐपीसोडवाले सीरियल में दिखाई जाती है। कई-कई पीढ़ियाँ, कलाकारों की, दर्शकों की व्यतीत हो जाती हैं। ऊब कर कलाकार सीरियल छोड़ जाते हैं, दर्शक देखना बंद कर देते हैं, किंतु विज्ञापन का पैसा दे दिये जाने के कारण वह सीरियल बंद नहीं हो पाते और चलते रहते हैं।

मँहगे विज्ञापनों के कारण देश की अर्थव्यवस्था प्रभावित होती है। वस्तुओं के मूल्य विज्ञापनों की दरों के अनुसार बढ़ जाते हैं। अँधानुकेरण करते हुए बच्चे अपने पसंदीदा नायक द्वारा विज्ञापित वस्तु को अपनी हैसियत से बाहर जाकर खरीदना पसंद करते हैं। एक-एक विज्ञापन के लिए कई-कई करोड़ रुपए विज्ञापन में कार्य करने वाले मास्टर बलास्टर, महानायक, श्रेष्ठ अभिनेत्रियों आदि को दिए जाते हैं। फलस्वरूप मरा हुआ सीरियल भी चल निकलता है और विज्ञापन के कारण वस्तुओं के मूल्य बढ़ जाते हैं।

कई सीरियल में अंतहीनता कायम रखने के लिए षड्यंत्र का ऐसा रूप और अश्लीलता का ऐसा दृश्य पेश किया जा रहा है जो अविश्वसनीय और अकल्पनीय है। नायिका क से शादी करते-करते ख के पास चली जाती है और उससे विवाह कर लेती है। ख से विवाह करने के बाद क से उसका प्यार बदस्तूर चलता रहता है और आवश्यकता पड़ने पर वह क से गर्भ धारण भी करती है। ऐसा बच्चा कभी किसी को बाप कहता है कभी किसी को बाप कहता है और ऐसी स्त्री बेशर्मी के साथ उस बच्चे को क से उत्पन्न मानती है जबकि विवाहिता वह ख की है। षड्यंत्र और क्रूरता अश्लीलता के साथ मिलकर इन सीरियलों को अंतहीन बना रहे हैं। आने वाली पीढ़ी पर इसका कितना बुरा असर पड़ रहा है इसको कोई देखने को तैयार नहीं है। जनता अब ऐसे अंतहीन ऐपीसोडवाले सीरियल से घृणा करने लगी है और दुखी भी हैं आखिर दूरदर्शन प्रत्येक सीरियल के ऐपीसोड की संख्या निश्चित क्यों नहीं करते। क्यों अपने स्वार्थ के लिए दूरदर्शन का सत्यानाश करने पर तुले हुए हैं। आवश्यक यह है कि प्रत्येक सीरियल के ऐपीसोड निश्चित होने चाहिए। एक या दो घटता-बढ़ता है तो कोई बात नहीं, किंतु सैकड़ों की तादाद में एक सीरियल के ऐपीसोड दिखाना जनता के साथ अत्याचार है।

किसी-किसी सीरियल में स्त्री का ऐसा विकृत रुप दिखाया जाता है कि आप कल्पना भी नहीं कर सकते। ऐसे-ऐसे अत्याचार, ऐसे-ऐसे षड्यंत्र दिखाये जाते हैं जो संभव ही नहीं है। एक स्त्री रात्रि के दो बजे अपने प्रेमी के बुलाने पर पति की जानकारी में घर से बाहर जाती है, तो इससे क्या संदेश जाता है। चरित्रहीनता बढ़ रही है, क्योंकि जिस प्रकार का हम देखते हैं उसी प्रकार का आचरण हमारे मन में घर कर लेता है।

सीरियल को अंतहीन और असीमित ऐपीसोड का बनाने के लिए नये-नये कुचक्र ईजाद किये जा रहे हैं और नये-नये षड्यंत्र पर्दे पर दिखाये जा रहे हैं। लगता है कुछ सीरियल निर्माताओं ने दूरदर्शन को और संबंधित मंत्रालय को खरीद लिया है। यह बात ध्यान देने योग्य है कि जितने भी सीरियल ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर अथवा धार्मिक पृष्ठभूमि पर बने हैं उनमें न तो अश्लीलता थी, न अंतहीनता थी और न ही षड्यंत्र और कुचक्रों का ऐसा जाल था। प्रत्येक ऐसी सीरियल की सीमा अवधि निश्चित थी और वह उसी सीमा अवधि में संपूर्ण किया जाता था। जबकि सामाजिक पृष्ठभूमि पर जो सीरियल बनाए जा रहे हैं उनमें समाज को दिशाहीन करने के लिए

शेषपृष्ठ ३७ पर

मीडिया में विदेशी प्रभुत्त्व देशहित के खिलाफ

○ एजी नुरानी

इसमें कतई संदेह नहीं कि विदेशी निवेशकों के लिए भारत की संस्कृति केवल एक बाजार की होगी जहाँ मीडिया के क्षेत्र में प्रवेश कर पैसा कमाना उनका उद्देश्य होगा। यहाँ की परंपरा, सभ्यता और संस्कृति से बिल्कुल अनभिज्ञ विदेशी स्वामित्व भारत जैसे देश के बहुभाषा-भाषी जटिल एवं संवेदनशील समाज में सही ढंग से काम कर पाएँगे और इस देश के लोगों का हित होगा, ऐसा लगता नहीं। इस लेख के लेखक एजी नूरानी वरिष्ठ कानूनविद तो हैं ही, पत्रकारिता में उनकी अच्छी-खासी दिचलस्पी भी है। हाल ही में 'हिंसा के दौर में प्रेस की स्वतंत्रता' पर नई दिल्ली में आयोजित एक संगोष्ठी में व्याख्यान के लिए ब्रिटेन से पधारे लंदन में 'द टाइम्स' के संपादक रह चुके और अंतरराष्ट्रीय मीडिया के एक प्रतिष्ठित हस्ताक्षर सर हेराल्ड इवांस के विचारों से प्रभावित होकर श्री नूरानी ने मीडिया में विदेशी प्रभुत्त्व को देशहित के खिलाफ बताते हुए इसे न तो कानून सम्मत करार दिया है और न ही सार्वजनिक नीति के अनुरूप। इस दृष्टि से इन्होंने भारतीय समाचार पत्रों के लिए विदेशी स्वामित्व पर रोक को जायज ठहराया है।

'विचार दृष्टि' के दस वर्ष पूरे होने पर पत्रकारिता के विविध पहलुओं पर केंद्रीत इस 10-वर्षांक के लिए यह लेख पाठकों के हित में है और तथ्यों पर आधारित भी। लेखक को कोटिशः साधुवाद।

–

संपादक

अंतरराष्ट्रीय मीडिया में सर हेराल्ड इवांस एक प्रतिष्ठित शख्सियत हैं। पहले 'द संडे टाइम्स' और बाद में लंदन के 'द टाइम्स' के संपादक के रूप में उन्होंने इन अखबारों की गुणवत्ता में काफी सुधार किया। इन्हीं खूबियों के कारण सर हेराल्ड को सर्वकालिक बेहतरीन ब्रिटिश संपादक भी चुना गया। हाल ही में उन्होंने नई दिल्ली में 'हिंसा के दौर में प्रेस की स्वतंत्रता' विषय पर व्याख्यान दिया। अपने भाषण में उन्होंने कई महत्त्वपूर्ण मुद्दों को छुआ, पर इस विदेशी ने राष्ट्रीय प्रेस के किसी भी क्षेत्र में विदेशी मिल्कियत के विरूद्ध जो भी कहा, वह बात महत्त्वपूर्ण है, विशेष तौर पर जब हमारे देश के ही अपने प्रमुख संपादकों ने भारतीय मीडिया में विदेशी निवेश की पैरवी की है। यह मामला तकनीकी क्षेत्रों और समाचार या सूचना के आदान-प्रदान के क्षेत्र में विदेशी सहयोग से बिल्कुल अलग है। सर हेराल्ड खुद भी सूचना और विचारों के आदान-प्रदान पर किसी प्रकार के अवरोध के विरोधी रहे हैं।

इसके बावजूद उन्होंने कहा कि भारत जैसे जटिल व संवेदनशील समाज में मीडिया के क्षेत्र में विदेशी स्वामित्व सही ढंग से कार्य नहीं कर पाएगा, क्योंकि वह यहाँ की स्थानीय संस्कृति और परंपराओं से बिल्कुल अनजान होगा। वास्तव में उसके लिए यहाँ की संस्कृति सिर्फ एक बाजार की तरह होगी, जहाँ से उसे पैसा कमाना है।

सही मायनों में प्रेस इस देश का चौथा स्तंभ है। ऐसे में इसमें विदेशी प्रभाव की अनुमति न देना उतना ही उचित है, जितना अन्य तीन-कार्यपालिका, विधायिका और न्यायपालिका रूपी स्तंभों में, राजनीतिक प्रक्रिया में भी प्रेस की एक निश्चित भूमिका होती है। वह भूमिका काँग्रेस के विभाजन (1969), जय प्रकाश नारायण के आंदोलन (1972-75), आपातकाल (1975) के दौरान, जनता पार्टी का विभाजन (1979), मंडल रिपोर्ट समेत सार्वजनिक जीवन के ऐसे ही अन्य घटनाक्रमों पर याद करने योग्य है। संविधान की धारा 19(1)(ए) के तहत वाक् और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता केवल भारतीय नागरिकों को मिली है।

एक भारतीय अधिकारपूर्वक किसी अखबार का मालिक या संपादक हो सकता है, जबकि कोई विदेशी नागरिक सरकार की अनुमति से ही ऐसा कर पाएगा और ऐसे में उसका रूझान सरकार को खुश करने में ही होगा। देश के खुशहाल रहने में एक भारतीय की भागीदारी है, जबकि एक विदेशी की चिंता लाभ कमाने के लिए अपनी क्षमता से दूसरों को प्रभावित करने की होगी। जिस प्रकार से रूपर्ट मर्डोक ने ब्रिटेन में किया, उसी तरह वह भी भारत के राजनीतिक, आर्थिक, व्यापारिक और अन्य सभी मामलों में अपनी जगह बना लेंगे। द टाइम्स के भूतपूर्व डिप्टी एडिटर लूइस हेरेन ने अपनी चर्चित किताब 'द पावर ऑफ द प्रेस' में मर्डोक के बारे में जो कुछ लिखा है, उस पर उन सभी को विचार करना चाहिए जो भारतीय पत्र-पत्रिकाओं पर विदेशी स्वामित्व के पक्ष में हैं, उन्होंने लिखा है कि मर्डोक की राजनीतिक चालबाजी की वजह से आस्ट्रेलिया में एक संवैधानिक संकट आया था। हुआ यह कि उनके अखबार ने लेबर पार्टी के नेता गफ विटलम को 1972 का चुनाव जीतने में समर्थन दिया, पर तीन साल बीतने से पहले ही उन्होंने विटलम का समर्थन करना बंद कर दिया। मर्डोक ने कहा कि विटलम की सरकार अक्षम है; जबकि विटलम का आरोप था कि मर्डोक द्वारा समर्थन वापसी का कारण था उनकी सरकार द्वारा मर्डोक को पश्चिमी आस्ट्रेलिया में बॉक्स साइट की खान न बनाने देना। इस पूरे प्रकरण का अंत तब आया, जब विपक्ष जो कि सिनेट में बहुमत में था, ने फंड पर वोट देने से मना कर दिया। इस तरह सरकारी मशीनरी ठप हो गई और गवर्नर जेनरल जॉन केर ने विटलम को बर्खास्त कर दिया। इस अभूतपूर्व कार्रवाई में मर्डोक की क्या भूमिका रही वह स्पष्ट नहीं थी, सिवाय इसके कि उनके अखबार ने

गवर्नर-जेनरल से प्रधानमंत्री को बर्खास्त करने के लिए निवेदन किया था।

यहाँ दो अंतर समझना जरूरी है–पहला, विदेशी पत्र-पत्रिकाओं के आयात और भारतीय पत्रों के विदेशी स्वामित्व के बीच, और दूसरा है- भारतीय पत्रों के विदेशी स्वामित्व और विदेशी टी.वी स्टेशन के भारत में प्रोग्राम दिखाने के बीच, विदेशी पत्रिकाओं या टेलीकास्ट पर किसी भी तरह की रोक लगाना कतई उचित नहीं है।

अक्सर एक दलील दी जाती है जब देश की अर्थ-व्यवस्था का वैश्वीकरण हो रहा है तो आप एक विदेशी मालिक के लिए मीडिया का दरवाजा क्यों बंद कर रहे हैं। पर इसका जवाब यह है कि ऐसे बहुत से क्षेत्र हैं, जिनमें विदेशियों के लिए रोक है। जैसे, जिन देशों ने किसी भी देश के समाचार सामंतों के लिए अपने दरवाजे खोले हैं, उन्होंने भी अपने न्यायालयों को विदेशी वकीलों के प्रैक्टिस के लिए नहीं खोला है।

एडवोकेट एक्ट, 1961 की धारा 24(1) में उन प्रावधानों का जिक्र किया गया है, जिनके अंतर्गत कोई व्यक्ति भारत में वकालत कर सकता है। इनमें से पहला प्रावधान यह है कि वह व्यक्ति भारत का नागरिक होना चाहिए। सभी देशों में व्यापार करना अपने नागरिकों के लिए तो मौलिक अधिकार है, पर अन्य के लिए नीति पर आधारित है, अधिकार नहीं है। प्रथम प्रेस कमीशन की रिपोर्ट (1954) में विदेशी राष्ट्रीयतावाले मालिकों के विषय पर विचार किया गया और इस संबंध में कमीशन ने असहमति प्रकट की। 1955 में केंद्रीय कैबिनेट ने कमीशन के इस मत को स्वीकार किया और तबसे लेकर आज तक इस क्षेत्र के लिए यह निर्णय यथावत बना हुआ है। दूसरे प्रेस कमीशन की रिपोर्ट (1982) में इस विषय पर कोई विशेष उल्लेख नहीं किया गया। इस रिपोर्ट में भारतीय प्रेस के लिए विदेशी पूँजी के संदर्भ में विचार किया गया और इस संबंध में अनुमोदन किया गया कि कानूनी प्रावधान के तहत कोई भी समाचार पत्र न तो शेयर के रूप में और न ही लोन के रूप में विदेशी स्वामित्व स्वीकार कर सकता है।

यह केवल एक कानूनी मुद्दा नहीं है, सार्वजनिक नीति से संबंधित कोई भी निर्णय राष्ट्रीय हितों के मद्देनजर किया जाना चाहिए और उसे कानून में परिलक्षित होना चाहिए। राष्ट्रीय हितों और प्रेस की कार्यप्रणाली की वास्तविकता को देखते हुए भारतीय समाचार पत्रों के लिए विदेशी स्वामित्व पर रोक जायज है।

पृष्ठ ३५ का शेषांश

सभी सामग्री है और सीरियल को अंतहीन बनाने के लिए अनावश्यक और अकल्पनीय षड्यंत्रों, कुचक्रों, अश्लीलताओं को घुसेड़ा जा रहा है। प्रत्येक ऐसे सीरियल में बलात्कार का दृश्य भी दिखाया जाता है और फिर उसकी छानबीन होती है। मुकदमे का दृश्य भी होता है जो कतई भी अदालती नहीं होता, लेकिन इस मुकदमें के दृश्य में ऐसे-ऐसे सवाल बलात्कार पीड़ित से पूछे जाते हैं कि मानवता शर्मिंदा होकर अपनी आँख बंद कर ले अथवा अपने कान बंद कर ले। बलात्कार से पीड़ित युवती बेशर्मी के साथ प्रश्नों का उत्तर देती दिखाई जाती है। बहू, सास और ससुर से और बेटी अपने बाप से इतनी बेहयाई से बात करती दिखाई जाती है कि स्वयं बेहयाई भी शर्मिंदा होने लगती है और देखने वाला तो परिवार के साथ देख ही नहीं सकता। स्त्रियों को अनियंत्रित और असंयमित होकर अपने से बड़ों से जो संवाद बोलते हुए दिखाया जाता है उससे घरेलू महिलाओं पर भी बुरा असर पड़ रहा है। जो पत्नियाँ अपने पति से मर्यादा के अंदर रहकर बात करती थीं वह अपनी बहादुरी दिखाने के लिए अमर्यादित होकर संभाषण कर रही हैं। ऐसे सीरियल जिसमें स्त्रियों को अकारण ही मर्यादा से बाहर जाता हुआ दिखाया जा रहा है तुरंत बंद होने चाहिए। निर्भिकता का अर्थ दुर्व्यवहार अथवा कटू संभाषण नहीं हो सकता।

प्रत्येक ऐपीसोड में विज्ञापनों की सीमा निश्चित होनी चाहिए। एक-एक ऐपीसोड में बीस-बीस विज्ञापन दिखाये जाते हैं। कथानक कम समय का होता है विज्ञापन अधिक समय के होते हैं। दूरदर्शन-चैनल निर्माता और विज्ञापनकर्ता जनता को लूट रहे हैं, जनता का समय नष्ट कर रहे हैं, समाज में दुर्गंध फैला रहे हैं इन सब पर अँकुश लगना चाहिए। अधिक से अधिक पाँच विज्ञापन एक ऐपीसोड में एक या दो मिनट की अवधि के दिखाये जाने चाहिए इससे अधिक नहीं।

कभी-कभी यह भी होता है कि नच बलिये जैसे ऐपीसोड दिखाने के लिए प्रभावशाली चैनल निर्माता साई, पृथ्वीराज चौहान अथवा रावण जैसे सीरियल रूकवा देते हैं। होना यह चाहिए कि साई, पृथ्वीराज चौहान और अन्य धार्मिक या ऐतिहासिक चैनल चलते रहें और नच बलिये जैसे सीरियल बंद हो जाएँ।

आने वाली पीढ़ी को यदि सुसंस्कृत करना है, तो अश्लीलता परोसने वाले सीरियल, नंगी टांगों का नाच दिखाने वाले सीरियल, अकल्पनीय षड्यंत्रों पर आधारित सीरियल निर्भीकता के नाम पर महिलाओं के अमर्यादित संभाषणवाले सीरियल और बलात्कर जैसे दृश्य दिखाने वाले सीरियल तुरंत बंद होने चाहिए। दिशाहीन और संदेशविहीन सीरियल प्रदर्शन की आज्ञा नहीं दी जानी चाहिए।

भारत सरकार को चाहिए कि ऐतिहासिक पृष्ठभूमि के और धार्मिक पृष्ठभूमि के सीरियल के प्रदर्शन की अनुमति दी जाए। अन्यथा प्रदर्शन करने वाले सीरियल तुरंत बंद कर दिये जाने चाहिए। रामसेतु का मुद्दा उठाने वाले व्यक्ति ध्यान दें इन अश्लील सीरियलों के कारण लोगों की धार्मिक भावनाएँ कुंठित हो रही हैं। रामसेतु के मुद्दे से अधिक आवश्यक मुद्दा अंतहीन, अश्लील, दिशाहीन, संदेशविहीन सीरियल बंद होने का है तभी संस्कृति की रक्षा हो सकती है।

संपर्क: गणपति कॉम्प्लैक्स, सिविल लाइन्स, बिजनौर-246701 (उ.प्र.)

साहित्यिक पत्रकारिता : उत्थान या पतन

○ उर्मिला कौल

साहित्य संस्कृति का संवाहक है, तो साहित्यिक पत्रकारिता साहित्य को अपने कंधों पर उठाने वाला पुख्ता स्तंभ है। साहित्य संस्कृति की प्राण ऊर्जा है। साहित्य जीवंत हैं, तो संस्कृति शाश्वत। अत: दोनों का स्वस्थ सामंजस्य अनिवार्य है। काल-विशेष का निष्पक्ष सत्यान्वेषण ही साहित्यिक पत्रकारिता को प्रामाणिक बनाता है। उसे साहित्य की विविध विधाओं में रचनाकार प्रस्तुत करता है। यथा-कथा-कहानी, उपन्यास, नाटक, व्यंग्य, कविता, लेख आदि। रचनाकार की रचना की सार्थकता एवं समस्या समाधान की और साहित्यिक पत्रकार का संकेत भी आवश्यक है।

अमूमन, रचनाकार ही साहित्यिक पत्रकारिता के क्षेत्र में प्रवेश करते हैं। जो खामियाँ उन्हें महसूस होती हैं, उन्हें वे पत्रकारिता के माध्यम से दूर करने का प्रयास करते हैं। ऐसे साहित्यिक पत्रकारों की लंबी शृंखला है। हस्तलेख से स्वयं लिख कर भी पत्रिका की प्रतियाँ बना कर साहसी लोग वितरित कर रहे हैं। स्थितियाँ-परिस्थितियाँ उन्हें प्रेरणा देती रही हैं। उन्नीसवी शताब्दी के अंतिम चरण यानी भारतेन्दु युग से साहित्यिक पत्रकारिता का प्रारंभ माना जाता है।

इतिहास पर आधारित पत्रकारिता में सत्यान्वेषण आवश्यक है। इतिहास का शाब्दिक अर्थ संधि-विच्छेद से स्पष्ट होता है- इति=ऐसा, ह=वास्तव में, आस=था। यानी ऐसा वास्तव में था। स्वतंत्र भारत की दलीय राजनीति की कुटिल चाल से इतिहास में दखल दिया जा रहा है। अर्थात वास्तव में जैसा हुआ था, उस पर झूठ का जामा पहनाया जा रहा है। अत: इतिहास के साथ द्रोह यानि राष्ट्र-द्रोह! दलीय साहित्यिक पत्रकारिता कभी निष्पक्ष नहीं होती। अत: और कुछ कह माना संभव नहीं है। मेरी सुरुचि संस्कृति और साहित्य है।

संस्कृति-भारत की अस्मिता ।
साहित्य - भारत की पहचान ।।

इतना स्पष्ट है- साहित्यिक पत्रकारिता इसी मापदण्ड पर आधारित है। वर्त्तमान हमारा विदेशी विचार और उनकी अपसंस्कृति के सैलाब में डूब-चूब रहा है। अपने आदर्श त्याग, उनके यथार्थ को बिना सोचे-समझे ही अपनाने लगे हैं। मन एवं मानस को प्रदूषण से भरने का प्रयास कर रहे हैं। हर देश की स्थितियाँ-परिस्थितियाँ, समस्याएँ उनकी संस्कृति और समाज के अनुरूप होती हैं। यथा-अमेरिकन ब्लैक लिटरेचर का Realism भारत के चिंतन पर कतई सही सही नहीं उतरता। हमारा यथार्थ शरतचन्द्र और प्रेमचंद का यथार्थ है। हमारी संस्कृति और समाज की अच्छाइयों-बुराइयों को भी सहज दर्शाता है। समाधान का संकेत देता है। मानव-मूल्यों की रक्षा यदि रचनाकार का दायित्व है, तो साहित्यिक पत्रकारिता का उन मानव मूल्यों की रक्षा करना है। हमने कलम का धर्म धारण किया है। हमें अधिकार नहीं है कोरे मानस में विकास देने का।

ध्यातव्य है, पश्चिम ने भारत की ओर देखना शुरू किया है। आइन्स्टीन ने कहा है- मानव समाज का भविष्य उसके तकनीकी और वैज्ञानिक विकास पर कम, नैतिक सिद्धांतों पर अधिक निर्भर करता है। जब ये नैतिक सिद्धांत मार दिये जाते हैं, तब समाज का सारा आर्थिक, सामाजिक, खास कर सांस्कृतिक ढाँचा अनैतिक बन जाता है आज परिदृश्य कुछ वैसा ही.....!

साहित्यिक पत्रिकाएँ इस नैतिकता के ह्रास की रास खींच सकती हैं। पत्रिकाओं से अनैतिक रचनाओं को बरतरफ़ रखा जाए। मुझे याद है, एक बार मेरे पास कविता प्रधान पत्रिका आयी थी। लघुशंका क्रिया का विस्तार.....। मैंने रेखांकित करके संपादक से पूछा था- उक्त विस्तार देकर आप पाठक का क्या कल्याण करना चाहते हैं? उत्तर मिला था- भविष्य में ध्यान रखा जाएगा।

स्पष्ट है- कलम मशाल का दायित्व भी निभाती है।

कलम को यदि हथियार बनना है, तो सत्यान्वेषण के बाद बने। क्रिया की प्रक्रिया को मद्देनज़र रखे। यानी कारण और प्रभाव cause and effect पर आधारित हो।

लघु पत्रिकाओं का संसार बड़ी पत्रिकाओं की बनिस्पत बड़ा है। बड़ी पत्रिकाओं को धनी पत्रकार अथवा धनिकों से पृष्ठ पोषण मिलता है। सरकारी पत्रिकाओं में सरकारी मानदंड का ध्यान रखना पड़ता हैं, परंतु स्वतंत्र साहित्यिक पत्रकारिता में स्वतंत्र विचारों की गुंजाइश होती है। अत: संपादक का नैतिक दायित्व बढ़ जाता है। दूसरी तरफ़ लघु पत्रिकाएँ हैं। धनाभाव के कारण रूपाकार और काग़ज़-छपाई में अवश्य अंतर होता है। फिर भी उनकी निरंतरता स्तुत्य है। नामों की सूची दीर्घ है। ये लघु पत्रिकाएँ पोस्ट कार्ड, अंतरदेशीय, 4 पृष्ठीय से 16-20 पृष्ठीय होती हैं। महत्त्वपूर्ण आलेखों का समावेश होता है।

अर्नाल्ड टायनबी- आधुनिक चिंतक हैं, जिनकी भारतीय मूल्यों की मुरीद दृष्टि में मानवता की मुक्ति का एक मात्र मार्ग भारतीय मूल्य और दर्शन है।

भारत के जन-जन तक ऐसे विचार पहुँचाना साहित्यिक पत्रकारिता का पुनीत दायित्व है। ताकि हमारा दिन-ब-दिन मरता राष्ट्राभिमान पुन: जीवित हो सके। स्पष्ट है, विश्व-चिंतक जब भी संस्कृति पर चिंतन करते हैं, तो उनकी सोच की धुरी भारत की ओर घूम जाती है। तभी तो अल्लामा इक़बाल के उर-अंतर से प्रस्फुटित पंक्तियाँ-.

.....

वहदत की नय सुनी थी दुनिया ने जिस मकां से
मीर अरब को आई ठंडी हवा जहाँ से
मेरा वतन वही है, मेरा वतन वही है

हाँ, मीर अरब को आई ठंडी हवा जहां से-पुष्टि में-

लंदन के तेजपाल वशिष्ठ ने 35 वर्ष की दीर्घ शोध के बाद तीन Vol. में प्रस्तुत किये हैं-A Discovery Vol.I The Cleanings of Truth
A Panorama of Culture Vol. II
A Panorama of Politics Vol. III

प्रथम खण्ड में-मीर साहब ने भारत के योगी ऋषि का सान्निध्य प्राप्त किया था और उन्हें रूहानी सुकून का एहसास हुआ था।

काश, उनके अनुयायी भी ऐसा ही सुकून भारत से पाते ।

निश्चय ही, भारत का इतिहास भी पुरसुकून होता ।।

लेखक लिखते हैं-उन आक्रमण कारियों ने वहशत और दहशत का खूनी चक्र चलाया। यहाँ की प्राचीनतम ज्ञान-संपदा को समाप्त किया। तत्कालीन नालन्दा विश्व-विद्यालय से पूरे विश्व को ज्ञान प्राप्त होता था। इसका पुस्तकालय विश्वज्ञान का एक महानतम केंद्र था। उसे लपटों के हवाले कर दिया गया। अपार संपदा महीना भर निरंतर भस्म होती रही।

ऐसे अमानवीय तथ्यों को दलगत राजनीति झूठ का जामा पहना रही

है। निश्चय ही राष्ट्र द्रोह।

विश्व में जिन कौमों पर ऐसे कहर, टूटे, उनकी पीड़ा उन्हें आज भी व्यथित करती है। स्व. अमृता प्रीतम अपनी आत्म कथा में लिखी हैं- बाहर के देशों में काव्य पाठ के लिये गयी। हंगरी में भी गयी- हंगेरियन कवि विहार वेला (यह नाम हिंदी का लगता है- उर्मिला कौल) ने कहा-

जब कोई आक्रमणकारी परायी धरती पर पाँव रखता है, तो पुस्तकों की अल्मारियाँ काँपने लगती हैं। लेकिन जब किसी देश की धरती पर कांव के कदम पड़ते हैं, तो अल्मारियाँ फैल जाती हैं।

इन शब्दों में इतिहास की त्रासदी बोल रही है।

और, साहित्य की कोमलता। एक और उदाहरण-

प्रथम विश्व युद्ध में जापान रूसी सेनाओं से पराजित हो गया था। उन्होंने साहित्य-संस्कृति को स्पर्ष नहीं किया, बल्कि रूसी विद्वान आये। जापान का साहित्य देखे-समझे। उन्हें 17 अक्षरीय 5-7-5 का छंद हाइकु बेहद आकर्षित किया। वे प्रयोग के लिये हाइकु विधा को यूरोप में ले गये। कई भाषाओं में मूल जापानी से अनुवाद हुआ। आज यह नन्हा-सा छंद विश्व साहित्य में प्रतिष्ठित हो चुका है। अंतरराष्ट्रीय साहित्यिक पत्रकारिता पूरे विश्व को जोड़ रही है।

विडंबना है, जब वेदों का हम नाम भी लेते हैं, तो सांप्रदायिकता का आरोप लगता है। परंतु जापान की यह हाइकु कविता जैन दर्शन पर आधारित संतों की कविता है, इसे आरोप नहीं लगाया आधुनिक जापानवासियों ने। अत: साहित्यिक पत्रकारों का दायित्व है- पुनर्जागरण का आह्वान ।। यह प्राचीन शास्त्रों की धरोहर हर भारतवासी की है। जब तथाकथित आधुनिक उनका अध्ययन ही नहीं करेंगे, तो आरोप लगाते रहेंगे। स्वच्छ मन से, बिना पूर्वाग्रह के अन्वेषण करेंगे, तो निश्चय ही गर्व की अनुभूति होगी। इसका यह अभिप्राय कतई नहीं है कि प्रगति की आधुनिक दौड़ में हम पीछे रहें। प्रगति की दौड़ हो या उड़ान-धरती से उठती है, धरती पर ही लौटती है। भले ही इंटरनेट पर विश्व साहित्य उपलब्ध है, परंतु स्थायित्व का आधार पत्र-पत्रिकाएँ ही हैं।

हर विधा, हर क्षेत्र के लिये पत्र-पत्रिकाएँ प्रकाश में आती हैं। यथा-गृह कलाओं को भी पत्रिकाएँ ही जीवित रखती हैं। ललित कलाओं पर भी रचनात्मक पत्रकारिता ही उसे दूर दराज़ तक फैला देती है। चित्र कला के कलाकारों की गतिविधियों, प्रदर्शनियों का विस्तृत ब्योरा होता है। तूलिका के कोमल-बोल्ड स्पर्षों तक चर्चा होती है। रंग-संयोजन की विशेषता से पाठकों में वह दृष्टि पैदा की जाती है जिससे उनकी दृष्टि कला की बारीकियों को देख-परख सके। कलाकारों के सम्मान-पुरस्कारों, सेमिनारों की सूचना एवं चर्चा छपती है।

व्यवसायी पत्रकारिता : पूरे देश में सब से अधिक है व्यवसायी पत्रकारिता। कीमतों काग़ज़, कीमती आवरण की सजधज के साथ मासिक, त्रैमासिक पत्रिकाएँ आती हैं। इन में विज्ञापनों का बोलबाला होता है। समाचार पत्र भी इसी वर्ग में आते हैं।

व्यवसायी साहित्यिक पत्रकारिता के अपने-अपने लेखक हैं।

अपने-अपने विचार। स्पष्ट है, पत्रकारिता का विस्तार व्यापक पैमाने पर होता है। स्वतंत्र विचारों का आदान-प्रदान समाज के लिये हितकर है। जितनी पत्रिकाएँ पढ़ी जाती हैं, ज्ञान में जुड़ता ही रहता है।

समाचार पत्रकारिता- दैनिक समाचार पत्रों में साहित्य परिशिष्टांक (साप्ताहिक) आता था। इस में चार पृष्ठ होते थे। कहानी, कविता, उपन्यास-अंश (धारावाहिक) उपन्यासिका, लेखकों के व्यक्तित्व एवं कृतित्व इत्यादि-इत्यादि छपते थे। एकाएक वह परिशिष्टांक तिरोहित हो गये। और फिल्मी संसार छा गया चार पृष्ठों पर। रहस्य समझ नहीं आया था।

कुछ वर्ष पूर्व पढ़ा था- अंतरराष्ट्रीय पत्रकार सम्मेलन हुआ था। पश्चिम ने भारतीय पत्रकारिता पर आरोप लगाया था-नीरस।

फिर क्या था, भारतीय पत्रकारिता लगी रस-पगने ।। साहित्यिक परिशिष्टांक तिरोहित। बड़ी-बड़ी अभिनेत्रियों के चित्र-अल्प वसना, अर्द्ध वसना छपने लगी। श्लील-अश्लील की रेखा-पानी पर लकीर। भारतीय, विशेष कर फ़िल्मी नारी किस हद तक जा सकती है, कहना कठिन है। इन अर्द्धनग्न नारियों की भाव भंगिमा- शर्म भी शर्मसार।

दु:खद है- पुरुष ही प्रलोभन दे कर नारी देह को अल्प वसना बनाते हैं। एक निदेशक छोटे पर्दे पर कह रहे थे- कोई अभिनेत्री परंपरागत पोशाक पहनना नहीं चाहती। सत्य है- जब वस्त्र खिसकता है, तो आँख की शर्म भी खिसक जाती है।

इनकी उत्तेजक भाव भंगिमा किसी खलनायिका की होती है।

समाचारों में छपता है- उक्त कोठे पर पुलिस ने छापा मारा। वहाँ धकेलने वाले भी पुरुष ही हैं। निरुपाय नारियाँ रात के अँधेरे में जीवनयापन हेतु वेश्यावृत्ति पर विवश बना दी जाती हैं। पुलिस का ज़ोर उन मज़लूमों पर। फिल्म संसार पर शायद कोई नियम कानून नहीं चलता। '70 के दशक तक जो अदाएँ एवं अर्द्ध नग्न रूप में नारी पेश की जाती थी, वह मात्र खलनायिकाएँ थीं। आज नायिका उसी रूप में आती हैं। नृत्य समूहों में चार इंची वस्त्र.....इसे प्रगति कहें या आदिम युग की ओर वापसी! आदिम युग में भी मानव को अंग ढकने का विवेक था। पत्तों व छाल का प्रयोग। उनकी सहज भाव भंगिमा थी। और आज? संस्कृति मंत्रालय भी धृतराष्ट्र हो चुका है। विज्ञापनों ने अश्लीलता के सारे माप-दंड भंग कर दिये हैं। मासूम बच्चों की मासूमियत की हत्या-वीभत्स अपराध! नारी के प्राकृतिक चक्र को बेहुदी भंगिमाओं से विक्षापित किया जाता है।

अंत में, साहित्यिक पत्रकारिता में कथनी-करनी-दो ध्रुव! सामाजिक रूढ़ियों पर प्रहार करने वाली पत्रकारिता स्तुत्य रही। एक रचना प्रेषित की थी। दीर्घ मौन रहा। संयोग से, उस नगर में जाना हुआ। अपने मेजर भाई को लेकर कार्यालय गयी। एक सूटेड-बूटेड सज्जन बैठे थे। परिचय दिया। बैठने का संकेत मिला। मैंने रचना का पूछा। कुछ क्षण मौन- अगर आपने रचना में दहेज का रोना रोया होगा तो यह सरासर ग़लत है। जितना सुख आप बेटी के लिये चाहते हैं, उसकी अग्रिम कीमत तो चुकानी ही पड़ेगी।

हाँ, साहित्यिक पत्रकारिता का पतन!

हतप्रभ मैं उन्हें देखती रह गयी थी- आदर्श और यथार्थ !!

मेरे फ़ौजी भाई की नासिका फड़कने लगी थी। मैंने संकेत से उसे संदत किया। हम बाहर आ गये- मातमी!

यथार्थ ने आदर्श की हत्या जो कर दी थी!!

संपर्क: गीता भवन, हरि जी हाता
आरा- बिहार-802301

जानकारी

हिंदी की पहली समाचार पत्रिका उदंत मार्तंड

○ शिवकुमार सिंह

'उदंत मार्तंड' हिंदी की पहली समाचार पत्रिका थी, जो लगभग 182 वर्ष पूर्व 30 मई, 1826 को कानपुर निवासी युगल किशोर शुक्ल ने कोलकाता से प्रकाशित किया था। इसी वजह से उन्हें हिंदी का आदि संपादक कहा जाता है। कानपुर से कोलकाता जाने के बाद सदर दीवानी अदालत में लिपिक का काम करने के पश्चात् उन्होंने कोलकाता में ही वकालत शुरू की।

दरअसल उदंत का अर्थ होता है समाचार और मार्तंड का अर्थ होता है सूर्य। इस प्रकार उदंत मार्तंड का अर्थ हुआ समाचार रूपी सूर्य। सच मानिए तो यह पत्र हिंदीभाषियों के लिए सूर्य के समान ही था, क्योंकि उस वक्त अँग्रेजी, फारसी और बाँग्ला आदि में तो समाचार पत्र निकलते थे, लेकिन हिंदी का कोई समाचार पत्र नहीं था। श्री शुक्ल ने इसी ख्याल से इस कमी को पूरा करने के लिए हिंदी में इस पत्र को निकालने का बीड़ा उठाया। 'उदंत मार्तंड' के पहले अंक में इसके संपादक श्री शुक्ल ने इसीलिए लिखा-"यह 'उदंत मार्तंड' पहले पहल हिंदुस्तानियों के हित के हेतु जो आज तक किसी ने नहीं चलाया, पर अँग्रेजी ओ फारसी, बाँग्ले में जो समाचार का कागज छपता है उसका सुख उन बोलियों को जानने ओ पढ़ने वालों को ही होता है और सब लोग पराए सुख सुखी होते हैं जैसे पराए धन धनी होना और अपनी रहते पराई आँख देखना... इससे समाचार हिंदुस्तानी लोग देखकर आप पढ़ ओ समझ लें और पराई अपेक्षा न करें ओ अपने भाषा की उपज न छोडें।" दरअसल संपादक का यह उद्देश्य था कि हिंदी भाषी किसी दूसरी भाषा के समाचार पत्रों पर निर्भर न करें।

उदंत मार्तंड कोलकाता के कोल्हू टोला अमड़तला गली स्थित 37 नंबर के मकान से प्रकाशित होता था। बाद में प्रकाशन स्थल में परिवर्तन हुआ। यह साप्ताहिक समाचार पत्र था जिसमें समाचार के अतिरिक्त रिपोर्ट और बाजार भाव भी होते थे। इसका आकार 12" X 8" था और एक अंक का मूल्य 8 आने रखा गया था। डेढ़ वर्ष तक प्रकाशित होने के बाद 11 दिसंबर, 1827 को इसका अंतिम अंक निकला। इसके बंद होने के प्रमुख कारण थे कि उस समय अँग्रेज नहीं चाहते थे कि अखबार के माध्यम से भारतीयों में चेतना जागृत हो और उनके साम्राज्य को खतरा पैदा हो जिसके परिणामस्वरूप अँग्रेजों ने इस पत्र के मार्ग में कई बाधाएँ खड़ी कर दीं। एक तो सरकारी विज्ञापन बंद कर दिया गया और न कोई वित्तीय सहायता इसे दी गई।

उस वक्त अखबार पर दो रुपए भी बहुत कम लोग खर्च कर पाते थे। 8 आने भी उस समय बहुत हुआ करते थे, नतीजा हुआ कि समाचार रूपी सूर्य शीघ्र ही अस्त हो गया। इसके अंतिम अंक के संपादकीय में संपादक शुक्लजी ने लिखा- आज दिवस लौ उग चुक्यों मार्तंड उदंत । अस्ताचल को जात है दिनकर दिन अब अंत ।।

हालांकि उदंत मार्तंड का तो अंत हो गया, फिर भी हिंदी पत्रकारिता रूपी आंदोलन के बीज बोने का जो सार्थक प्रयास इसके द्वारा किया गया वह पुष्पित-पल्लवित होकर एक वटवृक्ष के रूप में हिंदी पत्रकारिता आज हमारे सामने है।

संपर्क:- कोषाध्यक्ष, राष्ट्रीय
विचार मंच, बिहार,
रामविलास चौक, इंदिरा नगर,
पटना-1

समाचार-पत्रों की उपयोगिता

○ डॉ० महेशचन्द्र शर्मा

समाचार पत्र मनुष्य के दैनिक जीवन का अपरिहार्य अंग होता है। इसके बिना हम अपने दिन के सभारंभ की कल्पना भी नहीं कर सकते।

समाचार-पत्र के स्वरूप को स्पष्ट करने के लिए हम नीचे दो विचारकों के मत अंकित करना चाहते हैं -

"साधारण व्यवहार में समाचार-पत्र उस पत्र को कहते हैं जो रोजाना या अधिक-से-अधिक हफ्तावार प्रकाशित होता है और जिसमें प्रधानतया प्रचलित घटनाओं के समाचार या उन पर की गई टीका-टिप्पणी आदि छपी रहती हैं।"

-विष्णुदत्त शुक्ल

'समाचार-पत्र वह नियतकालिक प्रकाशन है, जो घटनाओं, जन-जीवन की समस्याओं तथा विचारों को जनता के समक्ष प्रस्तुत करे और उन्हें अपना मत बनाने में सहयोग दे।"

-रमेश कुमार जैन

अब समाचार-पत्रों की उपयोगिता पर प्रकाश डालने का यथामति यथासाध्य प्रयास करना संगत रहेगा।

भारतवर्ष में जन-संचार के अनेक साधन हैं। जैसे-(1) दूरदर्शन, (2) वीडियो, (3) फिल्म, (4) समाचार-पत्र तथा (5) पत्रिकाएँ आदि। समाचार-पत्र वस्तुत: जन-संचार के साधनों में सर्वाधिक प्राचीन साधन है। अकबर इलाहाबादी ने 'तोप' का मुकाबला करने के लिए 'अख्बार' निकालने का परामर्श दिया है-

"खींचो न कमानों को, न तलवार निकालो।
जब तोप मुकाबिल हो, तो अख्बार निकालो ॥"

आज समाचार-पत्र का महत्त्व हम इसलिए भी स्वीकारते हैं कि इससे प्रात:काल होते ही देश-विदेश के समाचारों से हमारा साक्षात्कार हो जाता है। जन-जीवन को सुशिक्षित तथा समुचित मार्ग-दर्शन करने का कार्य भी समाचार-पत्र ही संपादित करते हैं। इस संदर्भ में हम पं० कमलापति त्रिपाठी के मत को पेश करते हैं-

"आज अधिकतर साक्षर जनता के लाखों नर-नारियों के लिए समाचार-पत्र के सिवा कोई दूसरा साहित्य ही नहीं है। वही उनकी पाठशाला, वही उनका साथी और पथ-प्रदर्शक और वही शिक्षक तथा साहित्य हो गया है।"

प्रो० अम्बिका प्रसाद वाजपेयी ने समाचार-पत्र को 'लोक-गुरु' माना है ।

"समाचार-पत्र सिर्फ खबरें ही नहीं देता, उनका महत्त्व भी बताता है और लोगों को शिक्षित करता है।

X X X X

जिस हद तक समाचार-पत्र निर्भीकता और प्रबुद्धता से यह कार्य कर पाता है, वह लोक-गुरु की भूमिका अदा करता है।"

समाचार-पत्र 'सत्य का सिपाही' होता है। राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी ने समाचार-पत्र को 'सत्य का सिपाही' माना था। उन्होंने स्पष्टत: कहा था कि-"ऐसी कोई भी लड़ाई, जिसका आधार आत्मबल हो, अखबार की सहायता के बिना नहीं चलाई जा सकती।"

समाचार-पत्रों की उपयोगिता अत्यंत प्राचीन काल से स्वीकार की जाती रही है। पौराणिक युग में जो भूमिका नारद मुनि की होती थी, वही भूमिका आज समाचार-पत्र निर्वाहित करता है। समाचार-पत्र अतीत के साथ-साथ वर्तमान की सूचना देता हुआ भविष्य की संभावना भी व्यक्त करता है। राजनीतिज्ञ, अधिकारी, डॉक्टर, इंजीनियर, प्राध्यापक, व्यापारी तथा समाज-सुधारक आदि सभी प्रात:काल होते ही समाचार-पत्र की व्याकुलता से प्रतीक्षा करने लगते हैं।

श्री इंद्र विद्यावाचस्पति ने समाचार-पत्रों को "वर्तमान युग का सबसे प्रभावशाली आविष्कार" माना है।

यदि हम ध्यानपूर्वक सोचें-समझें तो हमें यह बात कहने में कोई आपत्ति नहीं होती कि आज दलित-वर्ग के उत्थान में भी समाचार-पत्र महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं। शोषितों के दर्द तथा समस्याओं को प्रकाश में लाने के लिए समाचार-पत्र उपयोगी सिद्ध हुए हैं। अंधविश्वास, जाति-पाँति, छुआछूत, अनमेल विवाह तथा बाल-विवाह आदि नानाविध कुरीतियों के प्रति समाचार-पत्र जनता को जागरूक करते रहते हैं।

ज्ञान के प्रचार-प्रसार की दृष्टि से भी समाचार-पत्रों का अवदान हमें स्वीकार कर लेना चाहिए। नए-नए आविष्कारों, विज्ञान की नई-नई खोजों तथा अन्य नए-नए विचारों से समाचार-पत्रों के कारण जनसाधारण भी अवगत हो जाते हैं।

श्री अरविन्द कुमार का मत है- "समाचार-पत्र केवल रोचक समाचारों का संकलन नहीं होता। वह किसी भी देश की सामाजिक, राजनीतिक सांस्कृतिक गतिविधियों का उद्देश्यपूर्ण लेखा-जोखा होता है। ...वह दैनिक जीवन की सशक्त रिपोर्ट होता है।" कहना न होगा कि श्री अरविन्द कुमार के इस मत के आधार पर समाचार-पत्रों की उपयोगिता ही हमारे सामने आ रही है।

डॉ० रामचन्द्र तिवारी के शब्दों के साथ हम यह कहना संगत समझते हैं कि-

"समाचार-पत्र सामाजिक चेतना के वाहक होते हैं।"

संपर्क: रीडर एवं अध्यक्ष: हिंदी-विभाग
लाजपत राय कॉलेज (चौधरी चरण सिंह विश्वविद्यालय, मेरठ)
साहिबाबाद (गाज़ियाबाद)
उ०प्र०-201005.

झारखण्ड में पत्रकारिता: उद्‌भव और विकास

○ डॉ० प्रभु नारायण विद्यार्थी

झारखण्ड 15 नवम्बर 2000 से नवगठित राज्य है। यह 1912 से बिहार राज्य और इसके पूर्व बंगाल राज्य का अंग रहा। बंगाल अँग्रेजी शासनकाल में भारतीय शासन-प्रशासन का केंद्र था। तब झारखण्ड की महत्ता प्रशासनिक दृष्टि से हाशिए पर थी। स्वभावत: पत्रकारिता का प्रारंभ झारखण्ड में विलंब से हुआ। कलकत्ता सत्ता का केंद्र होने के कारण प्रेस की आवश्यकता वहाँ पहले महसूस की गई। प्रेस का इतिहास अँग्रेजों के छापेखाने से 1766 ई० से माना जाता है। विलियम बोल्ट्स नामक डच ने सर्वप्रथम प्रिंटिंग प्रेस की आवश्यकता महसूस की, क्योंकि इसके बिना अँग्रेजों को सूचना नहीं मिल पा रही थी। परिणामस्वरूप जेम्स आगटस हिक्की ने प्रथम अँग्रेजी समाचार पत्र 'बंगाल गजट' या ' कलकत्ता जेनरल एडवेटाइजर' के नाम शुरुआत 29 जनवरी 1780 से की। भारत के प्रथम अँग्रेजी साप्ताहिक समाचार पत्र का इसे गौरव प्राप्त हुआ। पर इसमें प्रकाशित समाचारों पर तत्कालीन गर्वनर जनरल वारेन हेस्टिंग्स ने कड़ी आपत्ति प्रकट की। इसके विरूद्ध चीफ जस्टिस एलिजाह आटूम्मे ने आदेश पारित कर उन्हें गिरफ्तार करा लिया। पर हिक्की पूर्ववत् पूरे तेवर के साथ पत्रिका प्रकाशित करते और प्रशासन के विरूद्ध आग उगलते, न्याय एवं अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के लिए संघर्ष करते रहे। अंतत: मीडिया का वर्चस्व स्थापित हुआ। इनकी खोजी और निष्पक्ष समाचारों ने प्रशासन की चलें तो हिला दीं। पर उन्हें देश निकाले की सजा हुई। इस पर वे बैठे न रहे और आदेश को चुनौती देकर पुन: भारत वापस आए और पूर्ववत् पत्रिका को जारी रखा।

प्रेस के इतिहास में इसके बाद 1785 में मद्रास से 'मद्रास कूरियर' और 1791 में 'मद्रास हरकारू' का प्रकाशन हुआ। 18वीं सदी के अंत तक 19 समाचार पत्र प्रकाशित हो रहे थे। पर ये सारे समाचार पत्र अँग्रेजी में थे। भारत में हिंदी का प्रथम साप्ताहिक 'उदन्त मार्त्तण्ड' था जिसके संपादक पं० युगल किशोर शुक्ल थे। यह पत्रिका आर्थिक कठिनाईयों के कारण 4 दिसंबर 1827 से निम्नलिखित संपादकीय मन्तव्य के साथ बंद हो गया- 'आज दिवस सौं उग चुक्यों मार्त्तण्ड उदन्त, अस्ताचल को जात है दिनकर दिन अब अंत।' 30 मई 1826 से यह पत्रिका कलकत्ता में आरंभ हुआ। इसके बाद 4 सितंबर 1827 को 'बंगदूत' कलकत्ता से ही अँग्रेजी, हिंदी, बंगला और उर्दू में प्रकाशित हुआ। झारखण्ड तब बंगाल का ही एक अंग था। अनंतर पत्र-पत्रिकाओं का भारतीय भाषाओं में प्रकाशन का सिलसिला प्रारंभ हुआ।

झारखण्ड आदिवासी बहुल क्षेत्र रहा, जहाँ प्रथमत: मिशनरियों का प्रवेश हुआ। शिक्षा और चिकित्सा के माध्यम से मिशनरियाँ यहाँ के जनजीवन से जुड़ी और ईसाई धर्म प्रचार उनका उद्‌देश्य हो गया। मिशनरियों ने धर्म प्रचार की दृष्टि से पत्र-पत्रिकाओं का यहाँ प्रकाशन प्रारंभ किया। राँची बिहार की ग्रीष्मकालीन राजधानी रही और शासन-प्रशासन का उपकेंद्र भी। यहाँ 1880 से पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन प्रारंभ होता है।

झारखण्ड में पत्र पत्रिकाओं के प्रकाशन की प्रवृत्ति से इसके चार चरण स्पष्ट होते हैं। पहला 1912 में बिहार राज्य के गठन के पूर्व, दूसरा 1912 से 1936 तक बिहार से पृथक उड़ीसा राज्य के गठन, तीसरा 1936 से 2000 में बिहार से पृथक झारखण्ड राज्य के गठन एवं चतुर्थ चरण में झारखण्ड राज्य निर्माणोत्तर स्थिति।

प्रथम चरण में बिहार को बंगाल से पृथक राज्य निर्माण की माँग का आंदोलन चलता रहा। बिहार से अनेक पत्र-पत्रिकाएँ प्रकाशित हुईं। उस अवधि में झारखण्ड इस दृष्टि से पीछे रहा। यहाँ तक मिशनरियाँ ईसाई धर्म का प्रचार करने के उद्‌देश्य से पत्रिका प्रकाशित की। 1880 में रवेरेण्ड रनॉट रॉड के सम्पादन में जर्मन मिशन, राँची द्वारा ईसाई धर्म प्रचार के उद्‌देश्य से 'घर बंधु' नाम की पत्रिका का प्रकाशन प्रारंभ हुआ। मिशनरियों की बढ़ती सक्रियता और आदिवासियों के ईसाई धर्मांतरण के विरूद्ध आर्य समाज ने आवाज उठाई। समाज सुधार के आंदोलन चले। धर्मांतरित लोगों को शुद्धिकरण कर पूर्व धर्म में वापस लाने की मुहिम आर्य समाज ने छेड़ी। अप्रिल 1898 से 11 नवम्बर 1905 तक बाल कृष्ण सहाय के संपादन में आर्य प्रतिनिधि सभा, राँची द्वारा 'आर्यावर्त्त' साप्ताहिक का प्रकाशन हुआ जिसकी प्रति अभी भी आर्य समाज, राँची के पुस्तकालय में उपलब्ध है।

1 अप्रैल 1912 में बिहार बंगाल से पृथक नए राज्य का गठन हुआ। इससे बिहार की जनता खासकर शिक्षित समुदाय खुश हुआ, वहीं झारखण्ड को नाराजगी हुई। 1912 में बिहार से छोटानागपुर और संथाल परगना को पृथक न करने के विरोध स्वरूप राँची के युवा पत्रकारों ने 'बिहारी बुलेटिन' का प्रकाशन किया। 1907 से ही झारखण्ड को बिहार से अलग करने का यहाँ के बुद्धिजीवियों ने मन बना लिया जिसमें यहाँ के ईसाई मिशनरियों ने सक्रिय भूमिका निभाई। 1911 में यहाँ के मोमिनों ने झारखण्ड की माँग की थी। 1912 में राय साहब बंदी उराँव ने झारखण्ड की माँग को प्रखर रूप से आंदोलित किया। अब झारखण्ड राज्य, यहाँ भाषाओं, आदिवासी अस्मिता, नागपुरी भाषा इत्यादि को केन्द्रित कर माँगे रखे जाने लगीं और छिट-पुट

पत्रिकाओं का भी प्रकाशन होने लगा।

1918 में सुकुमार हलधर के संपादन में राँची के समाज सुधार, स्वाधीनता आंदोलन को प्रमुख विषय बनाकर 'सोशल जर्नल' का प्रकाशन प्रारंभ हुआ। इसी बीच मानव विज्ञानी शरत्चन्द्र राय आदिवासी अस्मिता के विश्वस्तरीय शोधकर्त्ता के रूप में ख्यात हुए। 1921 से उनके संपादन में चर्च रोड, राँची से उराँव, मुण्डा, खड़िया, असुर, बिरहोर इत्यादि जनजातियों पर केंद्रित मानव वैज्ञानिक अध्ययन के लिए अंग्रेजी में 'मैन इन इण्डिया' का प्रकाशन प्रारंभ हुआ जो आज तक प्रकाशित हो रहा है।

1912 में बिहार के पृथक गठन के बाद झारखण्ड में आदिवासी और झारखण्ड की भाषाओं की समस्याओं पर जोर दिया जाने लगा। 1924 में रामराज शर्मा के संपादन में अपर बाजार, राँची से 'छोटानागपुर पत्रिका' प्रकाशित हुई। इसमें झारखण्डी भाषा, उनकी समस्याओं पर आदिवासी लेखकों द्वारा लिखित आलेखों को प्राथमिकता देते हुए प्रकाशित हुई। 1932 में राय साहब बंदी राम उराँव के संपादन में 'छोटानागपुर उन्नति समाज' की ओर से 'आदिवासी समाचार पत्र' प्रकाशित हुई। इसी बीच 1936 में बिहार से पृथक उड़ीसा राजय का गठन हुआ। इसने झारखण्ड आंदोलन को और तीव्र कर दिया। आदिवासियों में नए-नए नेता निकलने लगे और पूरे दम-खम के साथ छोटानागपुर, संथाल परगना के वन प्रदेश और बंगाल, उड़ीसा तथा मध्य प्रदेश के कतिपय जिलों को मिलाकर वृहत्तर झारखण्ड की माँग करने लगे।

इस प्रकार 1937 से 2000 की अवधि-झारखण्ड राज्य के लिए आंदोलन और संताली, मुंडारी नागपुरी, खोरठा इत्यादि भाषाओं के विकास के लिए मुहिम चलती रही।

नवम्बर 1937 से बड़ाईक ईश्वरी प्रसाद के संपादन में गुमला से झारखण्ड की समस्याओं एवं भाषाओं के विकास पर केंद्रित 'झारखण्ड' पत्रिका का प्रकाशन हुआ

आदिवासी को केंद्र बनाकर 1938 में 'आदिवासी' पाक्षिक संपादक राय साहब बंदी राम उराँव एवं जुलियस तिग्गा के संयुक्त संपादन में आदिवासी महासभा की ओर से प्रकाशित हुई जुलाई 1940 में 'आदिवासी सकम' जिसका संपादन जयपाल सिंह ने किया। यह जमशेदपुर से हिन्दी, अंग्रेजी, बंगाली, नागपुरी एवं अन्य जनजातीय भाषाओं में एक साथ हुआ। यह आदिवासी महासभा का मुख्य पत्र था। यह झारखण्ड पृथक राज्य आंदोलन का मुखर पत्र था। पुन: दिसंबर 1947 में इग्नेस कुजुर एवं अनन्तर इग्नेस बेक के संपादन में राँची से 'अबुआ झारखण्ड' प्रकाशित हुई। 1950 से यह झारखण्ड पार्टी का मुख्य पत्र रहा। जून 1968 में इग्नेस कुजुर ने 'अबुआ झारखण्ड की तरह झारखण्ड आन्दोलन पर केंद्रित 'झारखण्ड समाचार' निकाला। 1971 में डालटेनगंज से डॉ० बी०पी० केशरी ने 'जय झारखण्ड' का प्रकाशन प्रारंभ किया जो पृथक झारखण्ड के साथ नागपुरी भाषा के विकास पर केंद्रित था।

इस समय झारखण्ड के प्रकाशित पत्र-पत्रिकाओं का विश्लेषण किया जाय तो स्पष्टत: दो प्रवृत्तियाँ पाई जाती है प्रथम् राजनीतिक पत्र-पत्रिकाएँ जिनका उद्देश झारखण्ड पृथक राज्य की माँग को बदल देना और दूसरा भाषा और संस्कृति के स्तर पर पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से नेपथ्य में रहकर उसे शक्ति और समर्थन प्रदान करना। इसके अतिरिक्त ईसाई धर्म एवं समाचार से जुड़ी 'सत्संग' पत्रिका पीटर शाँति नवरंगी के कुशल संपादन में मनरेसा हाउस, राँची से 1937 से 1954 तक प्रकाशित हुई। इसमें छोटानागपुर का इतिहास धारावाहिक प्रकाशित हुई।

फरवरी 1947 से कथाकार राधाकृष्ण के संपादन में 'आदिवासी' नामक पत्रिका प्रारंभ के चार अंक नागपुरी भाषा में प्रकाशित होने के बाद हिंदी में निकलने लगी। यह बिहार सरकार के जनसम्पर्क विभाग की पत्रिका है।

इस मध्य संताली, मुण्डारी, नागपुरी, खोरठा, हिंदी से जुड़ी पत्रिकाएँ भी प्रकाशित हुई जिनमें प्रमुख हैं-

1. होड़ संवाद-1947 से देवघर एवं बाद में दुमका से डॉ० डोमन साहु 'समीर' एवं अनंतर बाबू लाल मुर्मू 'आदिवासी' के संपादन में संताली भाषा और साहित्य के लिए प्रकाशित हो रही है।

2. जगर सड़ा-सुशील कुमार बागे के संपादन में मुण्डारी भाषा में राँची से प्रकाशित हुई।

3. नागपुरी-1961 से योगेन्द्र नाथ तिवारी के संपादन में नागपुरी भाषा साहित्य की पत्रिका प्रकाशित हुई।

4. तितली-1963 में बी-एन० ओहदार एवं झारपात के संपादन में खोरठा भाषा साहित्य की पत्रिका प्रारंभ हुई।

5. नागपुरी महिनवारी कागज- 1964 में योगेन्द्र नाथ तिवारी के संपादन में नागपुरी भाषा परिषद्, राँची की पत्रिका प्रकाशित हुई।

6. नागपुरिया समाचार-अक्टूबर 1966 में लक्ष्मी नारायण तिवारी के संपादकत्व में राँची से नागपुरी भाषा में आरंभ हुआ।

7. राँची एक्सप्रेस-15 अगस्त 1963 से बलवीर दत्त के संपादन में राँची से हिंदी साप्ताहिक के रूप में प्रकाशित होना प्रारंभ हुआ। अगस्त 1976 से यह दैनिक हो गया। यह पत्र अब भी नियमित रूप से प्रकाशित हो रहा है। 'राँची एक्सप्रेस' को झारखण्ड के प्रथम दैनिक अखबार का गौरव प्राप्त है।

8. छोटानागपुर संदेश-1976 से भुवनेश्वर अनुज के संपादन में झारखण्ड भाषा, साहित्य, कला, इतिहास एवं संस्कृति पर केन्द्रित साप्ताहिक पत्रिका प्रकाशित होती रही।

9. शंखनाद-1977 से रामजीत सेनापति के संपादन में सिमडेगा से नागपुरी भाषा साहित्य के संबर्द्धन हेतु प्रकाशित हुई।

10. संवाद-1980 से शिशिर कुमार लाल के संपादन में विकास मैत्री राँची से नागपुरी-हिंदी में प्रकाशित हुई।

11. जोहार-1980 में रेव० दिलवर हंस के प्रधान संपादकत्व में त्रैमासिक पत्रिका बिहार सरकार की ओर से प्रकाशित होती रही जिसमें झारखण्ड के सभी भाषाओं को स्थान मिलती रही।

12. कचनार-1982 से नन्दू रामनन्देश के संपादन में हिनू, राँची से नागपुरी भाषा पर केंद्रित पत्रिका प्रकाशित हुई।

13. डहर- 1982 से ईश्वरी प्रसाद के संपादन में छोटानागपुर सांस्कृतिक संघ, राँची द्वारा यहाँ के सांस्कृतिक विरासत को उजागर करने हेतु प्रकाशित हुए। झारखण्ड पर इसके कई विशेषांक निकले हैं।

14. स्मारिका-1982 से अनवरत योगेन्द्र नाथ तिवारी के संपादन में नागपुरी तथा अन्य झारखण्डी भाषाओं में प्रकाशित हुई। बाद में डॉ० राम कुमार तिवारी के संपादन में 'संगम पत्रिका' का रूप धारण किया। यह नागपुरी कला संगम का मुख्य पत्र है।

15. स्मारिका-1986 में विकास भारती की ओर से झारखण्ड के वन विशेषांक के रूप में निकली।

16. पझरा-1985 से लालरण विजय नाथ शाहदेव के प्रधान संपादन में नागरी प्रचारिणी सभा, राँची की ओर से नागपुरी तथा समस्त झारखण्डी भाषा साहित्य के विकास के लिए निकली। इसमें झारखण्ड आंदोलन को साहित्य के माध्यम से उत्प्रेरित किया गया। इसमें नागपुरी भाषा मानकीकरण पर विशेष जोर दिया गया।

17. सूर्य प्रभात-1987 में ललित कुमार कच्छप के संपादन में राँची से झारखण्ड विषय पर प्रकाशित हुई।

18. कोयनार-1992 में राकेश रमण के संपादन में रातू, राँची से नागपुरी हिन्दी में ग्रामोदय एवं सांस्कृतिक जागरण के उद्देश्य से निकाली गई।

19. जनहक-1997 में फैसल अनुराग के संपादन में राँची से देशज प्रसंगों को गंभीरता से रखा गया।

20. आस्था-1997 से 2001 तक जमशेदपुर से झारखण्ड की सांस्कृतिक धरोहरों को उजागर करने के लिए प्रकाशित की गई।

इसके अतिरिक्त देवघर से हिन्दी में बिहारी वाणी, सतवती, (पाक्षिक), बंगला में आलोचना मासिक, संताली में पेरा होड़ साप्ताहिक, डालटेनगंज से साप्ताहिक हलधर, नया समाज, हजारीबाग से साप्ताहिक छोटानागपुर एक्सप्रेस, गिरिडीह से गिरिडीह टाईम्स, राँची से अँग्रेजी में सेन्टिनेल साप्ताहिक, राँची रोटेरियन साप्ताहिक, कोल एण्ड स्टील, अर्द्ध साप्ताहिक, ईव (मासिक), क्लर्गी (मासिक), त्रैमासिक हाईलैण्ड व्यू, हिंदी में राँची टाईम्स (साप्ताहिक), ग्राम निर्माण (साप्ताहिक), प्रहरी दुर्गा (मासिक), उपदेश रूपरेखा (मासिक), ग्राम गुरु (मासिक), निष्कलंक (मासिक) बंगाल में द्वैरात (त्रैमासिक), संताली में मारसाल्ताबोन, धनवाद से 'दी न्यू स्केच (साप्ता०), कोलफिल्ड टाईम्स (साप्त०) रोटेरियन बुलेटिन (साप्ताहिक), हिंदी में आवाज, जनमत, बिहार भूमि, खान मजदूर, किसान मजदूर, युगांतर तथा ज्ञानदीप सभी साप्ताहिक, जुगसलाई से अँग्रेजी में डेमोक्रेट तथा जमशेदपुर से एन०एमएल० टेक्निकल जनरल (त्रैमासिक), हिंदी में आजाद मजदूर (साप्त०) एवं नया रास्ता इत्यादि के प्रकाशन की जानकारी मिलती है।

नवम्बर 2000 में एक लम्बे संघर्ष के बाद बिहार से पृथक झारखण्ड नए राज्य का गठन हुआ। झारखण्ड निर्माण के पूर्व एवं बाद में अनेक पत्र-पत्रिकाओं की बाढ़ आ गई है। इनमें कतिपय उल्लेखनीय है जैसे-हीरा नागपुर नव निर्माण, झारखण्ड टाइम्स, छोटानागपुर मेल, शालपत्र, ग्रामदूत, सरनाफूल, बनफूल, प्रभात खबर (दैनिक), हिन्दुस्तान (दैनिक), आज, दैनिक जागरण, हिन्दुस्तान टाईम्स (अँग्रेजी), झारखण्ड न्यूज, राँची टाइम्स, युगश्री, राँची न्यूज, न्यू रिपब्लिक, राँची संवाद, छोटानागपुर दर्शन, बिरसा टाइम्स, न्यू मेसेज, राँची वीकली, नारी संवाद, अपनी राँची, सत्यसिंधु पाक्षिक, आल वेल न्यूज (साप्ताहिक), दृश्यज्ञान, विरसावाणी, राँची मेल, दृष्टिपात, हूल जोहार, वनांचल प्रहरी, छोटानागपुर न्यूज, झारखण्ड टूडे, तरंग भारती, झारखण्ड विचार, ग्राम गुरु, छोटानागपुर दूत, पुटुस, कांची, उलगुलान, युद्धरत आम आदमी, पलामू टाईम्स, पलामू दर्शन, शबरी, तुतंग (हो भाषा), सेंतेंग (मुण्डारी), जोहार सकम (हो), लुआठी (खोरठा), तितली (खोरठा), सर्विनामा (कुरमाली) नवा विहान (पंचपरगनिया), हजारीबाग टाइम्स, बोकारो टाइम्स, धनवाद रश्मि, इंजोर (खोरठा), साहबगंज एक्सप्रेस, प्रगतिवार्ता (साहेबगंज), गोड्डा टाइम्स, गुमला टाइम्स, जोहार सहिया मासिक इत्यादि पत्र-पत्रिकाएँ निकल रही हैं। उर्दू पत्रकारिता में भी झारखण्ड का अवदान उल्लेखनीय है। 'फारूकी तंजीम' राँची से पहला उर्दू अखबार निकली। यहाँ से 'अखबारे मशरिक' जो कलकत्ता आधारित है प्रकाशित हो रही है। इन दिनों 'कौमी तंजीम' भी राँची से प्रकाशित हो रही है। 'संगम' अखबार भी पटना से राँची के लिए छप रही है। राँची से एक और दैनिक उर्दू अखबार 'सियासी उफूक' निकल रही है। एक पाक्षिक उर्दू 'सदाए झारखण्ड' का भी प्रकाशन हो रहा है।

2000 में नवगठित झारखण्ड राज्य के गठन के बाद यहाँ की पत्र-पत्रिकाएँ समाचार प्रकाशित कर रहे हैं। राजनैतिक भ्रष्टाचार से झारखण्ड त्रस्त है और भविष्य अंधकारमय। संप्रति यहाँ के अखबार इन सारी समस्याओं पर विस्तार पूर्वक विचार कर रहे हैं। यह पत्र-पत्रिकाएँ जन ससमयाओं को मुखरता से रख रहे हैं और अपनी कठोर टिप्पणियों से राजनेताओं की आँखों में ऊँगलियाँ डाल मार्गदर्शित भी कर रही हैं। इतना होते हुए भी आज पत्रकारिता व्यवसायिक हो गई है और समाचार परोसने का कार्य कर रही है। उनका अपना लाभ सर्वोपरि है फिर भी पत्रकारिता से पूरे समाज को अब भी अपार अपेक्षाएँ हैं।

संपर्क : बी-140, हरमू, राँची, (झारखण्ड)

●

पत्रकारिता की लक्ष्मण रेखा

○ सिद्धेश्वर

३० एवं ३१ अक्टूबर २००८ को नई दिल्ली में आयोजित राष्ट्रीय विचार मंच एवं 'विचार दृष्टि' के दो दिवसीय राष्ट्रीय अधिवेशन में एडिटर्स गिल्ड ऑफ इंडिया के अध्यक्ष आलोक मेहता की अध्यक्षता में 'पत्रकारिता की लक्ष्मण रेखा' विषय पर संपन्न शैक्षिक सत्र में 'विचार दृष्टि' के संपादक द्वारा प्रस्तुत यह बीज वक्तव्य है जिसके तथ्यों को केंद्र में रखकर देश के विभिन्न क्षेत्रों से पधारे विद्वान प्रतिनिधियों ने अपने विचार व्यक्त किए । – उप संपादक

पत्रकारिता अपने समय का इतिहास होती है, मगर कभी-कभी युग विशेष की आवश्यकता के अनुरूप यह इतिहास अपने आप में कालजयी दस्तावेज़ होता है। राष्ट्रीय चेतना की वैचारिक संस्था 'राष्ट्रीय विचार मंच' और उसके मुख-पत्र 'विचार दृष्टि' के द्वितीय राष्ट्रीय अधिवेशन में 'पत्रकारिता की लक्ष्मण रेखा' विषय पर ऐसे समय में विचार हो रहा है जब मीडिया को लेकर एक नई तरह की बहस छिड़ी हुई है, खासकर विभिन्न टी.वी. चैनलों द्वारा प्रसारित 'ब्रेकिंग न्यूज' कई तरह के सवालों के घेरे में है और पत्रकारिता की आचार संहिता को लेकर सवाल उठाए जा रहे हैं।

यह कहने की आवश्यकता नहीं कि साहित्य और पत्रकारिता मानवता के पक्ष में निर्णायक भूमिका निभाने में समर्थ है और परंपरा का बोध एवं आधुनिकता की चेतना का अनोखा और अनूठा संबल है। इसके जरिए विचार मंथन अथवा विचार-वितर्क किया जा सकता है, ताकि उस मंथन से मक्खन के रूप में विवेक प्राप्त हो सके। दौड़ना अच्छा है, लेकिन यह तय करने के बाद कि किस दिशा में दौड़ना है, पत्रकारिता ऐसी स्थिति में दीपक का काम करेगी, क्योंकि इसके द्वारा प्रज्ज्वलित दीपक के आलोक में मानव अधिकार और मानव गरिमा की झलक दिखेगी।

नि:संदेह आजादी के बाद मुद्रण, साज-सज्जा और प्रस्तुति से लेकर विषयों की विविधता, समाचार विश्लेषण और सूचना प्रवाह में हिंदी पत्रकारिता का इन मायनों में काफी विकास हुआ तथा उसका प्रसार भी तेजी से हुआ है, लेकिन यह भी सच है कि पिछले एक-डेढ़ दशक से भारतीय पत्रकारिता बाजार की गिरफ्त में है। राष्ट्रीय आंदोलन की पत्रकारिता की मुख्य धारा आज की पत्रकारिता से अलग थी। तब साहस, जोखिम, निष्ठा, समर्पण और ईमानदारी अधिक थी। आज की पत्रकारिता में भी अपवाद ज़रूर है, किंतु वह पत्रकारिता की मुख्य प्रवृत्ति नहीं है। पत्रकारिता और पत्रकारों पर पूँजी पूरी तरह हावी होने की वजह से वह उसे अपने रंग में तेजी से रंग रही है। यही वजह है कि उनके लेखन में पहले की प्रतिबद्धता, चतुर्दिक ज्ञान व मिशनरि उत्कंठा कंप्यूटर, इंटरनेट आदि लेते जा रहे हैं। जुगाड़ संस्कृति में माहिर होना उसकी प्रबंधकीय विशेषता है। इन क्षेत्रों में बौद्धिक बौनापन बढ़ रहा है। दरअसल, आधुनिकताजन्य मूल्यहीनता से आज का समाज और व्यक्ति पीड़ित होकर उसके समक्ष बौना होने का अहसास करता है। आज व्यक्ति व समाज मज़हब, जाति और रूढ़ियों एवं अँधविश्वास की दुहाई देता हुआ पहले से कहीं ज्यादा संवेदनशून्य और उसकी समस्याएँ ज़्यादा घनीभूत हो गई हैं। सत्ताश्रित, धनाश्रित और संस्थाश्रित शक्तियों ने भारतीय लोकतंत्र को वास्तव में भीतर से खोखला कर दिया है। ऐसे में लोकतंत्र के चौथे प्रहरी के रूप में देखे जाने वाले संचार माध्यमों की भूमिका अहम हो जाती है, क्योंकि पत्रकार हो या रचनाकार, सामान्य जन के बीच रहने वाला वह सचेष्ट व्यक्ति है, जो सामाजिक उद्वेगों, हलचलों तथा संवेगों को एक निरपेक्ष द्रष्टा के रूप में ग्रहण कर चिंतन के आम्यंत्रिक दोहन से प्रसूत भावों व विचारों की सार्थक अभिव्यक्ति समाज के हितार्थ करता है। उसकी अभिव्यक्ति की प्रभावशीलता उसकी अनूभूति व तद्जन्य स्फूरण की तीव्रता पर निर्भर करती है। यही वह तत्त्व है, जो उसे सामान्य व्यक्ति से अलग कर विशेष स्तर प्रदान करता है और साथ ही उसकी सदिच्छा, सहृदयता एवं सोच को परिलक्षित करता है। मगर आज जिस प्रकार समाज और साहित्य के बीच बढ़ती खाई गंभीर चिंता का विषय है उसी प्रकार पत्रकारिता और पाठक के बीच भी खाई बढ़ती जा रही है, कारण कि पाठकों के समक्ष मसालेदार एवं चटपटी चीजें परोसने से पठनीय सामग्रियाँ घटती जा रही हैं, जो चिंता का विषय है। पत्रकारिता की परंपरा का लोप होने से पत्रकार की छवि धूमिल होती जा रही है और पत्रकारिता के आदर्श समाप्त होते जा रहे हैं, क्योंकि पत्रकार न तो आज ईमानदार हैं और न परिश्रमी। सच तो यह है कि पत्रकार जब ईमानदार के साथ परिश्रमी भी होता है, तो उसके पत्र की दिशा बदल जाती है और उसके पत्र को दिशा नहीं खोजनी पड़ती है, मगर आज की पत्रकारिता में सब कुछ उल्टा-पुल्टा चल रहा है। आख़िर कहीं तो पत्रकारिता की लक्ष्मण रेखा होनी चाहिए।

आगामी काल के पत्रकारों को सबसे पहले अपने सामान्य पाठकों के प्रति प्रतिबद्ध होना पड़ेगा, क्योंकि उनकी अभिरुचि चौंकाने वाले अथवा राजनेताओं व सत्तासीनों से अधिक मानवीय संवेदनावाले समाचारों में होगी। वे ही पत्रकार टिकाऊ होंगे, जो दिन-ब-दिन के राजनीतिक उठापटक से

परे मानवीय संबंधों की बात करेंगे। उन्हीं के लिए क़लम उठाएँगे, क्योंकि आगामी काल की चुनौतियाँ केवल राजनीतिक, सामाजिक व आर्थिक ही नहीं होंगी, बल्कि नैतिक व चारित्रिक भी होंगी।

मगर दु:खद स्थिति यह है कि आज की पत्रकारिता महज़ एक व्यवसाय बनकर रह गई है। व्यवसाय तो लाभ-हानि का खेल है। आज की पत्रकारिता में चटपटापन और प्रचार घुस गया है और अवसरवादिता ने अपनी जड़ें जमा ली हैं। सुप्रसिद्ध वरिष्ठ पत्रकार राजकिशोर का भी मानना है कि मौजूदा दौर के समाचार-पत्रों की दिलचस्पी बुराई का विस्तृत से विस्तृत वर्णन करने में इसलिए होता है कि पाठकों का दिल बहलता रहे। यहाँ तक कि इलेक्ट्रॉनिक मीडिया भी बुराई पर पलता है, किंतु राजकिशोर जी का मानना है कि जो बुरा, गंदा या अश्लील है, वही वास्तविकता नहीं है। वह वास्तविकता का एक हिस्सा मात्र हो सकती है। अच्छाई वास्तविकता का दूसरा और बड़ा हिस्सा है। बुराई दिखाने का समर्थन इस तर्क से किया जाता है कि जनता जो देखना चाहती है वही हम दिखाते हैं। किंतु यह व्यवसाय का तर्क है, कला या पत्रकारिता का नहीं। बेशक बुराई में मज़ा है और सनसनी है, मगर अच्छाई में भी मज़ा है और सनसनी भी कम नहीं है। मुश्किल यह है कि अच्छाई को उद्योग नहीं बनाया जा सकता, क्योंकि यह उसकी सिफ़त में नहीं है। इसलिए आज जरूरत इस बात की है कि नकारात्मक प्रवृत्तियों से लड़ते हुए उसे सकारात्मक प्रवृत्तियों में बदलने की कोशिश की जाए और पाठक व श्रोता के समक्ष सच प्रस्तुत करने में पत्रकारिता अपनी ऊर्जा लगाए। मगर सच तो यह है कि सच देखने की क्षमता न हममें है, न ही सच दिखाने की मंशा मीडिया तंत्र की। उसे तो बस खबर की जगह मनोरंजन से वास्ता है। दरअसल, भारतीय मानसिकता स्वरचित नजरबंदी में जी रही है।

संचार माध्यम समाज को दर्पण दिखाने और मजबूत तथा शक्तिशाली को बेलगाम होने से रोकने का दावा करने वाली संस्था है। मीडिया सच दिखाने का दावा करता है, पर मीडिया को समाज के किसी भी अनकहे सच को दिखाने के लिए अधिकाधिक बयान, बाइट्स, चेहरे और फुटेज की जरूरत होती है। उसके पास सच के ऐसे अनकहे पहलू भी हैं जिसे वह खुद-व-खुद नहीं दिखा सकता। उसे दिखाने के लिए मीडिया को विश्वस्त बयान चाहिए ही।

एक संस्थान के रूप में पत्रकारिता जनतंत्र का चौथा प्रहरी कही जाती है जिसकी अपनी एक अलग अहमियत है बशर्ते कि पत्रकारों में नैतिकता के प्रति जिम्मेदारी की भावना हो, उनमें समाज व देश के मुद्दों के प्रति चिंतन हो। मगर मौजूदा दौर की पत्रकारिता में वह सब कुछ गौण नजर आता है, क्योंकि अब तो कारपोरेट के हाथों हर चीज बेची जाती है। संपादकीय की जगह तक बेची जाती है। अब पत्रकारिता बची कहाँ? अब तो प्रेस क्लब में भी सत्ता के आसपास कौन कितना है, इसकी चर्चा होती है और किस तरह क्या हासिल हो सकता है? इस पर चिंतन चलता है। अब तो वहाँ सामाजिक चिंतन की जगह स्वहित चिंतन की बात होती है। इस प्रकार संस्थान के रूप में पत्रकारिता का स्वरूप धुमिल होता दिखाई दे रहा है और विचार का अकाल होता जा रहा है, क्योंकि आज पत्रकार महज नौकरी पेशा कर्मचारी बनता जा रहा है और मिशनरि भावना कम होती जा रही है। ऐसे में वैचारिक पत्रकारिता करने वालों का दायित्व और भी बढ़ जाता है। इस ख्याल से अधकचरे पाठकों को भरमाने वाली अनर्गल और निरर्थक खबरों से न केवल बचने का प्रयास किया जाना चाहिए, बल्कि अधिकाधिक ग्राहकों तक पहुँचने की कोशिश में हर पत्रिका की तरह साधारण, घटिया, अपरिष्कृत और अश्लील पाठकों के समक्ष न प्रस्तुत किए जाएँ, बल्कि संतुलन साधकर गिरावट लाए बगैर बेहतर और लोकप्रिय सामग्रियों का समावेश पत्र-पत्रिकाओं में किया जाए। यही नहीं पश्चिमवाद के चक्रवात से ढेर हो चुकी भारतीय संस्कृति को भी पुनर्जीवित करने का हर प्रयास किया जाना चाहिए। देश व समाज की मौजूदा स्थिति के मद्देनजर पत्रकारिता का यह नैतिक व राष्ट्रीय दायित्व बनता है कि पत्रकारिता की लक्ष्मण रेखा को नहीं लाँघने का प्रयास किया जाए, समय का यही तकाजा है।

संपर्क: संपादक, 'विचार दृष्टि', 'दृष्टि',
यू० 207, शंकरपुर, विकास मार्ग,
दिल्ली-110092,
फोन: 011-22530652, 22059410

०७ अगस्त २००८
'राष्ट्रीय विचार मंच' की हैदराबाद-शाखा की पुनर्गठित राज्य कार्यकारिणी

1. अध्यक्ष	-	डॉ० कविता वाचक्नवी
2. उपाध्यक्ष	-	श्री द्वारका प्रसाद मायछ
3. महासचिव	-	श्री चंद्रमौलेश्वर प्रसाद
4. कोषाध्यक्ष	-	डॉ० बी० बालाजी
5. संयुक्त सचिव	-	डॉ० घनश्याम
6. प्रचार सचिव	-	श्रीमती आशा देवी सोमाणी
7. सदस्य कार्यकारिणी	-	कार्यकारिणी के अन्य सदस्यों को मनोनीत करने के लिए नवगठित कार्यकारिणी को अधिकृत किया गया।

सिद्धेश्वर
पर्यवेक्षक

डॉ० ऋषभदेव शर्मा
अध्यक्ष

'विचार दृष्टि': मेरी दृष्टि में

○ अंजलि

आज जब पठनीय सामग्रियों का पत्र-पत्रिकाओं में लोप होता जा रहा है और समाचार-पत्र हत्या, बलात्कार, लूट एवं अपहरण की घटनाओं से लबरेज़ है, दिल्ली से पिछले दस साल से प्रकाशित राष्ट्रीय चेतना की वैचारिक पत्रिका 'विचार दृष्टि' आशा दीप-सा प्रेरणादायी प्रतीत होती है। आज के तकनीकी युग में जब कला-कौशल लुप्त होते जा रहे हैं, साहित्य में चटपटी और मसालेदार सामग्रियों की भरमार होती जा रही है, 'विचार दृष्टि' परिवेश की सफाई, जाति, धर्म और भाषा से ऊपर सोचने और कुछ कर दिखाने की कोशिश कर रही है, मगर जहाँ हर चीज धर्म की चाशनी में डुबोकर परोसी जाती हो, जहाँ मतों को देख मतांतर चलते हों, वहाँ कोई भी मंत्र फलित कैसे हो सकती है? यह हमारी सामाजिक विडंबना है कि हम आदर्श वातावरण और आदर्शों की चाह तो करते हैं, लेकिन एक आदर्श समाज की संरचना की नींव किस तरह से हो, यह हमारे सरोकारों में शामिल नहीं, जिसके अभाव में समस्याएँ विकट ही होती चली जाएँगी, ऐसी विषम एवं भयावह स्थिति में 'विचार दृष्टि' अपने विविध स्तंभों के लेखों के माध्यम से यह उम्मीद जगाती है कि हम स्वयं समाज की समस्याओं का समाधान ढूँढ़ कर उसे स्वस्थ बना सकते हैं। अँधेरों के खिलाफ और समाज में व्याप्त निराशाजनक छबियों का लेखा-जोखा प्रस्तुत करते हुए भी इस पत्रिका ने आशा का दामन नहीं छोड़ा है।

विगत दस वर्षों से 'विचार दृष्टि' के प्राय: सभी अंकों के आलेख न केवल विचार पक्ष को बड़ी कुशलता के साथ उद्घाटित करते रहे हैं, बल्कि वे जनमानस को उद्वेलित व आंदोलित भी करते आ रहे हैं। यह पत्रिका एक तरफ जहाँ आदमी को आदमी की तरह जीने की सीख देती है, वहीं दूसरी तरफ जाति, धर्म, भाषा और क्षेत्रीयता की भिन्नता से उत्पन्न अलगाव को इंसानियत के सेतु से पाटने का काम भी करती है। आदमी अगर आदमी की तरह जीने लगे, तो उसकी सारी संकुचितता समाप्त हो सकती है, उसकी सारी कुंठा मिट सकती है। इस प्रकार देखा जाए, तो यह पत्रिका दिन-प्रतिदिन निखरती जा रही है। सही मायने में यह अपनी तरह की पत्रिकाओं की भीड़ में अपनी एक विशिष्ट एवं अद्वितीय पहचान रखती है। दरअसल इतनी पठनीय और ऊर्जावान सामग्री संग्रहीत करना 'विचार दृष्टि' की परंपरा और दक्षता के अनुरूप तो है ही पत्रकारिता को भी बाजारवाद के निरर्थक अर्थों से मुक्त करने का प्रयास है। इसके अंकों की सामग्री देखकर मुझे खुशी इसलिए होती है कि इसने एक से बढ़कर एक विचारणीय सामग्री पाठकों को सामने प्रस्तुत कर सचमुच कमाल कर दिखाया है। इसका हर अंक एक विशेषांक-सा लगता है और आवरण साज-सज्जा नयनाभिराम।

एक समय था जब मैं न केवल इसकी सामग्रियों का कम्प्यूटर पर अक्षर संयोजन किया करती थी, बल्कि टाइप-सेटिंग से लेकर ग्राफिक्स के जरिए आवरण साज-सज्जा भी करने लगी थी और फिर कुछ वर्षों तक इसकी सहायक संपादिका का दायित्व भी मुझे सौंपा गया था। मगर एक स्त्री की जब शादी हो जाती है तब वह पारिवारिक बंधन में इस तरह जकड़ जाती है कि उसे पत्रिका जैसे संवेदनशील और महत्त्वपूर्ण कार्यों के लिए समय निकालना मुश्किल हो जाता है। मेरी हालत वही हुई। पर मैं यह उम्मीद करती हूँ कि मेरा अम्बर जब थोड़ा बड़ा हो जाए, तो पत्रिका के लिए कुछ वक़्त अवश्य निकाल पाऊँगी और इसमें नहीं कुछ तो रचनात्मक सहयोग तो कर ही सकती हूँ और वैसा करने में मैं गर्व का अनुभव करूँगी।

'विचार दृष्टि' के दस वर्ष पूर्ण होने की अवधि में इसके नियमित और सफल प्रकाशन पर जब मैं गौर करती हूँ तो इसकी सफलता के पीछे सर्वाधिक अंश मेरी पूज्यनीया माँ श्रीमती बच्ची प्रसाद का नजर आता है, क्योंकि इसके संस्थापक-संपादक मेरे पिताजी को जब जिस चीज की जरूरत महसूस हुई उसे मेरी माताश्री ने उन तक उपलब्ध कराया और पिताजी के एक हल्के इशारे पर उन्होंने घर के दर्द से उन्हें मुक्त कर दिया जिसके परिणामस्वरूप लिखने-पढ़ने तथा 'विचार दृष्टि' के संपादन-प्रकाशन के लिए इन्हें काफी समय मिल जाया करता है। जैसा कि मैंने पूर्व में कहा कि जबतक मैं श्री प्रवीण जी के साथ परिणय-सूत्र में नहीं बँधी थी पिताजी के कार्यों में ख़ासकर पत्रिका की सामग्रियों के अक्षर-संयोजन तथा सूचिकाओं को व्यवस्थित ढंग से रख-रखाव में अपेक्षित सहयोग करती रही और खुद पटना विश्वविद्यालय के मगध महिला महाविद्यालय में अध्ययनरत रहते हुए भी पिताजी को पढ़ने-लिखने की सुविधाएँ एवं संदर्भ ग्रंथों को मुहैया कराती रही। मेरी शादी होने के पश्चात् वह सारा दायित्व विरोधी भूमिका तथा ना-नुकुर के बावजूद मेरी माँ संतुलित ढंग से संभाल रही हैं और पिताजी को घर के हर बोझ से मुक्त रखने और निश्चिंत करने में अपनी भूमिका बखूबी निभा रही हैं। इस प्रकार देखा जाए तो 'हर सफल पुरुष के पीछे एक नारी का हाथ होता है' इस कथन को शत प्रतिशत मेरी माँ चरितार्थ कर रही हैं। अतएव जहाँ तक मैं समझती हूँ 'विचार दृष्टि' में जो भी संपादक का श्रम और इनकी कार्य-कुशलता काम आ रही है उसका महत्त्वपूर्ण श्रेय मेरी माँ को अवश्य जाता है जिसे मेरे संपादक पिताजी भी मुक्त कंठ से स्वीकार करते हैं और कई बार तो ऐसा देखा-सुना गया है कि सार्वजनिक स्थलों तथा सभा-संगोष्ठियों में भी मेरी माँ के प्रति अपनी कृतज्ञता के भाव व्यक्त करने में पिताजी नहीं हिचकिचाते। यह उनकी सदाशयता का द्योतक है, वरना आमतौर पर आज वैसा कहाँ देखने-सुनने को मिलता। वैसे सच कहा जाए, तो मेरी आदरणीया भाभी श्रीमती सुनीता रंजन का भी परोक्ष रूप में 'विचार दृष्टि' के सफल प्रकाशन में योगदान इस मायने में सराहनीय माना जाएगा कि दिल्ली प्रवास के दौरान वह भी वहाँ के घर के कार्यों से उन्हें न केवल मुक्त रखती हैं, बल्कि पिताजी के खान-पान का पूरा ख्याल रखती हैं। भैया श्री सुधीर रंजन जी से उन्हें तकनीकी सहयोग मिल जाता है। विचार दृष्टि हर दृष्टि से अपनी एक विशिष्ट पहचान बनाए रखे, 'विचार' एवं 'दृष्टि' शब्द को सच्चे अर्थ में चरितार्थ करती रहे, सहयोगी रचनाकार अपनी समर्थ रचनाओं से पत्रिका के भंडार को भरते रहें, मेरे श्रद्धेय चाचा उप संपादक डॉ० शाहिद जमील, सहायक संपादक श्री उदय कुमार 'राज़' का अपेक्षित सहयोग इसे सदैव मिलता रहे और विचार प्रधान होकर भी पत्रिका की सामग्रियों में रसवत्ता बनी रहे, बस इसी कामना के साथ पत्रिका के दस वर्ष पूरे होने पर इससे जुड़े सभी सदस्यों को बधाई देते हुए अपनी कलम को विराम देती हूँ।

संपर्क: द्वारा श्री नंदकिशोर नयन
मकान नंबर 153ए, जनकपुरी,
गली नंबर 6, साहिबाबाद,
ग़ाज़ियाबाद-उ.प्र

स्वतंत्रता संग्राम में बिहार की उर्दू पत्रकारिता का योगदान

○ डॉ0 सैयद अहमद कादरी

1857 के विद्रोह को अँग्रेज़ी शासकों के द्वारा जिस कठोरता, बर्बरता और बेदर्दी से दबाने और कुचलने का प्रयास किया गया तथा लिखने और बोलने के अधिकार पर बरतानवी पहरे बिठाए गए, इससे भारतवासियों के दिल-व-दिमाग़ में उदासी, मायूसी और घुटन ने जगह लेने के साथ-साथ बेचैनी भी पैदा कर दिए। इसके छाए काले बादल को हटाने के लिए बिहार के कई भाषाई समाचार-पत्रों के साथ-साथ बिहार की उर्दू पत्रकारिता ने बड़ी बुद्धिमानी और होशियारी से कार्य किया तथा देश-प्रेम को जगाने एवं अँग्रेज़ों के ख़िलाफ़ नफ़रत बढ़ाने में कामयाब हुए।

1857 के विद्रोह के बाद कठोर प्रेस कानून एवं पाबंदियों का बिहार की पत्रकारिता पर काफ़ी प्रभाव रहा, परंतु इसके नर्म होते ही यहाँ से बड़ी संख्या में उर्दू पत्र-पत्रिकाएँ निकलने लगीं और भारत की स्वतंत्रता के महत्त्वपूर्ण मिशन और उद्देश्य को लेकर आगे बढ़ीं। हालाँकि इस दौरान भी उर्दू पत्र-पत्रिकाओं के प्रकाशकों एवं संपादकों को कठोर यातनाएँ झेलनी पड़ी और कठिन समय से गुज़रना पड़ा, परंतु इन लोगों ने हिम्मत नहीं हारी और एक नए विश्वास और लगन के साथ आगे बढ़ते रहे, चिराग़ से चिराग़ जलते गए और राष्ट्रीय जागरूकता को अपने-अपने अंदाज़ और विचार के साथ पूरी निष्ठा और राष्ट्रभक्ति के साथ पेश करते रहे, अंततः राजनीति, समाजी और पत्रकारिता की सतह पर लड़े जाने वाले युद्ध में कामयाबी मिली और 15 अगस्त, 1947 को हमारा भारत अँग्रेज़ों की गुलामी से आज़ाद हो गया और पूरे भारत में स्वतंत्रता की रौशनी फैल गयी।

भारत के स्वतंत्रता संग्राम में जिन उर्दू समाचार-पत्रों की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है, उनमें-"अख़्बार-उल-अख़्यार", "उर्दू इण्डियन क्रॉनिकल", उर्दू हिरालड", "अलपंच" "बिहार", "अलमुबशिर", "पैग़ाम", "इत्तेहाद", अख़्बार पटना", देहात", रौशनी" तथा "सदा-ए-आम" आदि का विशेष स्थान है। इन समाचार-पत्रों के पृष्ठ इस बात के सबूत है कि इनके लेखों, संपादकियों तथा देशभक्ति के पैग़ाम ने अँग्रेज़ शासकों की रातों की निंदें हराम कर दिया था और इतने प्रभावकारी ढंग से पत्रकारिता के कर्त्तव्य को निभाया कि उदाहरण के बेग़ैर उर्दू पत्रकारिता का इतिहास अधूरा है।

इस संबंध में "इत्तेहाद" के गौरवशाली और महत्त्वपूर्ण योगदान को विशेष रूप से याद रखना आवश्यक है। उर्दू के सुप्रसिद्ध लेखक और मिथिला विश्वविद्यालय के कुलपति डॉ० अब्दुल मोग़्नी ने "इत्तेहाद" के प्रकाशक और संपादक की सेवाओं को इन शब्दों में इस प्रकार प्रकट किया है:-

"जंग-ए-आज़ादी की सियासत और इसके नाज़ुक़तरीन अय्याम में अहमतरीन मोड़ों पर सुलतान अहमद की सहाफ़त ने मुल्क मिल्लत के आज़ाएम और आरज़ूओं की बेबाक और भरपूर तरजुमानी की है।

(मक़ालात सुलतान अहमद, पृष्ठ-3)

"इत्तेहाद" के संपादक स्वयं भारत की आज़ादी के आंदोलन में "इत्तेहाद" के योगदान का ज़िक्र इस प्रकार करते हैं:

1942 के इब्तदाई अय्याम थे, गाँधी जी ने "भारत छोड़ो" का नारा बुलंद किया और सारे मुल्क में हंगामों का सिलसिला शुरू हुआ, काँग्रेसी कारकुनों ने हिंद का चप्पा छान डाला, क़ौमी अख़्बारात ने पूरा तआवुन किया, पुरजोश मज़ामीन व मक़ालों की भरमार हुई। ख़बरों की वह उधम मची कि दास्तानों का मज़ा जाता रहा उस वक्त उर्दू सहाफ़त का नुमाइन्दा बिहार का कसीरूल-अशाअत अख़्बार अवाम की रहनुमाई करते हैं और तरजुमानी भी। "इत्तेहाद" इस तहरीक से वाबिस्ता हो गया फिर क्या था-हर जगह सफ़र-व-हिजर में इसी का ज़िक्र था, नई-नई ख़बरें, पुरज़ो मक़ालों और मज़ामीन ने क़ौम में जिंदगी व हरकत की लहरें दौड़ा दी। चुनांचे तहरीक परवान चढ़ी, मुल्क को आज़ादी मिली।

(मक़ालात सुलतान अहमद, पृष्ठ-161)

"इत्तेहाद" के साथ-साथ उर्दू दैनिक "सदा-ए-आम" की भी देश भक्ति तथा स्वतंत्रता संग्राम में महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। इस दैनिक अख़्बार का प्रकाशन 'भारत छोड़ों आंदोलन' के बाद तथा पत्रकारिता पर कठोर नियम लागू होने के बाद 09 सितम्बर, 1942 से पत्रकार नज़ीर हैदर ने आरंभ किया था, अपने आरंभिक दौर से ही यह समाचार-पत्र स्वतंत्रता आंदोलन में आगे-आगे रहा और अपने समाचारों, लेखों और संपादकियों से भारत की आज़ादी के सपने को पूरा किया, 15 अगस्त, 1947 का, इस अख़्बार का संपादकीय आज भी स्मरण योग्य है;

"महकूम व मोहताज और गुलाम व ताराज हिंदुस्तान की आज़ादी के दीवाने जोशों-अमल से सरशार ईसार व क़ुर्बानी से मामूर जज़्ब-ए-सरफ़रोशी से मख़्मूर जोरो सितम के तेग़-व-तफ़ंग के सामने सीना सिपर क़रीब सौ सालों तक जोरो इस्तबदाद के देवताओं से शहनशाहीयत व आमरियत के मुहिबों, अंग्रेज़ी.. . नेज़ाम और आहनी क़वानीन से आज़ादी की ख़ातिर, अवाम की ज़बूँहाली की इस्लाह के लिए और दुनिया की खुदमुख़्तार और बावक़ार क़ौमें में शुमार किये जाने की गर्ज़ से मुसलसल मतसादिम रहे। इन शम्मा-ए- हुर्रीयत के परवानों और मुल्क के जाँनिसारों के लिए वरतानवी दारोरसन से खेलना कोई बड़ी बात न थी। महीनों क़ैदोबंद की सख़्तियाँ झेलना, सालहासाल आहनी संलाखों में जकड़ बंद रहना डंडे खाना, बेघर-बार कर दिया जाना मालो-मता का सोख़्त हो जाना, इन को अपनी सलाए आज़ादी से दूर न रख सके। इनके अज़ाएम रासिख़ ने वरतानवी शहनश हीयत के आहन को मोम कर दिया और उनके खुलूसे क़ल्बी ने आमरियत के लार को गुलनार बना दिया। हिंदुस्तान की मायानाज़ हस्तियों को ख़ाक-व-खून ने हिंदुस्तान की भयानक रात की सियासी फ़ेज़ा के तारोपोद को बिखेरना शुरू कर दिया।"

(संपादकीय, 15 अगस्त, 1947

सदाए-आम, पटना)

''इत्तेहाद'' और ''सदा-ए-आम'' से पहले भी कई ऐसे उर्दू समाचार-पत्र-पत्रिकाएँ प्रकाशित हुईं, जिनमें अँग्रेज़ों के ज़ुल्म-व-सितम के ख़िलाफ़ बग़ावत और ग़ुलामी से आज़ादी तक की यात्रा की यातनाओं की दास्तान मिलती है। 1913 ई० से प्रकाशित पटना का उर्दू साप्ताहिक ''पटना अख़्बार'' भी इस संबंध में एक ऐतिहासिक साप्ताहिक था, जिसे हाजी साजिद अहमद जान ने निकाला था। ''अलपंच'' भी बिहार (पटना) से प्रकाशित होने वाला एक यादगार उर्दू साप्ताहिक रहा है, जिसे मुंशी मोहम्मद आज़म ने 5 फ़रवरी, 1885 से जारी किया था, उस समय जब भारत वासियों पर अँग्रेज़ शासकों के द्वारा कठोर यातनाएँ दी जा रही थीं। अँग्रेज़ों के विरूद्ध बोलना और लिखना अपराध माना जा रहा था। उस समय ''अलपंच'' जैसे उर्दू साप्ताहिक ने अँग्रेज़ों के दमन और अत्याचार के विरुद्ध ज़ुबान खोलकर साहस का परिचय इस प्रकार दिया था:-

९८ ई० का ख़ातमा व ९९ ई० का दौर

ऐ अंठानवे तू बड़ा ही मूज़ी ज़ालिम बेरहम, दग़ाबाज़ व सरकश था, तेरे मोज़ालिम का असर ज़माना-ए-दराज़ तक लोगों के दिलों पर तारी रहेगा। तेरी बेरहमी की ख़ार एक मुद्दत तक हमारे दिल में खटकता रहेगा। तेरी सरकशी के कारनामें सफ़ह-ए-तारीख़ में सेयाही से लिखे जायेंगे। ऐ-काश तू न होता, हाय तू ने हम पर आफ़तें नाज़िल की, क़हर तोड़े, बिजलियाँ गिराई, मुसीबतों में डाला जला वतन किया। एक ख़टक को ज़लज़ला में डालकर तह-व-बाला किया। हम कहाँ तक अपने जानकाह सदमों को शुमार करें, ऐसी कौन सी मुसीबत थी कि झेलनी न पड़ी और ऐसा कौन-सा सदमा था कि उठाना न पड़ा।''

(उर्दू साप्ताहिक ''अलपंच'' 30 दिसम्बर, 1898, पृष्ठ-5-6)

''अलपंच'' के विषय में पटना विश्वविद्यालय के पूर्व फारसी विभागाध्यक्ष सैयद हसन ने भी अपने एक लेख में इस बात को स्वीकार किया है कि-''अलपंच'' ने केवल अँग्रेज़ी शासन के विरूद्ध, नफ़रत और विद्रोह की आवाज़ उठाई, बल्कि देशभक्ति की भावना को बड़े प्रभावकारी ढंग से जगाया, वह लिखते हैं;

इस अख़्बार (अलपंच) ने अपने तनज़ीया व ज़रीफ़ाना मज़ामीन से न सिर्फ शख़्सी व समाजी बदअख़लाकियों की इस्लाह करने की कोशिश की, बल्कि विदेशी हुकूमत की गुलामी के ख़िलाफ नफ़रत पैदा करके हुबेवतन के एहसास और आज़ादी खवाही के जज़्बे को तरक़्क़ी देने में बड़ा हिस्सा लिया है।

(चन्द तहक़ीकी मक़ाले सैयद हसन, पृष्ठ-89)

देश प्रेम, देश भक्ति, राष्ट्रीय एकता और भाईचारे का प्रतीक पटना से ही मौलवी अब्दुल हलीम द्वारा 27 जुलाई, 1926 ई० से (सहरोज़ा) ''पैग़ाम'' प्रकाशित हुआ जिसके संपादक सैयद शाह अब्दुल मजीद थे। इस समाचार-पत्र का केवल एक अंश प्रस्तुत है, जिससे इस बात का अंदाज़ा भली भाँति लगाया जा सकता है कि इसका आशय और उद्देश्य देश की स्वतंत्रता था, जिसके लिए वह हमेशा गंभीर रहा।

जबतक इत्तेहाद व इत्तेफ़ाक़ बाक़ी था, हिन्दुस्तान के लिए एक ओर फक़त एक सियासी मतमा-ए-नज़र था। मुल्क की सारी ताक़ते हसूल आज़ादी के लिए मुत्तहिद थीं और हुर्रीयत में मस्रूफ़ थी।

(''पैग़ाम'' पृष्ठ-2, दिनांक 25.9.1926)

पैग़ाम के प्रकाशन से पूर्व एक और उर्दू साप्ताहिक ऐसा मिलता है, जिसने भारत की स्वतंत्रता को पत्रकारिता से जोड़कर भारत की स्वतंत्रता के सपने को साकार करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई और स्वतंत्रता के इतिहास में अपना नाम दर्ज करा दिया, इस उर्दू साप्ताहिक का नाम ''अलमुबाशिर'' है, जिसका प्रकाशन कब से आरंभ हुआ, इस संबंध में पूरे भरोसे से कहना मुश्किल है, परंतु इसका प्रकाशन संभवत: 18 अप्रैल, 1923 ई० से आरंभ हुआ। वली इमाम, इस साप्ताहिक के प्रकाशक तथा सैयद मंज़र अली नदवी संपादक थे। इस अख़्बार में राष्ट्रीय एकता, धर्म निरपेक्षता पर ज़ोर देते हुए एक साथ मिलकर, कंधे से कंधे मिलाकर आज़ादी प्राप्त करने पर ज़ोर दिया जाता रहा। स्वतंत्रता संग्राम के एक महत्त्वपूर्ण सिपाही मौलवी मज़हरूल हक़ के कई लेख और बयान इसमें प्रकाशित होते रहे। ''अलमुबशिर'' के प्रकाशित एक अंक का अंश इस बात का प्रतीक है कि इसका उद्देश्य क्या था, वह लिखता है;

मुसलमान रहनुमायान मुल्तक-व-मिल्लत, एक अरसे से बिरादरे वतन के दोशबदोश, वतन की ख़िदमत अंजाम दे रहे हैं। तहरीक तर्क मवालात के अय्याम में हज़ारों और लाखों की तादाद में न सिर्फ जेल गए, बल्की मुल्क की ख़ातिर तमाम क़िस्म की क़ुर्बानियाँ दीं और वह सब कुछ किया जिसका मुतालबा कौम-व-मुल्क ने किया था।

(संपादकीय ''अलमुबशिर'' 20 अगस्त 1926 पृष्ठ-3)

इन समाचार-पत्रों के अलावा भी बिहार से ऐसी बहुत सारी उर्दू पत्र-पत्रिकाएँ प्रकाशित हुईं, जिनमें भारत को अँग्रेज़ों की गुलामी से मुक्त कराने के लिए मर मिटने के हालात, हादसात और वाक़यात के साथ-साथ बदलती राजनीति, सामाजिक और सभ्यता के परिवेश का बड़े प्रभावकारी ढंग से वर्णन है, 1857 के बाद जो भी उर्दू पत्र-पत्रिकाएँ बिहार से प्रकाशित हुईं, इनका एक ही उद्देश था जिस के लिए इन समाचार-पत्रों पर अँग्रेजों के कठोर दंड और अत्याचार हुए, परंतु यह कभी अपने उद्देश्य और संकल्प से दूर नहीं हुए और अंतत: भारत की स्वतंत्रता के सपने को साकार किया। इस प्रकार हम यह कह सकते हैं कि भारत के स्वतंत्रता संग्राम में दूसरे राज्यों के मुक़ाबले उर्दू-पत्रकारिता की भूमिका वास्तव में सराहनीय थी एवं स्वतंत्रता संग्राम को चरम सीमा तक पहुँचा कर आजादी के उद्देश्य की प्राप्ति में सफलता पाई।

संपर्क: संपर्क: 7, न्यू करीमगंज, गया (बिहार)

हिंदी पत्रकारिता: तब और अब

○ डॉ0 रेखा मिश्र

हिंदी-पत्रकारिता का विगत इतिहास राष्ट्रीयता का उद्‌बोधक, संपोषक और दिग्दर्शक रहा है। अतीतकाल में सर्वश्री भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, बालमुकुन्द गुप्त, प्रतापनारायण मिश्र, बालकृष्ण भट्ट, मदनमोहन मालवीय, रूद्रदत्त शर्मा संपादकाचार्य, ईश्वरीप्रसाद शर्मा, अम्बिकाप्रसाद वाजपेयी, लक्ष्मणनारायण गुर्दे तथा अमर शहीद गणेशशंकर विद्यार्थी आदि अनेक वरेण्य पत्रकारों ने भारतीय स्वाधीनता-संग्राम को आगे बढ़ाने और तत्कालीन ब्रिटिश नौकरशाही को जड़-मूल से उखाड़ फेंकने में जो अनन्य सहयोग दिया था, वह सर्वविदित है। इस परंपरा की ज्वलन्त कड़ी के रूप में सर्वश्री माखनलाल चतुर्वेदी, कृष्णकान्त मालवीय, बाबूराव विष्णु पराड़कर, हरिभाऊ उपाध्याय, श्रीकृष्णदत्त पालीवाल, इन्द्र विद्यावाचस्पति, रामवृक्ष बेनीपुरी और सत्यदेव विद्यालंकार प्रभृति बहुत-से ख्यातनामा पत्रकारों के नाम स्मरणीय हैं। इन लोगों ने जहाँ तत्कालीन गोरी सरकार से डटकर लोहा लिया था, वहाँ अपनी लेखनी के माध्यम से जन-जागरण का उत्कट उद्‌घोष भी किया था। यहाँ तक कि उन लोगों ने जन-आंदोलन को आगे बढ़ाने के पुरस्कार-स्वरूप कारावास भोगने के अतिरिक्त अन्य अनेक नृशंस यातनाएँ भी सही थी। कुछ ऐसे पत्रकार भी उन दिनों हमारे समक्ष आदर्श के रूप में उपस्थित हुए थे, जिन्होंने न केवल सरकार से डटकर मोर्चा लिया था, प्रत्युत सशस्त्र क्रांति में लगे हुए अनेक युवकों को प्रश्रय तथा प्रोत्साहन भी प्रदान किया था। ऐसे वंदनीय पत्रकारों में सर्वश्री सखाराम गणश देउस्कर, राधामोहन गोकुलजी, पंडित सुन्दरलाल, रामरखसिंहह सहगल, विजयसिंह पथिक, सिद्वनाथ माधव आगररकर, दशरथप्रसाद द्विवेदी तथा रामचन्द्र शर्मा महारथी आदि के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

वह काल हिंदी-पत्रकारिता का स्वर्ण युग था। इन लोगों के द्वारा प्रदर्शित मार्ग पर चलकर ही अनेक पत्रकारों ने हमारी 'राष्ट्रीयता' और 'अस्मिता' की प्राणपण से रक्षा की थी। यहाँ हमें यह भी नहीं भूलना चाहिए कि राष्ट्रीय जागरण के उषा-काल में हिंदी-पत्रकारिता को प्रेरणा और प्रोत्साहन भारतीय स्वाधीनता के जनक बाल गंगाधर तिलक, महामना मालवीय और महात्मा गांधी से मिला था, वे भी मूलत: पत्रकार ही थे। यह वह समय था जब उर्दू के महाकवि 'अकबर' को यह कहना पड़ा था:

खींचो न कमानों को, न तलवार निकालो ।
जब तोप मुकाबिल हो, तो अखबार निकालो ।।

इससे आप यह भलीभाँति अनुमान लगा सकते हैं कि जो काम तीर, तलवार और तोप से नहीं हो सकते उस काम को पत्र और पत्रकार आनन-फानन में कर देते हैं। हिंदी-पत्रकारिता का जन्म कुछ ऐसे ही वातावरण में हुआ था, जब देश को सही उद्‌बोधन की आवश्यकता थी। क्योंकि हिंदी प्रारंभ से ही देश के सभी भू-भागों में समान रूप से बोली और समझी जाती थी, इसलिए सभी प्रांतों के निवासियों ने अपनी भावनाओं के प्रकटीकरण के लिए हिन्दी को ही उचित माध्यम मानकर उसमें पत्र-पत्रकाएँ प्रकाशित करनी प्रारंभ की थीं। इस प्रक्रिया में हिंदी ही नहीं, बल्कि दूसरी भाषाओं के लोग भी अपना सक्रिय योगदान देने में पीछे नहीं रहे थे। ब्रिटिश शासन की दुर्दमनीय नीतियों से आक्रानत समाज के सभी वर्गो के लोग इस क्षेत्र में आगे आए थे।

जहाँ बंगाल के जागरूक साहित्यकारों ने हिंदी-पत्रकारिता को अपनाया, वहाँ महाराष्ट्र के बुद्धिजीवी भी इस दिशा में पीछे नहीं रहे। पंजाब तथा कश्मीर के लोगों ने भी हिन्दी को ही अपनाया। बंगाल के श्री अमृतलाल चक्रवर्ती का ऐसा नाम है जिन्होंने अपनी मातृभाषा में पत्र न निकालकर हिंदी में ही जनता की सेवा करने का पावन संकल्प लिया था।

एक ओर जहाँ राजा राममोहन राय, श्यामसुन्दर सेन, अमृतलाल चक्रवर्ती तथा जस्टि्स शारदाचरण मित्र प्रभृति बंगला-भाषा-भाषी महानुभाव हिन्दी-पत्रकारिता के माध्यम से अपनी उद्दिष्ट भावनाओं का प्रचार रहे थे, वहाँ दूसरी और उर्दू की पत्रकारिता को सर्वथा तिलांजलि देकर, 'कोहेनूर' (लाहौर) के ख्यातनामा सम्पादक श्री बालमुकुन्द गुप्त ने हिंदी को सर्वथा अपना लिया था और वे कलकत्ता के 'भारत मित्र' का संपादन करने लगे थे।

राष्ट्रीय जागरण के उस प्रारंभिक काल में मुख्यत: बंगलाभाषी प्रदेश कलकत्ता से हिंदी-पत्रकारिता को जो प्रारंभ हुआ था, उसके विकास में हिंदी-भाषियों से अधिक अहिंदी-भाषियों का अधिक योगदान था। हिंदी-पत्रकारिता की सुदृढ़ पृष्टभूमि होने का सबसे बड़ा प्रमाण यही है कि इसके विकास के लिए देश के कोने-कोने में रहने वाले अहिन्दी-भाषियों ने भी उतना ही प्रयास किया था, जितना हिंदी-भाषियों ने।

महाराष्ट्र का तो हिंदी-पत्रकारिता के इतिहास में अनन्य योगदान रहा है। इसके सखराम गणेश देउस्कर, बाबूराव विष्णु पराड़ककर, लक्ष्मणनारायण गर्दे, माधवराव सप्रे, रामराव चिंचोलकर, सिद्धनाथ माधव आगकर तथा रामकृष्ण रघुनाथ खाडिलकर आदि अनेक लोगों ने हिंदी-पत्रकारिता का अपनाकर हिंदी-भाषा के स्वरूप-निर्धारण में एक महत्वपूर्ण कार्य किया था। इनमें से श्री माधवराव सप्रे तथा श्री बाबूराव पराड़कर ने तो अखिल भारतीय हिंदी साहित्य सम्मेलन के क्रमश: देहरादून (सन् 1924) तथा शिमला (सन् 1938) अधिवेशनों की अध्यक्षता भी की थी।

राजनीति-प्रधान जिन पत्रों ने किसी समय हमारे राष्ट्र की नई पीढ़ी को एक

सर्वथा उदात्त संदेश देने का कार्य किया था, उनमें श्री माखनलाल चतुर्वेदी का 'कर्मवीर' पंडित सुंदरलाल का 'भविष्य' और 'कर्मयोगी' भी अन्यतम है। इन पत्रों के संचालक श्री रामरखसिंह सहगल थे। यह 'भविष्य' की ही विशेषता है कि राजनीतिक आन्दोलनों के दौरान इसके लगभग आठ संपादकों ने जल की यातनाएँ भुगती थीं।

उस युग में जो साहित्यिक पत्रिकाऐं प्रकाशित हुआ करती थीं, उनके नाम प्राय: सत्रैण (जनाने) ही हुआ करते थे। उदाहरणस्वरूप 'सरस्वती', 'माधुरी', 'सुधा', 'मनोरामा', श्रीशारदा, 'प्रेमा' 'वीणा', 'वाणी', 'सहेली' और 'माया' आदि के नाम लिये जा सकते है।

इस प्रकार जहाँ एक ओर हिंदी के पत्रकार अपनी अपूर्व प्रतिभा और प्रखर परिश्रम से देश में राष्ट्रीय जागरण का मंत्र फूँक रहे थे, वहाँ दूसरी ओर हिंदी भाषा और साहित्य की समृद्धि की दिशा में भी वे सतत प्रयत्नशील थे। अतीत काल में अपनी राष्ट्रीय अस्मिता के संरक्षण और संवर्धन के लिए उन्होंने समसत देश में साहित्यिक पत्रकारिता के माध्यम से जो महत्त्वपूर्ण कार्य किया गया, उसीका यह सुपरिणाम है कि हिंदी साहित्य आज इतनी उन्नति कर सका है। साहित्यिक पत्रकारिता के क्षेत्र में सर्वप्रथम भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र ने अपने 'कवि-वचन-सुधा' (1868) और 'हरिश्चन्द्र मैगजीन' (1873) नामक पत्रों के माध्यम से जो ऐतिहासिक कार्य किया, कालान्तर में वही विकसित, पल्लवित और पुष्पित होकर हिंदी साहित्य की अभिवृद्धि का मुख्य मेरूदण्ड बना। हिंदी-गद्य ही प्राय: सर्वत्र प्रचलित था। 'हरिश्चन्द्र मैगनीज' का नाम बाद में बदलकर जब 'हरिश्चन्द्र चन्द्रिका' कर दिया गया तब उसमें जो रचनाएँ प्रकाशित हुई थीं, उन्हें देखकर हिंदी की साहित्यिक पत्रकारिता के विकास का सही-सही अनुमान लगाया जा सकता है।

जिन दिनों भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र काशी में अपनी इन पत्रिकाओं के माध्यम से साहित्यिक लेखन की दिशा में प्रोत्साहन देने का साहसिक अभियान रचने में संलग्न थे लगभग उन्हीं दिनों मेरठ के पण्डित गौरीदत्त ने सन् 1874 में 'नागरी प्रकाश' नामक पत्र संपादित करके हिंदी-गद्य को साहित्यिक रूप प्रदान करने की दिशा में अभूतपूर्व कार्य किया था।

'सरस्वती' का संपादन जब आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी के हाथ में (1903) आया तब से हिंदी साहित्यिक पत्रकारिता के क्षेत्र में जो क्रांतिकारी परिवर्तन होने प्रारंभ हुए, उन्होंने धीरे-धीरे हिंदी-साहित्य की सर्वांगीण समृद्धि का द्वार ही उद्घाटित कर दिया। द्विवेदी जी ने जहाँ बड़ी निर्ममतापूर्वक भाषा-परिष्कार के लिए कठोर अनुशासनात्मक सिद्धांत स्थिर किए, वहाँ साहित्य-रचना की दिशा में भी लेखकों को भारतीय समीक्षा के सिद्धांतों का अनुमान करने की ओर प्रेरित किया। इधर जहाँ द्विवेदी जी 'सरस्वती' के माध्यम से हिंदी साहित्य की बहुविध समृद्धि करने की दिशा में अग्रसर थे, वहाँ उन्होंने खड़ी बोली को हिंदी-कविता का माध्यम बनाने की दिशा में भी अभूतपूर्व प्रश्रय प्रदान किया था।

साहित्यिक पत्रकारिता की यात्रा में जहाँ 'सरस्वती' का अन्यतम स्थान है, वहाँ उससे परवर्ती काल में प्रकाशित ऐसी अनेक पत्रिकाएँ हैं, जिनहोंने केवल साहित्यिक संपदा की अभिवृद्धि को ही अपना लक्ष्य बनाया था। 'सरस्वती' तो 'विविध विषय विभूषित पत्रिका' थी, परंतु उसके बाद जो अन्य बहुत-सी पत्रिकाएँ प्रकाशित हुई थीं, वे पूर्णत: साहित्यिक सामग्री से समन्वित ही होती थीं। ऐसी पत्रिकाओं में जहाँ 'माधुरी', 'सुधा', (लखनऊ) 'श्रीशारदा', 'प्रेमा' (जबलपुर), 'लक्ष्मी' (गया), 'प्रभा' (खण्डवा वकानपुर), 'प्रतिभा' (मुरादाबाद), 'मनोरमा' (प्रयाग मण्डी धनौरा), 'ललिता' (मेरठ), 'शिक्षा' (पटना), 'भारती' (लाहौर), 'गंगा' (भागलपुर) तथा 'वीणा' (इन्दौर), आदि ने हिंदी के साहित्यिक क्षेत्र में एक सर्वथा नवीन क्रान्ति की थी, वहाँ 'इन्दु' (काशी), 'साहित्य सरोज' व 'भास्कर' (मेरठ), 'समालोचक' (जयपुर व सीतापुर), 'भारतोदय' (जवालापुर), 'सतयवादी' तथा 'ब्रह्मचारी' (हरिद्वार), 'नवजीवन' (इन्दौर), 'सर्वहित' (बूँदी), 'भारतेन्दु' (प्रयाग), 'आर्यावर्त', 'हिंदू पंच', 'समन्वय' और 'सरोज' (कलकत्ता) आदि के माध्यम से भी हिंदी की साहित्यिक पत्रकारिता को बहुत बढ़ावा मिला था।

हिंदी-पत्रकारिता के उदय-काल में भी ऐसे अनेक पत्र थे जिनमें राष्ट्रीय चेतना की उद्बोधक सामग्री होने के साथ-साथ अनेक साहित्यिक समस्याओं पर प्रकाश डालने वाली प्रचुर सामग्री रहा करती थी। 'भारत मित्र', 'बंगवासी' 'उचित वक्ता', 'मतवाला', 'सेनापति', 'स्वदेश', 'वेंकटेश्वरसमाचार', 'प्रताप' 'सैनिक', 'कर्ववीर', 'भविष्य', 'अर्जुन', 'विश्वमित्र', 'विश्ववाणी', 'मर्यादा' और 'नया समाज' आदि ऐसे अनेक पत्र हैं जिनमें हिंदी की साहित्यिक पत्रकारिता के ज्वलंत चिन्ह देखे जा सकते हैं।

कुछ ऐसी पत्र-पत्रिकाएँ भी हिंदी में प्रकाशित हुई थीं। जो किसी धार्मिक या सांस्कृतिक संस्था की ओर से निकलती थीं, किंतु उनमें भी समाज-सुधार की सामग्री के साथ-साथ साहित्यिक चेतना के स्फल्लिंग उत्पन्न करने का भी पर्याप्त प्रचार किया जाता था।

स्वतंत्रता के उपरांत अब पत्रकारिता वह नहीं रह गई है, जो पहले थी। वास्तव में यदि कभी हिंदी-पत्रकारिता का इतिहास लिखा गया तो उसमें उन सभी पत्रों और पत्रकारों का स्वर्णाक्षरों में उल्लेख किया जायगा जिसके कारण देश की तत्कालीन नई पीढ़ी में स्वाधीनता-संग्राम में कुछ कर गुजरने और मर मिटने की अभूतपूर्व प्रेरणा मिलने के साथ-साथ अपनी साहित्यिक विरासत को सुरक्षित रखने की अदम्य भावना भी उत्पन्न हुई थी। जिन दिनों हमारा देश विदेशी शासन से मुक्ति पाने के लिए संघर्ष कर रहा था, उन दिनों हिंदी के पत्रकारों में देश को स्वाधीनता दिलाने के साथ-साथ उसकी साहित्यिक विरासत को सुरक्षित रखने की भी अद्भुत आकांक्षा थी। उन्होंने

गहन-से-गहन अर्थ-संकट उठाकर भी पत्रकारिता को कभी 'व्यवसाय' नहीं बनने दिया, प्रत्युत उसे एक 'मिशन' समक्षकर ही वे उसकी अभ्लिवृद्धि में सर्वात्मना संलग्न रहे। उस युग के जितने भी पत्रकार हुए हैं, यद्यपि उनकी आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं थी, परन्तु उसे उन्होंने कभी भी अपने इस कार्य में आड़े नहीं आने दिया और निरंतर अपने लक्ष्य की ओर बढ़ते ही रहे।

हमारी पत्रकारिता का इतिहास तो स्वर्णाक्षरों में लिखा जाने योग्य है। आज पत्राकारिता का सामाजिक दायित्व पहले की अपेक्षा ज्यादा हो गया, लेकिन उद्देश्य आज भी वही है जो कल थे।

पत्रकारिता के उपयोगिता के बारे में महादेवी वर्मा- ने अपने विचार इस प्रकार व्यक्त किया है- "पत्रकारिता एक रचनाशीला विद्या है। इसके बगैर समाज को बदलना असंभव है। अत: पत्रकारा को अपने दायित्व और कर्त्तव्यों का निर्वाह निष्ठापूर्वक करनि चाहिए, क्योंकि उन्हीं के पैरों के छालों से इतिहास लिखा जायेगा।"

पत्र-पत्रिकायें समाज का दर्पण होती हैं। समाज में जो हुआ और जो हो रहा है या होगा- इस त्रिकाल से संबंधित समस्त हिसाब पत्र-पत्रिकाओं में चित्रित होता है। इस समसत कार्य विधान के पीछे पत्रकार का विशेष हाथ होता है। पत्र-पत्रिकाओं में समाज को प्रभावित करने की जो क्षमताएँ होती हैं उन समस्याओं का सशक्त स्वर अथवा प्रणेता भी पत्रकार ही होता है। पत्रकार भूत वर्तमान और भविष्य का समन्वय करता है। पत्रकार को दूसरे शब्दों में समाज की दिव्य-दृष्टि तथा समाज के सजग कान कहा जा सकता है। समाज को प्रभावित करने के लिए पत्रकार इतना श्रम करता है कि जिस श्रम के अवलंबन पर पत्रकार प्रत्येक पत्र और पत्रिकाओं को ऐसा स्वच्छ दर्पण बनाता है, जिस दर्पण में सामाजिक छवि को निहार कर समाज अवश्य ही प्रभावित होता है और इस प्रभावित प्रक्रिया के पीछ पत्र और पत्रिकाएँ ही उसका माध्यम होती हैं। पत्रकार समाज के प्रत्येक व्यक्ति की आवाज बनाता है। पर पत्रकार की आवाज और उसके दिलों की धड़कन को कोई नहीं सुनता है। जिन पत्रिकाओं की सृष्टि करता है वह समाज का सबसे बड़ा साहित्य होता है।

आज समाज में पत्रकारिता के प्रति इतनी रूचि पैदा हो गई है कि सुबह होते ही पत्रों से ही दिनचर्या आरंभ होती है। समाचार-पत्र तो जीवन में इस प्रकार घुल मिल गया है कि इसके बिना हम किसी भी दिन के शुभारंभ की कल्पना भी नहीं कर सके। शिक्षित-समाज समाचार पत्र का आदी हो गयाहै। समाज प्रेस या समाचार-पत्रों को लोकमत के वाहक या निर्माता के रूप में मानता है। इसीलिए पत्रकारिता को समाज की अभिव्यक्ति का एक सशक्त साधन या माध्यम माना जाता है।

पत्रकारिता आज के जागरूक नागरिक का अभिन्न अंग हो गया है। वह सामाजिक जनमत को प्रतिबिम्बित करता हैं समाज को उचित दिशा निर्देश देकर समाज को मनोरंजन की सामग्री देती है। पत्रकारिता सच्ची घटनाओं या वास्तविकताओं पर इस तरह प्रकाश डालती है कि अंत में वे कल्याणकारी समाज के निर्माण में सहायक सिद्ध होते हैं या बहुजन हिताय की भावना का साधन बन जाते हैं।

पत्रकारिता में जीवन के यथार्थ को अधिकाधिक रूप से समाज को प्रभावित करने की जो क्षमता होती है यदि उसमें पूर्ण सच्चाई हो तो उस क्षमता को और भी बल मिलता है और अनिवार्यत: समाज उससे प्रभावित होता है। परिणामत: व्यक्ति का निर्णय और उसका चिंतन परिवर्तित हो जाता है। पत्र-पत्रिकाओं के लेखों और टिप्पणियों में सच्चाई होने के कारण प्रभाव समाज पर अवश्य पड़ता है। पत्रिकाओं के विषय में कुछ भी हो पर उनमें तथ्य और सत्य की संगति होनी चाहिए। इस प्रकार पत्रकारिता का मनुष्य को जन्मजात प्रवृत्ति से सीधा-संपर्क जुड़ता है।

स्वाभाव के अनुरूप मानव नई-नई बातों की जानकारी चाहता है। व्यक्ति अपने अनुभवों के आधार पर अपनी जिज्ञासा वृत्ति को संतुष्ट करने के लिए अनेक साधनों का निर्माण करता है तथा उनको सहयोग में लाता है। पत्रकारिता में घटित घटनाओं के लेखा जोखा के साथ घटना के कारणों उसकी प्रतिक्रियाओं और उनकी शांति के लिए हो रहे उपायों का वर्णन किया जाता है। इन जानकारियों के माध्यम से पत्रकारिता समाज को सचेत करती हैं। पत्रिकाएँ आज के युग की लोक गुरु हैं। इस रूप में पत्र-पत्रिकाएँ आम आदमी को उसकी कर्तव्यों का बोध कराती हैं। शासक वर्ग को सतर्क करती हैं। प्रजातंत्र में पत्र-पत्रिकाओं को निर्भीकता का बल मिलता है। देश के स्वाधीनता संग्राम में पत्रकारिता का जो योगदान रहा है उसका मूल्यांकन अभी तक नहीं हुआ। यदि उस समय पत्रों ने विशेषकर देशी भाषाओं के समाचार-पत्रों ने लोक चेतना जगाने का काम न किया होता तो हमारा राष्ट्रीय आंदोलन कभी इतना सशक्त नहीं हो पाता।

आज पत्रकारिता ही समस्त विश्व का दर्पण बनकर हमारे समक्ष सही तस्वीर प्रस्तुत करने लगी है। समस्त समाचार, समाचार-पत्रों में उत्कीर्ण रहते हैं। पत्रकारिता ने मानवता के ज्ञान और चेतना में वृद्धि की है, मूक विचारों को वाणी दी है, और स्वप्नों में रंग भरा है। यह एक साधारण व्यक्ति के सामर्थ्य से बाहर की चीज है कि वह विज्ञान की खोजों और दार्शनिकों के ऊँचे विचारों को आसानी से समझ सके, पर पत्रकारिता ने उसे भी संभव बना दिया है। इसमें गहन विषयों को साधारण भाषा में प्रस्तुत किया जाता है। परिणामस्वरूप साहित्यिकों की ऊँची उड़ान, धर्म-गुरुओं का दिव्यज्ञान, वैज्ञानिकों की गहन खोज और प्रयोग को आकाश से उतारकर सर्वधारण के लाभ के लिए धरती पर ला दिया।

सपर्क: मकान नं०-40 -डी रोड नं-3,
आनंदपुरी, पश्चिमी बोरिंग कैनाल,
रोड, पटना-800001
दूरभाष:- 0612-270735
मोबाईल-9431862526

स्मृतियों में 'विचार दृष्टि'

○ मनोज कुमार

राष्ट्रीय चेतना की वैचारिक पत्रिका 'विचार दृष्टि' अपने प्रकाशन के दस वर्ष पूरे कर रही है। इस एक दशक में 'विचार' और 'दृष्टि' का यह साक्षी और दस्तावेज ही नहीं, एक हदतक मानक भी रही है। हिंदी के सुप्रसिद्ध लेखकों एवं चिंतकों की कृपा दृष्टि इस पत्रिका पर सदैव रही है। वैचारिक, साहित्यिक एवं सांस्कृतिक सारस्वत यात्रा के दौरान अपनी बेबाक व निर्भीक टिप्पणियों से पाठक भी इसका मार्गदर्शन करते रहे हैं।

मैं अपने को इस मायने में सौभाग्यवान मानता हूँ कि विगत कुछ वर्षों से मुझे भी इसके सहायक संपादक की हैसियत से पाठकों को वर्तमान के साथ अतीत से जोड़ने का मौका मिला है। इन दस वर्षों के दौरान विचार दृष्टि में ऐसी अनेक रचनाएँ प्रकाशित हुईं, जो हमारे साहित्य की अमूल्य निधि हैं। पत्रिका के विभिन्न अंकों में ऐसी बहुत-सी सामग्री बिखरी पड़ी हैं जिसे साहित्य-प्रेमी संजोकर रखना पसंद करते हैं। इसके अतिरिक्त समय-समय पर अनेक विशेषांक प्रकाशित हुए, जो पाठकों को साहित्य के एक पूरे दौर व परंपरा से भी परिचित कराते हैं। 1857 की जंगे आजादी विशेषांक की प्राय: सभी रचनाएँ उत्कृष्ट हैं और इसके लेखन की जिजीविषा प्रबुद्ध पाठक को मुग्ध करती है।

पत्रकारिता भी सहित्य की एक विधा है, मगर वर्तमान दौर की पत्रकारिता साहित्य से हटकर राजनीति और व्यवसाय का एक अस्त्र बनकर रह जाती है। भाषा, वाणी और अभिव्यक्ति द्वारा मानव चेतना को जगाने वाले साहित्य के सभी तत्त्व पत्रकारिता के उपादान भी रहे हैं। मगर साहित्य में सच का साया जहाँ दिखता है वहीं राजनीति के दांव-पेंच शुरू हो जाते हैं। साहित्य और उसकी पत्रकारिता विधा पर राजनीति आज ग्रहण जैसी बनी है जो उसकी छवि को स्पष्ट नहीं होने देती। ऐसी विषम स्थिति में भी सिद्धेश्वरजी द्वारा संपादित 'विचार दृष्टि' पत्रिका पिछले एक दशक से लगातार पत्रकारिता के आदर्शों और परंपराओं को जीवंत रख रही है। पत्रकारिता की भीड़ में 'विचार दृष्टि' की यह पारंपरिक-यात्रा स्वयं में एक अजूबा है, जो संपादक और इससे जुड़े पत्रकार की छवि को धूमिल होने नहीं देती, बल्कि सच्चाई और निष्ठा के साथ प्रवृत्त रहने की प्रेरणा देती है।

वर्तमान में इस पत्रिका का संपादन एक ऐसे पत्रकार द्वारा किया जा रहा है, जो साहित्यकार होने के साथ-साथ सामाजिक कार्यकर्ता भी हैं। पहले भी भारतीय लेखा एवं लेखा परीक्षा विभाग के कार्यालय, महालेखाकार (लेखा परीक्षा', बिहार, पटना से प्रकाशित विभागीय पत्रिका 'प्रहरी' का इन्होंने लगभग दस वर्षों तक संपादन किया। ऐसे प्रतिभावान लेखक, चिंतक-विचारक संपादक ने अपनी प्रतिभा के बल बूते 'विचार दृष्टि' का जो गौरव बढ़ाया और सन् 1999 में कल्पित भावी स्वरूप को साकार करके एक दशक तक पहुँचाया है, उसके लिए न केवल संपादक समूह, बल्कि राष्ट्रीय विचार मंच और उसके उदात्त पदाधिकारी तथा कार्यकारिणी के सभी सदस्य प्रशंसा के पात्र हैं। 'विचार दृष्टि' के संपादक छोटी-छोटी बातों में न उलझकर अपनी सोच को विकसित कर हमेशा इस पत्रिका की पठनीयता और अस्मिता में वृद्धि करने का प्रयास करते हैं। यही नहीं इस पत्रिका के माध्यम से ये आपसी प्रेम, सद्भाव व दु:ख-दर्द बाँटने की भावना को फैलाने का श्रेयष्कर कार्य कर रहे हैं, क्योंकि यही जीवन में मिठास घोलने का काम करती है और लोगों के विचार बदलने में सहायक सिद्ध होती है।

'विचार दृष्टि' के संपादक लगातार उन मुद्दों को अपने लेखन में उठाते रहे हैं जो आधुनिक स्त्री विमर्श अथवा दलित विमर्श के नाम पर जब-जब विवाद या संवाद को जन्म देते रहे हैं। यही नहीं उन्होंने मुक्त बाजार के दौर में स्त्री व दलित जीवन से जुड़े बदलावों को परखने की कोशिश की है। इधर हाल के वर्षों में इस पत्रिका के 'दृष्टि' स्तंभ के माध्यम से रिश्तों के विभिन्न पहलुओं पर इनकी धारदार लेखनी चल रही है। इस प्रकार एक पत्रकार होने के नाते संपादक की प्रत्येक विषय को खबर की तरह देखने की दृष्टि भी सामने आई है। संपादक की कलम जब ऐसा कुछ भी लिखती है, तो ऐसा प्रतीत होता है कि आधुनिक संबंधों तक पहुँचने की उनकी यात्रा किसी अन्वेषक की बजाय दर्शन की है। बेशक पिछले एक दशक में 'विचार दृष्टि' ने आधुनिक जीवन के कई गवाक्षों का बेधड़क खोलने का हौसला दिखाया है जिसमें कई सामाजिक विसंगतियाँ भी नजर आती हैं। इस पत्रिका ने देश की राष्ट्रीय राजधानी सहित राज्य की राजधानियों में भी झांकने की कोशिश की है जो प्रभावशाली होने के साथ वहाँ की संस्कृति और स्थिति का मार्मिक वर्णन करती हैं। कुल मिलाकर देखा जाए तो विगत दस वर्षों में यह पत्रिका इस देश की साहित्यिक-सांस्कृतिक परिदृश्य के अतिरिक्त सामाजिक एवं राजनीतिक परिदृश्य से भी रूबरू कराती है।

'विचार दृष्टि' पत्रिका समाज के संघर्षों, आकांक्षाओं, व्यावसायिकता के इस दौर में भी यह पत्रिका सामाजिक सरोकारों से जुड़े रहने के लिए प्रतिबद्ध है। किसी शायर की इस पंक्ति के भाव से प्रेरित होकर यह पत्रिका से चल रही है यह मानकर कि-

'वक्त मुकर्रर है रोशनी का,
ऐ अँधेरे तुझे जाना होगा ।'

दम हिलाने की प्रवृत्ति से कोसों दूर रहकर 'विचार दृष्टि' के संपादक संपर्क की भावना से सच को सच कहने पर आमादा हैं और देश के हित में हिंदी को बढ़ावा देने और इसके माध्यम से राष्ट्रीय एकता को अक्षुण्ण बनाए रखने में अपनी भूमिका निभा

रहे हैं। संपादक की हैसियत से सिद्धेश्वर जी केवल रिपोर्टिंग ही नहीं करते, बल्कि वह देश के कोने-कोने में जाकर हाथ में लेखनी के स्थान पर माइक लेकर प्रबुद्धजनों के सम्मुख सत्य को उजागर करते हुए राष्ट्रीय चेतना जागृत करने का हर संभव प्रयास कर रहे हैं। हाल ही में जून-जुलाई-अगस्त 2008 में 'विचार दृष्टि' के सहायक संपादक उदय कुमार 'राज़' के साथ इनके द्वारा की गई उत्तराखण्ड के देहरादून-मसूरी सहित बीकानेर तथा दक्षिण भारत के चार राज्यों के भिन्न-भिन्न क्षेत्रों की यात्रा इनके अभियान की एक कड़ी थी। इस प्रकार वह हिंदी के माध्यम से देश को नई सोच दे रहे हैं और जनता के बीच सीधा तालमेल बिठा रहे हैं। दरअसल, इनका नजरिया इनके भीतरी विचारों पर सकारात्मक सोच पर निर्भर करता है जिसकी झलक 'विचार दृष्टि' के अग्रलेखों व संपादकीयों में देखने को मिलती है। इनके संपादकीयों व अग्रलेखों में हम पाते हैं इनकी प्रतिबद्धता, मिशन और हिंदी व राष्ट्र के प्रति समर्पण के कई आयाम तथा ग़ज़ब की जिजीविषा नि:संदेह पत्रकारिता को इन्होंने यथार्थवादी आयाम दिया है और दी है इसे एक नई ऊँचाई। इनकी पत्रकारिता में सामान्य जन तो हैं ही संघर्षशील लोग भी हैं। स्वयं भी ये संघर्षशील हैं जिसकी झलक पत्रकारिता की क्रियाशीलता और संगठन की अटूट शक्ति में देखने को मिलती है। इनसे हमें तो प्रेरणा मिलती ही है, इनके शुभेच्छु तथा मित्रों को भी काफी प्रोत्साहन मिलता है। आज के समय में जब लोगों में विनम्रता और आत्मीयता के भाव कम होते जा रहे हैं सिद्धेश्वर जी में हम विनम्र-भाव पाते हैं और आत्म-सम्मानी इतना कि आत्म सम्मान खोकर कुछ पाना ये कभी नहीं चाहते। आखिर तभी तो लेखन और पत्रकारिता कर्म के प्रति ये निरंतरता और प्रतिबद्धता बनाए हुए समाज के समक्ष एक उदाहरण बने हुए हैं। इनकी सार्थकता इस बात में है कि अपने समय में ये स्वीकार किए जा रहे हैं। अपने सभी सहकर्मियों से अपेक्षा रखते हुए तथा पटना के छोटे-बड़े साहित्यकारों-पत्रकारों की तंगदिली बर्दाश्त करते हुए वर्तमान दौर के जहर को पीकर पचाने की अद्‌भुत क्षमता रखने में सिद्धेश्वर जी अपने पथ पर अग्रसर हैं।

न केवल 'विचार दृष्टि' ने अपने दस वर्ष की अवधि में तमाम सरोकारों, सिद्धांतों और विचारधाराओं को मद्देनजर रखा है, बल्कि व्यवसाय और व्यसन के फर्क को भी, बखूबी समझा है। इसकी दिलचस्पी रोग ठीक करने में तो रही ही है, सही-सही बीमारी और उसका इलाज बताने में भी रही है। इसने बेरोजगारी, गरीबी, अभाव, लाचारी और बीमारी की हकीकत से भी शासन और समाज की वाकिफ़ कराने का प्रयास किया है। इसे पता है कि दिन है तो रात अवश्य आएगी, धूप-छांव अलग नहीं हो सकते। इसमें समाचार और विचार की मौलिकता बरकरार है। इसके संपादक निरंतर भ्रष्ट होती सत्ता और व्यवस्था से सीधी मुठभेड़ के लिए उद्यत रहकर कुछ करना चाहते हैं इसी लिए सत्ता पर विराजमान हुकमरानों की कमजोरियाँ को भी उजागर करने से ये बाज नहीं आते। हाँ, उसकी उपलब्धियों को भी जनता के समक्ष प्रस्तुत करने में उन्होंने कभी कोताही नहीं बरती। इस प्रकार एक वैचारिक एवं सांस्कृतिक जन-जागरण में 'विचार दृष्टि' का बहुत बड़ा योगदान हो रहा है।

जहाँ तक 'विचार दृष्टि' के नियमित रूप से प्रकाशन का प्रश्न है संपादक जी के संकल्प और उनके खुद के द्वारा आर्थिक सहयोग से यह निकल रही है, क्योंकि ग्राहकों और विज्ञापनों की प्राप्ति के लिए कहीं से कोई प्रयास नहीं किया गया। 'विचार दृष्टि' पत्रिका अपने बल पर चल रही है और इसमें संपादक का स्नेह प्राप्त है, साथ ही परिवार एवं परिजनों के सुख-संतोष का यह विषय भी है। इस प्रकार आर्थिक संकट से गुजरने के बाद भी पत्रिका के पाठकों ने अपना एक रिश्ता बनाए रखा और यह रिश्ता राष्ट्रीय विचार मंच जैसी संस्था से जुड़े होने की वजह से संभव हुआ और इसने सफलतापूर्वक दस वर्ष पूरे किए, यह एक गौरव की बात है। मुझे गर्व इस बात पर होता है कि इस पत्रिका से जुड़े पत्रकारों ने इस अवधि में अपनी नैतिक, सामाजिक एवं राष्ट्रीय तथा मानवीय जिम्मेवारी का सफलतापूर्वक निर्वाह किया है। संदेह नहीं कि इसने अभावों में फाँके-मस्ती की है, मगर लोभ, सुख और सम्मान की वृत्तियों को निरपेक्ष भाव से देखते हुए सामाजिक कुप्रथाओं, अँध- विश्वासों, पाखंडों, धार्मिक कुरीतियों और व्यवस्था के भ्रष्टाचार पर प्रहार कर समाज, राष्ट्र एवं राजनीति का भी इसने सही दिशा-प्रदान की है।

दस वर्षों की अवधि में इस पत्रिका ने राष्ट्र के उत्थान-पतन पर नजर रखते हुए ध र्म, दर्शन, राजनीति और साहित्य के उत्कर्ष-अपकर्ष एवं परिवर्तनों को निर्देशित किया है। राष्ट्रीयता को प्रबल और सशक्त बनाने के लिए जनमानस को उभारने में इसका योगदान श्रेयष्कर रहा है। यही नहीं 'विचार दृष्टि' ने जीवन के प्रत्येक पक्ष पर तटस्थता और निर्भीकता से विचार करके समाज के समक्ष अपनी सम्मति दी है। इस प्रकार इसने हिंदी पत्रकारिता के भविष्य को भी अपनी चिंता का विषय बनाया है। खासकर तब जब हिंदी की अखिल भारतीय स्तर की अनेक पत्रिकाएँ काल-कवलित हो गईं और जो चल रही हैं वह भी चलाचली की वेला में है। पहले की अपेक्षा आज के दौर में शक्तिशाली हो रही इस पत्रिका से आगे भी यह उम्मीद की जाती है कि ऐसे वक्त जब श्रेष्ठ आचरण के आदर्शों की ध ज्जियाँ उड़ाने में भारतीय राजनेता सबसे आगे हैं और संवैधानिक संस्थाएँ अपने दायित्व का निर्वहन करने में सक्षम नहीं हो पा रही है 'विचार दृष्टि' से जुड़े पत्रकार लोकतंत्र के चौथे प्रहरी के रूप में इसे प्रस्तुत करने में कोई कोर-कसर उठा नहीं रखेंगे। पत्रकार-जगत को भी इससे यही अपेक्षा की जाती है। मैं भी इसके नियमित और स्तरीय प्रकाशन में हर संभव सहयोग करने का विश्वास दिलाता हूँ। मेरी शुभकामना सदैव इसके साथ है।

संपर्क: प्रगतिनगर,
आई.ओ.सी.रोड, सिपारा,
पटना-1

जनसंचार माध्यमों की वर्तमान दशा एवं दिशा

○ जे0पी0एस0 'दयानिधि'

सृष्टि के आदि काल से ही मानव की तीन मूलभूत समस्या रही है, रोटी, आवास और वस्त्र! किन्तु जैसे-जैसे मानवता का विकास होता गया उनकी आवश्यकतायें बढ़ती गयी। आज के दौर में जिस व्यक्ति के पास सबसे अधिक सूचना अथवा जानकारी है वह सबसे अमीर व्यक्ति है। जनसंचार माध्यमों के विकासात्मक स्थिति से कमो-वेश सभी परिचित हैं। अस्तु उसकी विस्तृत चर्चा करना यहाँ समीचीन प्रतीत नहीं होता। फिर भी समाचार माध्यमों की वर्तमान दशा एवं दिशा पर व्यापक विचार करने की आवश्यकता है। क्योंकि यह वह सशक्त माध्यम है जिसने संपूर्ण भू-मंडल को एक विश्वग्राम के रूप में परिणत कर दिया है। जनसंचार के दो सबसे सशक्त आधार स्तम्भ हैं- पहला इलेक्ट्रॉनिक माध्यम दूसरा मुद्रित माध्यम।

(1) <u>इलेक्ट्रॉनिक माध्यम</u> :- इलेक्ट्रॉनिक माध्यम मूलत: चार भागों में विभक्त हैं यथा-(1) दूरदर्शन (2) आकाशवाणी (3) सिनेमा (4) इन्टरनेट आदि। संचार क्रांति के सूत्रपात् का श्रेय इलेक्ट्रॉनिक समाचार माध्यमों को दिया जाना अतिशयोक्ति नहीं होगी। 80 के दशक के अन्त में जब भारत में सेटैलाइट टीवी की शुरूआत हुई और विदेशी चैनलों का भारत में प्रसारण शुरू हुआ। तब से भारतीय सामाजिक विचारधारा में आमूल-चूल परिवर्तन परिलक्षित होने लगा है। स्टार टी0वी0, एम0टी0वी0, बी0टी0वी0, जी0टी0वी0 और दुनिया भर के सैकड़ों चैनलों ने पश्चिमी प्रभाव से भरपूर कार्यक्रमों द्वारा भारत के संपूर्ण सामाजिक परिदृश्य को बदल डाला है। शुरूआती दौर में 80 के दशक में दो बड़े लम्बे धारावाहिक दूरदर्शन से प्रसारित हुए थे- 'हम लोग' और 'बुनियाद'! ये धारावाहिक भारतीय सभ्यता और संस्कृति की गंध समेटे लोकप्रियता के कीर्तिमान स्थापित किए थे, परन्तु सेटेलाईट चैनल्स के आगमन के बाद इन दोनों धारावाहिकों का पुनर्प्रसारण हुआ तो कहीं चर्चा तक नहीं हुयी। इसका प्रमुख कारण था तत्कालिन एवं वर्तमान परिदृश्य में दर्शकों की विचारधारा में आया बदलाव। वहीं 'स्वाभिमान', शांति, तारा, क्योंकि सास भी कभी बहू थी, कलश, कहानी घर-घर की, संस्कृति, कहीं किसी रोज, कसम, कन्यादान, हसरतें जैसी धारावाहिक दर्शकों द्वारा पसन्द किया गया। जबकि कभी सुपरहीट रहे 'हम लोग' और 'बुनियाद' जैसे धारावाहिक दूसरी बार शुरूआत में ही खारिज कर दिया गया। यह समाज की बदलती विचारधारा का एक जीवन्त उदाहरण है। एक सबसे यक्ष प्रश्न जो उभर कर सामने आया है वह समाज में खासकर मध्यवर्गीय समाज की विचारधारा में, महिलाओं की सोंच में आया परिवर्तन है। 'स्वाभिमान, शांति, हसरतें, तारा, औरत, कलश' जैसे सेकड़ों धारावाहिकों ने उनकी सोच में महत्वपूर्ण बदलाव ला दिया। टेलीविजन का सबसे बड़ा दर्शक वर्ग महिलाओं का है। मनोरंजन बेचने वाले लोंगों ने इस अहम मुद्दे को पहचाना और महिलाओं का एक नया रूप अपने धारावाहिकों में प्रस्तुत किया जिसका मध्यम वर्ग की महिलाओं पर जबरदस्त प्रभाव पड़ा। आर्थिक व मानसिक रूप से स्वतंत्र महिलाओं का जो रूप आज हमारे समाज में देखने में आ रहा है वह इन धारावाहिकों की ही देन है।

इसका व्यापक प्रभाव बच्चों की सोंच पर भी पड़ा है। 21वीं सदी की दहलीज पर जन्म लेने वाले इन बच्चों में गजब की समझ देखी जा रही है। अपने आप में सिमटे बच्चों का जमाना अब लद चुका है। अब जमाना है तेज तर्रार बच्चों का जो हर तरह की जानकारी से लैस हो तथा किसी भी प्रकार की चुनौती का सामना करने के लिए तैयार हो। सूचना क्रांति के इस दौर के बच्चे भलि-भाँति अपने लक्ष्य को समझते हैं तथा वे पूरी तरह जागरूक हैं और जानते हैं कि उन्हें क्या चाहिए और उसे कैसे हासिल किया जा सकता है।

भारतीय जीवन-शैली पर सिनेमा ने भी जबरदस्त प्रभाव डाला है। फिल्मों ने भी आम आदमी की रुचियों और पसन्द-नापसन्द को काफी हद तक बदल डाला है। जहाँ 70 के दशक के पूर्व साफ-सुथरी चरित्र निर्माण की सामाजिक फिल्में पसन्द की जाती थी वही दर्शक उसके बाद के दशक में अचानक मारधाड़, हिंसा और सेक्स की फिल्मों को पसन्द करने लगे। कालान्तर में दर्शक उन फिल्मों से उब गए और पुन: वे पारिवारिक फिल्मों की ओर वापस हो गए। इसके समानान्तर यथार्थवादी सिनेमा का एक दौर भी चला जो आज एक नए रूप में हमारे सामने है। इस प्रकार सिनेमा ने लगातार अपना रंग बदला और दर्शकों को प्रभावित किया। हाँ, एक सबसे अहम बात यह जरूर रही कि फिल्म कभी दर्शकों की पसन्द से बदला तो कभी दर्शक भी इसके हिसाब से अपनी पसन्द को बदले। लेकिन यथार्थ तो यह है कि शुरूआती दौर के सिनेमा और आज के सिनेमा में आसमान-जमीन का अन्तर है क्योंकि तत्कालीन समाज और आधुनिक समाज में बहुत अन्तर है। जून, 2001 में प्रदर्शित फिल्म 'गदर' और 'लगान' इसके उदाहरण हैं।

समासत: यदि विचार किया जाए तो समाज पर सबसे अधिक प्रभाव दूरदर्शन के विविध चैनलों का पड़ा है। पिछले एक दशक में तो इन इलेक्ट्रॉनिक चैनलों ने समाज का लगभग संपूर्ण ढांचा ही बदल कर रख दिया है।

जनसंचार माध्यमों का सबसे उन्नत और परिष्कृत रूप उभर कर इन्टरनेट के रूप में हमारे सामने है। इन्टरनेट आज

प्रत्येक व्यक्ति को अपनी गिरफ्त में लेना शुरू कर दिया है। इसका प्रमुख कारण है व्यक्ति को सूचना हासिल करने की भूख। 'आज का मीडिया'- शंभुनाथ द्वारा लिखित संपादकीय अंश यहाँ उल्लेखित करना समचीन प्रतीत होता है- "आज इंटरनेट ने आदमी की जीवन शैली को बदल दिया है। वह मध्यवर्गीय घरों में घुस चुका है। उच्च मध्यमवर्गीय पिता से उसके जवान होते बेटे-बेटी इंटरनेट की मांग करने लगे हैं। बेटे-बेटी इंटरनेट के जरिए अपने दोस्तों से गप्पें लड़ाना चाहते है, माँ कहती है, बहन-भी है? इंटरनेट पर बैठा बेटा कहता है- 'बहन में क्या रखा है'। माँ पूछेगी- खेल के मैदान नहीं जाओगे? बेटा कहेगा, "इंटरनेट ही मेरा खेल का मैदान है। मेरा देश, मेरा जनतंत्र और मेरा बाजार है। इंटरनेट नई सभ्यता के कृष्ण का विराट विश्व रूप है- सबकुछ एक में (आल इन वन)।"

निश्चय ही इलेक्ट्रॉनिक माध्यमों के प्रादुर्भाव से जनमानस की सोंच, कार्यशैली, विकासात्मक गतिविधियाँ सभी बदल गयी है। यहाँ यह कहना अतिशयोक्ति न होगी कि सूचना क्रांति के इस दौर में इलेक्ट्रॉनिक मीडिया ने पूरे विश्व की दशा और दिशा में क्रांतिकारी परिवर्तन लाया है।

(2) **<u>मुद्रित माध्यम (प्रिंट मीडिया)</u>**:- प्रिंट मीडिया जनसंचार माध्यमों का सबसे अहम और मूल स्रोत है। भले ही इलेक्ट्रॉनिक माध्यमो ने तेजी से सूचना क्रांति को फैलाया है किन्तु उनमें स्थिरता नहीं है। उनके प्रभाव में आने के बाद मानव की उत्सुकता, सूचना एकत्र करने की जीज्ञासा और अधिक हो जाती है जिसकी प्रतिपूर्ति इलेक्ट्रॉनिक माध्यमों से नहीं हो पाती। सूचना क्रांति के परम्परागत माध्यमों में प्रिंट मीडिया का स्थान मात्र नहीं आता बल्कि अत्याधुनिक यथार्थ जनसंचार माध्यमों का संपूर्ण स्रोत आज भी प्रिंट मीडिया पर ही निर्भर करता है। इन्हें चार भागों में वर्गीकृत किया जा सकता है:-(क) समाचार-पत्र, (ख) पत्रिकाएं (ग) वार्षिक प्रतिवेदन (घ) गृह पत्रिका, ब्रोशर्स, हैंड आउट्रस, फोल्डर्स एवं अन्य मुद्रित सामग्री(

'प्रिंट मीडिया के उद्भव एवं विकास' पर विस्तृत चर्चा करना यहाँ आवश्यक नहीं है। किन्तु वर्तमान परिप्रेक्ष्य में प्रिंट मीडिया की भूमिका पर चर्चा करना उचित प्रतीत होता है। वास्तव में जनसंचार माध्यम की श्रेणी में उन्हें रखा गया है जो नई सूचना प्रौद्योगिकी के विकास से विकसित हुए है। इसे औद्योगिक क्रांति की देन कहा जाता है। मुद्रण तकनीक का आविष्कार और विकास, उपग्रहों का निर्माण, कम्प्यूटर का आविष्कार, इंटरनेट, ई-मेल, फोटोग्राफी तकनीक का आविष्कार और विकास आदि ऐसे मूल तथ्य हैं जिनसे होकर जनसंचार माध्यमों का विकास हुआ है। वास्तव में ये एक दूसरे के पूरक हैं। प्रिंट मीडिया से हमारा तात्पर्य प्रेस से है, जिसे हम मुद्रित जनसंचार माध्यम कहते हैं। इनमें समाचार पत्र-पत्रिकाएँ, पुस्तकें, पैम्फलेट्स आदि सभी शामिल हैं। मुद्रण तकनीक की शुरूआत कला के रूप में चीन में हुई। बौद्ध धर्म का प्रचार ही इसका उद्देश्य था। सर्वप्रथम सन् 650 ई0 में भगवान बुद्ध का चित्र छापा गया तथा प्रथम मुद्रित पुस्तक 'हरक सूत्र' मानी जाती है। उस समय मुद्रण तकनीक प्रारम्भिक विकासात्मक दौर में था। मुद्रण ब्लॉक के रूप में था। चीनी मिट्टी के टाइपों का आविष्कार सन् 1041 ई0 के आस-पास हुआ। सन् 1314 ई0 में लकड़ी के टाइप बनने लगे। चीन से ही इस कला का विस्तार हुआ और वहाँ से यह जापान तथा कोरिया पहुँचा। यूरोप पहुँचने पर इसका विस्तार स्वतंत्र और त्वरित रूप से हुआ। सन् 1440 से 1450 ई0 में गुटनबर्ग ने प्रत्येक वर्ण के लिए अलग टाइप का आविष्कार किया। फलस्वरूप सन् 1456 ई0 में 42 लाइनों वाली पहली बाइबल छापी जिसे यूरोप की प्रथम मुद्रित पुस्तक होने का गौरव प्राप्त है।

भारत में सन् 1556 ई0 में गोवा में पहला प्रेस स्थापित हुआ जहाँ से पहली पुस्तक 'दौक्त्रीना क्रिस्तौआ' सन् 1557 ई0 में छपी। सन् 1577 ई0 में जोन्सेस गेन्सालवेज नामक स्पेनिश ने सर्वप्रथम भारत में तमिल टाइप तैयार किया। नागरीलिपि में टाइप सबसे पहले यूरोप में तैयार किया गया। इस लिपि की पहली पुस्तक 1675 में छपी 'चाइना इलस्ट्रटा' मानी जाती है। 19वीं शताब्दी में औद्योगिक क्रांति के बाद मुद्रण कला में तेजी से विकास हुआ। आज हम जिस वैविध्यपूर्ण विकसित मुद्रण कला का दर्शन कर रहे हैं वह पिछले तीस-चालीस वर्षों में तेजी से हुई वैज्ञानिक प्रगति का नतीजा है। मुद्रण कला के विकास के साथ जनसंचार के सबसे प्रचलित माध्यम समाचार-पत्रों की शुरूआत हुयी। 139 ई0पू0 रोमन साम्राज्य में हस्तलिखित दो पृष्ठों की बुलेटिन रोम के पब्लिक स्क्वायर फोरम में बाँटे जाते थे जिसे 'एक्टा ड्यूरना' कहा जाता था। इसमें जनता और सीनेटर्स की रुचियों के अनुसार कार्यक्रमों की जानकारी रहती थी और इसकी दो सौ प्रतियाँ वितरित की जाती थी। इसे विश्व का प्रथम समाचार-पत्र होने का गौरव प्राप्त है, ऐसा विद्वानों का मत है। जेम्स और बेंजामिल फेंकलीन द्वारा सन् 1720 ई0 में छपा 'न्यू इंग्लैण्ड' को प्रथम आधुनिक समाचार पत्र के रूप में देखा जाता है। भारत में जैम्स आगस्टस हिक्की द्वारा 29 जनवरी, 1780 को प्रकाशित 'बंगाल गजट' या कलकत्ता जनरल एडवरटाइजर' माना जाता है। दूसरा समाचार पत्र पीटर रीड और बी. मैसिक द्वारा स्थापित तथा 1780 में ही कलकत्ता से प्रकाशित 'इण्डिया गजट' को माना जाता है। भाषाई पत्रकारिता में 1818 ई. में ईसाई मिसनरियों द्वारा ईसाई धार्म के प्रचार-प्रसार के उद्देश्य से श्रीरामपुर मिसन से प्रकाशित बंगला मासिक पत्र 'दिग्दर्शन' का स्थान आता है। इसके विरोध स्वरूप भारत में पत्रकारिता के जनक राजा राममोहन राय ने 'ब्रह्महैनिकल मैगजीन' का प्रकाशन शुरू किया। हिन्दी भाषा के पहले पत्र के रूप में पं0 युगल किशोर शुक्ल के संपादन में प्रकाशित पत्र 'उदंत मार्तण्ड' को माना जाता है। 30 मई, 1826 में प्रकाशित 'उदंत मार्तण्ड' से शुरू हुई हिन्दी और 1780 में प्रारम्भ हुई अंग्रेजी पत्रकारिता बहुत लम्बा सफर तय करती हुई आज आधुनिक युग में

पहुँच गई है जहाँ हिन्दी-अँगरेजी ही नहीं बल्कि अन्य भाषाओं में हजारों दैनिक, साप्ताहिक, पाक्षिक, मासिक, त्रैमासिक, छमाही और वार्षिक पत्र-पत्रिकाएँ प्रकाशित हो रही हैं। आज संपूर्ण भारत में लगभग 80 प्रतिशत साक्षर जनसंख्या इसका लाभ उठा रही है।

आजादी के बाद से भारत के समाचार माध्यमों की गुणवता दुनिया भर में सबसे उज्ज्वल माना जा रहा है। इतिहास साक्षी है कि वर्ष 1975 से 1977 के आपात्कालीन स्थिति को यदि छोड़ दिया जाए तो जिस तेजी से भारत में समाचार पत्रों ने आजादी के बाद गत अर्ध-शताब्दी में जो इतिहास रचा है, वह एशिया के कई राष्ट्रों के लिए ईर्ष्या का कारण हो सकती है, क्योंकि बीसवी सदी के अन्तिम 50 सालों में भारतीय प्रेस ने स्वतंत्र-हवा में सांस ली। हालांकि राजनीतिक दबाबों का भी इसे समय-समय पर सामना करना पड़ा किन्तु समाचार जगत ने इसका जम कर मुकाबला किया। भारतीय प्रेस की सबसे बड़ी समस्या यहाँ की साक्षरता, भाषागत विभिन्नता रही है। एक ओर जहाँ अमेरिका और फ्रांस जैसे विकसित राष्ट्रों में साक्षरता शत-प्रतिशत के करीब है और भाषाओं की इतनी विभिन्नता भी नहीं है, उनकी तुलना में भारतीय प्रेस में कई बाधाएँ उत्पन्न हुयी इस सच्चाई से इन्कार नहीं किया जा सकता। 70 के दशक के आस-पास साक्षरता 34 प्रतिशत थी तथा 1977 में 929 दैनिक पत्र प्रकाशित हो रहे थे जिनकी प्रसार संख्या एक करोड़ थी। इस प्रकार प्रति एक व्यक्ति के बीच मात्र 17 पाठक थे। बिहार की स्थिति और भी बदतर थी। यहाँ की साक्षरता प्रतिशत मात्र 24 प्रतिशत उस समय थी। फिर भी भारत जैसे सदियों की गुलामी का बोझ सहनेवाले देश ने अपने हौसले का परिचय दिया। हालाँकि अँगरेजी के समाचार-पत्रों में कोई खास बदलाव नहीं देखा जा रहा किन्तु गुजराती, मलयालम, बंगाली, मराठी, उर्दू, तमिल तथा हिन्दी आदि के अखबारों ने प्रसार के स्तर पर आजादी के बाद भारी वृद्धि दर्ज की है। हालांकि अंग्रेजी के अखबारों के भी प्रसार संख्या में वृद्धि हुई है फिर भी यह प्रारम्भिक दौर से बाहर नहीं निकल सका है। भारतीय प्रेस का चरित्र अवश्य बदला किन्तु अधिकांश प्रकाशन महानगरों तक ही सीमित रहे। कालान्तर में यातायात, संचार एवं साधनों के बढ़ने से परिस्थितियों में बदलाब आया और समाचार-पत्रों का रूझान ग्रामीण पत्रकारिता की ओर बढ़ा फलस्वरूप ग्रामीण क्षेत्रों की कवरेज एवं उस क्षेत्र में प्रसार संख्या की बढ़ोत्तरी हुयी। 1980 में सोवियत रूस की नीति की ओर भारतीय राजनीति के झुकाव के कारण लगभग रूस की 50 पत्र-पत्रिकाओं की भारत में प्रसार संख्या सात लाख के आस पास थी। उसके बाद राजनीतिक दलों ने भी अपने-अपने अखबार निकाले। टाइम्स आफ इण्डिया, इण्डियन एक्सप्रेस, हिन्दुस्तान टाइम्स, हिन्दू, अमृत बाजार पत्रिका, नवभारत टाइम्स एवं हिन्दुस्तान आदि कई अखबारों का दबदबा आज भी समाचार जगत पर बरकरार है। इनका प्रसार अन्य प्रदेशों में भी स्पष्ट दृष्टिगत होता है।

इस क्षेत्र में कई समाचार एजेंसियों ने भी अपना हाथ बढ़ाया है उनमें पी0टी0आई0, एवं यू0एन0आई0, हिन्दुस्तान समाचार, समाचार भारती आदि प्रमुख हैं। इनमें से कुछ एजेंसिया यथा हिन्दुस्तान समाचार एजेन्सी जैसी कई एजेंसिया आपातकाल की भेंट चढ़ गए। कालान्तर में पी0टी0आई0 ने भाषा और यू0एन0आई0 ने 'यूनीवार्ता' हिन्दी समाचार पत्रों के विकास को दृष्टिगत रखते हुए शुरू किया। समाचार-पत्रों, समाचार एजेन्सियों एवं अन्य क्षेत्रों में प्रिंट मीडिया के विकास के साथ-साथ जनसंचार माध्यमों की विधिवत शिक्षण-प्रशिक्षण देने का कार्य पत्रकारिता के क्षेत्र में प्रारम्भ हो चुका है। अनेक विश्वविद्यालयों में पत्रकारिता एवं जनसंचार विभाग हैं। लगभग 70 से अधिक जनसंचार विभाग आज विश्वविद्यालयों में चल रहे हैं। कोटा खुला विश्व विद्यालय, माखन लाल चतुर्वेदी विश्व विद्यालय, नालन्दा खुला विश्वविद्यालय आदि ऐसे विश्वविद्यालय हैं जहाँ दूरस्थ शिक्षा के अन्तर्गत पत्राचार माध्यम से स्नातक एवं 'मास्टर ऑफ जर्नलिज्म एण्ड मास कम्युनिकेशन' स्तर की शिक्षा प्रदान की जा रही है। इस प्रकार इन संस्थाओं द्वारा जनसंचार-प्रशिक्षण में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन किया जा रहा है।

समासतः यह कहना समीचीन प्रतीत होता है कि जैसे-जैसे जनसंचार माध्यमों का विकास होता गया वैसे-वैसे उसका समाज के जीवन-स्तर पर प्रभाव बढ़ता गया। **'हमारा जीवन जनसंचार माध्यमों के लिए नहीं बल्कि जीवन के लिए जनसंचार माध्यमों का उपयोग होना चाहिए।'** इस क्षेत्र के विशेषज्ञ भी अब व्यवसायिक प्रचार के अंग बनते दिखायी दे रहे हैं। मीडिया के माध्यम से सत्ता तक पहुँचना और सत्ता के माध्यम से मीडिया पर कब्जा करना आजके पत्रकारों की प्रवृत्ति बनती जा रही है। वास्तविक मूल्य स्थापना के लक्ष्य से मीडिया कहीं न कहीं भटक अवश्य रही है। फलस्वरूप इसका जीवन-शैली पर व्यापक प्रभाव पड़ा है। उपभोक्तावाद का प्रचार-प्रसार हुआ है तथा कुछ विशेष जानने की इच्छा जागृत हुई है। इस क्षेत्र में इलेक्ट्रॉनिक और प्रिंट दोनों ही मीडिया ने महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन किया है। एक ओर जहाँ इनके सतत प्रयत्नशीलता से विकास दर में वृद्धि हुयी है, जीवन स्तर ऊँचा उठा है वहीं नैतिक मूल्यों का ह्रास हुआ है तथा समाज का विघटन भी। दूसरे शब्दों में यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी कि प्रिंट और इलेक्ट्रोनिक मीडिया कहीं न कहीं पाश्चात्य संस्कृति की नकल करते दिखायी दे रही है। खास कर इलेक्ट्रॉनिक मीडिया के इस हस्तक्षेप से तो कतई इन्कार नहीं किया जा सकता।

संपर्कः सी-50, पुनाईचक,
पत्रा०-शास्त्रीनगर,
पटना-800 023

केरल में हिन्दी पत्रकारिता : उपलब्धियाँ और संभावनाएँ

○ डॉ0 पी0 लता

हिंदी पत्रकारिता केरल के संदर्भ में मूल्यवान उपादान है। अहिंदी भाषी क्षेत्र केरल में हिंदी के प्रचार-प्रसार के एक उपाय के रूप में 'हिंदी पत्रकारिता' की शुरुआत हुई। केरल की सर्वप्रथम हिंदी पत्रिका 'हिंदी मित्र' के प्रकाशन के बारे में उसके पत्रकार श्री जी. नीलकंठन नायर ने कहा है- "हिंदी का प्रचार ही मेरा ध्येय था।"

केरल में साप्ताहिक ('राष्ट्रवाणी' पत्रिका), पाक्षिक ('केरल पत्रिका', 'युग प्रभात') मासिक ('भाव और रूप', 'जगन्नाथ हिंदी साहित्य सारथी', 'प्रताप', 'ललकार', 'विश्वभारती', 'अरविन्द', 'संगम', 'केरल ज्योति', 'केरल भारती', 'संग्रथन'), त्रैमासिक ('केरल हिंदी साहित्य अकादमी शोध पत्रिका', 'संस्थान समाचार'), अद्धवार्षिक ('शोध-क्षितिज'-यह पत्रिका पहले अद्धवार्षिक थी, फिर वार्षिक हो गयी।), चतुर्मासिक ('दर्पण'), वार्षिक ('अनुशीलन', 'शोध क्षितिज', 'शोध दर्पण', 'संवेदना') जैसी विभिन्न कालावधि में मुद्रित पत्रिकाओं का प्रकाशन हुआ है। केरल में कई हिन्दी पत्रकार (जैसे- सर्वश्री जी. नीलकंठन नायर, विश्वनाथ मल्ल्या, आचार्य पी.जी. वासुदेव, प्रो. एन. ई. मुत्तुस्वामी अय्यर, पी. बालकृष्णा, अभयदेव) ऐसे हैं, जिन्होंने राष्ट्रप्रेम की भावना से प्रेरित होकर अपनी-अपनी पत्रिकाओं में प्रकाशित रचनाओं के जरिए भावों का आदान-प्रदान करके भावात्मक एकता को सुदृढ़ करने के उपलक्ष्य में किसी भी आर्थिक सहायता के बिना अपनी ही जेब खाली करके हिंदी पत्रिकाओं का प्रकाशन शुरू किया तथा पत्रकारिता के क्षेत्र में जमा रहने का सारा प्रयत्न व्यर्थ निकलने पर बिल्कुल घाटे की स्थिति में आकर पत्रिकाओं का प्रकाशन बन्द भी किया। इस प्रकार अहिंदी भाषी क्षेत्र केरल में किसी भी अनुदान के बिना हिंदी पत्रिकाएँ प्रकाशित करने का पत्रकारों का मनोबल ही 'हिन्दी पत्रकारिता' के लिए महत्वपूर्ण उपलब्धि है। 1941 में केरल की सर्वप्रथम हिंदी पत्रिका 'हिंदी मित्र' के प्रकाशन के बाद यहाँ कई ऐसी पत्रिकाएँ प्रकाशित हुई, जिनका कम अंकों के साथ प्रकाशन ही रुक गया। हिंदी पत्रिकाओं के ग्राहक बनकर उन्हें प्रोत्साहन न देने पर केरलीय जनता इसलिए दोषी नहीं है कि उन दिनों हिंदी पत्रिकाएँ पढ़कर मन बहलाने के स्तर की हिंदी यहाँ के इने-गिने व्यक्तियों को ही आती थी। प्रतिकूल परिस्थितियों में भी केरल में हिंदी पत्रिकाएँ निकालने का साहस यहाँ के कुछ राष्ट्र-प्रेमी व्यक्तियों ने किया, यह महत्त्वपूर्ण उपलब्धि ही है।

हिंदी के प्रचार-प्रसार को लक्ष्य करके केरल में हिंदी पत्रिकाओं का प्रकाशन शुरू हुआ था। अत: इन पत्रिकाओं में 'हिंदी पाठ' नियमित रूप से प्रकाशित होते थे। इस दृष्टि से सबसे अधिक उल्लेखनीय पत्रिका है 'राष्ट्रवाणी', जिसमें एस.एस. एल.सी, इंटरमीडिएट तथा बी.ए. के 'छात्रोपयोगी स्तंभ' प्रकाशित होते थे। 'हिन्दी अध्यापक' इस पत्रिका का सबसे महत्वपूर्ण स्तंभ था। इस स्तंभ में 'हिंदी व्याकरण' प्रकाशित होता था, जो हिंदी प्रेमी व्यक्तियों को हिंदी पढ़ने में बहुत अधिक उपयोगी था। 'राष्ट्रवाणी' की ओर एक खूबी यह थी कि यह केवल हिंदी भाषा की पत्रिका नहीं थी, यह 'त्रिभाषिक पत्रिका' थी और इसमें व्याकरण के स्तंभ हिंदी, मलयालम तथा तमिल भाषाओं में प्रकाशित होते थे। यही नहीं, इसमें साहित्य प्रेमी व्यक्तियों को मलयालम, तमिल या हिंदी में लिखने का मौका दिया जाता था, यद्यपि अधिकतर मौलिक रचनाएँ हिन्दी में प्रकाशित होती थीं। केरल तथा तमिलनाडु दोनों क्षेत्रों में हिंदी भाषा का प्रचार करना ही पत्रकार श्री के. वासुदेवन पिल्लैजी का लक्ष्य था। लोगों में लेखन की रुचि बढ़ाने के उद्देश्य से अच्छी 'अनुभव कथा' मलयालम, तमिल या हिंदी भाषा में इस पत्रिका में लिखने वालों को पुरस्कार देने की योजना भी पिल्लैजी ने शुरू की थी।

'द्विभाषिक पत्रिकाओं' (हिंदी-मलयालम) का प्रकाशन भी 'केरल की हिंदी पत्रकारिता' की बड़ी उपलब्धि है, जैसे- 'केरल भारती' (प्रकाशक- दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा), 'ग्रंथलोकम' (प्रकाशक- केरल ग्रंथशाला), 'आर्य कैरली' (प्रकाशक- समस्त केरल साहित्य परिषद), 'सहकारी हिंदी प्रचारक' (प्रकाशक- केरल हिंदी सांस्कृतिक सहकारी संघ) आदि पत्रिकाएँ।

स्वतंत्रता-पूर्व काल में हिंदी पत्रिकाओं को आर्थिक अनुदान नहीं मिलता था। किन्तु स्वतंत्र भारत में संविधान में स्वीकृत राजभाषा 'हिंदी' को यथास्थान में प्रतिष्ठापित करने के उद्देश्य से राजभाषा हिंदी के प्रगामी प्रयोग संबंधी अनेक योजनाएँ शुरू की गयीं। इसके परिणामस्वरूप 'ग क्षेत्र' की संस्थाओं को हिंदी में पत्रिकाओं के प्रकाशन के लिए अनुदान दिया गया। इस मौके का लाभ उठाकर 'समस्त केरल साहित्य परिषद' ने 'आर्य कैरली' पत्रिका (इसमें हिंदी और मलयालम के खंड थे) में तथा 'केरल ग्रंथशाला संघ' ने अपनी मलयालम मुख पत्रिका 'ग्रंथालोकम' में 'हिंदी खंड' का प्रकाशन शुरू किया। इनके कुछ अंक नियमित रूप से निकाले गये, किन्तु सरकार द्वारा विशेष अनुदान योजना रद्द किये जाने पर इनका प्रकाशन रुक गया। मौका पाकर हिंदी का प्रकाशन करने का अहिंदी भाषी क्षेत्र केरल के व्यक्तियों का प्रयास बिल्कुल सराहनीय है।

केरल में कुछ पत्रकार इस दृष्टि से भी सम्मान के पात्र हैं कि उन्होंने एकाधिक पत्रिकाओं के प्रकाशन से जुड़े काम किया है। इस श्रेणी में सबसे उत्कृष्ट व्यक्तित्व हैं आचार्य पी.जी. वासुदेव। उन्होंने 1961 में प्रो. एन. ई. मुत्तुस्वामी अय्यरजी द्वारा प्रकाशित 'भाव और रूप' पत्रिका का निस्वार्थ मन से संपादन-कार्य करके हिंदी की सेवा की। फिर 1962 में स्वकीय प्रयत्न से अपना ही धन अर्पित करके 'केरल पत्रिका' निकाली। उसके बाद 1972 में एक स्वैच्छिक हिंदी संस्था 'हिंदी विद्यापीठ, तिरुवनंतपुरम' में स्थापित करके 1987 में उसकी मुख मत्रिका के रूप में 'संग्रथन' नामक स्तरीय मासिक पत्रिका का प्रकाशन किया, जो पत्रिका वासुदेवजी के निधन के बाद भी अविच्छिन्न

प्रकाशित हो रही है। श्री के. रविवर्मा पहले 'युगप्रभात' पत्रिका के सहसंपादक तथा फिर मुख्य संपादक रहे। 'युगप्रभात' का प्रकाशन समाप्त होने पर वे 'साहित्य मंडल पत्रिका' के मुख्य संपादक रहे। श्री पी. नारायण 'हिन्दी प्रचार समाचार' (दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा, मद्रास की पत्रिका) 'ललकार' (प्रकाशक- श्री पी. बालकृष्णा) तथा 'केरल भारती' (दक्षिण भारती हिंदी प्रचार सभा, एरणाकुलम की पत्रिका) के संपादक थे। डॉ. एन. चन्द्रशेखरन नायर जुलाई 1962 से अगस्त 1963 तक 'ग्रंथलोकम्' ('केरल ग्रंथशाला संघ' की मुख पत्रिका) के 'हिंदी खंड' के प्रबंध संपादक थे। वे अक्टूबर 1963 से लेकर प्रकाशित 'सहकारी हिंदी प्रचारक' ('केरल हिंदी सांस्कृतिक सहकारी संघ' की मुख पत्रिका) के पहले पाँच अंकों के संपादक भी रहे। फिर 1982 को 'केरल हिंदी साहित्य अकादमी' की स्थापना करके उसकी मुख पत्रिका के रूप में 1996 में 'केरल हिंदी साहित्य अकादमी शोध पत्रिका' का प्रकाशन शुरू किया। डॉ. एन. ई. विश्वनाथ अय्यर 'अनुशीलन' (हिंदी विभाग, कोच्चिन विश्वविद्यालय' की शोध पत्रिका) तथा 'साहित्य मंडल पत्रिका' ('केरल हिंदी साहित्य मंडल, कोच्ची' की मुख पत्रिका) के संस्थापक संपादक हैं। डॉ. एस. तंकमणि अम्मा 1995 से 2000 तक 'दर्पण' (हिन्दी विभाग, केरल विश्वविद्यालय, तिरुवनंतपुरम की पत्रिका) की संपादिका रही और 2001 से मुख्य संपादिका हैं। तंकमणिअम्माजी 'शोध दर्पण' नामक वार्षिक शोध पत्रिका की भी मुख्य संपादिका हैं। 2006 से 'केरल ज्योति' पत्रिका की प्रबंध संपादिका भी हैं। आप 'केरल हिंदी साहित्य अकादमी शोध पत्रिका' (प्रकाशक- केरल हिंदी साहित्य अकादमी, तिरुवनंतपुरम) के परामर्श मंडल की भी सदसया हैं। एकाधिक पत्रिकाओं से जुड़े उपर्युक्त पत्रकारों में श्री पी. जी. वासुदेव की खूबी यह है कि उन्होंने किसी भी आर्थिक सहायता के बिना अपने ही पैसे से 'केरल पत्रिका', 'संग्रथन' आदि पत्रिका का प्रकाशन किया था। कुछ अंकों के प्रकाशन के बाद ही 'संग्रथन' को केंद्र सरकार से वित्तीय सहायता प्राप्त हुई।

केरल में 2007 तक प्रकाशित पत्रिकाओं को तीन वर्गों में बाँटा जा सकता है–(1) हिंदी भाषा-अध्ययन पत्रिका, जैसे- 'राष्ट्रवाणी' पत्रिका (प्रकाशक- तिरुवितांकूर हिंदी प्रचार सभा, तिरुवनंतपुरम) (2) 'साहित्यिक पत्रिका' जिसमें साहित्यिक रचनाएँ अधिक प्रकाशित होती हैं तथा 'हिंदी मित्र', 'अरविन्द', 'ललकार', 'प्रताप', 'भाव और रूप', 'आर्य कैरली', 'जगननाथ हिंदी साहित्य सारथी', 'केरल ज्योति', 'केरल पत्रिका', 'संग्रथन', 'केरल हिंदी साहित्य मंडल आदि (3) 'शोध पत्रिका' जिसमें शोधात्मक, सूक्ष्म तथा पैनी दृष्टि वाले लेख प्रकाशित होते हैं, जैसे- 'केरल हिंदी साहित्य अकादमी शोध पत्रिका' (प्रकाशक- हिंदी विभाग, कोच्चिन विश्वविद्यालय), 'शोध क्षितिज' (प्रकाशक- हिंदी विभाग, सेंट तोमस कॉलेज, पाला), 'हिंदी विभाग, सरकारी आर्ट्स एण्ड साइंस कॉलेज, कालिकट) आदि। इन शोध पत्रिकाओं में 'केरल हिंदी साहित्य अकादमी शोध पत्रिका' एक साहित्यिक संस्था 'केरल हिंदी साहित्य आकदमी' की मुख पत्रिका होने के कारण शोधात्मक लेखों के साथ ही साथ कुछ साहित्यिक रचनाएँ, जैसे- कविता, लघु कथा, कहानी आदि भी कुछ पृष्ठों में प्रकाशित होती हैं। अहिंदी भाषी क्षेत्र केरल के कॉलेजों के हिंदी विभाग शोध पत्रिकाय प्रकाशित करते हैं, जैसे- 'सेंट तोमस कॉलेज, पाला' और 'सरकारी आर्ट्स एण्ड साइंस कॉलेज, कालिकट' यथाक्रम 'शोध क्षितिज', 'शोध दर्पण' आदि।

केरल की हिंदी पत्रकारिता की उपलब्धियों पर विचार करते वक्त एक उल्लेखनीय पत्रिका है छात्रों की पत्रिका 'दर्पण'। इसमें केरल विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग में एम.ए., एम. फिल तथा शोध छात्र लिखते हैं। बीच-बीच में अध्यापक भी लिखते हैं। 'दर्पण' छात्रोपयोगी पत्रिका, साहित्यिक पत्रिका तथा शोध पत्रिका का सम्मिलित गुणवाली पत्रिका है।

'संस्थान समाचार' पत्रिका में 'राष्ट्रभाषा संस्थान, तिरुवनंतपुरम' के हिंदी संबंधी कार्यक्रमों के समाचार प्रकाशित होते हैं। इस पत्रिका में हिंदी के छात्रों को हिन्दी भाषा में प्रबुद्ध बनाने के लिए सहायक सामग्री छापी जाती है, जैसे- अनुवाद तथा हिंदी भाषा संबंधी लेख आदि।

केरल राज्य में संप्रति प्रकाशित होने वाली पत्रिकाओं में अधिकांश केरल राज्य की राजधानी तिरुवनंतपुरम से ही प्रकाशित होती है, जैसे- 'केरल ज्योति', 'संग्रथन', 'केरल हिंदी साहित्य अकादमी शोध पत्रिका', 'संस्थान समाचार', 'दर्पण', 'शोध दर्पण' आदि। अन्य जिलों से संप्रति प्रकाशित पत्रिकाएँ हैं- 'केरल भारती', तथा 'अनुशीलन' (एरणाकुलम जिला('शोध क्षितिज' (कोट्टयम जिला), 'संवेदना' (कोषिक्कोटु जिला) आदि। एरणाकुलनम से 'साहित्य मंडल पत्रिका' का फिर से प्रकाशन मार्च, 2008 में शुरू हुआ है। केरल को दो हिंदी पत्रिकाएँ 'केरल ज्योति' और 'केरल भारती' केरल की दो विख्यात हिंदी प्रचार संस्थाओं, क्रमश: 'केरल हिंदी प्रचार सभा, तिरुवनंतपुरम', और 'दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा, एरणाकुलम' की मुख पत्रकाएँ हैं और इनका मुद्रण इन संस्थाओं के ही मुद्रणालयों क्रमश: 'राष्ट्रवाणी मुद्रणालय' और 'हिंदी प्रचार प्रेस' में होता है।

पहले तो केरल में 'हिंदी मुद्रणालयों की कमी' तथा 'हिंदी प्रकाशकों' के अभाव से यहाँ के लेखकों को उत्तर भारत के प्रकाशकों का आश्रय लेना पड़ता था। उत्तर भारत के प्रकाशक तो अहिंदी भाषी क्षेत्र की रचनाएँ प्रकाशित करने में हिचकते थे। केरल के जिन हिंदी लेखकों ने 'दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा, मद्रास' की पत्रिकाओं तथा केरल की हिंदी पत्रिकाओं में लिखकर अपनी लेखन-क्षमता प्रकट की और नाम पाया, उनकी रचनाएँ उत्तर भारत के प्रकाशक आसानी से प्रकाशित करते थे। केरल के वर्तमान हिंदी लेखकों को पहले आश्रय 'दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा, मद्रास' तथा केरल से प्रकाशित पत्रिकाएँ थीं। केरल के वरिष्ठ हिंदी लेखक डॉ. एन. ई. विश्वनाथ अय्यर के शब्द इस संदर्भ में ध्यान देने योग्य हैं- ''प्राकृतिक स्रोतों से जब जल पहले निकलता है तब वह मटमैला होता है। जल निकलते-निकलते जलधारा स्वच्छ और अमृत जैसी होती है, जिस प्रकार रियास करते-करते अच्छे गायक बन जाते हैं। केरल की हिंदी पत्रिकाएँ इस प्रविधि में लोगों की सहायता दे सकी हैं। उदाहरणार्थ केरल के श्री जे.आर. बालकृष्णन नायर 'केशवीयम' आदि महाकाव्यों के अनुवाद सीधे पुस्तक रूप में करते तो उनके कोई प्रकाशक न होते। इन अमूल्य

रचनाओं का अनुवाद पहले खंडश: 'केरल ज्योति' पत्रिका में निकला और इसलिए बाद में पुस्तकाकार मिला।'' (अय्ययरजी से 2 सितंबर 2006 को लेखिका का साक्षात्कार)

पून्तानम नंपूतिरी के 'ज्ञानपाना' काव्य का अनुवाद श्री सी.के.एस. वारियर ने किया, जो अप्रैल 1979 अंक में 'केरल भारती' पत्रिका में खंडश: प्रकाशित हुआ। रामपुरत्तु वारियर के 'कुचेलवृत्तम वॅंचिप्पाट्टु' का अनुवाद श्री वी. करुणाकरन नायर ने किया, जो मार्च 1981 से खंडश: 'केरल भारती' में प्रकाशित हुआ। उल्लूर एस. परमेश्वरय्यर के खंडकाव्य 'कर्णभूषम्' का अनुवाद कवियूर शिवराम अय्यर ने किया, जो 'केरल ज्योति' के 1979 के अंक 2 से खंडय: प्रकाशित हुआ। के.सी. केशव पिल्लै के 'आसन्न मरण चिन्ता शतकम्' का अनुवाद करके श्री जे. आर. बालकृष्णन नायर ने 'केरल ज्योति' पत्रिका के सन् 1989 के अंक 2 से खंडा: प्रकाशित किया। कुमारनाशान के 'चिन्ताविष्टयाय सीता' काव्य का 'चिन्ताविष्टा सीता' नाम से श्री. वी.ए. केशवन नंपूतिरी ने अनुवाद करके 'केरल ज्योति' में वर्ष 1989 के अंक 1 में प्रकाशित किया। 'केरल ज्योति' के अंकों में 2006 से लेकर श्री जे. आर. बालकृष्णन नायर 'श्रीकृष्णचरितम' (मूल: कंचन नंपियार) का अनुवाद करके खंडश: प्रकाशित कर रहे हैं। केरल की हिंदी पत्रिकाओं में ऐसी श्रेष्ठतम मलयालम रचनाओं का अनुवाद प्रकाशित करके मलयालम के विशिष्ट साहित्य और सहित्यकारों को राष्ट्रीय स्तर पर परिचित कराने का महत्त्वपूर्ण कार्य 'केरल की हिन्दी पत्रकारिता' करते आ रही है।

प्रतिवर्ष दिसंबर का अंक विशेषांक के रूप में निकालने के अलावा 'केरल ज्योति' ने एक नयी रीति भी अपनायी है कि बीच-बीच में उसके मासिक अंक व्यक्ति विशेष संबंधी अंक के रूप में प्रकाशित होते हैं। जैसे- अगस्त 2006 में डॉ. एन.ई. विश्वनाथ अय्यर के व्यक्तित्व और कृतित्व संबंधी अंक प्रकाशित हुआ। 'केरल ज्योति' का फरवरी 2007 का अंक केरल के वरिष्ठ हिंदी प्रचारक प्रो. आर. जनार्दनन पिल्लैजी का परिचायक अंक है। अप्रैल 2007 का अंक केरल हिंदी प्रचार सभा के दीर्घकालीन मंत्री श्री एम. के. वेलायुधन नायर पर तैयार किया गया है। नवंबर 2007 का अंक केरल हिंदी साहित्य अकादमी के मुख्य संपादक तथा शताभिशिक्त 'डॉ. एन. चन्द्रशेखरन नायर विशेषांक' है। ऐसे अंकों से केरल के तपोनिष्ठ हिन्दीसेवियों की सही पहचान हिन्दी दुनिया को मिलती है।

'केरल भारती' के 2003-2004 के विविध अंकों में 'केरलीयम्' नामक स्तंभ है, जो केरल की संस्कृति पर तैयार किया गया है। जैसे- 'कोलत्तुनाटु की प्राचीन कला' (अक्टूबर 2003), 'कथकली' (दिसंबर 2003) 'तिरुवात्तिरा' (फरवरी 2004) आदि। ऐसे स्तंभों तथा केरल की हिंदी पत्रिकाओं में प्रकाशित प्रांतीय संस्कृति संबंधी लेखों को पढ़कर केरल की सांस्कृतिक विशेषताओं की अलग पहचान हिंदी पाठक परखने लगे हैं। 'युगप्रभात' पत्रिका में भी केरल की संस्कृति प्रतिबिंबित होती थी।

केरल की वर्तमान हिंदी पत्रिकाओं- 'केरल ज्योति' (केरल हिंदी प्रचार सभा, तिरुवंनतपुरम), 'संग्रथन' (हिंदी विद्यापीठ, तिरुवनंतपुरम), 'केरल भारती' (दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा, एरणाकुलम), 'केरल हिंदी साहित्य अकादमी शोध पत्रिका' (केरल हिंदी साहित्य अकादमी, तिरुवनंतपुरम) आदि को केंद्रीय हिंदी निदेशालय, मानव संसाधन विकास मंत्रालय, नयी दिल्ली' से अनुदान मिलता है।

अहिंदी भाषी क्षेत्र केरल की हिंदी पत्रिकाओं को ग्राहकों की कमी, एक समस्या ही है। आजकल कागज़ का मूल्य ज़्यादा है, डाक खर्च ज़्यादा है, छपाई खर्चीली है। केरल के हिंदी पत्रकार व्यावसायिक बुद्धि से पत्रकारिता के क्षेत्र में नहीं आये हैं, अभी उनका लक्ष्य राष्ट्रभाषा हिंदी का विकास मात्र है, इसलिए वे अपनी पत्रिकाएँ ग्राहकों को भेजने के सिवा केरल तथा बाहर के हिंदी प्रेमी व्यक्तियों को भी भेजते हैं। इतने सोल्लास तथा समर्पण भाव से पत्र-धर्म निभाने वाले केरल के हिंदी पत्रकारों को उनकी संस्थाओं के हिंदी संबंध ी कुल कार्य-कलापों के लिए अनुदान देने के साथ ही साथ अहिंदी भाषी क्षेत्र की हिंदी पत्रकारिता के लिए विशेष अनुदान, वह भी निश्चित पर्याप्त रकम सरकार की ओर से देता तो पत्रिकाओं की पृष्ठ संख्या बढ़ाकर, सुंदर रूप और आकार में केरल के हिंदी पत्रकार पत्रिकाएँ निकाल सकते।

अँग्रेजी पत्रकारिता केरल के कई पत्रकारों के लिए आजीविका का माध्यम बन गयी है। 'हिंदू', 'इंडियन एक्सप्रेस' जैसे अँग्रेजी दैनिक केरल के नब्बे प्रतिशत घरों में खरीदे जाते हैं। इस प्रकार इन दैनिकों का प्रसार या सरकुलेशन बढ़ने से ये दैनिक अनेक व्यक्तियों की आजीविका का संबल भी बन गये हैं। उत्तर भारत में 'हिंदी पत्रकारिता' वह अनेकों की आजीविका का संबल भी बन गये हैं। उत्तर भारत में 'हिंदी पत्रकारिता' वह अनेकों की आजीविका का साधन बन गयी है। समाचार एजेंसियों तथा फीचर सेवाओं से केरल की हिंदी पत्रकारिता को जोड़ना चाहिए तथा केरल के हिंदी पढ़े-लिखे व्यक्तियों को अपनी राष्ट्र भाषा हिंदी की पत्रिका है, इस विचार से केरल से निकलने वाली हिंदी पत्रिकाओं के ग्राहक भी बनने चाहिए। ग्राहकों की संख्या बढ़ने से 'केरल में हिंदी पत्रकारिता' यहाँ के अनेक व्यक्तियों की आजीविका का साधन बन जाएगी, जिससे बेकारी की समस्या भी थोड़ी सुधर जाएगी।

केरल के स्कूलों में पाँचवें दर्जे से अनिवार्य रूप से हिंदी पढ़ायी जाती है। केरल के कॉलेजों में मुख्य विषय या उपभाषा के रूप में हिंदी पढ़ाई जाती है। अत: केरल के स्कूलों और कॉलेजों के ग्रंथालयों में अनिवार्य रूप के हिंदी पत्र-पत्रिकाएँ मंगवाने का नियम सरकारी तौर पर बना दिया जाय तो केरल के छात्रों में हिंदी पत्र-पत्रिकाएँ पढ़ने की आदत स्वाभाविक रूप से ही आ जाएगी, साथ ही यहाँ की हिंदी पत्रिकाओं की बिक्री की संख्या भी बढ़ जाएगी। 'केरल ग्रंथशाला संघ' के अधीनस्थ ग्रंथालयों में हिंदी पत्रिकाएँ मंगवाने की प्रवृत्ति भी शुरू करनी चाहिए।

केरल की वर्तमान स्थिति यहाँ एक 'हिंदी दैनिक' शुरू करने के अनुकूल नहीं है। हिंदी पत्रिकाएँ पढ़ने की आदत केरलीय जनता में पैदा हो जाए और केरल में हिंदी पत्रिकाओं के ग्राहक बढ़ें तो धीरे-धीरे केरल का माहौल यहाँ 'हिंदी दैनिक' के प्रकाशन के लिए अनुकूल हो जाएगा। कुछ युवकों के सम्मिलित प्रयास से निकले 'केरल की आवाज' नामक हिंदी दैनिक की पराजय का कारण ग्राहकों की कमी है। अहिंदी भाषी क्षेत्र 'केरल' के सभी पत्रकार साधुवाद के पात्र हैं।

संपर्क : रीडर, सरकारी महिला महाविद्यालय, तिरुवनंतपुरम, केरल

मीडिया में राष्ट्रीय हितों के प्रति उपेक्षा की प्रवृत्ति

○ उदय कुमार 'राज़'

देश के समाचार माध्यम खासकर कुछ समाचार चैनलों द्वारा स्थानीय व राष्ट्रीय समस्याओं व अपराधों को बार-बार बढ़ा-चढ़ाकर वर्णन किया जाता है जिसके परिणामस्वरुप विदेशों में भारत की छवि एक ऐसे अराजक देश के रूप में स्थान पाती है जहाँ विदेशी पर्यटकों की हत्या, लूट, बलात्कार, गंभीर किस्म के संक्रामक रोग, शहरों में उफनाते सीवरों तथा मुख्य मार्गों पर घण्टों लगने वाले महाजाम रोजमर्रा की जिंदगी के हिस्से बन गए हैं।

इसमें तनीक संदेह नहीं कि मीडिया में राष्ट्रीय हितों के प्रति उपेक्षा की यह प्रवृत्ति अनायास न होकर साभास है, क्योंकि अधिकतर पत्र-पत्रिकाओं तथा चैनलों का उद्देश्य खबरों को ज्यादा से ज्यादा सनसनीखेज बनाकर प्रसार करना तथा इसके फलस्वरूप विज्ञापन के रूप में कमाई करने का होता है। इस दृष्टि से देखा जाए तो मीडियावाले शुद्ध रूप से व्यवसाय कर रहे हैं और व्यवसायी का ध्येय वाक्य शुभ और लाभ होता है। दरअसल व्यवसाय करने के बावजूद मीडिया घरानों की अपनी राजनीतिक प्रतिबद्धताएँ होती है जिनका पोषण अपरोक्ष रूप से वे करते रहते हैं।

हालाँकि दुनिया में कई उदाहरण ऐसे हैं जब समाचार माध्यमों ने न केवल अपने ही देश की सरकारों के अनैतिक कार्यों की कलई खोली, बल्कि उनके खिलाफ जनमत तैयार कर उन्हें सत्ताच्यूत भी किया। जहाँ तक अपराध का सवाल है आज विश्व में कौन सा ऐसा स्थान है जिसे अपराधमुक्त कहा जा सके। बल्कि सच तो यह है कि जो देश जितना ज्यादा संपन्न और विकसित है वहाँ अपराध उतना ही ज्यादा है। तुलना की जाए तो हमारे यहाँ के मुकाबले पश्चिम के तथाकथित विकसित देशों में न केवल अपराध दर बहुत ज्यादा है, बल्कि अपराधों की प्रकृति और गुरुता भी कहीं ज्यादा विस्मयकारी है। विदेशी पर्यटकों के साथ बदसलूकी व कथित बलात्कार की घटनाएँ आए दिन किसी न किसी शहर में घटती रहती हैं जिसकी चर्चा महीनों मीडिया में चलती है।

एक समय था कि पत्र-पत्रिकाएँ पाठकों की रुचि व विचार को परिष्कृत करती थीं। इसके विपरीत आज इस बात के लिए सर्वेक्षण किए जाते हैं कि पाठक या दर्शक क्या-क्या चाहते हैं। यह गिरावट व्यवसाय सुलभ प्रवृत्ति का नतीजा है। सेक्स या हत्या से संबंधित समाचार अंतहीन समय तक स्थान बनाए रखते हैं।

अपराध की समस्याएँ इस देश में चिंतनीय हैं, लेकिन इतनी भयावह नहीं जितना इन्हें चित्रित किया जाता है। समाचार माध्यमों द्वारा दायित्व निर्वहन की स्थिति लगातार क्षीण होती जा रही है। हालाँकि इन्हें नियंत्रित करने के लिए भारतीय प्रेस परिषद है, लेकिन दोषी पाए जाने के बावजूद वह दण्ड नहीं दे पाती। इस स्थिति में जरूरत इस बात की है कि समाचार माध्यम स्वनियंत्रित हों तथा देश-काल के प्रति जवाबदेह। आखिर तभी तो बापू कहा करते थे कि एक पत्रकार की अनियंत्रित लेखनी विनाशकारी हो जाती है।

पिछले कुछ समय से अधिकांश टी.वी. समाचार चैनलों में एक दूसरे से आगे बढ़ने की होड़ में एक अजीब सी प्रतिस्पर्धा प्रारंभ हो गई है-कैसे दर्शकों को ऊलजुलूल, ऊट-पटांग और निहायत मूर्खतापूर्ण चीजें परोसकर उन्हें भ्रमित किया जाए, उन्हें रूढिवादी तथा अँधविश्वासी बनाया जाए। दो-तीन चैनलों को छोड़ बाकी सभी चैनलों का एक ही मकसद होता है कि कैसे सामान्य चीजों को, खबरों को, बातों को असाधारण तरीके से तैयार कर उन्हें सनसनीखेज बनाया जाए। ये चैनल आए दिन ऐसी बातों को दर्शकों के सामने परोसते हैं जिनका न कोई वैज्ञानिक आधार होता है और न तार्किक। पिछले दिनों सूर्यग्रहण की सामान्य प्राकृतिक घटना हो या आठ-आठ के अंकों का सहज संयोग, चैनलों ने इन बातों का बतंगड़ बना दिया। इन चैनलों ने आठ अंकों के मिलन की बात पर तो कई पाखंडियों, तांत्रिकों तथा ज्योतिषियों के माध्यम से प्रलयंकारी सुनामी, पृथ्वी फटने तथा भयंकर झंझावात आने तक की भविष्य वाणी तक कर दी। जन सामान्य के दिलों को भय से आक्रांत करने तथा उन्हें दकियानूस व रूढ़िवादी बनाने में कोई कोर-कसर नहीं की। आठ अगस्त 2008 के सामान्य दिनों की तरह गुजरने जैसा पर तमाम ज्योतिषियों के अनाप-शनाप दावों पर मुझे बहुत दया आई। मुझे याद है जब पिछले आठ अगस्त, 2008 को राष्ट्रीय महासचिव सिद्धेश्वर के नेतृत्व में राष्ट्रीय विचार मंच के एक चार-सदस्यीय दल के साथ मैं हैदराबाद में था जहाँ लोगों ने अपने घर से निकलना उचित नहीं समझा, हमलोग रामोजी फिल्म सिटी की पहाड़ियों-घाटियों का आनंद उठाते रहे जबकि पहाड़ियों में लैंड स्लाइड होने का ज्यादा भय था, पर हमलोग निर्भय होकर फिल्म सिटी का मजा लेते रहे और सकुशल वापस आकर डॉ. अहिल्या मिश्र के घर-परिवार के साथ मिलकर मैथिल भोजन का भरपूर आनंद उठाया। सूर्यग्रहण के असर की हमलोगों ने कोई परवाह नहीं की।

दरअसल, आश्चर्य की बात तो यह है कि इस तरह की अनर्गल बातों और मिथ्या विश्वासों को समाचार के तौर पर प्रस्तुत और प्रचारित करने पर कोई रोक-टोक नहीं है। क्या इन चैनलों को अधिकार है कि वे कुछ भी दिखा सकते हैं, कुछ भी कह सकते हैं? इस मामले में शुक्र है कि अँग्रेजी समाचार चैनलों ने अपनी गरिमा, गंभीरता और महत्ता बनाए रखी। 'सनसनी खेज' के इस वायरस से वे अभी तक अछूते हैं। आश्चर्य इन चैनलों के शीर्ष संचालकों पर भी होता है कि कैसे वे इस तरह के कार्यक्रमों को दिखाने की अनुमति देते हैं। वैसे सच कहा जाए, तो अब अधिकतर दर्शक ऐसे कार्यक्रमों को तवज्जों नहीं देते हैं और समाचारों के लिए गंभीर चैनलों तथा दूरदर्शन को ज्यादा देखते हैं।

चिंता की बात यह है कि भारतीयता के ये कुछ तत्त्व विदेश में रहने वालों को हैरान कर सकते हैं और उन्हें सांस्कृतिक शॉक लग सकता है, क्योंकि पश्चिमी सभ्यता और संस्कृति में पलने वाले विदेशी जब पूरब के इस अद्भुत देश में कदम रखते हैं, तो वे रोमांच और सम्मोहन से भर जाते हैं, लेकिन ऐसे चैनलों के समाचार से 'भारत सम्मोहन' का असर खत्म होने लगता है। इसलिए यह हमारे राष्ट्रहित में कतई नहीं है। मीडिया में राष्ट्रीय हितों के प्रति उपेक्षा की इस प्रवृत्ति से उबरने का हर हाल में उपाय किया जाना समय की माँग है।

संपर्क- एस. 107, स्कूल ब्लॉक,
शकरपुर, दिल्ली-92

भारतेन्दु युगीन पत्रकारिता और हिंदी भाषा

○ श्री रुक्माजी राव 'अमर'

शिक्षा की प्रगति के साथ-साथ मनुष्य में समाचार जानने की जिज्ञासा उत्पन्न हुई। धीरे-धीरे जनता में समाचार-पत्र की उपयोगिता भी महसूस होने लगी। साथ ही इसके प्रति अभिरुचि में अभिवृद्धि भी होने लगी। प्रातःकाल उठते ही चाय की चुस्की लेते हुए समाचार-पत्र का अवलोकन करना तथा उसकी सुर्खियों पर सरसरी नज़र दौड़ाना आम शौक हो गया है। कालांतर में शौक ने सनकीपन का रूप धारण कर लिया। कहने का तात्पर्य यह है कि समाचार-पत्र हमारे दैनिक जीवन के अभिन्न अंग बनकर रह गये हैं। कुछ ऐसे भी लोग मिलेंगे यदि समाचार-पत्र न पढ़ें, तो नाश्ता उनके हलक के नीचे नहीं उतरेगा। सवेरे अगर समाचार-पत्र पढ़ने को नहीं मिला, तो वे एक प्रकार की बेचैनी अनुभव करने लग जाते हैं। संक्षेप में समाचार-पत्र आधुनिक मनुष्य जीवन का एक महत्त्वपूर्ण हिस्सा बनकर रह गया है। इसके संबंध में भुक्तभोगी ही इस पर प्रकाश डाल सकता है।

हिंदी पत्रकारिता का विकास कब और कैसे हुआ इसकी एक रोचक कथा है। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र आधुनिक हिंदी साहित्य के जन्मदाता ही नहीं, अपितु हिंदी पत्रकारिता के भी अग्रदूत माने जाते हैं। वे दूरदर्शी, युगद्रष्टा भी माने जाते हैं। हिन्दी पत्रकारिता का उद्‌भव तथा विकास की दृष्टि से अपना एक ऐतिहासिक महत्त्व है। इस महत्त्व को हासिल करने और कराने की दिशा में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का योगदान उल्लेखनीय एवं अविस्मरणीय रहेगा। वे एक सच्चे देशभक्त, सजग साहित्यकार तथा क्राँतिकारी विचारधारा के प्रवर्तक मानते जाते हैं। साथ ही वे एक निर्भीक पत्रकार भी रहे। इसमें दो राय कतई ही नहीं।

हिंदी पत्रकारिता में यदि बंगीय भूमिका का उल्लेख न हो, तो इतिहास अधूरा माना जायेगा। इस ऐतिहासिक तथ्य को झुठलाया नहीं जा सकता कि पाश्चात्य सभ्यता, संस्कृति एवं ज्ञान-द्युति का भारत में प्रवेश बंगीय गवाक्ष से ही हुआ। अर्थात् हिंदी पत्रकारिता की जन्मभूमि बंगाल ही है। कलकत्ते में हिंदी के प्रथम पत्र "उदंत मार्तंड" का प्रकाशन 30 मई 1826 ई. को यहीं हुआ।

सैकड़ों वर्षों की दासता ने भारतीय जनमानस को निरुत्साही, उदासीन तथा निराशा के कुहासे से आच्छादित कर दिया। इस कारण भारतीय जनता में "कोऊ नृप होऊ" की धारणा घर कर गई। भारतीय दिशाहीन तथा निश्चेष्ट हो गये। उनकी सूझबूझ लगभग लुप्त हो गई और वे पलायन के रुख को अपनाकर सुषुप्त हो गये। इस परिस्थिति से लाभ उठाकर अँग्रेज शासकों ने स्वातंत्र्य रूपी विचारधारा पर कुठाराघात करना आरंभ कर दिया। अँग्रेज शासक चतुर थे। वे किसी भी हालत में अपनी संस्कृति, अपनी भाषा को भारतीय जनता पर लादकर भारतीय परंपरा, संस्कृति भाषा, साहित्य को समूल नष्ट कर देना चाहते थे। इस उद्योग में अँग्रेज कमर कसकर खड़े हो गये। भारतवासियों की निराशावादी दृष्टिकोण के कारण अँग्रेज शासक अपनी चाल में सफल हो गये।

अँग्रेजों की दुर्दमनीय नीति के विरुद्ध भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने अपनी आवाज़ बुलंद की। उस युग के पत्रकार अपनी दृष्टि में स्पष्ट व प्रखर थे। वे अपने लक्ष्य के प्रति समर्पित भी थे। उन्होंने एक निश्चित कालखण्ड में हिंदी पत्रकारिता को एक नया आयाम दिया। इस युग की पत्रकारिता की अपनी एक अलग बिसात और अपनी एक अलग धाक रही। उस समय हिंदी पत्रकारिता जगत को कुछ मूर्धन्य पत्रकारों का योगदान रहा। उनका दृष्टिकोण तथा उनकी भावना को उजागर कर उनके संपादन में प्रकाशित समाचार-पत्रों के स्वर को मुखरित करना लाजिमी हो गया। भारतवासियों को ऐसी दयनीय स्थिति से एक युग पुरुष ही उभारने में सफल हो सकता है।

दासता की बेड़ियों से मुक्त होने की लालसा और अभिलाषा किसे नहीं होती? समय पाकर भारतीयों में नव जागरण का उन्मेष हुआ। अपने राष्ट्र के उन्नयन में, प्रगति में योगदान प्रदान करने की प्रबल इच्छा-शक्ति हो, तो उसके सम्मुख विघ्न-बाधाएँ भी अपने आप हथियार डाल देती हैं। विजय का मार्ग तब प्रशस्त हो जाया करता है।

अपने दृढ़ संकल्प, कठिन उद्योग और साहस के बल पर बाबु हरिश्चन्द्र ने इस ऐतिहासिक महत्त्व के कार्य को संपन्न करने का बीड़ा उठाया। इनके इस कार्य में पं. बालकृष्ण भट्ट, पं.रुद्रदत्त शर्मा, पं. प्रतापनारायण मिश्र, महामना मदन मोहन मालवीय, मेहता लज्जाराम शर्मा, बालमुकुन्द गुप्त प्रभृतियों का नाम उल्लेखनीय है।

भारतेन्दु हरिशचन्द्र (1850-1885) आधुनिक हिंदी साहित्य के जन्मदाता माने जाते हैं। वे हिंदी पत्रकारिता के क्षेत्र में भी अग्रगण्य रहे। भारतेन्द्र हरिश्चन्द्र ने अपने नाटकों तथा पत्रों के द्वारा जनसाधारण तक पहुँचने का भरसक प्रयास किया। उन्होंने अपने साहित्य सृजन में बोलचाल की हिंदी का उपयोग किया। उनकी भाषा शैली को महात्मा गाँधी और उपन्यास सम्राट प्रेमचन्द्र ने हिंदुस्तानी का नाम दिया।

बाबु हरिश्चन्द्र एक प्रख्यात कवि, लोकप्रिय नाटककार तथा सफल गद्य लेखक थे। वे स्वभाषा उन्नति को सभी प्रकार की उन्नतियों का आधार मानते थे। उन्होंने हिंदी लेखकों का एक मण्डल तैयार किया। वे लेखकों को विभिन्न विधाओं में लिखने की प्रेरणा दिया करते थे। उन्होंने राष्ट्र भाषा हिंदी के महत्त्व को स्थापित करने का सतुत्य प्रयास किया। उन्होंने भारत की गौरव गाथा का गायन किया। उन्होंने भारत की सांस्कृतिक तथा सामाजिक एकता को दृढ़ करने का सफल प्रयत्न किया। उन्होंने कविवचन सुधा 'हरिश्चन्द्र मैगजीन' 'हरिश्चन्द्र चंद्रिका' एवं बालबोधिनी पत्रिका का संपादन और प्रकाशन किया। उन्होंने पत्रिकाओं के माध्यम से नये-नये प्रयोग भी किये। 'बालबोधिनी' महिलाओं पर केंद्रीत हिंदी की प्रथम पत्रिका थी। इस पत्रिका में महिलाओं को

लिखने के लिए प्रोत्साहन प्रदान किया। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की प्रेरणा से अनेक महिलाएँ हिंदी पत्रकारिता के क्षेत्र में प्रवेश पाने में सफल हुई। भारतेन्दु की पत्रकारिता थी। इस माध्यम से पं. बालकृष्ण भट्ट, लाला सीताराम, प्रताप नारायण मिश्र, लाला श्रीनिवास दास, राधाचरण गोस्वामी, बद्रीनारायण चौधरी 'प्रेमधन' जैसे हिंदी साहित्यकार उपलब्ध हुए। बाबु हरिश्चन्द्र अपने पत्रों में देश की दुर्दशा, भारतवासियों की दासता तथा अँग्रेज शासकों के शोषण पर मार्मिक विचार प्रस्तुत किया करते थे। स्वदेशाभिमान, स्वजाति प्रेम, समाज सुधार, नारी जागरण तथा राष्ट्रोन्नति जैसी भावनाओं से भारतेन्दु की रचनाएँ भरी रहती थी। उन्होंने ज्ञान-विज्ञान की दिशा में हिंदी पत्रकारिता को समृद्ध करने का भसक प्रयास किया। उनकी पत्रिकाओं में इतिहास, विज्ञान, और समाजोपयोगी सामयिक विषयों पर भी रचनाएँ प्रकाशित हुआ करती थी। पैंतीस वर्ष की अल्पयु में ही भारतेन्दु ने हिंदी साहित्य को समृद्ध करने में कोई कसर उठा न रखी। वे भारत में हिंदी पत्रकारिता के भी जनक कहलाये। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का निधन 6 जनवरी 1885 को हुआ।

पं. बाल कृष्ण भट्ट-(1844-1914) आपका जन्म प्रयाग में हुआ। आप संस्कृत के अध्यापक रहे। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र से प्रभावित होकर ही आप हिंदी पत्रकारिता के क्षेत्र में आये। आप 'हिंदी प्रदीप' मासिक मत्र के संपादक थे। प्रथम अंक का लोकार्पण भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने किया। भट्ट जी हिंदी पत्रकारिता के प्रमुख प्रकाश स्तंभ माने जाते हैं। महामना मदनमोहन मालवीय तथा राजर्षि पुरुषोत्तमदास टण्डन ने भट्ट जी से पत्रकारिता की दीक्षा ली थी। सामाजिक जागरण ही उस समय की पत्रकारिता का प्रमुख लक्ष्य था। भट्ट जी में अद्‌भुत शाब्दिक प्रतिभा थी। उनमें शब्द ब्रह्म की शक्ति निहित थी। उनकी लेखनी में यह शक्ति अभिव्यक्त हुआ करती थी। ब्रिटिश सरकार से भट्ट जी को चेतावनियाँ मिला करती थी। इनकी चिंता न करके भट्ट जी अपने कार्य में दत्तचित्त रहा करते थे। 'हिंदी प्रदीप' निरंतर आर्थिक संकट से गुजरता रहा। फिर भी तैंतीस वर्षों के प्रकाशन के पश्चात् मासिक पत्र 'हिंदी प्रदीप' बंद हो गया। भट्ट जी निडर तथा साहसी पत्रकार थे। हिंदी प्रदीप के बंद होते ही वे कालाकांकर चले गये। वहाँ उन्होंने राज्य से प्रकाशित 'सम्राट' हिंदी साप्ताहिक पत्र का संपादन आरंभ किया।

भट्ट जी निर्भीक पत्रकार होने के साथ प्रतिभाशाली बहुआयामी साहित्यकार भी थे। निबंध, नाटक, उपन्यास आदि विभिन्न विधाओं में रचनाएँ करने का श्रेय भट्ट जी को हैं नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा सौंपा गया हिंदी कोश निर्माण कार्य भी उन्होंने सफलतापूर्वक संपन्न किया। सरल तथा मुहावरेदार हिंदी लेखन के लिए भट्ट जी आदर्श माने जाते थे। भावी पत्रकारों ने उन्हीं की शैली को अपनाया, हिंदी आलोचना का सूत्रपात उन्होंने ही किया। प्रथम 'हिंदी प्रदीप' में समीक्षाएँ प्रकाशित करने का श्रेय उन्हीं को है। हिंदी पत्रकारिता भट्ट जी की चिरऋणी रहेगी।

पं. रुद्रदत्त शमा-(1854-1918) सही मायने में शर्मा जी संपादन कला के आचार्य थे। शर्मा जी ने करीब नौ हिंदी पत्र-पत्रकारिता के कई मानदंड निर्धारित किये। इन्हीं मानदंडों ने पत्रकारों का मार्ग प्रशस्त किया। पत्रकारिता में अपने दीर्घकालीन अनुभव के कारण शर्माजी संपादकाचार्य कहे जाते थे। उनके साथ सीखकर अनेक सफल संपादक बन गये। सचमुच शर्माजी हिंदी पत्रकारों के लिए आदर्श थे।

1885 में शर्माजी ने 'आर्य विनय' (पाक्षिक-मुरादाबाद) के संपादक के रूप में अपने पत्रकार जीवन का श्री गणेश किया। तत्पश्चात् आर्य प्रतिनिधि सभा कलकत्ता के मुखपत्र 'आर्यावर्त' का संपादन दस वर्षों तक करते रहे। उसके बाद 'आर्यमित्र' (साप्ताहिक) के संपादक बनाकर आर्य प्रतिनिधि सभा ने इन्हें आगरा भेज दिया। वहाँ वे छह वर्षों तक संपादन कार्य में संलग्न रहे। इन पन्नों के अतिरिक्त शर्माजी ने समय-समय पर 'इंद्रप्रस्थ प्रकाश'। (दिल्ली) भारत मित्र (पटना) "वेंकटेश्वर समाचार" (मुंबई) "सत्यवादी" (हरिद्वार), "प्रेम" (बृन्दावन) तथा "मारवाड़ी" (नागपुर) का संपादन सम्पन्न किया। सफल पत्रकार के साथ वे एक अच्छे लेखक भी थे। उन्होंने अनेक ग्रंथों की रचना भी की। वे व्यंग्य विनोदमयी शैली के लिए प्रख्यात थे। वे चालीस-पैंतालीस वर्षों तक साहित्य की सेवा में संलग्न रहे। शर्मा जी का जीवन संघर्ष में बीता।

प्रताप नारायण मिश्र (1856-1894) मिश्र जी आधुनिक हिंदी के सचेतन पत्रकार गिने जाते हैं। उन्होंने 1883 में "ब्राह्मण" पत्र के माध्यम से अपने पत्रकार जीवन की शुरुआत की। आरंभ में मिश्रजी पर भारतेन्दु द्वारा संपादित "कविवचन सुधा" जैं साहित्यिक पत्रिका का प्रभाव था। उसी से प्रेरित होकर मिश्रजी हिंदी पत्रकारिता के क्षेत्र में आये। वे 1889 में "हिंदोस्थान" (दैनिक) के सहकारी संपादक बने। इसके प्रधान संपादक महामना मदनमोहन मालवीय थे।

मिश्रजी की अभिरुचि रंगमंच में भी थी। अनेक नाटकों में उन्होंने अभिनय भी किया। हिंदी में व्यंग्य लेखन की परंपरा "ब्राह्मण" पत्र से ही आरंभ हुई। मिश्रजी के लेखन में चुटीलापन पाया जाता था। उन्होंने हिंदी गद्य-पद्य दोनों को नया संस्कार प्रदान किया। मिश्र जी ने ही ठोस हिंदी गद्य को जन्म दिया। हिंदी की प्रकृति को एक विशिष्ट शैली में ढालने का श्रेय प्रताप नरायण मिश्र को है। वे एक प्रबुद्ध पत्रकार थे।

महामना मदन मोहन मालवीय (1886-1946) मालवीयजी हिंदी पत्रकारिता के एक प्रकाश स्तंभ थे। उन्होंने पत्रकारिता के माध्यम से भारत की सांस्कृतिक परंपरा को स्वर प्रदान किया। कालाकांकर के राजा रसपाल सिंह के आग्रह पर "हिंदोस्थान" दैनिक पत्र का संपादन किया। मालवीय की प्रतिभा इस दैनिक पत्र में मुखरित हुई है। उन्होंने "अभ्युदय" साप्ताहिक, 'मर्यादा' मासिक, 'सनातन धर्म' (काशी) 'विश्वबंधु' (लाहौर) के संपादक रहे। वे 'लीडर', 'भारत' (दैनिक) से संबंधित रहे। वे संवाद संकलन, मेकअप प्रूफरीडिंग में सिद्ध हस्त थे। उन्होंने गोपालराम गहमरी, प्रताप नारायण मिश्र, बालमुकुंद गुपत पत्रकारों को पत्रकारिता में प्रशिक्षित किया। मालवीयजी हिंदी के बहुत समर्थक थे। उन्होंने अखिल भारतीय हिंदी साहित्य सम्मेलन (प्रयास) नागरी प्रचारिणी

सभा (काशी) हिंदू विश्वविद्यालय (बनारस) हिंदी प्रकाशन मण्डल की स्थापना की। उन्होंने भारत के उत्थान में हिंदी भाषा और भारतीय संस्कृति की गौरव गरिमा को सिद्ध कर दिया। उनकी पत्रकारिता जगत मालवीय जी के योगदान को विस्मृत नहीं कर सकेगा।

मेहता लज्जाराम शर्मा (1863-1931) आप गुजराती भाषा-भाषी थे। किंतु हिंदी भाषा के प्रचार-प्रसार में उन्होंने अपना जीवन ही समर्पित कर दिया। उन्होंने 'सर्वहित' (मासिक पत्र) से अपना संपादकीय जीवन प्रारंभ किया। छह वर्ष तक वे उसके संपादक रहे। वेंकटेश्वर समाचार' (बंबई) के संपादक बनकर उस पत्र को नया रूप प्रदान किया। उन्होंने इस समाचार पत्र के माध्यम से साहित्यिक आंदोलन भी चलाया। वे सभी विधाओं में रचनाएँ किया करते थे। उन्होंने हिंदी पत्रकारिता के गौरव को बढ़ाया।

बालमुकुंद गुप्त (1865-1907) गुप्तजी हिंदी के सबल समर्थक थे। हिंदी और उर्दू दोनों भाषाओं की पत्रकारिता को प्रतिष्ठित करने में गुप्त जी का योगदान है। उन्होंने हिंदी पत्रकारिता को साहित्य निर्माण तथा भाषा चिंतन का माध्यम बनाया। 'अखबारे चुनार' से गुप्तजी के पत्रकार जीवन का आरंभ हुआ। कोहेनूर, 'हिंदोस्थान' के संपादक रहे। हिंदी बंगवासी, भारत मित्र के संपादन कार्य से संबद्ध रहे। उन्होंने 'भारतमित्र' के माध्यम से सतर्क पत्रकारिता ऐतिहासिक महत्त्व प्रदान किया। गुप्त जी के कारण हिंदी पत्रकारिता को नई शैली मिली। गुप्त जी व्यंग्यात्मक शैली के अग्रदूत थे। तुलनात्मक समीक्षा और अनुवाद में वे अपना सानी नहीं रखते थे।

हिंदी पत्रकारिता नई यात्रा नये आलोक के साथ आरंभ हुई। हिंदी का प्रथम पत्र 'उदंत मार्तंड' का प्रकाशन 30 मई 1826 को हुआ। साम्राज्यवादी कोष और आर्थिक कठिनाई के कारण 4 सितंबर 1827 को पत्र का प्रकाशन बंद करना पड़ा। पं. जुगलकिशोर जी ने 1850 में 'सामयदंत मार्तंड' का प्रकाशन किया।

हिंदी पत्रकारिता का जन्म तथा नींव निर्माण का ऐतिहासिक कार्य भी कोलकाता महानगर ने ही संपन्न किया।

"बंगदूत", "प्रजामित्र" 1857 के पूर्व 'भारत मित्र' 1878 "सार सुधानिधि" 1879 उचित वक्ता 1880 भारतमित्र पाक्षिक/साप्ताहिक/1897 में इसका दैनिक संस्करण निकला और एक वर्ष के बाद बंद हो गया। 1899 में बड़े आकार और कम मूल्य में इसका प्रकाशन हुआ।

पं. छोटूलाल मिश्र, पं. दुर्गा प्रसाद मिश्र, पं. हर मुकुंद शास्त्री, पं. रुद्रदत्त शर्मा, पं. अमृतलाल चक्रवर्ती बाबू बालमुकुंद गुप्त, पं. बाबूराव विष्णु पराडकर, पं. अंबिका प्रसाद बाजबेय पं. लक्ष्मण नारायण गर्दे इस पत्र के संपादक रहे।

'सारसुधानिधि' (13 जनवरी 1879) संपादक पं. सदानंद मिश्र पं. गोविंदनारायण मिश्र, पं. दुर्गाप्रसाद मिश्र पं. शंभुनाथ मिश्र सक्रिय सहयोगी थे।

'उचितवक्ता' (8 अगस्त 1880) पं. दुर्गाप्रसाद मिश्र

"हिन्दी बंगवासी" (1890) संपादक पं. अमृतलाल चक्रवर्ती

बालमुकुंद गुप्त, बाबूराव विष्णु पराड़कर, अंबिका प्रसाद वाजपेयी, लक्ष्मण नारायण गर्दे ने हिंदी बंगवासी, में संपादन कार्य किया था। यह दीर्घ जीवी पत्र था।

स्वदेशी आँदोलन को वैचारिक रूप देनेवालों में बिपिनचंद्रपाल, अरविंदघोष और रवींन्द्रनाथ ठाकुर का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। 'युगांतर' 'संध्या' 'वंदेमातरम' की संपादकीय टिप्पणियों के माध्यम से पूर्ण स्वराज्य की आवाज़ बुलंद की गई इसका देश व्यापी प्रभाव हुआ।

1903 में 'सारस्वत सर्वस्व' पं. गोविंदनारायण मिश्र

1904 में "वैय्योषकारक" संपादक शिवचंद्र भरतिया

माधव प्रसाद मिश्र ने इस पत्र को साहित्यिक स्वर व स्वरूप दिया।

नवंबर 1967 में "नृसिंह" (मासिक) पं. अंबिका प्रसाद वाजपेयी, पं. गोविन्दनारायण मिश्र, पं. दुर्गाप्रसाद मिश्र का सक्रिय सहयोग इस पत्रिका को प्राप्त था।

1907 में देवनागर संपादक न्यायपति शारदा चरण मिश्र

एक लिपिविस्तार परिषद-प्रकारक- इसका उद्देश्य संपूर्ण देश की भाषा के लिए देवनागरी लिपि को साम्राज्य लिपि को मान्यता दिलाना था। इसके द्वारा राष्ट्र को एकता को रोग लगा था।

समाचार को पाठकों तक पहुँचाना ही पत्रकार का मुख्य लक्ष्य है। अर्थात समाचार पत्र और पाठक का इस नाते निकट संबंध है। मामूली पढ़ा-लिखा इंसान और विद्वान समाचार पत्र का पाठक होता है। पाठक ही समाचार पत्र का खरीदार होता है। इस कारण समाचार पत्र की भाषा का सरल और सहज होना अनिवार्य है। तभी समाचार-पत्र और पाठक के बीच आत्मीयता स्थापित हो सकती है। प्राय: यह पाया गया कि आम जनता की बोलचाल की भाषा में प्रकाशित पत्र ही लोकप्रिय हो गये और उनकी ग्राहक संख्या भी शीघ्र बढ़ गई।

भारतेन्दु युग की पत्रकारिता का प्रश्न है वह हिंदी नहीं थी। वह अरबी-फारसी शब्दों से लदी उर्दू थी। कालांतर में संस्कृत शब्दावली से ओतप्रोत हिंदी भाषा का प्रचलन हुआ। इन दोनों भाषाओं के मिश्रण से हिंदुस्तानी का जन्म हुआ। आरंभ में हिंदुस्तानी ही पत्रकारिता में प्रयुक्त भाषा थी। उस समय भाषा का स्वरूप स्थिर नहीं था, अटपट था। पत्र-पत्रिकाओं में वर्तनी की समस्या गंभीर रूप से विद्यमान थी।

इसके पूर्व पद्य और गद्य में बृजभाषा और अवधि का उपयोग हुआ करता था। सर्वप्रथम भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने खड़ी बोली का उपयोग करना आरंभ किया। भाषा के इस नये प्रयोग का पाठकों ने स्वागत किया। शीघ्र ही खड़ी बोली लेखकों की अभिव्यक्ति का माध्यम बन गई।

पं. बालकृष्ण भट्ट, पं. रुद्रदत्त शर्मा, प्रतापनारायण मिश्र, महामना मदनमोहन मालवीय तथा बालमुकुंद गुप्त जैसे उद्भट विद्वानों के फलस्वरूप भाषा परिष्कृत हुई व्याकरण के नियमों से सुसज्जित हुई, शुद्ध हुई। वर्त्तमान हिंदी भाषा का स्वरूप निर्धारित करने में उपरोक्त विद्वानों का योगदान इतिहास में स्मरणीय रहेगा हिंदी भाषा उनकी ऋणी है, ऋणी रहेगी।

संपर्क: 230, कामराजपुरम,
चेन्नई-600034

लघु पत्रिकाएँ : नई चुनौतियाँ

○ डॉ० मधु धवन

आज के औद्योगिक, प्रौद्योगिक, सूचनापरक युग में बड़े संचार माध्यमों के साथ-साथ लघु संचार माध्यम तीव्रगति से विस्तार पा रहे हैं। लघु-पत्र-पत्रिकाएँ तथा कम व्यय पर बने श्रव्य-दृश्य माध्य माध्यम लघु संचार माध्यम हैं, जिसे लिटिल मीडिया कहा जाता है। ज्यों-ज्यों मानव विकासोन्मुख होता जा रहा है, त्यों-त्यों विविध प्रकार के क्षेत्रों का अन्वेषण भी हो रहा है। लघु पत्र-पत्रिकाएँ अपने छोटे आकार में होते हुए भी गागर मे सागर भरने का काम करती हैं। जब भी लघु पत्र-पत्रिकाओं की बात उठती है, तो मुझे रहीम का दोहा याद हो आता है-

रहीमन बड़न को देख के लघु न दीजै डारी।

जहाँ काम आवै सुई, कहा करै तरवारी ॥

जिस प्रकार कई किस्म के बिस्कुट, चाय, पापड़, मसाले, डिटर्जेंट, टूथपेस्ट, क्रीमों के विज्ञापन हमारी जागरूकता बढ़ा रहे हैं, उसी तरह देश भर की लघु पत्र-पत्रिकाएँ तथा लघु संचार माध्यम अपने-अपने ढंग से अपने विचारों तथा संस्कृति की रक्षा के माध्यम हैं। देखा जाए तो लघु पत्र-पत्रिकाओं का जन्म कब और क्यों होता है?

- जब सत्ता-व्यवस्था के विरुद्ध अपनी संस्कृति की चर्चा हो।
- कला, साहित्य, संस्कृति, दर्शन और सामाजिक परिवर्तन की जातीय आकाँक्षाएँ हो।
- जब किसी वर्ग पर निरंतर अन्याय या बेइन्साफी हो।
- जब समाज के विकास के मनोरंजक ज्ञान-प्रकाश फैलाने की आवश्यकता हो।
- जब उदर की क्षुधा नहीं, अपितु मन मस्तिष्क की क्षुधा शांत न हो।
- ज्यों-ज्यों विकास होगा त्यों-त्यों चुनौतियाँ बढ़ती जाएँगी।

जहाँ तक मेरा अपना अनुभव है, जिन युवाओं में प्रतिवाद सांस्कृतिक पुनर्संरचनात्मक आवेश, गैर-व्यावसायिकता और सामाजिक ढाँचे में बुनियादी परिवर्तन की चाह होती है, वे इनको अंजाम देते हैं। यह कहना अत्युक्ति न होगी कि लघु पत्र-पत्रिकाएँ नई पीढ़ी की नई सृजनात्मकता की उपज है।

स्वाधीनता संग्राम युग की साहित्यिक पत्रिकाएँ पाठक वर्ग को संबोधित थी, किंतु बाद में ये साहित्यिक पत्रिकाएँ पाठक वर्ग की उपेक्षा कर शुद्धतावादी होने लगीं। इन्होंने सामाजिक समस्याओं की उपेक्षा की जिसके चलते पाठक वर्ग सीमित हो गया। गौरतलब यह है कि इन पत्र-पत्रिकाओं ने अपने युग की रचनात्मकता को प्रेरित किया।

इस दौर में व्यावसायिक प्रतिष्ठानों ने भी पत्रिकाएँ निकालीं। उनके वितरण का एक तरीका था। उसके पाठक थे। समाज में लंबे प्रयासों से जो साहित्यिक परिवेश बनाया गया था, उसका पूरा फायदा ये व्यावसायिक पत्रिकाएँ उठा रही थी। वे बिकती थी, किंतु उनहें व्यावसायिक नहीं कहा जा सकता।

लघु पत्र-पत्रिकाओं की भूमिका:

- समाज या जाति के विकास हित काम करती हैं।
- जहाँ साक्षरता नहीं होती वहाँ अपने बलबूते पर अथवा बड़ी संस्थाओं की मदद से कई प्रबंध करवाती हैं।
- अपनी पत्रिका के माध्यम से सिखाने का कार्य।
- चेन्नई में 'चेटर बाक्स' बाल पत्रिका, ऐसी ही थी जिसका लक्ष्य बच्चों का मनोरंजन तथा ज्ञानवर्धन था।
- तमिलनाडु बहुभाषी लेखिका संघ द्वारा निकाली जा रही स्वास्थ्य की देखरेख के लिए 'मेरी रक्षा' इसी लक्ष्य से निकाली जा रही है।
- हैदराबाद से निकलनेवाली दक्षिण समाचार।

चेन्नई से 'साउथ चक्र', प्रवासी, पल्लव टाइम्स, अन्नानगर टाइम्स (अँग्रेजी में), मैलापुर टाइम्स, टी. नगर टाइम्स, अड्यार टाइम्स आदि हैं जो अपने इलाके के स्कूल-कॉलेजों, अस्पतालों, शो रूमों, लेडी टेलर तथा ब्यूटी पार्लेर तक की समस्त खबरें देता है, जिससे वह लोकप्रिय है। अपना परिचय अपने इलाकेवालों को तो होना चाहिए।

विसंगतियाँ:

- मैं यहाँ अपने अनुभव के बल पर कहना चाहूँगी कि जब पूरी दुनिया में बाजारवाद हावी हो रहा है और भारत उस बाजारबाद की बहुत बड़ी मंडी है ऐसी स्थिति में अपनी पत्र-पत्रिकाओं के लिए सही उपभोक्ता की तलाश न कर पा रहे हैं और न पैदा कर पा रहे हैं। बाल पत्रिका चेन्नई में 'चार्टर बाक्स' इसका सबसे बड़ा उदाहरण है। जो अपनी ताकत के बाद औद्योगिक कंपनी से सहायता लेती है फिर भी कई कारणों से वह बंद हो गई।
- अखबार विज्ञापनों पर निर्भर करती है अत: कभी कभार हर प्रकार के विज्ञापनों से समझौता कर लेती है।
- अँग्रेजी की लघु पत्रिकाओं को भी इस दौर से गुजरना पड़ता है, लेकिन उन्हें विज्ञापन मिल जाते हैं।
- समाचार के अलावा जीवन के हर पहलू को प्रभावित करने वाले नए और अछूते परिवर्तनों पर उनकी दृष्टि पड़ने लगी है।
- लघु पत्र-पत्रिकाओं में लोक जीवन, परंपरा, संस्कृति और भाषा को स्थानीय स्तर पर उभरने का जो अवसर दिया जाता, वह इस देश में बची हुई अँग्रेजीयत को चुनौती ही है।
- मेरे विचार में लघु पत्रिकाओं की स्वस्थ अभिव्यक्ति ही देश की समस्त विषमताओं, अस्मिताओं को सह अस्तित्व के साथ ऊपर उठाने का अवसर देती हैं जिससे राष्ट्रीयता की भावना निरंतर बनी रहती है।
- सच्चे अर्थों में यह लघु पत्र-पत्रिकाएँ ग्लोबल और लोकल की क्षमता रखती हैं।
- तत्कालीन यथार्थ को उठाना

उपलब्धियाँ

- बड़े अखबार जहाँ श्वेत मुद्रित स्थान को लाखों में बेचते हैं, वहाँ बहुत ही कम दर में छप सकते हैं।
- वर्गीकृत भी जहाँ बड़े अखबारों में महँगा होता है वहाँ कम दाम में यहाँ होता है।
- नई पुस्तकों की जानकारी समीक्षा आदि।
- ये पत्र-पत्रिकाएँ उन रुचियों के प्रतिसंवेदनशील रहती हैं संवेदनशीलता उन्हें पाठकों में लोकप्रिय बनाती हैं।
- पाठकों की जरूरतें, रुचियाँ,

रहन-सहन, के प्रति नए माहौल के प्रति सजग करने की हो सकती है।

• अपनी जिम्मेदारियों के प्रति स्वस्थ, सकारात्मक

• स्थानीयता या जातीय के प्रति संवेदनशीलता के चलते ये ज्यादा राष्ट्रीय चेतनायुक्त हैं।

• राष्ट्रीय या स्थानीय घटनाक्रमों में सदा दायित्व निभाया है,

• अपनी सीमाओं के बावजूद तमाम मामलों में जितनी उदारता, तटस्थता दृष्टिगत होती है, तथाकथित राष्ट्रीय अखबारों में नहीं।

चुनौतियाँ

• अपने लक्ष्य के प्रति सजगता एवं स्पष्टता का निर्वाह

• सच्चाई को उद्घाटित करने की हिम्मत बनाए रखना।

• संसाधनों के अभाव में नाना प्रलोभनों में भी दृढ़ रहना।

• प्रतिदिन किसी न किसी अग्नि परीक्षा के लिए तैयार रहना।

• विश्वसनीयता बनाए रखने के लिए दिन-रात एक करना।

• नेताओं या अधिकारियों की नाराजगी के गंभीर नतीजे भुगतने के लिए न मजबूत तंत्र होता है और न ही ऐसा कोई मंत्र फिर भी सत्ता के गलत कार्यों को उजागर करना, टकराव मोल लेते हुए आर्थिक दृष्टि से पत्र को पैरों पर खड़ा रखना।

• जब किसी विचारधारा से जुड़ जाता है तो विभाजक तत्त्व उत्पन्न होते हैं, ऐसी स्थिति में पाठक कम हो जाते हैं

• तमिलनाडु में यह देखा गया है कि तमिलनाडु पुलिस द्वारा राजनीतिक घटनाओं की रिपोर्टिंग रोकने के लिए हर तरह के कदम उठाए जाते हैं। ऐसी स्थितियों में लघु पत्र-पत्रिकाएँ उनकी कड़ी निगरानी में रहती हैं।

• हर राजनैतिक तबके में बैठा व्यक्ति चाहे जो मर्जी करे, किंतु खबर अपने पक्ष में संतुलित चाहता है जो खबर की दृष्टि से चुनौतीपूर्ण हो जाती है।

• लघु पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से हर योग्य व्यक्ति सुर्खियों में आता है।

• तमिलनाडु की पूर्व मुख्यमंत्री सुश्री जयललिता जी की व्यवस्था को लेकर जब कोई नागरिक चर्चा करता है, तो उसी वक्त संचार माध्यम दूरदर्शन हो या प्रिंटमीडिया सबको पुलिस कर्मियों द्वारा चेतावनी भेज दी जाती है। ऐसी स्थिति में लघु पत्रिकाओं के संपादकों पर कड़ी निगरानी रखी जाती है। फिर भी हर्ष तथा आश्चर्य की बात है कि जो सच्चाई बड़ी अखबार नहीं देते जैसे-सहकारिता, भू-माफिया, पशुपालन की सरकारी पूँजी से पनपा अपराधी गिरोह, खदानों की अपार संपदा बटोरते नकाबपाशों की लंबी सूची का खुलासा लघु पत्र के संपादक निडरता से करते हैं।

• लघु पत्र-पत्रिकाओं के संपादकों में बौद्धिक ईमानदारी की अत्यंत आवश्यकता होती है।

• आर्थिक संकट निवारण हेतु व्यापारी वर्ग की चमेट में आया पत्र जैसे-चेन्नई का 'मधुबांसुरी'।

• लघु पत्र-पत्रिकाओं तथा संचार माध्यमों के समक्ष बड़े अखबार तथा संचार माध्यम चुनौती बन कर खड़े हैं।

• विगत कई वर्षों से इस चुनौतियों का सामना करते हुए लघु पत्र-पत्रिकाएँ इस मुकाम तक इसीलिए पहुँच पाई हैं, क्योंकि वे हमारी संस्कृति रक्षक बनी हैं।

• वे इलेक्ट्रॉनिक मीडिया के प्रदूषण के विरुद्ध अभियान चलाकर नए दौर के प्रदूषणों के प्रति सजगता बरतती हैं।

• सामाजिक अँधविश्वास, कुरीतियाँ, रूढ़ियों की समस्याओं के समाधान पर विचार प्रकट करती हैं।

• लघु पत्र-पत्रिकाएँ ही सबसे पहले युवा कलाकारों, साहित्यकारों को उजागर करती हैं।

• अच्छे संपादकों का निर्माण करती हैं।

• आसपास की प्रतिभाओं को प्रेरणा देती हैं।

• पत्र-प्रत्रिकाओं को जीवित सुचारु रखने के लिए विज्ञापन ही उनका आधार होता है, किंतु विज्ञापनदाता उन पत्रिकाओं को ही विज्ञापन देना पसंद करते हैं जिनकी प्रतियाँ लाखों में बँटती हो।

• उपभोक्ता संस्कृति के हमले से अपने गाँव-कस्बों को बचाने का काम।

• सामाजिक हस्तक्षेप से दायरों का बढ़ना जिससे सामाजिक मुद्दे उठाकर वैचारिक संघर्ष तेज करने के नाना प्रयास।

• ये लघु पत्र-पत्रिकाएँ विगत कई वर्षों से पुनरुत्थानवाद और सांस्कृतिक ह्रास को समग्र रूप से चुनौती दे रही है।

• प्राचीन साहित्यिक केंद्र सारहीन हो चुके हैं। सरकारी प्रतिष्ठान संस्कृति की स्वायत्तता के नाम पर केंद्रीकरण को बढ़ावा दे रहे हैं। अब संस्कृति जश्न के रूप में मनाई जाती है और इनकी मानसिकता तथा फिजूलखर्ची को ये पत्रिकाएँ पर्दाफाश करती हैं।

• आज जब साहित्य को उठाकर फेंकने की तैयारी चल रही है लघु पत्रिकाएँ सबसे ज्यादा उनकी हिफाजत करती हैं। इनका कार्य समझने के लिए इतना भर समझ लीजिए कि जैसे समाज में जनता के वोट कलाकार को पनपने का मौका देते हैं, उसी तरह लघु पत्रिकाओं की सक्रियता सबसे ज्यादा संस्कृति, साहित्य को पनपने का सुअवसर देता है।

• बड़े संचार माध्यम झूठ, कृत्रिमता, फूहड़पन का परिचय देता है, वहाँ लघु संचार माध्यम कम खर्च में वस्तुनिष्ठ परिचय देता है।

कुल मिलाकर ऊँची आवाज में कहा जा सकता है कि लघु पत्र-पत्रिकाओं के चलते भारत देश अपने को भारत की मिट्टी के साथ जुड़ा पाता है।

भले ही लघु पत्रिकाएँ घनाभाव के चलते चटपटाती हैं फिर भी साँस लेती हुई वातावरण में अपनेपन का भाव निबाहती हैं।

आजकल दक्षिण के कई कार्यालयों की पत्रिकाएँ निकल रही हैं जिनमें साहित्य तथा राजभाषा दोनों का विकास होता देखा जा सकता है। कतिपय नाम गिना रही हूँ।

1. चेन्नै वाणी- भारत संचार निगम लिमिटेड चेन्नै टेलीफोन की पत्रिका है।

2. निष्ठा- बैंक नगर राजभाषा कार्यान्वयन समिति, कोयम्बत्तूर

3. दक्षिण निर्माण भारती - केंद्रीय लोक निर्माण विभाग दक्षिण क्षेत्र। चेन्नै

4. रेल रंजनी- सवारी डिब्बा कारखाना, चेन्नै

5. वाणी- इंडियन ओवरसीज़ बैंक की राजभाषा पत्रिका, चेन्नै

6. दक्षिण दर्पण- पंजाब नेशनल बैंक, दक्षिणी क्षेत्र राजभाषा पत्रिका, चेन्नै

7. सारशिका - राष्ट्रीय पेट्रोलियम संगोष्ठी थालमुत्तु नटराजन हाल, एगमोर चेन्नै

संपर्क : के-3, अन्ना नगर (ईस्ट), चेन्नई -600102

पत्रकारिता का सच

○ राम प्रताप सिंह

भारत के विभिन्न क्षेत्रों में हजारों की संख्या में वैचारिक, साहित्यिक, सांस्कृतिक, सामाजिक, राजनीतिक एवं आर्थिक पत्र-पत्रिकाएँ प्रकाशित होती हैं। मगर जहाँ तक साहित्यिक एवं वैचारिक पत्रिका का संबंध है, कुछ लोग तो इसकी शुरुआत इसलिए करते हैं, क्योंकि उन्हें कहानी कविता, लेख तथा विचार आदि से लगाव होता है। साहित्यिक-वैचारिक पत्रिका से लोग न केवल अपनी रचनात्मक ऊर्जा का इस्तेमाल करते हैं, बल्कि पाठकों के साथ वैचारिक आदान-प्रदान भी करते हैं। कई लोग तो ऐसे हैं, जो हानि उठाकर भी साहित्यिक पत्रिका का प्रकाशन करते हैं। कई लोग ऐसे भी हैं जो अपनी पूँजी अथवा पेंशन आदि को पत्रिका के प्रकाशन में खर्च कर डालते हैं। दिल्ली से प्रकाशित राष्ट्रीय चेतना की वैचारिक पत्रिका 'विचार दृष्टि' है जिसे इसके संपादक-प्रकाशक श्री सिद्धेश्वर पिछले दस वर्षों से लगातार नियमित रूप से और बिना कोई चटपटी व मसालेदार सामग्री का समावेश किए प्रकाशित कर रहे हैं और वह भी अपने पेंशन की पूरी राशि खर्च कर इसे सफलतापूर्वक निकाल रहे हैं जिसकी प्रतियाँ देश के प्राय: सभी क्षेत्रों खासतौर पर दक्षिण भारत के चारों राज्यों के साहित्यकारों-रचनाकारों को मुहैया कराई जाती हैं। दस वर्षों के बाद इस पत्रिका से जुड़े शुभेच्छुओं ने अब यह महसूस किया है कि इसके नियमित प्रकाशन तथा इसे जीवित रखने के लिए एक स्थाई सुरक्षित निधि जरूरी है। मुझे खुशी इस बात की है कि राष्ट्रीय चेतना की वैचारिक संस्था 'राष्ट्रीय विचार मंच' जिसका यह मुख-पत्र है कि राष्ट्रीय कार्यकारिणी ने पटना के प्रो० एम.पी. सिन्हा के प्रस्ताव को सर्वसम्मति से पारित कर वर्ष 2008 में एक 'विचार दृष्टि सुरक्षित निधि' की स्थापना की है और देश भर के प्रबुद्धजनों, साहित्यकारों-रचनाकारों, पत्रकारों तथा इसके शुभेच्छुओं से अनुरोध किया गया है कि वे मुक्त हस्त से कम-से-कम दस हजार रुपए की राशि प्रदान कर इस निधि का दाता सदस्य (Donor Member) बनें ताकि इसकी राशि (Fixed amount) के ब्याज से प्रति वर्ष पत्रिका प्रकाशित होती रहे। मंच का यह पहल सराहनीय है इसलिए विचार दृष्टि के चाहने वालों को हर संभव सहयोग करना एक अच्छी पत्रिका के हित में होगा, क्योंकि संपादक का मूल उद्देश्य साहित्य और इसके माध्यम से समाज की सेवा करना है। कई बार ऐसे संपादकों-प्रकाशकों को आर्थिक संकट के चलते पत्रिका को असमय बंद करना पड़ता है। 'विचार दृष्टि' के संपादक ऐसे भी नहीं हैं कि मात्र साहित्यिक व्यक्ति के रूप में जमने के लिए शौकिया साहित्यिक पत्रिका का प्रकाशन करते हैं। ये गैर जरूरी सामग्री के पन्ने काले नहीं करवाते हैं और न किसी दूसरे गुटों से विरोध जताना इनकी आधारशिला है। यह भी नहीं कि साहित्य की आड़ में राजनीति करना चाहते हैं। बल्कि सच तो यह है कि यदि ये राजनीति करना चाहते, तो सीधे-सीधे राजनीति में सक्रिय रहकर अबतक कुछ न कुछ पद प्राप्त कर लेते, क्योंकि राजनीति में भी इनकी पकड़ और पहुँच बहुतों से बहुत अधिक है। साहित्य की आड़ की इन्हें आवश्यक नहीं। साहित्य इनके लिए हमेशा राजनीति से ऊपर रहा है और इसके जरिए समाज के प्रति प्रतिबद्ध रहकर उसकी सेवा भी कर रहे हैं। आखिर तभी तो अपनी सूझबूझ के चलते कठिन परिस्थितियों में भी ये धैर्य नहीं खोते और उससे सरलता से पार पा जाते हैं। अपने गज़ब के आत्म विश्वास और रचनात्मक की वजह से ये पत्रकारिता की अनूठी चाशनी में लिपटे नजर आते हैं।

पत्रकारिता एक ओर जहाँ संपादक के व्यक्तित्व चिंतन और रचनाकर्म से रूबरू कराती है, वहीं पत्रकारिता के सच को भी उजागर करती है।

संपर्क : जय प्रकाश नगर, पटना-गया लाइन, पटना-1

हिंदी पत्रकारिता : बदलता स्वरूप

○ सविता चड्ढा, दिल्ली

समर्पण की भावना मनुष्यों के लिए बहुत आवश्यक है और दुम हिलाने की प्रवृत्ति पत्रकारिता के लिए उतनी ही घातक।

पत्रकारिता के क्षेत्र में आज की सुबह काली सफेद ही नहीं, बल्कि बहुत रंगीन हो गयी है। यह रंग पत्रकारिता के लिए कितनी छटा बिखेर चुके हैं और भविष्य में कब और कितनी रंगीनियाँ आएँगी, शायद हम में से कोई नहीं जानता। क्या हम कभी कल्पना कर सकते थे कि गोपनीय रूप से कैमरों में कैद होकर कई छिपे रहस्य जन-जन के द्वार तक पहुँच जाएँगे। यह एक चमत्कार-सा लगता है, एक ऐसा चमत्कार जो सच भी है। यह भी सच हे कि सच मीठा नहीं होता। मैंने बहुत पहले लिखा था 'बेशक सच कड़वा होता है, लेकिन सच तो सच होता है, गैर भले हो कितना अच्छा, अपना फिर अपना होता है।' पत्रकारिता पर बात करते हुए उपर्युक्त पंक्तियाँ, हो सकता है सार्थकता देती प्रतीत न हों, लेकिन जब हम आज सच की बात करते हैं, तो यह जानने की इच्छा जाग उठती है कि देश के किसी भी हिस्से में होने वाले सच को नंगे रूप में ज्यों-का-त्यों परोस देना क्या यही पत्रकारिता है। दूसरा प्रश्न यह आता है कि क्या आज की पत्रकारिता है। दूसरा प्रश्न यह आता है कि क्या आज की पत्रकारिता का उद्देश्य मात्र यही रह गया है कि किस पत्नी ने किस पति को त्यागा, उसकी किसके साथ कितनी बार शादियाँ हुई, पिता ने कब बलात्कार किया। माँविहीन बच्चियों के साथ तार-तार रिश्तों के कुकर्म को छौंक के साथ प्रस्तुत करना, ऐसी पत्रकारिता का क्या उद्देश्य है?

मुझे यह स्वीकार करने में कतई परहेज नहीं कि पत्रकारिता के खोजी रूप ने कई मसलों की पोल खोलकर जनता के निरीह और सच्चे लोगों को न्याय दिलवाया है। जो बात देश के हित में है वह है हिंदी पत्रकारिता के धुरंधर महानुभावों ने देश के सामने और विश्व के सामने यह तो सिद्ध कर दिया है कि हमें हिंदी से प्रेम है। भारतवर्ष की जनता में सर्वाधिक लोग हिंदी समझते हैं। मैंने स्वयं अत्यंत महत्त्वपूर्ण बैठकों में अँग्रेजी लंबे संबोधनों के दौरान लोगों को न केवल ऊँघते हुए देखा है, बल्कि जागने वाले चेहरों पर एक अजनबी-सी शंका, दूसरे शब्दों में घृणा भी रहती है, मानों कह रहे हैं बोलते जाओ, हमें क्या समझना है। उन संबोधनों को समझने वाले शायद दस प्रतिशत ही होते हैं। अँग्रेजी साहित्य की बात यहाँ नहीं की जा रही है। मेरा आशय अपने देश के लोगों को, अपने देश के बीच अँग्रेजी के माध्यम से बात कहने पर मुझे एतराज है। मैंने अँग्रेजी साहित्य को पढ़ने के लिए एम.ए.अँग्रेजी में किया था, मैं अँग्रेजी में लिखी कई महत्त्वपूर्ण पुस्तकें पढ़ना चाहती थी। नोकरी और लेखन करते समय-समय निकाल पाना अति असंभव था, सो एम.ए. अँग्रेजी के दौरान मैंने जी भरकर अँग्रेजी साहित्य की पुस्तकें पढ़ी थीं। बात वही सच की आती है। हमें सच स्वीकार कर लेना चाहिए कि हिंदी पत्रकारिता नंबर एक पत्रकारिता है। दूरदर्शन की भूमिका इस मायने में अत्यंत महत्त्वपूर्ण कही जा सकती है। आज पत्रकार और पत्रकारिता के अर्थ बदल गये हैं। आज का पत्रकार केवल रिपोर्टिंग ही नहीं करता, वह जंगल में जाकर हाथ में कलम के स्थान पर माइक लेकर सारी जनता के सामने सत्य उजागर करता है। आज कैमरा भी पत्रकार की आँख बनकर जनता को सत्य दिखाता है। कभी यह सत्य एक दो फोटो के रूप में (बहुत कम अखबारों में) आते थे। आज एक-एक पल की खबर को सीधे प्रसारण के रूप में अथवा बाद में भी देखा जा सकता है।

भारतीय पत्रकारिता में इस तरह के उच्चकोटि के अनेक पत्रकार आज हिंदी के माध्यम से देश को नयी सोच दे रहे हैं। ये कार्यक्रम देश की जनता के बीच सीधा तालमेल बिठाते हैं और उन्हें साधारण नागरिक से विशेष नागरिक बनाने में सहयोग देते हैं।

मुझे याद है उन दिनों मैं अपनी पुस्तक 'अठारह दिन के बाद' पर काम कर रही थी। गीता में अर्जुन को दिए गये उपदेश तथा भीष्म पितामह द्वारा अठावन दिनों में बाण शैय्या पर बने रहने के अठावन दिनों में जो ज्ञान उन्होंने पाण्डवपुत्रों को दिया था वह अति विशेष था और अति विशिष्ट लोगों के लिए भी था, अर्थात् जो राजा-महाराजाओं जैसा जीवन जीना चाहे ये सभी उपदेश उन्हीं के लिए थे। इन उपदेशों का सार मैंने अपनी पुस्तक में दिया है। कहने का अर्थ यह है कि कोई भी साधारण नागरिक जब विशेष जानकारी हासिल कर लेता है चाहे वह किसी भी रूप में हो, साधारण से ऊपर उठ जाता है।

जहाँ हम आज की हिंदी पत्रकारिता के प्रति नतमस्तक होकर, उसकी निरंतर सफलता की कामना करते हैं, वहीं आज कुछ हिंदी पत्रकार, संवाददाता उसे दबाव की नीति के अनुरूप अपने हितों के लिए अधिक प्रयोग कर रहे हैं। इस पत्रकारिता को क्या कहा जाए। क्या इसे पत्रकारिता माना भी जाए या नहीं। यह एक अलग प्रश्न है।

जैसे-जैसे पत्रकारिता का स्वरूप बदलता गया, तो यह माना जाने लगा कि समाचार और स्टोरी के आधार पर पत्र-पत्रिकाओं में लिखने वाले ही पत्रकार नहीं। जब मैंने नयी पत्रकारिता और समाचार लेखन पुस्तक लिखते हुए पत्रकारिता के विविध रूपों की चर्चा करते हुए कहानी, व्यंग्य, लेख, निबंध और साक्षात्कार के अलावा लेखन की अन्य साहित्यिक विधाओं पर हिंदी समाचार-पत्रों में नियमित अथवा अंशकालिक रूप में लिखने वालों को पत्रकार की श्रेणी में रखा था, तो सुप्रसिद्ध साहित्यकार श्रीमती अमृता प्रीतम ने कहा था कि पत्रकारिता तो पत्रकारिता ही है तुमने अपनी किताब का नाम नयी पत्रकारिता क्यों रखा है? मैंने उन्हें कहा था 'मैं हर उस व्यक्ति को पत्रकार मानती हूँ जो पत्र-पत्रिकाओं में नियमित लिखता हैं अर्थात् जो व्यक्ति नियमित रूप से अथवा अंशकालिक रूप में प्रेस को अपने विचार एक स्टोरी न्यूज के माध्यम से प्रस्तुत करता है वह पत्रकार है। वे हैरान भी हुई थी, और हमारी एक लंबी चर्चा भी हुई जिसमें यह निष्कर्ष भी निकला कि एक लेखक जो कहानी, कविता, व्यंग्य, नाटक, आलोचक और संपादक है वह पत्रकार हो सकता है, परंतु जो केवल पत्रकार है और किसी पत्र या पत्रिका में केवल खबरें लिखता है या नौकरी करता है वह लेखक नहीं कहला सकता जब तक वह स्वयं किसी विशेष विधा में न लिखता हो। खैर, यह एक अलग विषय है इस पर कभी विस्तार से लिखा जा सकता है। वैसे इस विषय पर कई बार लंबी चर्चाएँ और बहस की जा चुकी हैं कि श्रेष्ठ और

अच्छा लेखक/पत्रकार यदि अच्छा इन्सान होगा, तभी वह अच्छा लिख पाएगा। कुछ मानते हैं कि व्यक्तिगत जीवन जीना एक अलग बात है और लिखना एक अलग। मेरी मान्यता है कि व्यक्तिगत जीवन जीना एक अलग बात है और लिखना एक अलग। मेरी मान्यता है वाल्मीकि ने जब पूरे मन से हमेशा के लिए अच्छाई को अपना लिया, तभी वह श्रेष्ठ साहित्य दे सके। ऐसे अनेक उदाहरण हैं जो दोनों पक्षों को सिद्ध करते हैं।

मैं फिर पत्रकारिता में सच की बात पर आती हूँ और सच यही है कि अच्छा, श्रेष्ठ और सदाचारयुक्त जीवन जीने वाला ही व्यक्ति अच्छा लेखक अथवा पत्रकार बन सकता है। जिस व्यक्ति के अपने कोई सिद्धांत नहीं, जीवन अनुशासित नहीं, जिसका अपना जीवन नियमों से परे है वह अपने पात्रों से कैसे अच्छा संवाद करवा सकता है। किसी भी मनुष्य का नजरिया उसके भीतरी विचारों पर और सकारात्मक सोच पर निर्भर करता है। किसी भी पत्रकार को या संपादक को समाज के प्रति सकारात्मक रुख रखना ही चाहिए। किसी भी सफल और श्रेष्ठ संपादक का मिशन कलम की नोक से समाज में व्याप्त सभी बुराइयों का समाधान करना और समाज की सभी अच्छाइयों को उजागर करना होना चाहिए।

हिंदी पत्रकारिता का स्वरूप आज इस कदर बदल चुका है जिसकी कल्पना भी हमने वर्षों पहले नहीं की थी। पिछले दिनों अमरीका के एक लेखक ने अपनी पुस्तक के बारे में बताया और मुझे वेबसाइट पर उसे पढ़ने का अनुरोध भी किया। पत्र-पत्रिकाएँ, मीडिया, संचार, दूरदर्शन, रेडियो सब कुछ बदल गया है। यह परिवर्तन निःसंदेह हमें प्रगति की ओर ले जा रहा है विशेषकर हिंदी-प्रेमियों के लिए एक सुखद और सफल प्रयोग ही है। मुझे न तो कभी लगा कि हिंदी का भविष्य अनिश्चित है और न ही आज लगता है। हम निरंतर विकास की ओर अग्रसर हैं बस, नजरिया बदलने की बात है।

हम प्रगति की ओर जा रहे हैं, संपूर्ण विकास हमारा लक्ष्य है, परंतु ऐसा नहीं है कि पत्रकारों और साहित्यकारों के लिए आज कोई मिशन नहीं है। समस्याएँ तो समाज में जन्म लेती रहती हैं। मिशन के रूप में हमें यह मान लेना चाहिए कि जब तक देश के प्रत्येक गरीब को अन्न, जन, वस्त्र नहीं मिलते हम चुप नहीं बैठेंगे। हमें यह मान लेना चाहिए जब तक बुराई करने वालों के दिलों से बुराई दूर नहीं हो जाती, बुरा करने वाले के प्रति समाज का और अपना मोह दूर नहीं कर देंगे हम निरंतर उस बाबत लिखते रहेंगे। प्रत्येक समस्या को सम्मानजनक ढंग से दूर करने का प्रयास करना ही संपादक और पत्रकार का मिशन है।

यह देश अपना है, सब लोग अपने हैं, यहाँ की सारी समस्याएँ भी अपनी हैं और नेक इरादों के साथ हमें इन समस्याओं के बारे में सोचना है। अगर विशुद्ध राजनीति को छोड़ भी दिया जाए, तो पत्रकार के पास मिशन और लक्ष्यों की कमी नहीं है।

जब मैं पत्रकारिता की बात करती हूँ, तो मुझे सबसे अधिक प्रभावित संपादकीय अथवा अग्रलेख ही करते हैं। कोई समाचारपत्र बिना अच्छे संपादकीय के अपनी विशिष्ट और सलोनी छवि नहीं बना पाते भले ही उनमें ढेरों विज्ञापन हों, रंग-बिरंगे चित्रों के अंबार हों और देश विश्व और अंतरराष्ट्रीय स्तर की खबरें हों। मैं मानती हूँ कि समाचार पत्रों में संपादकीय आज का सच है और कल का इतिहास भी। मैंने अपनी पुस्तक इतिहास और पत्रकारिता में इस विषय पर बहुत विस्तार से काम किया है।

अगर हम गाँधी युग की पत्रकारिता से पहले और गाँधी युग तथा उस के बाद की पत्रकारिता और अग्रलेखों, संपादकीयों पर नजर डालें, तो हमें उस समय की प्रतिबद्धता, मिशन और समर्पण के कई आयाम दिखते हैं। समर्पण और दुम हिलाने की प्रवृत्ति दोनों में ही बहुत अंतर है। समर्पण की भावना मनुष्यों के लिए बहुत आवश्यक है और दुम हिलाने की प्रवृत्ति पत्रकारिता के लिए उतनी ही घातक। यह प्रवृत्ति मनुष्य के लिए श्रेष्ठ गुण नहीं है। आज पत्रकारिता में इस अवगुण में काफी कमी आई है, क्योंकि समाचारपत्रों के मालिक ही उसके संपादक हैं और मालिकों की सत्यनिष्ठा का प्रतिशत और स्वार्थलोलुपता की ललक इस धरातल पर अलग-अलग है।

किसी भी समाचार पत्र, पत्रिका के संपादक कौन है आज का प्रबुद्ध पाठक इससे भी प्रभावित होता है। आज दूसरों को सिद्ध और स्थापित करने के साथ स्वयं को सिद्ध करने और स्थापित करने की दिशा में अनेक समाचार पत्र पत्रिकाएँ निकल रही हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि कुछ हद तक शायद यह उचित भी हो। जिन्हें सम्मानजनक ढंग से पत्र-पत्रिकाओं में स्थान नहीं मिलता, न ही उन्हें लिखने के लिए आमंत्रित किया जाता है, उन लोगों द्वारा कुछ ऐसे लोगों को चुन लिया जाता है जिनके पास समय होता है और कुछ ऐसे लोग जिनके पास धन होता है। ऐसे लोग भी पत्रकारिता के क्षेत्र में जगह बना लेते हैं। इसलिए मेरी मान्यता है किसी भी समाचार पत्र या पत्रिका के लिए संपादक के रूप में नियुक्ति अथवा काम कर रहे व्यक्ति की पहचान का विशेष महत्त्व है।

आज की पत्रकारिता और समाचार पत्र शुद्ध व्यावसायिक ढंग से प्रतिस्पर्द्धा में जुटे हैं। एक वर्ष के लिए किसी समाचार पत्र के सदस्य बनिए और घर बैठे आपको मिलेंगे ब्रीफकेस, दूरभाष यंत्र, लेदरबैग, टार्च और चाय पत्ती के पैकेट और बहुत-सी उपहार स्वरूप निःशुल्क दी जाती हैं। अखबार बिकने नहीं चाहिए, बल्कि लोगों के घरों में पहुँचने चाहिए। मैं दावे के साथ कहती हूँ कि आज हिंदी के अलावा अन्य भाषाओं के पत्रों को पढ़ने वालों की संख्या कम है। दूसरी भाषाओं जिसमें मुख्य रूप से अँग्रेजी के समाचार पत्र आते हैं, इन्होंने अपनी सारी ऊर्जा स्वयं को लोगों तक पहुँचाने में व्यय कर दी है। खैर, यह तो एक लंबी प्रक्रिया है कि ऐसा क्यों किया जा रहा है, शायद प्रतिस्पर्धा के युग में यह अनिवार्य हो। आखिर जीने और समाज में बने रहने का हक तो हम सबको है। यह बात और है कि जीने और जीने में अंतर होता है।

मैं अपने लेख में बड़े-बड़े शब्दों जैसे सूचना क्रांति, निजीकरण, उदारीकरण, भूण्डलीकरण, खगोलीकरण और इलैक्ट्रॉनिक पत्रकारिता के लिए प्रयुक्त किए बिना अपनी बात कहने का प्रयास करती हूँ। मीडिया और पत्रकारिता का उद्देश्य मनोरंजन नहीं, बल्कि गहन गंभीर चिंतन के माध्यम से चौथे महत्त्वपूर्ण स्तंभ के रूप में स्वयं को सिद्ध करना है।

आज के छपे हुए शब्द कल का इतिहास है। आज के संपादक तो जीवन भोग कर चले जाएँगे और पीछे रह जाएगा उनका काम। अगर उन्हें केवल आज की सुख-सुविधाओं और मनोरंजनवाली पत्रकारिता का पल्लू थामना है तो उन्हें कोई स्थान चुन लेना चाहिए जहाँ उन्हें इससे भी बेहतर सुख-सुविधाएँ मिलेंगी। संपादक की 'हाटसीट' पर बैठकर अपना नहीं समाज का उद्धार करना श्रेष्ठ पत्रकारिता का लक्ष्य होना चाहिए। अँग्रेज विचारक टामस कार्लाइल ने कहा है 'प्रत्येक योग्य संपादक एक सम्राट के

समान होता है। उसके साम्राज्य की सीमा किसी निश्चित रेखा से बँधी हुई नहीं होती, वह विश्वभर में उसके पाठकों की विशाल संख्या तक फैली होती है।

संपादकों के संदर्भ में नैपोलियन के बारे में भी यह माना जाता है कि वह तोपों से इतना नहीं घबराता था जितना कि समाचार पत्रों से। शायद नैपोलियन यह जान गये थे कि समाचार पत्र पूर्ण विश्व पर प्रभाव डालते हैं और सम्राट का अधिकार उसकी सेना पर रहता है।

साप्ताहिक हिंदुस्तान के संपादक ने अपने अग्रलेख में एक बार लिखा था कि यदि हम गाँधी दर्शन के प्रति उदासीन रहे, तो उसके दुष्परिणाम हमें भोगने पड़ेंगे। उन्होंने लिखा था कि देश का सच्चा भाग्योदय तभी हो सकता है जब जन-जन के मानस में उन सद्गुणों का प्रादुर्भाव हो, जिन्हें एक शब्द में राष्ट्रीय चरित्रबल कहकर पुकारते हैं। किंतु यह तभी संभव है जब या तो जनता इतनी सुखी और संपन्न हो जाए कि भ्रष्टाचार की ओर उसकी प्रवृत्ति ही न हो, दृढ़ चरित्र बलवाले राष्ट्रीय नेता उसके सम्मुख स्वयं अपने कर्म द्वारा श्रेष्ठ आदर्शों के उदाहरण रखें। आज इन दोनों में से कोई एक बात भी दिखाई नहीं देती। राष्ट्रीय जीवन के पथ पर हमें बेईमानी, रिश्वतखोरी, बदचलनी और बदनियति के दृष्टांत देखने को मिलते हैं। और तो और पुरुषों ने स्त्रियों को श्रद्ध और सम्मान की दृष्टि से देखना बंद कर दिया है और शायद ऐसी ही दुर्भावना नारी में पुरुषों के लिए भी जागृत हो गयी है। ऐसी अवस्था में समाज अथवा देश के संगठन की आशा की जा सकती है या विघटन की?

1960 से 1966 के दौरान साप्ताहिक हिंदुस्तान संपादक के विभिन्न अग्रलेख और संपादकीयों को मैंने डॉ. हरिवंश राय बच्चन द्वारा संपादित एक पुस्तक में पढ़ा था। देश, राष्ट्र, साहित्य, पत्रकारिता, स्वस्थ संपादकीय नीति, साहित्य की विभिन्न विधाओं, पत्रकारिता में अश्लीलता और अशोभनीयता को सहन न करने के बारे में श्री बांके बिहारी भटनागर जी के विभिन्न अग्रलेखों में जो बातें कही गयी हैं उनपर कहने की हिम्मत बहुत कम संपादकों ने की। बहुत सारे लोगों की मान्यता है कि उन्होंने केवल धनार्जन के लिए कलम हाथ में नहीं ली है, बल्कि वाणी के अस्तित्व की रक्षा के लिए उसे ग्रहण किया है।

हिंदी संपादकों का लक्ष्य हिंदी पत्रकारिता का उत्थान और हिंदी की प्रतिष्ठा बनाए रखने के लिए श्रेष्ठ हिंदी का प्रयोग होना चाहिए। इनके बहुत सारे अग्रलेखों ने मुझे प्रभावित किया है और उन सबके उदाहरण दिए जा सकते हैं, लेकिन हिंदी पत्रकारिता और हिंदी की बात करते हुए मैं एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण लेख की कुछ बातें यहाँ उद्धृत करना चाहती हूँ। श्री मोरारजी देसाई जी ने प्रेस क्लब में आयोजित एक संगोष्ठी में भाषण देते हुए भारत की भाषा-समस्या के संबंध में कई महत्त्वपूर्ण बातें कही थीं। उन्होंने कहा था 'यदि हमें अपने को खत्म होने से बचाना है, तो अपनी भारतीय संस्कृति की रक्षा करनी है अपनी राष्ट्रभाषा की पूरी ताकत के साथ समर्थन करना होगा। संस्कृति की रक्षा किसी विदेशी भाषा को अपनाने से नहीं हो सकती। क्योंकि उसके साथ विदेशी संस्कृति भी आएगी। श्री मोरारजी देसाई ने जोरदार शब्दों में इस बात का खण्डन किया था कि हिंदी समृद्ध भाषा नहीं है। उन्होंने कहा था ऐसा कहना उन पत्रिकाओं द्वारा किया प्रचार है, जो अँग्रेजी को हिंदी के ऊपर रखना चाहते हैं। उन्होंने बहुत विस्तार से अपनी बात के पक्ष में कई उदाहरण दिए थे। उन्होंने अंत में यह भी कहा था कि सरकार को चाहिए कि वह अपने कर्त्तव्य को निश्चित कर ले और फिर उसपर दृढ़ता के साथ डटी रहे, क्योंकि दृढ़ संकल्प से सब कुछ संभव है। यह विचार 11 अप्रैल 1965 के अग्रलेख में प्रकाशित किए गये।

समय-समय पर संपादकों ने समाज में व्याप्त विभिन्न मुद्दों, समस्याओं और पहलुओं पर अपने लेखों के माध्यम से समाज का ध्यान आकर्षित किया है। किसी पुस्तक में मैंने लगभग दो हजार वर्ष पूर्व किसी व्यक्ति के द्वारा लिखे लेख को पढ़ा था जिसके एक पैराग्राफ को मैं यहाँ उद्धृत करना चाहती हूँ। ये पंक्तियाँ आप स्वयं पढ़कर देखें आज भी कितनी सार्थक हैं।

'सैकड़ों राजा जिसे अपना-अपना समझकर चले गये, परंतु वह किसी के साथ भी नहीं गयी, ऐसी पृथ्वी के पाने से राजाओं को क्या अभिमान करना चाहिए? अब तो लोग इसके अंश को भी पाकर अपने को भूपति मानते हैं। जिसपर पश्चाताप करना चाहे उसपर उल्टा आनंद करते हैं।' इसके आगे वह कहता है 'यह पृथ्वी मिट्टी का एक छोटा सा ढेला है, जो चारों तरफ से समुद्री रूप से पानी की रेखा से घिरा हुआ जो राजा लोग आपस में लड़-भिड़कर इस छोटे से ढेले के छोटे-छोटे अंशों पर अपना अधिकार जमा कर राज्य करते हैं। ऐसे क्षुद्र और दरिद्र राजाओं को लोग दानी कहकर जाँचे जाते हैं और ऐसे नीचों से धन की आशा करने वाले पुरुषों को धिक्कार है।'

पत्रकारिता के इतिहास और समाचार पत्रों के संपादकों द्वारा लिखी टिप्पणियों पर यदि दृष्टि डालें, तो हमें यह स्वीकार करना होगा कि श्रेष्ठ पत्रकार की कलम बेसहारा, कमजोर और देश के असंख्य लोगों को जहाँ रोशनी देती है, वहीं सत्ता की लोलुपता, स्वार्थी, लोभी और प्रचण्ड व्यक्तियों पर रोक लगाने के लिए यह विध्वंस का कार्य भी करती है। वर्तमान के सच को प्रस्तुत करना और अपनी कलम के माध्यम से समाज में विद्यमान विभिन्न समस्याओं को दूर करना श्रेष्ठ पत्रकारिता है।

जब हम आजाद नहीं हुए थे, और हम पर अनेक अंकुश थे तब प्रकाशित होने वाले समाचार पत्रों में खुलकर अपनी बात कही जा सकती थी। इस संबंध में अनेक उदाहरण दिए जा सकते हैं। एक उदाहरण देती हूँ, कभी लार्ड कर्जन ने कहा होगा कि भारतीय झूठे हैं। उस समय 'भारतमित्र' ने लिखा था कि कर्जन के भाषणों और गतिविधियों से भारतीयों को बड़ी निराशा हुई है। उन्हें अब विश्वास हो गया है कि कर्जन द्वारा उनका अब कल्याण नहीं हो सकता।

गोपालकृष्ण गोखले के संबंध में अपने भाषण में उसने गालीवाली भाषा का प्रयोग और उन पर कटाक्ष कर अनैतिकता का प्रमाण दिया। दीक्षांत भाषण में उसने सद्व्यवहार को भी तिलांजलि दे दी। इन भाषणों से स्पष्ट है कि वे भूल गये कि वे सम्राट के प्रतिनिधि हैं। जो भारतीय वहाँ उपस्थित थे उन्हें वायसराय के मुख से ऐसे शब्द सुनकर भारी दुःख हुआ।

ऐसा नहीं है कि आज समाचार पत्रों के संपादक अपनी भूमिका ठीक से नहीं निभा रहे। देश के शीर्षस्थ समाचार पत्र इस ओर पूरी तरह से सक्रिय हैं। केवल समाचार पत्र ही नहीं, बल्कि प्रकाशित होने वाली पत्रिकाओं के संपादक भी अपनी भूमिका बड़ी मुस्तैदी के साथ निभा रहे हैं। आज आवश्यकता है ऐसे प्रबुद्ध पाठक और नागरिक की, जो छपे हुए शब्दों के महत्त्व को जाने और संपादक और पत्रकार के मर्म को पहचानते हुए अपने कर्त्तव्य की ओर अग्रसर रहें।

●

उर्दू पत्रकारिता : संक्षिप्त विवरण

○ डॉ॰ शाहिद जमील

'जिज्ञासा', 'जिज्ञासा की तृप्ति' तथा 'सूचना एवं ज्ञान' का आदान-प्रदान' मानव स्वभाव के प्रेरक अंग हैं। फलस्वरूप हम घटनाओं, दुर्घटनाओं और रहस्यों आदि को जानने के लिए न केवल उत्सुक रहते, बल्कि सूचना एवं ज्ञान आदि के आदान-प्रदान के लिए व्यग्र भी रहते हैं। दरअसल यह हमारी जन्मजात प्रवृत्तियाँ हैं, जिनकी कोख से पत्रकारिता का जन्म हुआ। जन्म काल से ही इसके रूप, स्वरूप और प्रस्तुति में परिवर्तन होते रहे हैं तथा इसकी आवश्यकता, अपरिहार्यता की सीढ़ियाँ चढ़ती रही है। अब तो इसके सशक्त दाँत भी निकल आए हैं तथा इसके प्रभाव की परिधि से शायद ही कोई बाहर हो।

शिक्षा, ज्ञान, विज्ञान और अनुसंधान आदि का प्रभाव भी हम पर पड़ता है, जिससे हमारी सोच, दृष्टि और दृष्टिकोण परिवर्तित होते रहते हैं। काल, स्थिति, परिस्थिति और आवश्यकता के अनुरूप हमारी जिज्ञासाएँ विशेष, सीमित और केंद्रीत होती जाती हैं। मसलन बालकाल में सँपेड़े, बंदर और भालू का तमाशा, करतब और चमत्कार दिखाने वालों को देखते ही हमारे जिज्ञासु क़दम रोके नहीं रुकते। परंतु युवाकाल में हम अपने क़दम रोक लेते हैं, क्योंकि उम्र के साथ-साथ हमारी जिज्ञासाएँ परिवर्तित होती रहती हैं। इनमें कतिपय व्यक्तिगत और कुछ सामूहिक होती हैं। सामूहिक जिज्ञासाओं में ही आस-पास, गाँव-समाज, राज्य-राष्ट्र, देश-विदेश और अंतरिक्ष आदि में घटित घटनाओं को ही नहीं, बल्कि संभावित घटनाओं को भी हम जानना चाहते हैं। संयोगवश हम किसी घटना के चश्मदीद हो सकते हैं, परंतु यह कदापि संभाव नहीं कि हर घटना हमारे सामने ही घटित हो। ज़ाहिर है अधिकांश घटनाओं आदि की जानकारी किसी न किसी माध्यम के द्वारा ही हम तक पहुँचाई जा सकती है। निर्बाध रूप से संपूर्ण ब्रह्मांड की ख़बरों से हम अवगत होते रहें, इसके लिए किसी न किसी माध्यम एवं प्रणाली का होना लाज़मी है। इस दृष्टि से आवश्यकता ही पत्रकारिता के माध्यमों एवं प्रणालियों की जननी है। वर्तमान युग में संचार के दो प्रमुख सशक्त माध्यम हैं - 'प्रिंट मीडिया' और 'इलेक्ट्रानिक मीडिया'।

Webster Dictionary- Vol. 11, Page No. 1221 में Journalism की व्याख्या इन शब्दों की गई है;

"The collection and editing of current interest of presentation through the media of news papers, news reals, Radio and Television. The editorial and business management of news paper, magazine or other engaged in the collection and disemination of news an acadamic study concerned with the collection and study of news or the editorial or the business management of news media"

Frank Candlin ने Teach yourself journlism में लिखा है कि ;

"Journalism covers a very wide field and it is not easy to frame a definition which will embrace all the uses of the term perhaps the nearest we shall get is to say that a journalist is one who contributes regularly to the periodicals." (Edt : III, Page No. 09)

उर्दू पत्रकारिता की समीक्षा से पूर्व समीचीन होगा कि पत्रकारिता के शुभारंभ का सिहांलोकन किया जाए।

Journalism (पत्रकारिता) लैटिन भाषा का शब्द है, जो दो शब्द-खण्डों "Acta" और "Diurna" से निर्मित है। Acta का अर्थ कार्रवाई और Diurna का अर्थ प्रतिदिन है। अर्थात् प्रतिदिन की कार्रवाई। 60 ईसा पूर्व रोम में Gius Julius Ceasar के शासनकाल में जनता तक सीनेट की महत्त्वपूर्ण घोषणाओं और आदेशों आदि को एक उजले पट्ट पर चिपकाकर वैसे स्थान पर प्रदर्शित किया जाता था, जहाँ से आमजनों का आना-जाना अधिक होता था। इस दैनिक के संबंध में कहा जाता है कि यह तक़रीबन साढ़े तीन सौ साल तक जारी होता रहा।

अख़बार की छपाई का श्रेय चीन के सिर जाता है। चीन ने ही द्वितीय शताब्दी में काग़ज़ से मिलती-जुलती चीज़ इजाद की और छट्ठी शताब्दी के आते-आते शब्द को पत्थरों पर खोदकर और उनपर रंग लगाकर प्रतियाँ निकाली जाने लगी थीं। कालक्रम में लकड़ी के ब्लॉक बनाए गए और रंग की जगह रोशनाई का इस्तेमाल होने लगा। आज प्रिंट मीडिया भी विकास के शिखर पर है। कम समय में अधिक से अधिक रंगों में एक साथ लाखों की संख्या में समाचार-पत्र मुद्रित हो रहे हैं।

व्यवसायी अँग्रेज़ों ने भारत में जड़ जमाते ही लूट-खसोट का बाज़ार गर्म कर दिया था। अँग्रेज़ मुलाज़िमों में William Bolts भी थे, जो लूट-खसोट के विरुद्ध टीका-टिप्पणी करते थे। 18 अप्रैल, 1768 ई॰ को दण्डात्मक कार्रवाई के तहत उन्हें यूरोप वापसी का हुक्म दिया गया। वापस हो कर उन्होंने पाँच सौ पृष्ठों की एक पुस्तक "Consideration on India Affairs" प्रकाशित की। James Augustus Hicky को भी शासन ने दोषी क़रार दिया, परंतु उन्होंने वापसी की बजाय 29 जनवरी, 1780 ई॰ को Hicky's Bengal Gazette or Calcutta General Advertiser के नाम से चार पृष्ठों का एक साप्ताहिक अख़बार प्रकाशित किया। उस समय तक भारत में विधिवत अख़बार का अस्तित्व नहीं था। इस दृष्टि से भारत में पत्रकारिता का शुभारंभ दमन, अत्याचार और शोषण के विरुद्ध आवाज़ उठाने, सच कहने, लिखने की स्वतंत्रा के संघर्ष के साथ हुआ। जिसका श्रेय हुक्की को जाता है, जिन्होंने निर्भीक पत्रकारिता की बुनियाद डाली। "बंगाल गज़ट" (जिसे "हुक्की गज़ट" के नाम से भी जाना जाता है) की

फ़ाइल 'ब्रिटिश म्यूज़ियम, और 'नेशनल लाईब्रेरी', कोलकाता में सुरक्षित है। कंपनी और कंपनी के अधिकारियों के राजनीतिक-आर्थिक दृष्टिकोण की आलोचना के लिए हुक्की पर कई बार मुक़दमा चला, नज़रबंदी और जेल की सज़ा हुई तथा जुर्माने भी लगाए गए। हुक्की की आलोचना से त्रस्त लोगों के सहयोग से ''बंगाल गज़ट'' के लोकार्पण के मात्र छः महीने बाद नवम्बर, 1780 ई॰ में India Gazette का लोकार्पण हुआ, जो ''बंगाल गज़ट'' के जवाब में निकला था। ''बंगाल गज़ट'' कंपनी विरोधी था जबकि India Gazette कंपनी का पक्षधर। India Gazette के प्रकाशन के चौथे वर्ष कंपनी सरकार के सहयोग से Tha Calcutta Gazette or Oriental Advertiser के नाम से एक अँग्रेज़ी साप्ताहिक का प्रकाशन आरंभ हुआ। यह अख़बार क़रीब पचास वर्षों तक जारी रहा। इस में विभिन्न राज्यों, नगरों और दरबारों की ख़बरों के अतिरिक्त उच्चतम न्यायालय की कार्रवाइयों, सरकारी घोषणाओं और साहित्य (कविताएँ और ग़ज़लें आदि) के अतिरिक्त बर्तानिया से प्रकाशित अख़बारों के मुख्यांश को भी प्रकाशित किया जाता था। टीपू सुलतान की शहादत की ख़बर इसी अख़बार में छपी थी। उन्हीं दिनों बंबई (मुंबई) और मद्रास (चेनई) में भी पत्रकारिता के केंद्र स्थापित हुए। बंबई से पहला अख़बार 1789 ई॰ में Bombay Herald और मद्रास से 12 अक्टूबर 1985 को Madras Courier निकला, जिसके मालिक और संपादक Richard Johnston थे। इस प्रकार पत्रकारिता अदरक के पंजों की तरह फैलने लगी। Bombay Courier 1790 ई॰ से निकलने लगा, जिसके मालिक Douglas Nichelson और संपादक Luke Ashburner थे। इसमें अँग्रेज़ी भाषा के अतिरिक्त गुजराती, मराठी, कन्नड़ी और उर्दू लिपि में भी विज्ञापन प्रकाशित किए जाते थे। Bombay Observer को बंबई का तीसरा अख़बार होने का गर्व प्राप्त है। इसका प्रकाशन 25 जून, 1790 ई॰ से आरंभ हुआ। 1791 ई॰ से Bombay Gazette निकला, परंतु एक वर्ष के बाद ही इसका विलय Bombay Herald में हो गया।

Thomas Jones ने 1785 ई॰ में कलकत्ता से Bengal Gournal नाम का अख़बार निकाला। किसी कारणवश 1791 ई॰ में William Duane इसके मालिक बन गए। तीखी आलोचनाओं के लिए उन्हें कई बार जेल की हवा खानी पड़ी। अंतत: उन्हें इस अख़बार से मुक्त होना पड़ा। परंतु संकल्पी William Duane ने 1791 ई॰ में ही Indain World प्रकाशित कर सरकार की नींद उड़ा दी। फलस्वरूप उन्हें भारत छोड़ने पर विवश कर दिया गया। स्वाभिमानी योद्धा की तरह हथियार न डालकर वो 1794 ई॰ को बर्तानिया लौट गए।

कलकत्ता से ही मेकलीन के संपादकत्व में अँग्रेज़ी साप्ताहिक Bengal Harkaru 1795 ई॰ में निकला। इसके बाद Charles K. Bruce के संपादकत्व में Asiatic Mirror 1799 ई॰ में जारी हुआ।

पत्रकारिता की विकास-यात्रा पर नज़र डालने से स्पष्ट होगा कि कलकत्ता न केवल अँग्रेज़ी अख़बार की 'गंगोत्री' है, बल्कि यहाँ से बंगला, फ़ारसी, उर्दू और हिंदी पत्रकारिता का भी सूत्रपात हुआ। 01 अप्रैल, 1818 ई॰ को पुस्तकाकार रूप में प्रकाशित 'दिवेदर्शन' बंगला भाषा की पहली पत्रिका तथा 23 मई, 1818 ई॰ को प्रकाशित साप्ताहिक 'समाचार दर्पण' पहला अख़बार है। यह 1939 ई॰ तक प्रकाशित होता रहा। राजा राममोहन राय के संरक्षण में कलकत्ता से ही 20 जून, 1822 ई॰ से प्रत्येक शुक्रवार को प्रकाशित होने वाला 'मेरातुल अख़बार' फ़ारसी भाषा का पहला अख़बार है। राजा राममोहन राय इसके संपादक थे, इस बिंदू पर मतभेद है, परंतु उनके संरक्षक और लेखक होने पर विवाद नहीं है।

शोधकर्ताओं के अनुसार 27 मार्च, 1822 ई॰ से कोलू टोला से प्रकाशित 'जामे जहाँनुमा' को उर्दू का पहला अख़बार स्वीकार किया जाता है। शिक्षितों और प्रबुद्धजनों में फ़ारसी का चलन अधिक था। लेखन और संकलन में भी इस भाषा को प्राथमिकता दी जाती थी। फलस्वरूप 16 मई, 1822 ई॰ से 'जामे जहाँनुमा' को फ़ारसी लिपि में प्रकाशित किया जाने लगा। इसके मालिक हरिहर दत्त बंगो, संपादक मुंशी सदा सिंह थे और प्रकाशन व्यवस्था विलियम पीटर्स बॉप किंस एण्ड कंपनी के ज़िम्मे थी। कंपनी का संरक्षण इसे प्राप्त था। इस अख़बार के मुख्य पृष्ठ पर ईस्ट इंडिया कंपनी का चिन्ह् नियमित रूप से प्रकाशित किया जाता था।

गुरबचन चंदन का मत है कि उस ज़माने के मुताबिक़ 'देहली उर्दू अख़बार' उर्दू का पहला अख़बार है, जिसे मो॰ हुसैन आज़ाद के पिता मो॰ बाक़र ने 1836 ई॰ में जारी किया था। बाद में इसका नाम 'उर्दू अख़बार' हो गया। इस अख़बार ने 1857 ई॰ के विद्रोह के मार्ग को प्रसस्त करने में अहम भूमिका निभाई थी। परंतु 1822 ई॰ से 1836 ई॰ के बीच प्रकाशित दो अख़बारों का भी ज़िक्र मिलता है, जिनकी लिपि उर्दू और फ़ारीस मिश्रित थी- आगरा से 1833 ई॰ में प्रकाशित 'ज़ब्दतुल अख़बार' (जिसके मालिक मुंशी वाजिद अली थे) और 'आगरा अख़बार'। परंतु अगले ही वर्ष 'आगरा अख़बार' का विलय 'ज़ब्दतुल अख़बार' में हो गया।

मरज़बान ने सन् 1822 ई॰ में 'मंबानिया समाचार' नाम की गुजराती भाषा का पहला साप्ताहिक अख़बार प्रकाशित किया जो बाद में दैनिक में परिवर्तित हो गया। उर्दू और गुजराती भाषा के अख़बार के चार वर्षों बाद मनु ठाकुर के संपादकत्व में देवनागरी लिपि में आठ पृष्ठों का साप्ताहिक 'उदंत मार्तण्ड' प्रकाशित हुआ। यह अख़बार प्रत्येक मंगलवार को प्रकाशित होता था। लोकप्रियता के कारण यह एक वर्ष में ही दैनिक समाचार-पत्र में परिवर्तित हो गया।

1830 ई॰ में अँग्रेज़ों ने फ़ारसी की जगह उर्दू को सरकारी भाषा बना दिया, फलस्वरूप उर्दू पत्रकारिता का भी विकास हुआ। उर्दू पत्रिका 'आज कल', नई दिल्ली ने शांतिरंजन भट्टाचार्य द्वारा तैयार उनीसवी शताब्दी के अंत तक प्रकाशित उर्दू अख़बारों की समेकित सूची को नवंबर-दिसम्बर, 1983

(वर्ष 42 अंक- 4-5) में प्रकाशित किया है, जिनमें निम्नांकित पत्र-पत्रिकाओं को शामिल किया गया है।

1. 'अवध पंच', लखनऊ (संपादक : मो॰ सज्जाद हुसैन) 2. 'उर्दू गाईड', साप्ताहिक, कलकत्ता (संपादक, मौलवी कबीरउद्दीन ख़ाँ बहादुर) यह अँग्रेज़ी और उर्दू का संयुक्त अख़बार था। 3. 'अख़बार आज़ाद', साप्ताहिक, लखनऊ (मालिक : अहमद अली शैक़) 4. 'अवध अख़बार', साप्ताहिक (बाद में सप्ताह में क्रमशः दो एवं तीन बार प्रकाशित) 5. 'अशराक़', पाक्षिक, लखनऊ (मालिक : मिर्ज़ा मो॰ हादी) 6. 'अख़्तर अवध', साप्ताहिक, लखनऊ (मालिक : मो॰ अली हसन) 7. 'अख़बार क़यामत', लखनऊ (संपादक : मो॰ मुर्तज़ा आशिक़) 8. 'अख़बार गुलदस्ता', साप्ताहिक, बनारस (मालिक : हकीम मो॰ करीम हुसैन और मुंशी फ़िदा हुसैन) 9. 'अरमग़ान', बंबई (प्रबंधक : सैयद जान मोहम्मद अरबी) 10. 'अनवारुल अख़बार', साप्ताहिक, लखनऊ (संपादक-मालिक : बर्कत अली शाह) 11. 'अख़बार सुब्हाय कपूरथल्ला', साप्ताहिक (मालिक : दीवान मथुरादास बहादुर) 12. 'अमीरुल अख़बार', कलकत्ता (प्रबंधक : ग़ुलाम हज़रत) 13. 'इम्पेरियल पेपर', लाहौर (मालिक-संपादक : सैयद रज्जब अली शाह) 14. 'उर्दू अख़बार', साप्ताहिक, अकोला (सपंदक : किशनचंद) 15. 'बीरबर', मासिक, दिल्ली (संपादक : मुंशी मो॰ अफ़ज़ल ख़ाँ) 16. 'तेजारतुल अख़बार', साप्ताहिक, कलकत्ता (संपादक : मथुरा प्रसाद समर) 17. 'तुहफ़ा-ए-उश्शाक़', लखनऊ (मालिक-संपादक : मो॰ मासूम अली) 18. 'जाफ़र ज़टली', साप्ताहिक, रोहतक (संपादक : मौलवी मुंशी आलम और पंडित जफ़र ज़टली) 19. 'हामी-ए-हिंद', साप्ताहिक, कटरा, (मालिक- संपादक : मौलवी सैयद फ़रीदुद्दीन ख़ाँ बहादुर) 20. 'हदीक़तुल अख़बार', साप्ताहिक, टोनक (प्रबंधक : मो॰ ग़ालिब अली ख़ाँ) 21. 'ख़ैरख़ाह आलम', दिल्ली (मालिक : सैयद मीर हसन रिज़वी) 22. 'ख़ैरख़ाह इस्लाम', बंबई (संपादक : शैख़ रेयाज़ुद्दीन अहमद) 23. 'दबीर', मद्रास (मालिक-प्रबंधक : मीर हसन रज़ा आतशी) 24. 'दूरबीन कलकत्ता', साप्ताहिक (मालिक : मिर्ज़ा नसीरुद्दीन) 25. 'दारुस्सलतनत', कलकत्ता (मालिक : मो॰ एहसानुल्लाह उर्फ़ बादशाह कंपनी सौदागरान) 26. 'दामने गुलचीं', मासिक, लखनऊ (मालिक- संपादक : मो॰ अहमद क़मर और मुंशी अमीर अहमद अमीर लखनवी) 27. 'दरबारे अकबरी', साप्ताहिक, दिल्ली (मालिक : मुंशी अफ़ज़ल ख़ाँ) 28. 'देहली पंच', मासिक गुलदस्ता, लाहौर (मालिक : बख़्शुल्लाह) 29. 'रफ़ीक़ निसवाँ', पाक्षिक, लखनऊ 30. 'रत्न प्रकाश', हिंदी-उर्दू, रतलाम, पश्चिमी मालवा 31. 'रहबरे हिंद', साप्ताहिक, लाहौर (मालिक-संपादक : नादिर अली शाह सैफ़ी 32. 'सर्वर क़ैसरी', साप्ताहिक, रामपुर (मालिक-संपादक : हमीक मो॰ रज़ा लखनवी 33. 'सरोश बनारस', साप्ताहिक, बनारस (मालिक : मुंशी वली मोहम्मद) 34. 'सितार-ए-हिंद', मुरादाबाद, (मालिक : पं॰ बनवारी लाल मिश्र) 35. 'शाम अवध', फ़ैज़ाबाद (मालिक : द्वारिका दास) 36. 'सहीफ़ा नामा लखनऊ', पाक्षिक, लखनऊ (संपादक : आजिज़ अहमद हसन) 37. 'ऐनुल अख़बार', साप्ताहिक, मुरादाबाद (मालिक : मो॰ दिलावर अली) 38. 'कश्फ़ुल अख़बार', साप्ताहिक, बंबई (मालिक-प्रबंधक : मो॰ मुबारक हसन) 39. 'कहटेर पंच', बदायूँ (मालिक-प्रबंधक : हमीक मो॰ वारिस अली ख़ाँ) 40. 'गौहर', साप्ताहिक, कलकत्ता (मालिक : मो॰ अली नजफ़, संपादक : हकीम मो॰ नाज़िर चिश्ती) 41. 'गुलदस्त-ए-चमने सुख़न', मासिक, बदायूँ (मालिक : मो॰ वारिस अली ख़ाँ) 42. 'गुलदस्ता फ़रख़', मासिक, रामपुर (प्रबंधक : महमूद रज़ा) 43. 'गुलदस्ता हुस्ने यार', मासिक, फ़रुख़ाबाद (मालिकान : मीर सैयद हसन और शैख़ तहवर अली) 34. 'गुलदस्त- ए-नाज़', मासिक (संपादक : बिलक़ीस बेगम) 45. 'गुलकदा बहार', मासिक, बदायूँ (संपादक : मो॰ मनीन ख़ाँ मनीन) 46. 'गुलदस्त-ए-प्यामे आशक़ी', मासिक, कन्नौज (प्रबंधक : भग्गो ख़ाँ रज़्म) 47. 'गुलदस्त-ए-नाम-ए-उश्शाक़', मासिक, बनारस (प्रबंधक : वली मोहम्मद) 48. 'गुलदस्त-ए-मोज़मीन मथुरा', मथुरा (प्रबंधक : चौधरी श्याम लाल) 49. 'गुलदस्ता रेयाज़', सीतापुर (मालिक : सैयद रेयाज़ अहमद) 50. 'गुलदस्त-ए-होश अफ़ज़ा', बरैली (मालिक-संपादक : हकीम नवाब नेयाज़ अहमद ख़ाँ होश) 51. 'गुलदस्ता प्यामे यार', मासिक, लखनऊ (प्रबंधक : मो॰ निसार हुसैन निसार) 52. 'गुलदस्ता सुख़न आगरा', (मालिक-संपादक : अहमद ख़ाँ सूफ़ी) 53. 'मशीर क़ैसर', साप्ताहिक लखनऊ (मालिक : ग़ुलाम मोहम्मद ख़ाँ) 54. 'मज्लिस अख़्लाक़िया', अमृतसर (संपादक : मौलवी शाह विलायत) 55. 'मेरातुल हिंद', लखनऊ (संपादक : पं॰ श्याम नारायण) 56. 'मोअल्लिम शफ़ीक़', मासिक, हैदराबाद (संपादक : सैयद मोहिब्बे हुसैन) 57. 'मुहाफ़िज़', बैंगलूर (प्रबंधक : अब्दुल मजीद) 58. 'मेहर नीमरोज़', साप्ताहिक, बिजनौर (प्रबंधक : मो॰ मोहिबुल्लाह) 59. 'मेहर दुर्फ़शाँ', साप्ताहिक, दिल्ली (मालिक : मौलवी सैयद नुसरत अली ख़ाँ) 60. 'मज़हरुल अजायब', साप्ताहिक, मद्रास (मालिक : ग़ुलाम दस्तगीर) 61. 'नूर बदायूँ', बरैली (मालिक : हकीम मो॰ वारिस अली ख़ाँ) 62. 'नूरुल अनवार', कानपुर (संपादक : मो॰ हामिद अली ख़ाँ हामिद) 63. 'नुस्तुल अख़बार', देहली (मालिक : मौलवी सैयद नुसरत अली ख़ाँ) 64. 'नसीम आगरा', साप्ताहिक, आगरा (संपादक : बाबू जमना दास विश्वास) 65. 'नूरुल आफ़ाक़', साप्ताहिक, कानपुर (सौजंय : शैख़ मोहम्मद याकूब मुंसरिम) 66. 'नासिरुल अख़बार', (प्रकाशक : एस॰ एम॰ नुसरत अली) 67. 'नैय्यर आज़म', साप्ताहिक, मुरादाबाद (मालिक : मो॰ अमजद अली) 68. 'नसीम सहर', साप्ताहिक, बदायूँ (मालिक-संपादक : मो॰ इम्तेयाज़ अहमद) 69. 'वज़ीरे हिंद', स्यालकोट (मालिक- संपादक : मो॰ मिर्ज़ा मवहिद जालंधरी) 70. 'हरियाणा अख़बार', साप्ताहिक, रोहतक (मालिक-संपादक : ग़ुलाम अहमद ख़ाँ) 71. 'हज़ार दास्तान', साप्ताहिक,

हैदराबाद, (मालिक-प्रबंधक : सैयद अहमद अली) 72. 'नूर बसीरत', मासिक, कलकत्ता (संपादक : सैयद मो॰ अब्दुल ग़फ़ूर शहबाज़) यह उर्दू की पहली गद्य पत्रिका है। 73. 'अंजुमन इस्लाम', मासिक, लखनऊ (सौजंय : मो॰ वज़ीर) 74. 'जामे जहानुमा', साप्ताहिक, कलकत्ता, (संपादक : हरिदत्त) यह उर्दू का पहला अख़बार है। 75. 'जामउल अहकाम', पाक्षिक, लखनऊ (सौजंय : मुंशी चंद लाल) 76. 'मुग़सला कश्मीर', लखनऊ, 77. 'गुलदस्ता नतीज-ए-सुख़न', (संपादक : मो॰ वज़ीर अली वज़ीर) 78. 'बनारस गज़ट', साप्ताहिक, बनारस 79. 'रेयाज़ुल अख़बार', साप्ताहिक, गोरखपुर 80. 'लारेंस गज़ट', साप्ताहिक, मेरठ 81. 'मुहाफ़िज़ सेहत', पाक्षिक, लाहौर 82. 'तक्मीलुल हिकमता', मासिक, लाहौर 83. 'मेरातुल तबआत', मासिक, अमृतसर 84. 'आईना सिकंदरी', साप्ताहिक, मुरादाबाद 85. 'भागलपुर न्यूज़', पाक्षिक, भागलपुर 86. 'गुलदस्ता जीनत सुख़न', आगरा 87. 'ज़रीफ़', मासिक, बनारस 88. 'आईना तहज़ीब', गोरखपुर 89. 'सरपंच', गोरखपुर 90. 'सवानेह उम्री', मासिक, लाहौर 91. 'अतालीक़', साप्ताहिक, लखनऊ 92. 'शौकते इस्लाम', साप्ताहिक, सिकंदराबाद 93. 'रिफ़ार्मर', साप्ताहिक, लाहौर 94. 'मुफ़ीदे आलम', साप्ताहिक, आगरा 95. 'पत्र हिंद', साप्ताहिक, इलाहाबाद 96. 'नज़्मुल अख़बार', साप्ताहिक, अटावा 97. 'अहसनुल अख़बार', साप्ताहिक, अमरोहा 98. 'मंशूर मोहम्मदी', पाक्षिक, बैंगलूर 99. 'क़ासिमुल अख़बार', साप्ताहिक, बैंगलूर 100. 'सुलतानुल अख़बार', साप्ताहिक, बैंगलूर 101. 'दबदब-ए-क़ैसरी', साप्ताहिक, बरैली 102. 'सादिक़ुल अख़बार', साप्ताहिक, भावलपुर 103. 'ख़ादिमे हिंद', दैनिक, बंबई 104. 'सरपंच', बंबई 105. 'सेराज ख़्लिवत', मासिक, बंबई 106. 'दबीरुल मुल्क', साप्ताहिक, भोपाल 107. 'मुम्ताज़ुल अख़बार', साप्ताहिक, बारहबंकी 108. 'मोहतशिम जावरा', साप्ताहिक, जावरा 109. 'शफ़ीक़', साप्ताहिक, हैदराबाद 110. 'रेसाला फ़ोनून', मासिक, हैदराबाद 111. 'मज़के सुख़न', मासिक, हैदराबाद 112. 'लेटिन गज़ट', पाक्षिक, दिल्ली 113. 'सफ़ीर', पाक्षिक, दिल्ली 114. 'अकमल अख़बार', साप्ताहिक, दिल्ली 115. 'दबदब-ए-सिकंदरी', साप्ताहिक, रामपुर 116. 'विक्टोरिया पेपर', दैनिक, सियाल कोर्ट 117. 'फ़रीदुल अख़बार', साप्ताहिक, रंगून 118. 'हदीक़ता रोज़गार', दैनिक, रंगून 119. 'आर्या दर्पण', पाक्षिक, शाहजहाँपुर 120. 'नसीम हिंद', साप्ताहिक, फ़तहपुर 121. 'जामे जहाँनुमा', साप्ताहिक, कलकत्ता 122. 'शोल-ए-तूर', साप्ताहिक, कानपुर 123. 'मोफ़र्रह क़ोलूब', साप्ताहिक, क्राची 124. 'फ़ितना अख़बार', साप्ताहिक, गोरखपुर 125. 'गज़ट गोवालियार', साप्ताहिक, गोवालियार 126. 'कारनामा', साप्ताहिक, लखनऊ 127. 'शोख़ अवध', साप्ताहिक, लखनऊ 128. 'अख़बार तमन्नाई', साप्ताहिक, लखनऊ 129. 'अख़बार हिंद', साप्ताहिक, लखनऊ 130. 'मतला नूर', साप्ताहिक, कानपुर 131. 'इंडियन पंच', साप्ताहिक, लखनऊ 132. 'मोरक़्क़ा तहज़ीब', साप्ताहिक, लखनऊ 133. 'अख़बार हिंदुस्तानी', साप्ताहिक, लखनऊ 134. 'आफ़ताब पंजाब', लाहौर (साप्ताह में दो बार) 135. 'अंजुमन पंजाब', साप्ताहिक, लाहौर 136. 'क़लीद क़वानैन', मासिक, लाहौर 137. 'कोहिनूर', साप्ताहिक, लाहौर 138. 'पंजाबी अख़बार', लाहौर (साप्ताह में दो बार) 139. 'जरीदा रोज़गार', साप्ताहिक, मद्रास 140. 'शम्सुल अख़बार', साप्ताहिक, मद्रास 141. 'मद्रास पंच', साप्ताहिक, मद्रास 142. 'नजमुल हिंद', साप्ताहिक, मुरादाबाद 143. 'जामे जमशेद', साप्ताहिक, मुरादाबाद 144. 'तूती-ए-हिंद', साप्ताहिक, मेरठ 145. 'इस्लाम', साप्ताहिक, मेरठ 146. 'जल्व-ए-तूर', साप्ताहिक, मेरठ 147. 'रेसाला आईन-ए-हिंद', मासिक, लाहौर 148. 'गुलदस्ता नतीजा सुख़न', मासिक, कलकत्ता आदि।

उक्त पत्र-पत्रिकाओं से इतना अंदाज़ा लगाया जा सकता है कि 1822 से 1900 ई॰ तक भारत के कोने-कोने से नियत, अनियत कालीन विभिन्न-विविध अनेक पत्र-पत्रिकाएँ प्रकाशित हुईं। 20 वीं शताब्दी के प्रारंभिक दौर की पत्रकारिता में केवल स्वतंत्रता-प्राप्ति ही लक्ष्य नहीं था, अपितु हमारी राजनीतिक, सामाजिक, साहित्यिक, आर्थिक, सांस्कृतिक और सभ्यता आदि भी इसके महत्त्वपूर्ण बिंदु थे। उक्त काल में उर्दू पत्रकारिता से बड़े-बड़े प्रज्ञापुरुष, प्रबुद्ध और साहित्यकार संबद्ध हुए। फलस्वरूप उर्दू पत्रकारिता निखरी और इसके बौद्धिक, साहित्यिक एवं अन्य स्तरों में भी वृद्धि हुई।

बीसवीं शताब्दी के प्रारंभिक दौर में जिन अख़बारों ने उर्दू पत्रकारिता में अपनी विशिष्ट पहचान बनाई उनमें प्रमुख 'पेशा अख़बार' (महबूब आलम), 'अवध अख़बार' (मुंशी नवलकिशोर), 'ज़मीनदार' (ज़फ़र अली ख़ाँ), 'उर्दू-ए-मोअल्ला', 'उर्दू अख़बार' और 'मुस्तक़बिल' (हसरत मोहानी), 'मख़्ज़न' (शैख़ अब्दुल क़ादिर), साप्ताहिक 'हिंदुस्तानी' (बाबू दीनानाथ), साप्ताहिक 'स्वराज्य' (शांति नारायण भटनागर), पत्रिका 'इस्मत' (शैख़ मोहम्मद अकरम और अल्लामा राशिदुल ख़ैरी), पत्रिका 'हरीम' (नसीम अनहोनवी) पत्रिका 'निज़ामुल मशाएख़', 'तोहीद', 'ग़रीबों का अख़बार' और 'मुनादी' (ख़ाजा हसन निज़ामी), 'अलहलाल', 'नैरंगे आलम', 'अलमुस्बाह' और 'अहसन अख़बार' (मौलाना अबुलकलाम आज़ाद), 'ख़दंग नज़र' (मुंशी नौबत राय), 'मदीना' (मौलवी मजीद हसन), 'ज़माना' (मुंशी दयानारायण निगम), 'निगार' (नियाज़ फ़तहपुरी), 'तहरीर' (मालिक राम), 'हमदर्द' (मौलाना मोहम्मद अली जौहर), 'हमदम' (जालिब देहलवी), दैनिक 'प्रताप' (महाशय कृष्ण), दैनिक 'स्यासत' (सैयद हबीब), 'बंदे मातरम' (लाला लाजपत राय), दैनिक 'अलअमान' (हकीम अजमल ख़ाँ), 'केसरी' (लाला श्यामला कपूर), 'मिलाप' (लाला खुशहाल चंद खुर्शीद), 'पटना अख़बार' (हाजी साजिद अहमद), 'इत्तिहाद' (सुलतान अहमद), 'तीज' (लाला देशबंधु गुप्ता), 'रियासत' (सरदार दीवान सिंह मफ़तून), 'रणवीर' (रणवीर सिंह वल्द महाराजा गुलाब सिंह), 'सच', 'स्दिक़' और 'स्दिक़ जदीद' (मौलाना अब्दुल माजिद दरियाबादी), 'अलजमीअता' (मौलाना इर्फ़ान, मौलाना अबुलओला मोदूदी,

बिलाल अहमद ज़ुब्बैरी, मौलाना अब्दुल वहीद सिद्दक़ी और मौलाना उस्मान फ़ारक़लीत), 'इन्क़लाब' (अब्दुल मजीद सालिक और मौलाना गुलाम रसूल मेहर), 'वतन' (शिवनारायण भटनागर), 'एहसान' (मुर्तज़ा अहमद ख़ाँ मैकश और चिराग़ हसन हसरत), 'हक़ीक़त' (अनीस अहमद अब्बासी), 'प्याम' (क़ाज़ी अब्दुल ग़फ़्फ़ार), 'पैग़ाम' (मौलाना अब्दुल रज़्ज़ाक़ मलीहाबादी), 'ख़ैय्याम' (अल्लामा शैख़), 'प्रभात' (लाला नानक चंद नाज़), 'अजीत' (साधु सिंह हमदर्द), 'सदा-ए-आम' (नज़ीर हैदर), दैनिक 'साथी' (सुहैल अज़ीमाबादी), 'हिंदुस्तान' (गुलाम अहमद ख़ाँ आरज़ू), 'नवा-ए-वक़्त' (हमीद नेज़ामी), 'जंग' (ख़लीलुर्रहमान), 'क़ौमी आवाज़' (हयातुल्लाह अंसारी) आदि हैं।

देश-विभाजन का कुप्रभाव उर्दू पत्रकारिता पर भी पड़ा। 150 वर्षीय उर्दू पत्रकारिता का ताना-बाना टूट गया। अविभाजित भारत में लगभग 548 पत्र-पत्रिकाएँ प्रकाशित होती थीं, जिनमें से क़रीब 40 उन क्षेत्रों से निकलते थे, जो पाकिस्तान का हिस्सा बन गए। देश छोड़ने (हिजरत करने) वालों में कई बड़े समाचार-पत्रों के मालिक और संपादक भी थे। विभाजन पूर्व उर्दू राष्ट्र भाषा थी स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद यह स्थान हिंदी भाषा को मिला, जिससे उर्दू के मुक़ाबले हिंदी पत्रकारिता का काफ़ी विकास हुआ। जैसे-जैसे उर्दू भाषा सरकारी कार्यालयों, सदनों और घरों से दूर होती गई वैसे-वैसे उर्दू पत्रकारिता का दायरा घटता गया, परंतु उर्दू भाषा की मिठास और लोकप्रियता के कारण उर्दू पत्रकारिता धीरे-धीरे अपनी उखड़ी और कमज़ोर जड़ों को पुन: जमाने और खुद को मुख्यधारा में जोड़ने में लग गई। परिणाम अनुकूल निकला। उर्दू पत्र-पत्रिकाओं के प्रकाशन में बहुत हद तक वृद्धि हुई। यद्यपि जो स्तर और सम्मान आज़ादी के पूर्व प्राप्त था वह बरक़रार नहीं रह सका। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद जो पत्र-पत्रिकाएँ अपनी विशिष्ट पहचान बनाने में सफल हुईं, उनमें विशेष रूप से उल्लेखनीय 'हिंद समाचार', 'आज़ाद हिंद', 'रहनुमा-ए-दकन', 'स्यासत', 'साज़ दकन', 'प्रताप', 'संगम', 'क़ौमी तंज़ीम', 'सहारा', 'अवाम', 'मोफ़स्सिर', 'एक़रा', 'स्यासत जदीद', 'इन्क़लाब', 'इन दिनों', 'नक़ीब', 'आफ़ताब', 'औरंगाबाद टाइम्ज़', 'उर्दू टाइम्ज़', 'अख़बार मशरिक़', 'आईना', 'मुस्लमान', 'मिलाप', 'नदीम', 'जौहर गुफ़्तार', 'अक्कास', 'क़ौमी जंग', 'अंगारे', 'ग़ाज़ी', 'क़ौमी मोर्चा', 'अज़ाएम', 'क़ौमी आवाज़', 'उर्दू एक्शन', 'नशेमन', 'नवा-ए-सुबह', 'पासबान', 'दावत', 'नदीम', 'मुंसफ़', 'श्रीनगर आइम्ज़', 'सालार', 'तीज', 'हमारी ज़ुबान', 'शबिस्तान', 'शाने मिल्लत', 'सवेरा', 'अख़बारे नव', 'नई दुनिया', 'बिलीज़', 'सबरस', 'आदर्श', 'कोहसार जनरल', 'फ़ारूक़ी तंज़ीम', 'उर्दू दुनिया', 'ख़तून मशरिक़', 'बौध धरती', 'हमारी दुनिया', 'मोर्चा', 'इक़बाल', 'रोशनी', 'असरे जदीद', 'सुहैल', 'शायर', 'आज कल', 'ऐवाने उर्दू', 'मआसिर', 'ज़बानो अदब', 'मिर्रीख़', 'शम्मा' आदि हैं।

इस कटु सत्य को नज़रअंदाज़ नहीं किया जा सकता कि देश विभाजन के बाद जिस तेज़ी के साथ उर्दू पत्र-पत्रिकाएँ प्रकाशित हुईं उससे ज़्यादा रफ़्तार से बंद होती गईं।

गुरबचन चंदन ने अपनी पुस्तक 'उर्दू सहाफ़त पर एक नज़र' में उर्दू पत्रकारिता की समीक्षा करते हुए लिखा है कि 1951 ई॰ में प्रकाशित भारत सरकार के प्रेस इंफ़ार्मेशन ब्यरो के गाईड के अनुसार 1950 ई॰ में उर्दू अख़बारों की कुल संख्या 646 थी, जिनमें 126 दैनिक, 284 साप्ताहिक, 181 मासिक और 55 अन्य पत्रिकाएँ थीं। संख्या की दृष्टि से हिंदी और अँग्रेज़ी (जिनकी कुल संख्या क्रमश: 1048 एवं 911 थी) के बाद उर्दू तथा चौथे स्थान पर बंगाला (कुल संख्या 458) पत्रकारिता थी।

रजिस्ट्रार ऑफ़ न्यूज़ पेपर ऑफ़ इंडिया के 1983 ई॰ के वार्षिक प्रतिवेदन (जिसमें 1982 ई॰ तक का ब्योरा पेश किया गया है) के अनुसार उर्दू पत्र-पत्रिकाओं की कुल संख्या 1330 थी। 1957 ई॰ में इनका सर्कुलेशन 07 लाख 84 हज़ार था, जो 1982 ई॰ में बढ़कर 22 लाख 69 हज़ार हो गया। 1957 ई॰ में उर्दू अख़बार देश के दस राज्यों और एक यूनियन स्टेट से प्रकाशित होते थे। 1982 में यह चौदह राज्यों और दो यूनियन स्टेट से प्रकाशित हो रहे थे। इसके साथ ही गुरबचन चंदन ने कतिपय राज्यों से प्रकाशित उर्दू पत्र-पत्रिकाओं का भी ब्योरा प्रस्तुत किया है।

दिल्ली : दिल्ली से प्रकाशित अख़बारों और नियत कालिक पत्रिकाओं की कुल संख्या 216 थी, जिनका कुल सर्कुलेशन 04 लाख 80 हज़ार था। 1982 ई॰ में यहाँ से 14 भाषाओं में अख़बार प्रकाशित हो रहे थे। उनमें सर्कुलेशन की दृष्टि से हिंदी और अँग्रेज़ी के बाद उर्दू पत्रकारिता तीसरे स्थान पर थी।

उत्तर प्रदेश : 1957 ई॰ में उत्तर प्रदेश से सबसे अधिक उर्दू अख़बार प्रकाशित हो रहे थे। उनकी कुल संख्या 255 तथा समेकित सर्कुलेशन 03 लाख 60 हज़ार था। 1982 ई॰ में इस राज्य से 10 भाषाओं में अख़बार प्रकाशित हो रहे थे। संख्या और सर्कुलेशन की दृष्टि से हिंदी और अँग्रेज़ी के बाद उर्दू अख़बार तीसरे स्थान पर थी।

बिहार : बिहार में पत्रकारिता का शुभारंभ उर्दू पत्रकारिता से हुआ है। आरा (भोजपुर) को इस दृष्टि से ऐतिहासिक महत्त्व प्राप्त है कि जुलाई, 1853 ई॰ में खुर्शीद अहमद के संपादकत्व में पहला उर्दू साप्ताहिक समाचार- पत्र 'नूरुल अनवार' आरा से प्रकाशित हुआ। जिसके मालिक सैयद हाशिम बिलग्रामी थे। इसके अतिरिक्त 'पटना हरकारा', 'अख़बार बिहार' और 'वीकली रिपोर्ट' का भी सुराग़ मिलता है। 1872 ई॰ में पटना से अधिवक्ता बाबू गुरु प्रसाद सेन ने अपने मित्रों बाबू सालिग राम सिंह और बाबू गोविंद चरण आदि के सहयोग से अँग्रेज़ी अख़बार 'Bihar Herald' प्रकाशित किया था। इसके दो वर्ष बाद हिंदी अख़बार 'बिहार बंधु' पटना से प्रकाशित हुआ। यह अख़बार पं॰ केशवराम भट्ट के मित्र मुंशी हसन अली के संपादकत्व में कलकत्ता से प्रकाशित हुआ था। बाद में पंडित जी ने खुद इसका संपादन-कार्य संभाला और इसे पटना ले आए। उर्दू, अँग्रेज़ी और हिंदी के बाद बिहार की स्थानीय भाषाओं में भी पत्र-पत्रिकाएँ

प्रकाशित होने तथा फलने-फूलने लगीं। वरिष्ठ पत्रकार डॉ॰ रिज़वान अहमद ने 'बिहार में उर्दू सहाफ़त' शीर्षक आलेख में इस आशय का उल्लेख किया है कि 1857 ई॰ के बाद ही बिहार में अधिकतर महत्त्वपूर्ण अख़बार प्रकाशित हुए। इनमें द्विमासिक 'अज़ीमुल अख़बार', 'इंडियन क्रॉनीकल', अख़बार 'पंच', 'अख़्बारुल अख़बार' साहित्यिक पत्रिका 'नदीम' और 'तहज़ीब', दैनिक 'सदा-ए-आम', 'शांति' और 'नई किरन' आदि उल्लेखनीय हैं।

सुख्यात पत्रकार डॉ॰ सैयद अहमद क़ादरी ने अपनी पुस्तक 'उर्दू सहाफ़त बिहार में', बिहार से प्रकाशित कुल 438 पत्र--पत्रिकाओं की सूची पेश की है। जिसमें अविभाजित बिहार के पटना, भोजपुर, गया, दरभंगा, समस्तीपुर, पूर्णिया, जमशेदपुर, मुंगेर, सासाराम, किशनगंज, राँची, बिहार शरीफ़, मुज़फ़्फ़रपुर, सीवान, खजुआ, डेहरी आनसोन, भागलपुर, मोतिहारी, औरंगाबाद, शैख़पुरा, धनवाद, शेरघाटी, चतरा हज़ारीबाग़, छपरा, बोकारो, हिलसा, कटिहार, राजगीर, दुमका, साहबगंज, डालटनगंज, गीरिडिह, बरबिघा, सारन, झरिया और लहेरिया सराय आदि से प्रकाशित पत्र-पत्रिकाओं का विवरण प्रस्तुत किया है।

गुरु बचन चंदन के अनुसार 1982 ई॰ में बिहार राज्य से प्रकाशित अख़बारों और नियत कालिक पत्रिकाओं की कुल संख्या 87 थी, जिनका सर्कुलेशन 03 लाख 17 हज़ार था। यहाँ से 07 भाषाओं में अख़बार प्रकाशित होते थे। संख्या और सर्कुलेशन की दृष्टि से हिंदी के बाद उर्दू पत्रकारिता दूसरे स्थान पर थी।

उर्दू पत्रकारिता के मामले में आज विभाजित बिहार की स्थिति संतोषजनक है। पटना से ही दैनिक 'कौमी तंज़ीम', 'रोज़नामा राष्ट्रीय सहारा', 'फ़ारूक़ी तंज़ीम', 'पिंदार', 'संगम', 'इन्क़लाब जदीद' आदि जैसे रंगारंग स्तरीय अख़बार प्रकाशित हो रहे हैं। इसी प्रकार उर्दू पत्रिकाओं की संख्या में भी काफ़ी वृद्धि हुई है। विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि भारत के विभिन्न राज्यों से प्रकाशित पत्र-पत्रिकाओं के लेखक, पाठक और ख़रीदार भी यहाँ मौजूद हैं।

पंजाब : उर्दू पत्रकारिता के मामले में पंजाब की सरज़मीन काफ़ी ज़रख़ेज़ रही है। इस राज्य से प्रकाशित पत्र-पत्रिकाओं की कुल संख्या 104 तथा कुल सर्कुलेशन 01 लाख 70 हज़ार था। 1965 ई॰ में इस राज्य की उर्दू पत्रकारिता पूरे भारत में शिखर पर थी। देश का सबसे अधिक प्रकाशित होने वाला उर्दू दैनिक 'हिंद समाचार' जालंधर नगर से प्रकाशित होता है, जिसका सर्कुलेशन 72248 था। यह एक मात्र दैनिक है, जिसे बड़े अख़बारों की श्रेणी में गिना जाता है। 1982 में इस राज्य से 05 भाषाओं में अख़बार प्रकाशित होते थे, उनमें उर्दू पत्रकारिता संख्या के आधार पर पंजाबी के बाद दूसरे तथा सर्कुलेशन के आधार पर पंजाबी और हिंदी के बाद तीसरे स्थान पर थी।

वरिष्ठ पत्रकार जमना दास अख़्तर ने 'पंजाब में उर्दू सहाफ़त' में इस बात का उल्लेख किया है कि महाराजा रंजीत सिंह के काल में पंजाब में फ़ारसी या उर्दू का कोई भी अख़बार प्रकाशित नहीं होता था। पंजाब में अँग्रेज़ों के क़ब्ज़ा के बाद 14 जनवरी, 1850 ई॰ को मुंशी हरसुख राय ने लाहौर से मुंशी सूरजभान के संपादकत्व में साप्ताहिक अख़बार 'कोहि नूर' निकाला, जिसे सरकारी संरक्षण प्राप्त था। इसके पाठकों में बड़े-बड़े अँग्रेज़ अधिकारी भी थे। बाद में इसके संपादक क्रमशः गुलाम मोहम्मद परबती और मुंशी जमना प्रसाद हुए। यह अख़बार दरअसल उर्दू पत्रकारिता का प्रशिक्षण विद्यायल भी था। इस अख़बार के बाद सरकारी संरक्षण में ही मौलवी शहसवारुद्दीन के संपादकत्व में साप्ताहिक 'दरिया-ए-नूर' प्रकाशित हुआ। उर्दू पत्रकारिता के पिता कहलाने वाले दीवान चंद ने सियालकोट से 'रेयाज़ुल अख़बार' निकाला। उन्होंने 'चश्म-ए-फ़ैज़', 'ख़ुर्शीद आलम', 'हुमा-ए-बेबहा', 'नूर अली नूर' और 'विक्टोरिया पेपर' नाम से साप्ताहिक अख़बार भी जारी किए। मुंशी मोहम्मद हुसैन ख़ाँ ने मुल्तान से साप्ताहिक 'रेयाज़े नूर' निकाला। 1850 ई॰ में गोजरनवाला से मुंशी कण्डा मल ने साप्ताहिक 'गुलज़ार पंजाब' 1854 ई॰ में मुल्तान से फ़क़ीर गुलाम नसीरुद्दीन के संपादकत्व में 'शोआउस शमस', 1856 ई॰ में रावलपिंडी से 'सुहैल पंजाब' और 'शिमला' जारी हुआ। अमृतसर से 'बाग़े नूर' एवं लाहौर से 'बहरे हिक्मत' निकला। 1857 ई॰ के बाद लाहौर से साप्ताहिक 'सरकारी अख़बार' जारी हुआ जिसके संपादक शिक्षा विभाग के अनुवादक पं॰ अयोध्या प्रसाद थे। इसके बाद मुंशी प्यारे लाल और मौलाना मोहम्मद हुसैन आज़ाद के संपादकत्व में सरकार ने मासिक 'अतालीक़ पंजाब' निकाला। 1870 ई॰ में पीरज़ादा मोहम्मद हुसैन के संपादकत्व में 'अंजुमन पंजाब' और पं॰ गोपी नाथ के संपादकत्व में साप्ताहिक 'हुमा-ए-पंजाब' जारी हुआ। 1873 ई॰ दीवान बूटा सिंह ने मौलवी नबी बख़्श के संपादकत्व में साप्ताहिक 'आफ़ाब' निकाला। 1912 ई॰ में शैख़ मोहम्मद आलम ने अमृतसर से साप्ताहिक 'वीक्ली' जारी किया। इसी अख़बार से मौलाना अबुलकलाम आज़ाद, मौलाना अब्दुल्लाह मिनहास और मौलाना अब्दुल्लाह एमादी जैसी बड़ी हस्तियाँ संबद्ध थीं और इसका अपना छापाख़ाना भी था।

हरियाणा : इस राज्य से कुल 19 अख़बार प्रकाशित होते थे। इनका सर्कुलेशन दस हज़ार था। यहाँ से उर्दू का कोई दैनिक समाचार-पत्र नहीं निकलता था।

चंडीगढ़ : यहाँ से दो साप्ताहिक और दो मासिक उर्दू अख़बार प्रकाशित होते थे। पंजाब से प्रकाशित अख़बारों से ही पाठक काम चलाते थे। यहाँ से प्रकाशित अख़बार की संख्या और सर्कुलेशन का ब्योरा उपलब्ध नहीं है।

आँध्र प्रदेश : इस राज्य से प्रकाशित दैनिक समाचार पत्रों और पत्रिकाओं की कुल संख्या 254 थी, जिनका कुल सर्कुलेशन 03 लाख 63 हज़ार था। 1982 ई॰ में यहाँ से 10 भाषाओं के अख़बार प्रकाशित हो रहे थे। संख्या की दृष्टि से तेलगू और अँग्रेज़ी के बाद उर्दू अख़बार तीसरे स्थान और सर्कुलेशन में दूसरे स्थान पर था।

महाराष्ट्र : महाराष्ट्र से प्रकाशित दैनिक समाचार पत्रों और पत्रिकाओं की कुल

संख्या 133 थी, जिनका कुल सर्कुलेशन 01 लाख 33 हज़ार था। यहाँ से 13 भाषाओं के अख़बार प्रकाशित हो रहे थे। जिनमें संख्या की दृष्टि से मराठी, अँग्रज़ी, हिंदी और गुजराती के बाद उर्दू पत्रकारिता पाँचवें स्थान पर थी।

जम्मू-कश्मीर : 1982 ई॰ में इस राज्य से प्रकाशित दैनिक समाचार पत्रों और पत्रिकाओं की कुल संख्या 127 थी। जिनका कुल सर्कुलेशन 95 हज़ार था। इस राज्य में अख़बार के सर्वे का काम 1966 ई॰ में शुरू हुआ। 1965 में यहाँ से प्रकाशित दैनिक उर्दू समाचार पत्रों और पत्रिकाओं की कुल संख्या 42 थी, जिनका कुल सर्कुलेशन 42 हज़ार था। 1982 में इस राज्य से सबसे ज़्यादा उर्दू दैनिक प्रकाशित हो रहे थे। 06 भाषाओं में प्रकाशित अख़बारों में उर्दू पत्रकारिता का अनुपात 70 प्रतिशत था। अर्थात यह देश का अनोखा राज्य था जहाँ उर्दू पत्रकारिता अपनी संख्या और सर्कुलेशन दोनों दृष्टि से अन्य भाषाओं की पत्रकारिता पर हावी था।

कर्नाटक : यहाँ से 09 भाषाओं में अख़बार प्रकाशित होते थे। 1982 ई॰ प्रकाशित दैनिक समाचार पत्रों और पत्रिकाओं की कुल संख्या 42 थी। जिनमें उर्दू पत्रकारिता संख्या और सर्कुलेशन के आधार पर कन्नड़ी और अँग्रेज़ी के बाद तीसरे स्थान पर थी।

राजस्थान : इस राज्य से चार भाषाओं में अख़बार प्रकाशित होते थे। दैनिक समाचार-पत्रों और पत्रिकाओं की कुल संख्या 10 थी। जिनका कुल सर्कुलेशन 07 हज़ार था।

तामिलनाडू : इस राज्य से उर्दू के 09 अख़बार प्रकाशित होते थे। 14 भाषाओं में प्रकाशित समाचार पत्रों में 60 प्रतिशत तमिल भाषा के अख़बार हैं। दैनिक 'मुसलमान' 50 वर्षों से भी अधिक पुराना है। सरकारी रिपोर्ट में सर्कुलेशन का उल्लेख नहीं मिलता है।

उड़ीसा : इस राज्य से मात्र एक उर्दू समाचार पत्र 'शाख़साना' 1965 ई॰ में जारी हुआ था। अब उड़ीसा उर्दू अकादमी से एक पत्रिका प्रकाशित होती है, परंतु इसका प्रकाशन भी अनियमित है। यहाँ उर्दू भाषियों की संख्या बहुत कम है। यद्यपि करामत अली करामत, ख़ालिद रहीम और हफ़ीज़ नेवलपुरी जैसे बड़े साहित्यिक व्यक्तित्व मौजूद हैं।

जिस उर्दू भाषा ने 'इन्क़लाब ज़िंदाबाद' का नारा दिया और जंगे आज़ादी में अहम भूमिका निभाई, स्वतंत्रा प्राप्ति के बाद उसकी स्थिति बकरी के तीसरे बच्चे जैसी हो गई है। अप्रिय सत्य यह है कि उर्दू भाषा और उर्दू पत्रकारिता को परवान चढ़ाने में हिंदु, मुस्लिम और सिख आदि पेश-पेश रहे, परंतु आज यह उन्हीं की उपेक्षा की शिकार हैं। आज उर्दू भाषा को धर्म विशेष से जोड़कर देखा जाने लगा है। मुसलमानों में भी यह निम्न मध्यम वर्गीय घरों में ही बाल श्रमिक की तरह नज़र आती है।

एक ज़माना था जब उर्दू पत्रकारिता के समक्ष सबसे बड़ी समस्या शब्द-संयोजन और मुद्रण की थी। समाचार संकलन एक कठिन कार्य और सुयोग्य संवाददाता की सेवा प्राप्त करना आसान नहीं था। बाज़ार सीमित था। विज्ञापन बड़ी मुश्किल से प्राप्त किए जाते थे। समाचार-पत्र पढ़ने की आम प्रवृत्ति पैदा नहीं हुई थी, परंतु आज हम साधन संपन्न हैं। कम्प्यूटर, उच्च कोटि की प्रिंटिंग मशीन, टेलिप्रिंटर, फ़ैक्स, इंटरनेट, डिजिटल कैमरे और मोबाइल फोन आदि ने हमारी अधिकांश समस्याओं का समाधान कर दिया है। रोज़गार से जुड़ने के बाद उर्दू पत्रकारिता के पेशे के प्रति भी आकर्षण बढ़ा है। बड़े व्यवसायिक घरानों के इस मैदान में उतरने से यह भी व्यवसाय की परिधि में दाख़िल हो गई है। फलस्वरूप अब उर्दू अख़बार भी कई नगरों / राज्यों से एक साथ, कई रंगों में, उमदा काग़ज़ और ख़ूबसूरत छपाई के साथ प्रकाशित हो रहे हैं। स्थानीय समाचारों, अन्य राज्यों के समाचारों, विदेशी समाचारों, व्यवसायिक समाचारों, खेल समाचारों, साहित्यिक-आध्यात्मिक एवं फ़िल्म जगत आदि के समाचारों लिए अलग-अलग पृष्ठ भी आवंटित किए जा रहे हैं। इतना ही नहीं कई अख़बार के एक से अधिक संस्करण प्रकाशित किए जा रहे हैं। चित्रों के साथ ताज़ा ख़बरों को पेश करने में प्रतिस्पर्धा की साफ़ झलक मिलती है, परंतु उक्त तमाम उपलब्धियों और विशेषताओं के बावजूद उर्दू पत्रकारिता में भी कतिपय ख़ामियाँ दाख़िल हो गई हैं। उदाहरण स्वरूप पहले अधिकांश मालिक-प्रकाशक उर्दू पत्रकारिता का चयन सेवा भाव से करते थे। उनका उद्देश्य अर्थोपार्जन नहीं था। उनके द्वारा प्रकाशित पत्र-पत्रिकाओं में उनके उद्देश्य और दृष्टिकोण साफ नज़र आते थे। वे क़दम-क़दम पर न घुटने टेकते थे और न समझौता करते थे। वे किसी व्यक्ति या सरकार के प्रवक्ता नहीं होते थे। पाठकों तक सही ख़बरों को पहुँचाना अपना कर्त्तव्य समझते थे। ब्लैकमेलिंग का धँधा उनके पेशे में शामिल नहीं था। आवश्यक चित्रों को ही स्थाना दिया जाता था। महिलाओं के अश्लील चित्रों, कामोत्तेजक दवाओं और गर्भनिरोधक वस्तुओं आदि के विज्ञापनों को प्रमुखता से प्रकाशित नहीं किया जाता था। सभी वर्गों के पाठकों के लिए उच्च कोटि की सामग्री पेश की जाती थी। थोड़ी-सी चूक पर तत्काल 'माफ़नामा' और 'शुद्धि-पत्र' प्रकाशित किया जाता था। किसी बड़ी घटना-दुर्घटना, सांप्रदायिक दंगे आदि की ख़बरों के प्रकाशन में काफ़ी छान-बीन की जाती और सतर्कता बरती जाती थी। प्रस्तुत 'स्टोरी' की भाषा भड़काऊ नहीं होती थी। मन में पत्रकारिता जगत में एक आदर्श स्थापित करने की कामना और स्तर को बनाए रखने का संकल्प निहित होते थे। अपने गुण-दोष के बावजूद उर्दू पत्रकारिता का भविष्य उज्ज्वल है।

संपर्क : आवास सं॰-सी॰-6, पथ सं॰-5, आर॰ ब्लॉक,
पटना-800001
09430559161/ 0612- 2226905
E-mail: drshahidjamil@rediffmail.com

सूचना विस्फोट युग में कथा साहित्य का कलेवर

○ डॉ० आर०वि० पद्मावती, कोयम्बत्तूर

'सूचना' आज के युग का जादुई शब्द है जिसके महत्त्व को कोई भी नकार नहीं सकता। अँग्रेज़ी के 'Information' शब्द का सीमित परिधि में प्रयोग करना, सूचना विस्फोट के इस युग में सर्वथा उचित नहीं होगा। क्योंकि, दिन-प्रति-दिन सूचना के विभिन्न माध्यम, तरीक़े तथा नकनीकि उभरते आ रहे हैं। इनका सही रूप निश्चित करना मुश्किल है क्योंकि सूचना की मात्रा आधुनिक युग में बढ़ती ही जा रही है। सूचना के प्रमुख साधन के रूप में समाचार पत्रों का भी प्रचलन ही लोकप्रिय रहा है। लेकिन 'एलक्ट्रानिक मीडिया' के आगमन से संप्रेषण (communication) के क्षेत्र में भारी परिवर्तन होने लग गए हैं। इसी सिलसिले में सूचना का संबंध कोई समाचार पत्र या पत्र-पत्रिकाओं के साथ ही रुक नहीं जाता। दूरदर्शन, सिनेमा, डाक्युमेण्टरी, लघु-फ़िल्म, नुक्कड़ नाटक, लोक-मीडिया, दूरदर्शन के धारावाहिक आदि को भी 'सूचना' के अंतर्गत ही लिया जा सकता है।

समाचार-पत्रों में किसी भी बात का महत्त्व एक दिन या कुछ दिनों के लिए ही रहता है। क्योंकि एक समाचार का महत्त्व सीमित ही है। फिर भी समाचारों के अलावा इनमें बहुत सारी बातें भी जुड़ी हुई रहती है। समाचार पत्रों में बच्चों के लिए चित्र-कथाएँ, लघु कहानियाँ तथा साहित्य से संबंधित सामग्रियों को भी स्थान मिलता है। जे. के. सिंह के शब्दों में, "But the amount of information being produced in the modern world is enormous and still growing. It is no longer possible (if indeed, it ever was) to maintain that most of what a journalist needs to know is contained in press material. Information of importance and relevance to current affairs is to be found in non-news data bases and books as well as in news papers."(1) इस तरह मिलने वाली असंख्य सूचनाओं के अधिकांश भाग को जनता तक ले जाने के लिए संप्रेषण के विभिन्न साधनों का प्रयोग किया जाता है। साहित्य से जुड़ी हुई सामग्रियों एवं सूचनाओं का भी संप्रेषण बहुजन-संप्रेषण के साधनों के द्वारा सफलतापूर्वक किया जाता है। उदाहरण के तौर पर, शरतचन्द्र के 'देवदास' उपन्यास को जब फ़िल्म के रूप में बनाया गया तो वह अत्यंत लोकप्रिय बन गया। यह फिल्मांकन कई भाषाओं में संपन्न हुआ। लोकप्रिय होने के साथ-साथ ऐसे कथासाहित्य का प्रभाव भी जनता पर गहरे रूप से ही पड़ता है।

भारतीय काव्य-शास्त्र में श्रव्य काव्य और दृश्य काव्य नामक दो रूपों में, दृश्य काव्य के अंतर्गत दर्शकीय संप्रेषण के साधनों को लिया जा सकता है। पुराने ज़माने में बच्चों को दादा-दादी द्वारा बतायी जानेवाली रामायण एवं महाभात की कथाएँ, पंचतंत्र की कहानियाँ प्राण आदि 'एनिमेशन' के द्वाा दिए जाने प अतिशीघ्र ही पहुँच जाती हैं, क्योंकि पढ़ते समय होने वाली एकसता या उबाऊपन किसी-भी बात को जत-पट, दूदर्शन, वी.सी.डी. आदि में देखने प नहीं होते। 'सूचना विस्फ़ोट से जुड़े हुए ये साधन क्या पूर्ण रूप से कथा साहित्य के एवज़ या पूक बन सकते हैं?'

भारतीय काव्य परंपरा के श्रव्य काव्य और दृश्य काव्य रूपी भेदों से जुड़े हुए सृष्टिकर्ता रचनाकार ही माने जाएँगे। रास्ते जो भी हो, रचनाकार काव्य प्रयोजन से संबंधित भारतीय काव्य शास्त्र के मानदंड को लेकर ही आज भी चलते हैं।

"काव्यं यश से व्यर्थकृते व्यवहारतिदे शिवेतरक्षतवे।

सद्य: परनिवृत्तये कांता संहित्य उपदेशल्युजे" ।।

यहाँ पर काव्य का संबंध साहित्य या सूचना से संबंधित किसी भी रचना से हो सकता है। रचनाकार का निर्धारित प्रयोजन सृष्टि कार्योपरांत मिलने वाले आनंद से ही मिलता हैं आत्मानुभूति की अभिव्यक्ति के बिना उसे तृप्ति नहीं मिलेगी। पाठक या रसिक के हृदय में पूरी तरह विराजमान होने में ही काव्य की सार्थकता है। अभिनवगुप्त ने इस आशय से प्रशंसा की है कि कवि और सहृदय दोनों एक ही सारस्वत तत्त्व के अंग हैं और दोनों के मेल से ही काव्य बनता है: "सरस्वतयास्त्वं कवि सहृदयाख्यं विजयते"। यही बात आज के मीडिया के सभी साधनों के लिए भी लागू होती है। आजकल लोग धारावाहिकों के पीछे इस तरह लग जाते हैं कि कभी-कभी यह बहुत बड़ी शिकायत का कारण बन जाता है। इसका कारण यही है कि दर्शकों को आकर्षित करने के लिए सृष्टिकर्ता ऐसे तत्त्वों को जोड़ देते हैं जिसे देखकर उन्हें लत पड़ जाती है। 'अति सर्वत्र वर्जयेत' पद के अनुसार इस तरह का प्रचलन समाज के लिए स्वास्थ्यपरक नहीं है। ती. ने. श्रीकण्ठय्या के अनुसार, "पाठक का इससे अधिक महत्त्व क्या हो सकता है और फ़िर कवि को भावुक भी तो होना चाहिए। अपनी रचना का समादर करने वाला न हो तो उसका उत्साह कुंठित हो जाता है। उसका सृष्टि-कार्य रुक भी सकता है। सहानुभूति के साथ सुनने वाले न मिलने से व्यथित कवि ने ही कहा होगा कि सूक्ति तन में ही बूढ़ी हो गयी है।"

सहृदय बड़ा ही अर्थ-गर्भित नाम है। रचनाकार के हृदय के समान हृदय रखने वाला ही सहृदय है। अर्थात् काव्य पढ़ते समय, कवि के हृदय के साथ इसका हृदय भी एक तान होकर झंकृत होने लगता है। उसकी अनुभूति में वह भी साझीदार बन जाता है। उसके आशय, उसके इशारों को सहानुभूति से पहचाना जाता है। ऐसे सहृदय की लाक्षणिक लोग प्रशंसा करते हैं, ऐसे

सहृदय की ही कामना की जाती है। किंतु उसका मिलना दुर्लभ है। इसी सहृदय का संबंध आज के किसी भी फ़िल्म, नाटक, धारावाहिक, लघु-फ़िल्म आदि के दर्शकों से जोड़ा जा सकता है। कभी-कभी इनमें से किसी को बनाते समय निर्माता सोचते हैं कि यह अत्यंत लोकप्रिय होगा तथा वाणिज्यिक रूप से सफ़ल भी लेकिन दुर्भाग्यवश इन्हें दर्शकों की स्वीकृति नहीं मिलती। इसके कई कारण हैं।

पाठकों या दर्शकों में सब की रुचि विभिन्न प्रकार की होती हैं। ये एक ही प्रकार के सौंदर्य या रस की अपेक्षा नहीं करते। कुछ लोग शब्द-चमत्कार से चौंक उठते हैं, कुछ लोग गीत के प्रति रुचि रखते हैं। आंतरिक भाव-सौंदर्य को देखनेवाले बिरले ही होते हैं। अपनी संतुष्टि को व्यक्त करने में पाठकों में विविधता पायी जाती है।

अपनी प्रतिभा के बल पर रचनाकार की सृष्टि-कार्य संपन्न होता हैं आज तो कथाकार हो या कवि हो, अपनी रचना को छपवाकर देश भर में बाँट सकता है। मुद्रण के क्षेत्र में भी क्रांतिकारी परिवर्तन आ गए हैं। मुद्रण के क्षेत्र में हहर रोज़ नये-नये तकनीक आने लग गयी हैं। लेकिन मुद्रण करने के बाद, प्रतियाँ खरीदने वालों के अभाव, पढ़नेवालों की कमी से रचनाकार की सारी कोशिशें और कठोर मेहनत में पानी फिर जाता है।

हिंदी या भारत के किसी भी भाषा के रचनाकार या रचना के साथ यह समस्या

जुड़ी हुई रहती है। इसका मूल कारण यह है कि आजकल के दौड़-भाग के युग में किसी के पास कई पन्नों के उपन्यास या कहानी पढ़ने के लिए समय नहीं मिलता। समयाभाव के साथ पढ़ाई में रुचि की कमी होने के कारण भी ऐसी दुरावस्था उतपन्न हो जाती है। इस कारण से कई सूचनाएँ, उन्नत विचार, उत्कृष्ट दर्शन आदि जनता के पास पहुँचती हो नहीं है। अत: श्रव्य काव्य के रूप में होनेवाले इन सारगर्भित रचनाओं को दृश्य काव्य के स्तर में रूपांतरित करने पर यह कभी बहुत हद तक दूर हो सकती हैं। उदाहरणार्थ ज्ञानपीठ से पुरस्कृत तमिल साहित्य के सुप्रसिद्ध कहानीकार जयकान्तन की चुनी हुई उत्कृष्ट कहानियाँ धारावाहिक रूप में हिंदी में दूरदर्शन द्वारा प्रसारित की गई। इस के परिणामस्वरूप तमिल भाषायी क्षेत्र में ही सीमित न रहकर, संपूर्ण भारत में यहाँ तक की, अशिक्षित लोगों तक भी यह जा पहुँची। इसी तरह मलयालम के उपन्यासकार तगळि, के 'चेम्मीन' का फिल्मांकन भी हुआ।

इसी श्रेणी में, हिंदी की कथाओं को हिंदी के तथा अन्य भाषाओं के मीडिया तक ले जाने से रचनाकार को सृष्टि-कार्य की तृप्ति, आर्थिक लाभ, यश आदि मिलने के साथ-साथ, भारत के किसी भी साहितयकार के विचार प्रांतों एवं भावाओं की सीमाओं को पार करते हुए देश की बहुसंख्यक जनता तक पहुँचेंगे। इससे रचनाकार का सामाजिक दायित्व तथा रचनात्मक प्रतिबद्धता को महत्त्व दिया जाना ज़रूरी है। यह ज़रूरी है कि रचनाकार अपनी रचनात्मक सृष्टि में पतिबद्ध और दर्शक अपने रसास्वादन के स्तर को ऊँचा कर दें।

मन्नूभण्डारी, कमलेश्वर, चंद्रकान्ता, मोहनराकेश आदि कई उपन्यासकारों की उत्कृष्ट रचनाओं के कथ्य को आत्मसात करते हुए पट-कथा बनाते हुए, सिनेमा या फ़िल्म बनाया जा सकता है। फ़णीश्वरनाथ रेणु के 'मैला आँचल' या नागार्जुन की 'रतिनाथ की चाची' जैसे आंचलिक उपन्यासों के रूपांतरण से इन क्षेत्रों की विशेषता उभरेगी।

इसी कोटि में हिंदी कहानियों की श्रेणी में प्रेमचंद से लेकर यशपाल, मोहन राकेश, राजेन्द्र यादव, इलाचन्द्रजोशी, कमलेश्वर, निर्मल वर्मा, राकेश वत्स, कामतानाथ, मेहरुन्निसा परवेज़, स्वयं प्रकाश, नासिथ शर्मा, धीरेन्द्र अस्थाना, अब्दुल बिस्मिल्लाह, उदय प्रकाश, असगर, अखिलेश शिमूर्ति आदि कई कहानीकारों की उत्कृष्ट रचनाओं को पुस्तकीय रूप के साथ-साथ मीडिया में भी इनका रूपांतरण होकर प्रसारित होने पर भी अशिक्षित तथा अल्पशिक्षित लोग भी उनके साहित्य से लाभान्वित हो सकते हैं।

पारिवारिक एवं सामाजिक स्तर पर होने वाले मानवीय संबंधों एवं समस्याओं से जुड़ी कहानियों को रूपांतरित किया जा सकता है। चित्रा मुद्गल की 'मुआवज़ा', मंजुल भगत की 'चिथडा गुड़िया', मिथिलेश्वर की 'मोल ली हुई मुसीबत', चन्द्रकान्ता की 'नूराभाई', कमलेश्वर की 'आसक्ति', मृदुला गर्ग की 'खाली', गोविन्द मिश्र की 'बाँध', ममता कालिया की 'शाल', हिमांशु जोशी की 'स्मृतियाँ,' धीरेन्द्र अस्थाना की गुफ़ाएँ राजीसेठ की कहानी 'नगर रसायन', अब्दुल बिस्मिल्लाह की 'अतिथिदेवोभव' आदि कहानियों में लेखक के भावों की उत्कृष्टता एवं मर्म को छूने की क्षमता के कारण, इनके कथ्य को उचित ढंग से परिवर्तित करके दृश्य काव्य के रूप में सूचना या मीडिया के विभिन्नों माध्यमों द्वारा रूपांतरित करते हुए असंख्य जनता तक पहुँचाया जा सकता है।

निष्कर्षत: यह कहा जा सकता है कि मुद्रित रूप में किसी भी साहित्य का अस्तित्व और महत्त्व हमेशा के लिए बना रहेगा। लेकिन जब इन्हें 'बहु जन हिताय' लोकप्रिय बनाना है तो जनता तक पहुँचाने का सही उपाय करना चाहिए। अत: सूचना विस्फ़ोट के युग में कथा साहित्य का कलेवर महत्त्वपूर्ण ही रहेगा।.....

संपर्क : कोयंतुर

●

नीतीश सरकार के तीन साल का मूल्यांकन

बिहार में विकास की गाड़ी पटरी पर

○ सिद्धेश्वर

किसी भी सरकार की सफलता अथवा विफलता का मूल्यांकन उस सरकार द्वारा जनता की भलाई के लिए किए गए कार्यों और आम जनता को न्याय देने की क्षमता से ही किया जाता है। सरकार को इन कार्यों के निष्पादन के लिए एक कर्मठ, ईमानदार और क्षमतावान नौकरशाही की आवश्यकता तो होती ही है सरकार की इच्छाशक्ति पर भी बहुत कुछ निर्भर करता है।

सत्ता में आने के बाद नीतीश सरकार ने अपने इरादे और वादे के हिसाब से काफी काम किए। अपराध पर नियंत्रण से लेकर विकास योजनाओं को तेजी से धरातल पर उतारने के लिए नियम-कायदों में हेर-फेर से लेकर तमाम कवायद किए। लोगों की शिकायत सुनने के लिए जनता दरबार से लेकर फोन पर शिकायत की सुविधा भी दी गई। सरकार का कार्यकाल धीरे-धीरे चुनाव की ओर खिसक रहा है। लोक सभा का चुनाव तो अब सिर पर आ चुका है। ऐसे में 'विचार दृष्टि' ने नीतीश सरकार के तीन साल के कार्यकाल का मूल्यांकन कर इसकी लोकप्रियता के ग्राफ को पाठकों के समझ प्रस्तुत करना और सीधे जनता के आइने में उसकी तस्वीर रखना मुनासिब समझा है। आखिर हमें यह तो देखना ही होगा कि जन-सरोकारों से जुड़े काम-काज की गति से जनता कितनी संतुष्ट है? सरकार द्वारा प्रदत्त सेवाओं व निगरानी विभाग द्वारा भ्रष्टाचार के खिलाफ छेड़े गए अभियान में सरकार को कितनी सफलता मिली, इसका आकलन तो हमें करना होगा।

विकास के मानचित्र पर बिहार को देश में मॉडल राज्य बनाने के इच्छुक नीतीश कुमार का कहना है कि वे लोगों को जोड़ने की राजनीति का ऐसा बिहार बनाएँगे, जिसमें बिहारी कहलाना अपमान नहीं होगा।

यह कहने की आवश्यकता नहीं कि वर्ष 2007 की बाढ़ की कहर से भी बिहार के प्राय: सभी क्षेत्रों की तबाही हुई और प्रकृति ने नीतीश की परीक्षा ली, मगर वे अपने दम पर जिस मुस्तैदी से बाढ़ पीड़ितों को राहत मुहैया कराने में जुटे रहे उसकी तो दाद देनी ही होगी, हालांकि उसी वक्त मॉरीसस में एक सप्ताह के उनके प्रवास के दौरान व्यवस्था में थोड़ी कोताही हुई, फिर भी वापस लौटने के बाद उन्होंने जिस प्रकार हालात पर काबू पाया और व्यवस्थित ढंग से बाढ़-पीड़ितों को राहत पहुँचाया उसे काबिलेतारीफ बताना सच को सच कहना होगा और इसे उनके विरोधी भी कबूल करते हैं। उत्तरी बिहार में तो प्राय: प्रत्येक वर्ष बाढ़ से पीड़ित क्षेत्रों में राहत सामग्री सहित किसानों के बीच उनके फसल नष्ट होने के चलते मुआवजा राशि बाँटी जाती रही है, मगर वर्ष 2007 में ऐसा देखा गया कि मध्य तथा दक्षिण बिहार के किसानों को भी संभवत: पहली बार उनके फसल बर्बाद होने की वजह से उसकी क्षतिपूर्ति के रूप में राशि दी गई जिससे लोगों ने राहत की सांस ली।

पिछले दिनों 2008 के अगस्त में बिहार का शोक कही जाने वाली कोशी नदी के नेपाल में कुशहा के समीप तटबँध टूटने से जो जल प्रलय हुआ और उससे उत्तर बिहार के ग्यारह जिलों के लगभग 30 लाख लोगों के जानमाल की तबाही और बर्बादी हुई उसे कम करना, रोकना और उन्हें सुरक्षित स्थान पर पहुँचाना नीतीश सरकार के लिए अग्नि परीक्षा के समान हुआ। यह तो कहिए कि राज्य सरकार के समक्ष केंद्र से मिली मुँहमाँगी 1010 करोड़ रुपए की राशि तथा 125 लाख टन खाद्यान की मदद इस राष्ट्रीय आपदा में काम आई। इन चुनौतियों का समुचित समाधान सुशासन के नारे व वादे की कसौटी बनी। कहना नहीं होगा कि कोशी का यह जल प्रलय स्वतंत्र भारत में सबसे बड़ी विपदा के रूप में सामने आया, किंतु सरकार ने सेना के जवानों और राज्य के नागरिकों की सहायता से राहत और बचाव कार्य युद्ध स्तर पर किया तथा सरकारी तंत्र ने मुख्यमंत्री के नेतृत्व में मुस्तैदी दिखाई। वैसे इस बाढ़ का असर आने वाले लंबे समय तक बना रहेगा, क्योंकि कोशी नदी की धारा के रूख मोड़ने से लाखों लोगों के सामने विस्थापन का संकट, कृषि योग्य भूमि का नदी में समा जाने का खतरा और उनके सामने आजीविका का साधन जुटा पाना खासा मुश्किल होगा।

बिहार के मुखिया स्वयं इस बात के लिए सचेष्ट और सतर्क हैं कि निर्माण संबंधी योजनाओं का क्रियान्वयन ठीक ढंग से हो। अभी पिछले दिनों राजग शासन काल की मध्याह्न वेला में चैत की चटक होती धूप की दिखने और घपलेबाजों को चुभने वाला हो-दो टूक संदेश इसलिए दिया कि मुख्यमंत्री नीतीश कुमार स्वयं घटिया निर्माण की शिकायत मिलने पर निर्माण कार्य की गुणवत्ता जाँचने के लिए लोहिया नगर के एक निर्माणाधीन ढाँचे की ईंट को हाथ लगाकर सबके सामने उसकी क्षणभंगुरता बिखेर दी जहाँ जनता का पैसा नाला निर्माण के नाम पर पानी की तरह बहाया जा रहा था। मुख्यमंत्री घटिया निर्माण पर खूब बिफरे और सामने खड़े अभियंता सहित दो संबंधित विभागीय मंत्री, स्थानीय

विधायक, दो प्रधान सचिव, पटना के जिलाधिकारी, वरीय आरक्षी अधीक्षक तथा नगर आयुक्त की ओर पलटते हुए कहा-''इंजीनियर क्या, अँधा भी कहेगा कि मैटेरियल चौपट है।'' फर्जी मामले की तत्काल प्रार्थमिकी दर्ज के बाद ठीकेदार गिरफ्तार हुआ। मुख्यमंत्री ने औचक निरीक्षण कर जनता के बीच कम-से-कम यह संदेश तो दे ही दिया कि एक ओर जहाँ सरकार की इच्छाशक्ति मजबूत है, वहीं दूसरी ओर नौकरशाही के सभी स्तरों को सतर्क किया गया कि सरकार निर्माण व सुदृढ़ीकरण के इस वर्ष में मिट्टी और रेत की घटिया दीवारों पर चढ़े सीमेंट के मुखौटे नोच डालने को तैयार हो गई है, हालाँकि मुख्य मंत्री के इस औचक निरीक्षण से अभियंताओं एवं अधिकारियों की निष्क्रियता भी सामने आती है। आखिर तभी तो कहा जाता है कि भ्रष्टाचार में कमी की बजाय बढ़ोतरी हुई है।

दरअसल, भ्रष्टाचार खत्म हो भी तो कैसे? नौकरशाही का राजनीतिकरण जो हो चुका है। मुख्यमंत्री के गद्दी संभालते ही महत्त्वपूर्ण पदों पर थोक के भाव तबादले में ऐसे लोगों की तैनाती की जाती है, जो सत्ताधारी पार्टी के हित साधने में मददगार होते हैं। राजनीतिकरण की वजह से ही नौकरशाही पक्षपाती और नाकारा हो गई है। अब तो यह भी देखा जा रहा है कि मुख्य मंत्री भारतीय प्रशासनिक सेवा के एक ऐसे अधिकारी को मुख्य सचिव के पद पर नियुक्त करता है जिसे आई.ए.एस. आफिसर्स एसोसियेशन ने सर्वाधिक भ्रष्ट अधिकारी के खिताब से नवाजा हो। कहा जाता है कि बिहार में भी एक वरिष्ठ आई.ए.एस. अधिकारी जिसकी ईमानदारी, निष्ठा और कर्त्तव्यपरायणता के सब लोग कायल थे, उसे मुख्य सचिव के पद से इसलिए वंचित किया गया कि वह मुख्यमंत्री के सजातीय थे। उस अधिकारी के लिए उनकी जाति का होना भी उसे महंगा पड़ा। जहाँ तक भ्रष्टाचार की बात है तो यह समस्या कैसे खत्म हो सकती है जब एक मुख्य मंत्री सिर्फ उसकी जाति का होने से उसे अपने हक से वंचित कर दिया जाता है भले ही वह अपनी सेवावधि में ईमानदारी का परिचय दिया हो। इससे तो भ्रष्टाचार को बढ़ावा मिलेगा ही। भ्रष्टाचार पर अंकुश लगाने का सपना इसलिए भी नहीं पूरा होने वाला, क्योंकि घपले-घोटाले के अधिकांश मामलों में वरिष्ठ नौकरशाहों के साथ राजनेता भी आरोपित होते हैं। इसलिए राजनेता के साथ नौकरशाह केवल बच ही नहीं निकलते हैं, बल्कि उन्हें प्रोन्नति भी दे दी जाती है। जब हत्या जैसे अपराध के आरोपी राजनेता अपने पक्ष में यह दलील देते हैं कि वे तब तक निर्दोष हैं जबतक उच्चतम न्यायालय उन्हें दोषी न मान ले, तो यह अपेक्षा कैसे की जा सकती है कि भ्रटाचार के संदेह में घिरे अधिकारियों के खिलाफ कार्रवाई की जा सकेगी? भ्रष्ट अधिकारी भी तो वही दलील देंगे। **राजनीतिक भ्रष्टाचार के वरदहस्त में ही नौकरशाही का भ्रष्टाचार पनपता है।** यही कारण है कि मुख्यमंत्री की प्रबल इच्छाशक्ति होते हुए भी बिहार में भ्रष्टाचार जस का तस है जिसका असर सरकारी योजनाओं पर भी पड़ना स्वाभाविक है। यह कड़वा सच मैं लिख रहा हूँ किसी को चोट पहुँचाने के लिए नहीं, बल्कि सरकार को सर्तक व चौकस रहने के लिए।

वैसे बिहार में नीतीश सरकार के आने के बाद विकास की बयार बह रही है इस बात से कोई भी इनकार नहीं कर सकता और इसकी तो देशव्यापी चर्चा भी है। निःसंदेह विकास का बदलाव सकारात्मक और उत्साहवर्द्धक है, क्योंकि माहौल बदलने से काम करने का माहौल बदला है। अब केवल योजनाओं को सही तरीके से क्रियान्वित करने की जरूरत है। उसे जमीन पर ठीक ढंग से उतारने की बारी है। इन सभी योजनाओं से संबंधित अथवा सरकार के विभिन्न स्तरों पर तैनात भ्रष्ट लोकसेवकों को पकड़ने के लिए केंद्रीय जाँच ब्यूरो के सेवानिवृत्त अधिकारियों को लेकर 'विशेष निगरानी इकाई' तथा कानून व्यवस्था को बनाने के लिए पाँच हजार पूर्व सैनिकों की नियुक्ति कर स्पेशल ऑग्जिलरी फोर्स (सैप) के गठन को केंद्र सरकार तक ने इस पहल की प्रशंसा की।

केंद्र सरकार द्वारा बिहार के मात्र 23 जिलों में लागू राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी योजना को बिहार सरकार ने अपने संसाधनों से शेष 15 जिलों में भी लागू कर बिहार देश का इस मामले में पहला राज्य साबित हुआ। इसी प्रकार 'प्रधानमंत्री ग्रामीण सड़क निर्माण योजना' की तर्ज पर 'मुख्यमंत्री ग्रामीण सड़क निर्माण योजना' तथा 'मुख्य मंत्री सेतु योजना शुरु की गई है जिसके तहत 500 तक की आबादी वाले सभी गाँवों-टोलों को बारहमासी सड़क से जोड़ा जा रहा है तथा छोटे-छोटे पुल-पुलिया का निर्माण किया जा रहा है। नीतीश सरकार ने अधिकांश विभागीय मंत्रियों व आयुक्तों/सचिवों के जिम्मे एक-एक जिला देकर उसकी निगरानी की जा रही है। वर्ष 1989 में हुए भागलपुर दंगे की जाँच के लिए एक 'न्यायिक आयोग' तथा प० बंगाल में भूमि समस्या को निपटाने में महती भूमिका निभाने वाले श्री डी. वंद्योपाध्याय की अध्यक्षता में 'भूमि सुधार आयोग' की रिपोर्ट पर यदि सरकार अमल करती है, तो कहा जाता है कि भूमि समस्या के निदान के साथ-साथ कानून-व्यवस्था से लेकर नक्सल आंदोलन की समस्या का भी शायद स्थायी समाधान निकल आएगा। राज्य में कृषि उत्पादन में वृद्धि के लिए राष्ट्रीय स्तर के शैक्षणिक संस्थान यथा चाणक्य राष्ट्रीय विधि विश्वविद्यालय, बी.आई.टी, मेसरा का विस्तार तथा ऐतिहासिक नालंदा विश्वविद्यालय की गरिमा के अनुरूप नालंदा में एक अंतरराष्ट्रीय स्तर के 'अंतरराष्ट्रीय युनिवर्सिटी ऑफ नालंदा' की स्थापना और साथ ही राज्य में निजी क्षेत्र में सात मेडिकल कॉलेजों की स्थापना एक सराहनीय कदम है। पिछले दिनों राज्य में शैक्षणिक माहौल बनाने के लिए 2 लाख 36 हजार शिक्षकों की नियुक्ति और पुनः नब्बे हजार शिक्षकों की बहाली से शिक्षा में आई अराजकता की स्थिति पर काबू पाया जा सकेगा।

'विचार दृष्टि' के संवाददाताओं ने मुझे बताया कि बिहार के सभी प्राथमिक स्वास्थ्य और अतिरिक्त स्वास्थ्य केंद्रों के साथ सभी मेडिकल कॉलेज अस्पतालों में न केवल अब डॉक्टर उपस्थित रहते हैं,

बल्कि वहाँ 127 किस्म की दवाएँ रोगियों को मुफ्त मिल रही हैं। केंद्र की तर्ज पर राज्य में भी गंभीर रोगियों की सहायता के लिए 'मुख्यमंत्री चिकित्सा सहायता कोष' के गठन से गरीब मरीजों ने राहत की सांस ली हैं। अकेले पटना में ही प्रमुख सड़कों तथा फ्लाईओभरों के हो रहे निर्माण कार्य से ऐसा लगता है कि बिहार विकास के पथ पर अग्रसर है। बिहार के हर वासी से यह सुनने को मिलता है कि कस्बे तथा गाँव स्तर तक भी सड़क के निर्माण युद्ध स्तर पर चल रहे हैं। मैं अपने उप संपादक डॉ. शाहिद जमील के साथ एक दिन पी.डी. कंप्यूटर से 'विचार दृष्टि' के अंक 35 का कम्पोजिंग कराकर जब अपने निवास वापस आ रहा था, तो डॉ० जमील ने बुद्धमार्ग के आई.आई.बी.एम. के समीप स्थित खाजा की दुकान से खाजा खरीदने की इच्छा जताई। खाजा खरीदते समय जब दुकान के बाहर पैदल पथ पर खड़ा बुद्ध मार्ग के सड़क निर्माण को मैं देख रहा था, तो इतने में ही खाजा की दुकान में काम करने वाला एक कर्मचारी बाहर आया जिससे मैंने पूछा यह सड़क तो चौड़ी और अच्छी तरह बन रही है, तो उसने मुझसे कहा 'मुझे आश्चर्य इस बात से है कि यह पिछले डेढ़-दो दशक से क्यों नहीं हो पा रहा था?' एक अति साधारण नागरिक के मुँह से ऐसी बात सुनकर मैं क्या कोई भी यह अनुमान लगा सकता है कि बिहार के लोगों को विकास का अहसास अब हो गया है इसलिए उसके साथ भविष्य में भी कोई सरकार छलाबा करने का साहस नहीं जुटा सकता अन्यथा उसे चुनाव में खामियाजा भुगतना पड़ेगा।

नीतीश सरकार ने राज्य में चल रहे आँगनबाड़ी केंद्रों को दुरुस्त करने के लिए तकरीबन तीन हजार आँगनबाड़ी सुपरवाइजरों की नियुक्ति करने की अधिसूचना जारी कर दी है जिसके तहत 75 प्रतिशत पदों पर सीधी बहाली होगी और 25 प्रतिशत पदों को प्रोन्नति के आधार पर भरा जाएगा। इस प्रकार 2117 सुपरवाइजरों की सीधी बहाली तथा 706 पदों पर आँगनबाड़ी सेविकाओं की प्रोन्नति से मौका मिलेगा। सभी पद महिलाओं के लिए आरक्षित किए गए हैं।

इसी प्रकार राज्य सरकार ने विभिन्न सरकारी कार्यालयों में वर्षों से कार्यरत दैनिक वेतन भोगी कर्मचारियों, जिनकी संख्या लगभग 10 हजार से अधिक है की सेवा समायोजन कर स्थायी कर दी जाएगी। उच्चतम न्यायालय के विगत 16 मार्च 2006 को दिए गए स्पष्ट दिशा निदेश के बाद सरकार ने इस मामले पर अमल शुरू कर दिया है। इस प्रकार देखा जाए, तो नयी सरकार बिहार की तस्वीर हर क्षेत्र में बदलने के लिए प्रयासरत है।

लगभग ढाई दशकों से जारी वित्तरहित शिक्षा नीति की समाप्ति की घोषणा कर सरकार ने लोकप्रिय सरकार होने के अपने दायित्व का निर्वहन किया है, हालांकि विद्यालय तथा महाविद्यालय के शिक्षकों तथा शिक्षकेतर कर्मचारियों की आशाओं और अपेक्षाओं के अनुरुप सरकार की घोषणा न होकर परफारमेंस आधारित अनुदान प्रबंध समितियों के माध्यम से देने की घोषणा की गई है, फिर भी कुल मिलाकर देखा जाए, तो वित्त रहित शिक्षा नीति के खात्मे की दिशा में यह एक सार्थक कदम इसलिए माना जाएगा कि इस कदम से वित्त रहित शिक्षा नीति का कलंक मिटता हुआ नजर आता है। कारण कि सरकार इन गैर सरकारी शिक्षण संस्थानों में वह गुणवत्तापूर्ण शिक्षण सुनिश्चित करना चाहती है और यह गुणवत्तापूर्ण शिक्षण तभी संभव है जब अध्यापक एवं कर्मी को उचित पारिश्रमिक मिले। मगर विडंबना यह है कि आज से लगभग ढाई दशक पूर्व इन गैर सरकारी शिक्षण संस्थानों में उनकी प्रबंध समितियों द्वारा जो नियुक्तियाँ की गई उनमें न तो शिक्षकों की योग्यता देखी गई और न किसी तरह की प्रक्रिया अपनाई गई। वैधानिक आरक्षण के नियमों का पालन तो बिल्कुल नहीं हो पाया, बल्कि सच तो यह है कि प्रबंध समितियों के सचिव तथा सदस्यों ने अध्यापकों व कर्मियों की नियुक्ति में अपनी-अपनी जाति का सहारा लिया तथा डोनेशन के नाम पर मोटी रकम उनसे लेकर उन्हें सड़क पर छोड़ दिया गया और उनकी जिंदगी से खिलवाड़ किया गया। सरकार के साथ लाचारी यह थी कि ऐसे अयोग्य प्रक्रिया की धज्जी उड़ाते हुए तथा आरक्षण के नियमों को ताक पर रखकर तथा जातियों के नाम पर बहाल किए शिक्षकों को सरकारी वेतन व भत्ते देने से भी शिक्षण की गुणवत्ता में बढ़ोतरि होती, इसकी दूर-दूर तक कोई संभावना नहीं दिखती है। ऐसी स्थिति में सरकार द्वारा परफॉरमेंस के आधार पर प्रत्येक विद्यालय एवं महाविद्यालय की प्रबंध समितियों के माध्यम से अनुदान देने की जो घोषणा की गई है वह निश्चित रूप से जनता के हित में है, भले ही वह अध्यापकों की नजर में लाभकारी न दिखे।

उल्लेखय है कि बिहार शिक्षा के मानकों के मामले में पिछड़े राज्यों से भी नीचे है। इसलिए इन संस्थाओं को मुख्यधारा में लाकर इन्हें मजबूत और गुणवत्तापूर्ण शिक्षण के योग्य बनाना अब सरकार की जिम्मेदारी है तभी वित्तरहित शिक्षा नीति की समाप्ति के निहितार्थ होंगे और इसका वास्तविक लाभ जनता तक पहुँच सकेगा। मुझे लगता है कि लगभग 1000 उच्च विद्यालय, 1000 इंटरमेडियट कॉलेज एवं 250 डिग्री कॉलेज, जो वित्तरहित शिक्षा नीति के शिकार हुए, के शिक्षकों एवं कर्मियों तक सरकारी अनुदान वेतन के रूप में पहुँचने के लिए सरकार और शिक्षकों के बीच में पारिश्रमिक के मामले में बिचौलिए नहीं आ पाएँ। तभी गुणवत्ता पूर्ण शिक्षण संभव होगा और मेघा शिक्षा के क्षेत्र में आकर्षित होगी तथा टिकेगी। इसके लिए यह जरूरी है कि इन गैर सरकारी शिक्षण संस्थानों के शिक्षकों एवं कर्मियों के लिए नैसर्गिक न्याय पर एक सेवा शर्त नियमावली बनाई जाए और शिक्षकों पर अनुशासनिक कार्रवाई करने की शक्ति अकेले प्रबंध समितियों के पास नहीं दी जाए, क्योंकि उन्हें शिक्षक की गुणवत्ता से कोई मतलब नहीं, सिर्फ मोटी रकम से अपनी-अपनी जेबें भरने से हैं आखिर तभी तो शिक्षकों को भारी रकम लेकर वरीयता सूची में उनके नामों को ऊपर-नीचे किया जाता है और बेचारे शिक्षक उनके हाथ के खिलौने इसलिए बने रहने को मजबूर हैं कि मोटी रकम देकर उनके फंदे में फँस चुके हैं। दूसरी बात कि लुँज-पुँज व्यवस्था में पैरवी

पुत्रों एवं धन कुबेरों के सामने थोड़े-से प्रतिभावान लोग बलि के बकरे बन जाते हैं।

कृषि अर्थव्यवस्था में मजबूती लाने की चिंताओं से मुख्य मंत्री नीतीश कुमार ने प्रधान मंत्री को अवगत करा दिया है, लेकिन किसान पंचायत से उत्साहित सरकार को अभी किसानों को संकट से उबारने के लिए बहुत कुछ करना होगा। कृषि उपकरणों में सब्सिडी से संपन्न किसानों ने उत्पादन बढ़ाने में सफलता पाई है, लेकिन जोत बढ़ाने के लिए योजनाओं का क्रियान्वयन अभी राज्य में जोर नहीं पकड़ सका है। राज्य में 90 प्रतिशत सीमांत किसान हैं। इनकी जोत की भूमि काफी छोटी है। ये अपनी उत्पादकता बढ़ाने के लिए न तो उपकरण ही खरीद सकते हैं और न इन्हें समय पर खाद और बीज ही मिल पाता है। हालांकि सरकार ने किसानों की बेहतरी के लिए 23 फसलों का चयन किया है। इनका उत्पादन बढ़ाकर किसान अपने जीवन स्तर में सुधार ला सकते हैं। इन फसलों में आम, लीची, अमरूद, केला और आंवला भी शामिल है; लेकिन किसानों को इनका हाई एडीशन मूल्य नहीं मिल पाता है। प्रोसेसिंग प्लांट की स्थापना नहीं होने से किसानों की समस्या यथावत है। बिहार में जोत बढ़ाने के लिए बंजर भूमि के विकास की योजनाओं को गति देने की जरूरत है। मुख्य मंत्री ने कृषि अर्थ व्यवस्था में सुधार के लिए 11 वीं पंचवर्षीय योजना में प्रतिवर्ष 1200 करोड़ रुपए खर्च करने का रोड मैप प्रधानमंत्री को सौंपकर उनसे दिल्ली जाकर बातचीत भी कर ली है।

इधर बिहार सरकार ने राज्य में बी. पी.एल. सूची में एक करोड़ 21 लाख लोगों को आंका है जिसे केंद्र सरकार ने अनाज देने से इनकार किया है। मुख्य मंत्री ने सभी दलों से आह्वान किया है कि वह बिहार को बाजिब हक दिलाने के लिए केंद्र पर दबाव डाले। इसमें संदेह नहीं कि कृषि क्षेत्र में यदि केंद्र सरकार मदद को, तो बिहार पूर्वोत्तर भारत को अनाज उपलब्ध करा सकता है क्योंकि बिहार एवं पूर्वी भारत में कृषि के क्षेत्र में विकास की अपार संभावनाएँ हैं। जानकारी के लिए मैं बताता चलूँ कि स्टील का मूल्य निर्धारण, खाद्यान्नों के न्यूनतम समर्थन मूल्य का निर्धारण, भारतीय खाद्य निगम के गोदामों में खाद्यानों का भंडारण तथा बफर स्टॉक आदि पूरी तरह से केंद्र सरकार के जिम्मे है और निर्माण सामग्रियों की कीमतों में वृद्धि के चलते बिहार के विकास कार्यों पर प्रतिकूल असर पड़ रहा है। बिहार को केंद्र द्वारा कोटा के हिसाब से भी बिजली नहीं दिया जा रहा है अन्य राज्यों की अपेक्षा यहाँ किरासन तेल भी कम दिया जा रहा है। केंद्र सरकार द्वारा बाढ़ पीड़ितों को कोई सहायता नहीं दिया गया, फिर भी बिहार विकास के रास्ते पर चल पड़ा है।

बिहार में इस समय सड़क निर्माण के आँकड़ों पर जब हमारी नजर जाती है, तो पाते हैं कि राज्य में इस वक्त केंद्र और राज्य की विभिन्न एजेंसियाँ हजारों किलोमीटर सड़क बना रही है। इसके तहत 760 किमी राष्ट्रीय राज मार्ग और स्वर्णिम चतुर्भुज और पूर्व-पश्चिम गलियारे के तहत 530 किमी सड़क का निर्माण चल रहा है। इसी तरह करीब पाँच हजार किलोमीटर जिला पथों और 2036 किमी राज्य उच्च पथों के उन्नयन का काम चल रहा है। साथ-साथ करीब पचास बड़े पुलों का निर्माण भी चालू है।

उल्लेख्य है कि दूसरे क्षेत्र के साथ-साथ सड़कों के निर्माण और उसकी उपलब्धता के मामले में भी बिहार राष्ट्रीय औसत से काफी पीछे है। देश में जहाँ एक लाख आबादी पर औसतन 256.7 कि.मी. सड़क है, वहीं बिहार में एक लाख की आबादी पर 90 कि.मी. ही सड़क है। इसी तरह हर सौ वर्ग कि.मी. में 75 कि.मी. सड़क है। वहीं राज्य में यह औसत 50.80 है। इस प्रकार सड़कों के लेखा-जोखा के दौरान यह पाया गया कि राज्य में सड़कों की कुल लंबाई 81680 किलोमीटर है। जिसमें 36852 कि.मी. कच्ची सड़क है। राष्ट्रीय राजमार्ग की लंबाई 3734 किमी। राजकीय उच्च पथों की लंबाई 3849 कि. मी। वृहद जिला पथों की 7017, अन्य जिला पथों की 3818 कि.मी और ग्रामीण पथों की लंबाई 6326। कि.मी है। कच्ची सड़कों में 35862 कि.मी. ग्रामीण सड़क है और 990 कि.मी. अन्य जिला पथ हैं।

बढ़ती महंगाई ने राज्य की विकास योजनाओं को पटरी पर से उतार दिया है। ठेकेदार काम छोड़कर भागने को विवश है। तीन चार माह के भीतर कच्चे माल की कीमतों में 40 प्रतिशत से अधिक की तेजी आई है। महंगाई राज्य के विकास पर कहर बनकर टूटने वाली है। तेजी से बढ़ रही कच्चे माल की कीमतों से निर्माण क्षेत्र में ठेकेदारी घाटे का सौदा हो गया है। सरकार महंगाई के मद्देनजर प्राइस स्केलेशन का लाभ बिटुमिन की बढ़ी कीमतों के आधार पर देती है, लेकिन लोहा, सिमेंट और चिप्स आदि के दामों में आई तेजी की मार सीधे ठेकेदारों की जेब पर पड़ती है। ऐसे में 10 फीसदी लाभांश कमाने वाला 35 फीसदी महँगाई का कैसे मुकाबला करेगा।

युवाओं को औद्योगिक प्रशिक्षण देने के लिए राज्य में 100 और आई.टी.आई खोले जाने की व्यवस्था की जा रही है। कौशल विकास के लिए कंफडरेशन ऑफ इंडियन इंडस्ट्रीज और ब्रिटेन की कंपनी ए फोर ई के बीच करार हुए हैं जिसके तहत ग्रामीण इंजीनियरों को मोटर पंप कृषि उपकरणों की मरम्मत, बिजली उपकरणों की मरम्मत का प्रशिक्षण दिया जा सकेगा। इसी प्रकार राज्य सरकार ने एल एंड टी. के साथ हुए एक करार के तहत हर महीने 300 युवाओं को आन जॉव ट्रेनिंग दी जाएगी मॉरिशस सरकार ने 500 युवाओं को अपने यहाँ नौकरी देने की पेशकश की है। इस कार्यक्रम के तहत 5000 युवाओं को ट्रेनिंग दी जाएगी।

राज्य सरकार ने 288 करोड़ रुपए की लागत से महादलितों के विकास की एक योजना शुरु की है जिसके माध्यम से महादलित जातियों को जीवन को पूरी तरह बदलने की कवायद की गई है। खासकर इन जातियों की बच्चियों की शिक्षा को लेकर सरकार कुछ खास उपाय करना चाहती है। लगभग डेढ़ दर्जन जातियों को महादलित की श्रेणी में रखा गया है और इनमें सबसे खराब स्थिति मुसहर जाति के लोगों की है। यह बात तो सही है कि

जबतक समाज के हाशिए पर पड़े लोगों के उन्नयन की बात नहीं सोची जाएगी तबतक बिहार के विकास की बात बेमानी होगी। खुशी इस बात की है कि नीतीश सरकार ने विकास से वंचित ऐसे पिछड़ों, अति पिछड़ों, दलित, महादलित तथा महिलाओं को समाज की मुख्यधारा में लाने का अथक प्रयास कर रही है। पंचायती राज व्यवस्था में अतिपिछड़ों एवं महिलाओं को 50 प्रतिशत स्थान सुरक्षित कर एक सराहनीय एवं अनुकरणीय कार्य किया गया है।

इसमें तनीक संदेह नहीं कि राज्य में अब अमन-चैन का वातावरण बन रहा है। दहशतगर्दी का माहौल खत्म होता जा रहा है। रंगदार घरों में बैठ चुके हैं। बड़े-बड़े अपराधी किस्म के नेता सिकचों में कैद हो चुके हैं। बिहार में धीरे-धीरे ऐसा माहौल बन रहा है कि रोजी-रोटी के लिए बाहर गए बिहार के लोग अब अपने घर वापस लौटेंगे। समाज में अमन-चैन, शांति, सांप्रदायिक और सामाजिक सौहार्द वातावरण बनाने के साथ-साथ राज्य के चहमुखी विकास के लिए सबको साथ लेकर चलने का हर संभव प्रयास सरकार कर रही है। यहाँ तक कि मुस्लिम, सिख आदि अल्पसंख्यकों के कल्याणार्थ कई योजनाओं को लागू करने करने के साथ-साथ सभी सांप्रदायिक ताकतों को मजबूत करने की कोशिश की जा रही है। मजबूत इरादेवाली यह सरकार तमाम किंतु-परंतु के बावजूद आखिरकार नेता-पुलिस अपराधी के गठजोड़ तोड़ने में कामयाब रही और लाइजाज हो चुकी कानून व्यवस्था को काफी हद तक ठीक कर दी। इधर हाल फिलहाल बिहार के आरक्षी महानिदेशक के पद पर निष्ठावान, ईमानदार तथा कर्त्तव्य-परायण भारतीय आरक्षी सेवा के वरिष्ठ अधिकारी डी.एन. गौतम, जो पिछले कई वर्षों से हाशिए पर पड़े थे, को नियुक्त कर नीतीश सरकार ने विधि -व्यवस्था को हर हाल में दुरूस्त करने के अपने फौलादी इरादे का परिचय दिया है। 'कौन कहता है आसमां में सुराख हो नहीं सकता, एक पत्थर तो तबियत से उछालो यारो'।

पिछले तीन साल में बिहार की सड़कों, निजी निवेश, बिजली, कानून-व्यवस्था में सुधार के लिए जितना काम हुआ है, उससे वहाँ के लोगों में आत्म-विश्वास और उनका नजरिया बदला है, कारण कि पटना अब आधी रात तक जगने लगा है। रात का खाना घर से बाहर किसी अच्छे होटल या रेस्त्राँ में खाने का शौक बढ़ने लगा है। यहाँ तक कि मध्य वर्गीय भी होटल की शोभा बढ़ाने लगे हैं। इस परिवर्तन को खुली आँखों से देखा जा सकता है।

कहना नहीं होगा कि यह परिवर्तन अँधियारे के लंबे दौर के बाद आया है। बिहार के लोग विकास क्या होता है भूल चुके थे। लेकिन आज वहाँ के लोग उन दिनों को भूल जाना चाहते हैं, जब राज्य में हर तरह की आपराधिक गतिविधियाँ उफान पर थीं और उसकी काली छाया से लोग भयभीत हो उठते थे। उन दिनों सूर्यास्त के तुरंत बाद लोग घर लौट आना पसंद करते थे, क्योंकि उसके बाद बाजार में सन्नाटा बढ़ने लगता था। रात के आठ बजते-बजते दुकानों की सटरें गिरने लगते थे। कई इलाकों में न तो टेम्पो चलते थे और न कोई रेस्टोरेंट खुला रहता था। दरअसल बदलाव की वजह यह है कि जिन नामी-गिरामी अपराधियों व रंगदारों ने कभी शहर व कस्बें का जीना हराम कर रखा था, आज स्वयं उनकी जिंदगी कठिन दौर से गुजर रही है। स्पीडी ट्रायल में ऐसे कई शातिर अपराधियों को सजा मिल चुकी है और वे जेलों में कुछ न कुछ काम करने को बाध्य हैं। कभी जिनके नाम से इलाका थर्राता था, आज उन्हें जेल के वार्डों में चौकीदारी करना पड़ रही है। अपराध में लिप्त रहने की वजह से या यों कहिए कि उसके बदौलत कभी ब्रांडेड जिंस पैंट-शर्ट आदि में खुलेआम घूमते थे, उन्हें जेल की वर्दी पहना दी गई है। इनकी दशा पर छत्रपति शिवाजी के काल के प्रसिद्ध कवि भूषण की ये पंक्तियाँ मुझे स्मरण आ रही हैं, जो उन्होंने पराजित मुगलों की बेगमों के अच्छे-बुरे दिनों का फर्क बताने के लिए लिखी थीं- तीन बेर खाती थीं, सो बीन बेर खाती हैं। अपराधी जेल में रहें, तभी शहर की रातें राशन होंगी।

सचमुच बिहार के लोग आज कितनी राहत महसूस कर रहे हैं इन अपराधियों को झटका लगने से। हालांकि यह भी सत्य है कि कुछ पार्टियाँ अभी भी इन अपराधियों को उकसाने से बाज नहीं आ रही हैं जिसके परिणामस्वरूप यदा-कदा घटनाएँ घट ही जाती हैं। कहा भी गया है चोर-चोरी से भले जाए पर हेरा-फेरी से नहीं। 'किंतु यह कटू सत्य है कि इन अपराधियों पर नियंत्रण लगा है और वे सरकार के लंबे हाथ को समझने लगे हैं।

यह कहने की आवश्कता नहीं कि पिछली सरकारों की दुर्नीति के कारण यहाँ का आम आदमी परेशान था और उनके प्रति सरकार भी उदासीन थी। आम आदमी के प्रति उदासीनता की वजह से पिछली सरकार को सत्ताच्यूत होना पड़ा और नीतीश सरकार ने बिहार की गद्दी संभाली जिसके

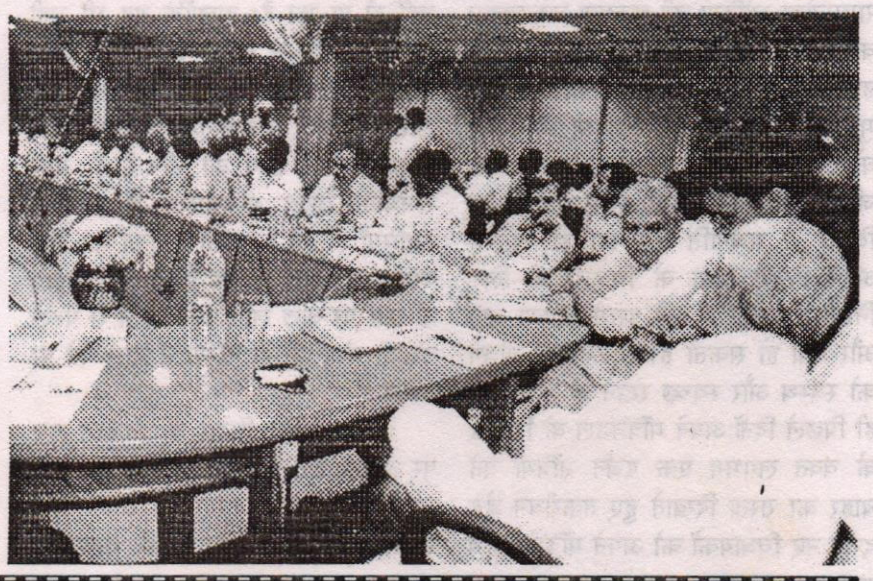

कृत्यों का आम आदमी पर प्रभाव अच्छा दीख रहा है। बिहार की काँग्रेस के साथ राजद तथा लोजपा जैसी प्रमुख पार्टियों के सामने अपनी नीतियों पर पुनर्विचार करने का मौका उपलब्ध है। सत्ताविहीन राजद के लिए ऐसा पुनिर्विचार विशेष कर लाभकारी होगा। मैं समझता हूँ कि इन राजनीतिक पार्टियों को भी जाने-अनजाने की गई अपनी गलतियों को भुलाकर बिहार के विकास की बात सोचनी होगी, यहाँ की मौलिक समस्याओं के समाधान निकालने होंगे और जन-विरोधी नीतियों से अपने को दूर करना होगा। बिहार में उद्योगों को बढ़ावा देने के साथ-साथ रोजगार बढ़ाने की नीति अपनानी होगी। नीतीश सरकार के तीन साल के कार्यकलापों से यह बात स्पष्ट हो चुकी है कि आम आदमी को ज्यादा दिन तक जाँत-पाँत, सांप्रदायिकता तथा धार्मिक संकीर्णता के भुलावे-छलावे में रखना संभव नहीं होता है और स्वार्थपरक एवं घृणित राजनीति भारतीय लोकतंत्र के लिए दुर्भाग्य की बात होगी। भारतीय राजनीति पर सफेदपोश अपराधियों का परोक्षत: वर्चस्व तथा तानाशाही व्यवस्था लोकतांत्रिक मूल्यों के बिल्कुल विपरीत है।

कुछ इसी भाव से प्रेरित होकर बिहार के वर्तमान मुख्यमंत्री नीतीश कुमार ने मौजूदा राजनीति में आई गंदगी की साफ-सफाई के लिए सार्वजनिक जीवन की साफ-सफाई का कार्यक्रम प्रारंभ किया है और पूरी आस्था के साथ अपने गुरु डॉ० राममनोहर लोहिया की कल्पना को साकार करने का बीड़ा उठाया है जिसका स्वागत हर हाल में किया जाना चाहिए। ऐसा मुख्यमंत्री, जो धन की लालसा त्याग कर केवल सेवा भाव से न केवल सार्वजनिक जीवन को स्वस्थ और स्वस्थ बनाने के विचार से राजनीति कर रहा हो, बल्कि अपने पिछड़े राज्य के विकास के लिए निरंतर प्रयासरत हो, तो इससे बढ़िया बात और क्या हो सकती है। सार्वजनिक जीवन को स्वस्थ और स्वच्छ रखने के ख्याल से ही पिछले दिनों अपने मंत्रिमंडल के विस्तार के वक्त लगभग एक दर्जन मंत्रियों को बाहर का रास्ता दिखाते हुए तकरीबन डेढ़ दर्जन नए विधायकों को अपने मंत्रिमंडल में शामिल कर बिहार के प्रथम मुख्यमंत्री डॉ० श्री कृष्ण सिंह के जैसा साहस का परिचय दिया। यह तो नहीं कहा जा सकता कि मंत्री के पद से हटाए गए सभी के सभी दागदार थे, पर इतना अवश्य कहा जा सकता है कि वे निष्क्रिय थे और विभाग पर उनका नियंत्रण नहीं था। सच तो यह है उनमें से अनेक लोगों पर ऊँगलियाँ भी उठ रही थीं और वे शक के घेरे में थे।

दरअसल नीतीश सरकार करे भी क्या, समस्त प्रणाली जब भ्रष्ट हो चुकी हो और अव्यवस्था से इतनी बुरी तरह ग्रस्त हो चुकी हो, तो उसे मौजूदा स्वरूप में चलाए रखने का मतलब है भ्रष्ट तत्त्वों की मदद करना इसलिए मुख्य मंत्री उस प्रणाली में ही बदलाव करने के इच्छुक हैं और जब भी मौका मिलता है उसमें तब्दिली कर डालते हैं, मगर उनके कुछ शार्गिद इसे पसंद नहीं करते, क्योंकि उनका हित इससे सधता नहीं दिखता। इसलिए सरकार भी अपनी गद्दी बरकरार रखने के लिए विकास एवं जनकल्याणकारी योजनाओं में भ्रष्टाचार के लिए जिम्मेदार मूल कारणों का निवारण करने से बचने का प्रयास करती है। जबतक सरकारी कामकाज के तौर-तरीकों और नौकरशाही के रवैए में बदलाव लाने का प्रयास नहीं किया जाएगा, योजना में भ्रष्टाचार व्याप्त होने का रोना रोते रहने का कोई अर्थ नहीं। नीतीश सरकार सरकारी काम-काज के तौर-तरीकों में तो परिवर्तन कर रहे हैं, लेकिन नौकरशाही के रवैए में कोई बदलाव नहीं हो पा रहा है। हालांकि यह भी सही है कि सरकार ने काफी सूझबूझ से काम लिया है, लेकिन अड़चनें कम नहीं हैं। सारी योजनाएँ सचिवालय की गंगोत्री से निकलकर पूरे राज्य को सींचती हैं, मगर राजधानी स्थित सचिवालय में ही जब खामियाँ हों, तो सुदूरवर्ती इलाकों का हाल क्या होगा? सच तो यह है कि सचिवालय के स्तर पर कुछ लोग नेकी करने से पहले उसकी मंशा को ही दरिया में डाल देने पर उतारू हैं।

दरअसल, बिहार के विकास-पथ पर अग्रसर होते जाने का एकमात्र कारण है मुख्य मंत्री नीतीश कुमार की सकारात्मक सोच। सकारात्मक सोच से ही खुशहाली और विकास का मार्ग प्रशस्त होता है। आज सुबे में जो परिवेश और परिदृश्य आकार ले रहा है उसकी हवा में है शीतलता और आशा की किरण। इसको अहसास हर आम और खास से बातचीत के दौरान सहज ही किया जा सकता है। नि:संदेह माहौल में बदलाव व रचनात्मकता का श्रेय नीतीश सरकार को जाता है, किंतु हवा के रुख का दूसरों पर भी असर पड़ा है, आखिर तभी तो वे भी अब विकास की बात करने लगे हैं। समय के साथ उन्होंने भी हवा के रुख को पहचानते हुए अपने में बदलाव लाने का जो कोशिश उनके द्वारा की जा रही है उसके लिए वे भी धन्यवाद के पात्र हैं। परिवर्तन का पहिया निरंतर चलता रहे, इसके लिए बिहार के सभी तबकों के लोगों को लगातर प्रयास करते रहने की आवश्यकता है तभी यह राज्य विकसित राज्यों की पंक्ति में खड़ा हो सकेगा और राज्य की छवि पर जो बदनुमा दाग है, वह धुल पाएगा।

मुझे ऐसा लगता है कि बिहार में पहली बार राज्य के प्राय: सभी राजनीतिक दलों के नेता विकास का राग अलाप रहे हैं और लोगों में होड़ लगी है, कारण कि नीतीश सरकार 'न्याय के साथ विकास' के अपने कार्यक्रम पर लगातार तत्परता से काम कर रही है। ऐसे में दूसरे दलों के नेताओं का यह सोचना कि यदि वे विकास की इस दौड़ में शामिल नहीं होते हैं, तो वे पिछड़ जाएँगे और सत्ता उन्हें दूर-दूर तक नजर नहीं आएगी, स्वाभाविक है। प्रतिस्पर्धा के इस माहौल में राज्य के प्राय: प्रत्येक कोना में किसी न किसी रूप में विकास की किरण बिखेरने की कोशिश की जा रही है। नीतीश सरकार की प्रबल इच्छा शक्ति के मद्देनजर केंद्र सरकार के मुखिया डॉ. मनमोहन सिंह भी नेतृत्व के सभी प्रयासों को अंजाम तक पहुँचाने में हर तरह की सहायता करने से बाज नहीं आ पा रहे हैं।

तो आइए समय की इस करवट का हम सब स्वागत करें और इसका लाभ लेते हुए एक सुंदर, समृद्ध और खुशहाल बिहार बनाने के सपने को मिलजुलकर मूर्तरूप देने का प्रयास करें, वक्त का यही तकाजा है।

संपर्क : 'दृष्टि', यू-207, शकरपुर,
विकास मार्ग, दिल्ली-92
दूरभाष: 011-22530652,
011-22059410

अपनी अस्मिता की पहचान और प्रगति के लिए जूझता बिहार

○ सिद्धेश्वर

बिहार एक ऐसा राज्य है जिसका अतीत स्वर्णिम और गौरवशाली रहा है। इसकी अपनी एक संस्कृति और उस संस्कृति का अपना एक वैषिष्ट्य रहा है। यह वही भूमि है, जिसने गौतम को बुद्धत्व प्रदान किया, जहाँ माता त्रिशला के पुत्र वर्द्धमान सन्मति वीर, अतिवीर की सीमाओं को लाँघकर भगवान महावीर हो गए, जिस धरती ने गुरु गोविंद सिंह जैसी विभूति को जन्म दिया, जहाँ कौटिल्य ने अर्थशास्त्र की रचना की, जो विक्रमशिला और नालंदा जैसे विश्वविद्यालयों की पवित्र भूमि है, जो महाभारत के कर्ण की कमभूमि है, जहाँ कलिंग के युद्ध के बाद सम्राट अशोक ने अपनी तलवार गंगा की गोद में डाल दी और यह वही भूमि है जहाँ के चंपारण से बापू ने असहयोग एवं सत्याग्रह की शुरूआत की। इन्हीं विशिष्टताओं की वजह से इस राज्य की अस्मिता और संस्कृति की एक अलग पहचान रही।

संस्कृति और सभ्यता से ही किसी राष्ट्र व राज्य की पहचान बनती है। संस्कृति मनुष्य का अपने अतीत से जुड़ाव का माध्यम होती है, साथ ही भविष्य की ओर अग्रसारित होने वाली शक्ति का निर्माण करती है। संस्कृति ही सुदृढ़ भविष्य का नींव बनती है और एक सशक्त के भवन के निर्माण में नींव की आवश्यकता को नकारा नहीं जा सकता। बिहार की यही वह संस्कृति थी जो विदेशियों को यहाँ तक खींच लाती थी।

मगर आजादी के साठ साल बाद जब हम अपने राज्य की स्थिति पर नजर डालते हैं, तो इसे विकलांग और रोगग्रस्त पाते हैं, क्योंकि जहाँ यहाँ के वासी समाज व राज्य के उत्थान का लक्ष्य भूलाकर आत्म केंद्रित हो आत्मपुष्टि तथा स्वार्थ-साधन के लिए व्यग्र हो चले हैं, वहीं दूसरी ओर यहाँ दिग्भ्रमित राजनीति न केवल धर्म-संप्रदाय में उलझी हुई है, बल्कि अपनी सामाजिक और ठोस राजनीतिक एवं रचनात्मक जड़ों को उखाड़कर दलीय राजनीति के वैचारिक शून्य को भरने का बहाना बन रही है। निश्चित रूप से आज यहाँ एक संवेदनशील और भोगवादी पीढ़ी विकसित करने की कोशिश नहीं के बराबर हो रही है। आपने देखा है आज से तकरीबन दो दशक पूर्व के बिहार राज्य को जहाँ की व्यवस्था की बाहें अपने ढंग से मरोड़ते हुए जो लोग बहुदलीय लोकतंत्र के भीतर पंद्रह साल का लंबा एकछत्र शासन मैनेज कर आत्म मुग्ध थे, उनकी विदाई हो चुकी है। यहाँ के लोगों ने देखा है कि उच्च शिक्षा सहित प्राय: अनेक क्षेत्रों में गुणवत्ता के खंडहर बिखरे पड़े थे, कुलपतियों तथा शिक्षकों की नियुक्ति उनकी शैक्षिक प्रशासनिक योग्यता एवं क्षमता से नहीं, बल्कि बिरादरी से लेकर सत्तारूढ़ दल के प्रति निष्ठा और धनबल जैसे अनुचित मानकों पर तय हो रही थी, विश्वविद्यालय अनुदान आयोग से अनुदान मिलना मुश्किल हो गया था और विश्वविद्यालयों में शैक्षिक सत्र सालों पीछे चल रहे थे। मगर आज से तकरीबन तीन साल पूर्व वर्तमान सरकार के सत्ता संभालने के बाद से हालात पटरी पर आने लगे हैं, विकास की रेखा खींची जाने लगी है और बिहार अपनी अस्मिता की पहचान और प्रगति के लिए जूझने लगा है।

इतिहास बताता है कि बिहार की अस्मिता पर जब भी आँच आई है, तो वह इसके विरूद्ध उठकर खड़ा हो गया है। सन् 1857 के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम से लेकर 1947 में निरंकुश एवं भ्रष्ट सत्ता को चुनौती देते हुए जे.पी आंदोलन में बिहारवासियों ने विरोध और विद्रोह का झंडा उठाया तथा अनेक कष्ट सहकर सत्ता में परिवर्तन कर ही छोड़ा। फिर आज से तकरीबन तीन वर्ष पूर्व डेढ़ दशक की निरंकुश सत्ता को यहाँ की जनता ने चुनौती दी, जो इस राज्य की अस्मिता की पहचान को मटियामेट करने पर आमादा तो थी ही, इसकी प्रगति पर भी प्रश्न चिह्न लगा बैठी थी। मगर बिहार की जनता इसकी अस्मिता की पहचान और प्रगति के लिए सजग हो गई और उसने सत्ता में परिवर्तन करके दम लिया, क्योंकि यहाँ के लोग प्राणपण से सक्रिय हो गए और खूनी क्रांति से नहीं, बल्कि वैचारिक क्रांति के माध्यम से सत्ता-परिवर्तन की लड़ाई में उसने विशिष्ट भूमिका निभाई और पिछले तीन वर्षों से अपनी अस्मिता की पहचान एवं पग्रति के लिए बिहार जूझ रहा है तथा इसके मुखिया अपने दायित्व को पूरे मन से निभा रहे हैं।

कहना नहीं होगा कि अपनी अस्मिता की पहचान और प्रगति के लिए बिहार ने

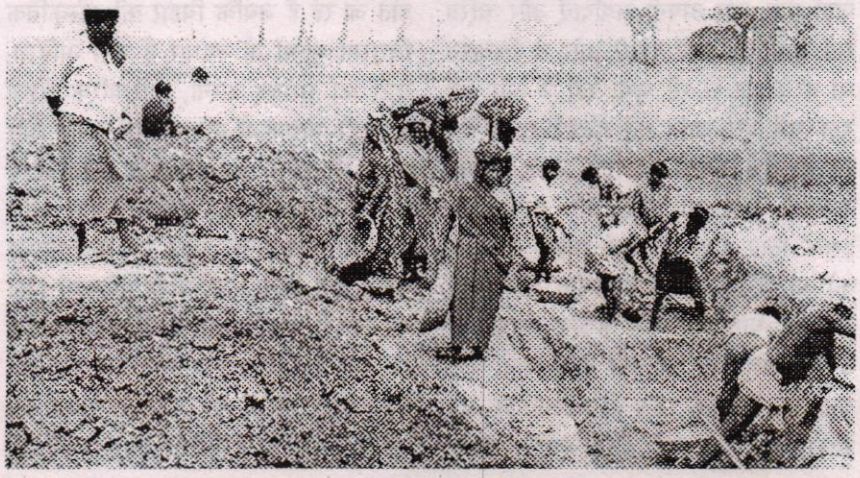

जो कोशिश की है उसके मूल में इसके मुख्यमंत्री नीतीश कुमार की नीयत, इच्छाशक्ति और संकल्प ही काम कर रहा है। उन्हें बिहार और बिहारवासियों की चिंता है, सत्ता की नहीं। ऐसे में मुझे याद आती है राष्ट्र कवि मैथिलीशरण गुप्त की ये पंक्तियाँ-

मैं स्वगलोग का लाया
इस भूतल को ही स्वर्ग बनाने आया

इन्हीं पंक्तियों के शब्दों को अदल-बदल कर यदि नीतीश कुमार कहें तो इस प्रकार होगा-

मैं जे.पी. आंदोलन का लाया
इस बिहार को
प्रगति-पथ पर अग्रसर करने आया।

यह कहने की आवश्यकता नहीं कि नीतीश जी के स्वभाव में है बिहार का विकास और विकास के प्रति समर्पण भी। इनके निर्माण-कर्म की आंतरिक आग की प्रेरणा को ठीक से न समझने वालों को यह विश्वास ही नहीं हो सकता कि नीतीश जैसे प्रयोग विश्वासी मुख्यमंत्री इसी बिहार के हैं, जो राज्य आज से तीन साल पूर्व इस देश में ही नहीं विदेशों में भी हास्य का पात्र हो चुका था और इसके वासी को लोग न जाने क्या-क्या समझ बैठे थे?

दरअसल, राजनीतिज्ञों की सत्तालोलुपता, हमारे सार्वजनिक और संवैधानिक जीवन की मूर्छा बनकर हमारी अस्मिता और हमारे स्वाभिमान को क्षत-विक्षत कर रहा है और आजादी का अर्थ अनर्थ में बदल रहा है। दिग्भ्रमित राजनीतिक पार्टियाँ जहाँ एक ओर अपनी मर्यादाएँ और चरित्र खो चुकी हैं, वहीं दूसरी ओर वे विचारधारा के संकट से भी जूझ रही हैं और कई दल धर्म एवं जाति की दीवारें खड़ी कर रहे हैं। इसे बचाने के लिए अब अधिक सजगता और सक्रियता की जरूरत है। इसके लिए देशभक्त एवं सजग नागरिकों को आत्मचिंतन करना होगा कि, राज्य और राष्ट्र के धागों को कैसे बचाया जाए और उनसे मजबूत एवं शानदार ताना-बाना कैसे बुना जाए? इसके साथ ही सांस्कृतिक एवं सामाजिक पतन को कैसे बचाया जाए? निःसंदेह इसे सार्थक बनाने के लिए कोरी आदर्शवादिता से कुछ अधिक करने की जरूरत है, आदर्शवादिता की जगह दृढ़ व्यावहारिकता का संचार और उसे क्रियान्वित करने के लिए मजबूत एवं दृढ़ इच्छाशक्ति की आवश्यकता है।

यह कहने की आवश्यकता नहीं कि पूर्व में जीवन के प्रायः प्रत्येक क्षेत्र में हमारे बिहारवासियों का दिलो-दिमाग रूखा-सूखा हो गया था, मगर मौजूदा सरकार के सत्ता सभालने के बाद बड़ी संजीदगी से कल्पित 'नियति से मिलन' जो एक फंतासी मात्र रह गया था की फिर से परिकल्पना की जा रही है ताकि एक नया मिलन तैयार हो सके। इसके लिए हम सजग तथा प्रबुद्ध साहित्यकार, रचनाकारों तथा विचारकों को नए विचारों से लोगों में चेतना जागृत करने की आवश्यकता है। कारण कि जिस समाज में विचार की हैसियत अँगूठी की तरह हो जाती है, उस समाज में दिमाग लोमड़ी की तरह काम करने लगता है। इसी वजह से वर्तमान दौर में सार्वजनिक जीवन जीने वालों की कथनी और करनी में कोई सामंजस्य नहीं दिखता है। वचन कुछ और कर्म कुछ और उनके स्वभाव के अंग बन गए हैं। उनकी भावनाएँ उधर नहीं जातीं जिधर उनके विचार कहते हैं, क्योंकि उनके विचारों के अलग-अलग दो सेट हैं। एक सेट सार्वजनिक उपभोग के लिए और दूसरा सेट अपने व्यक्तिगत स्वार्थ और लक्ष्यों की पूर्ति के लिए। यानी सामाजिक, सांस्कृतिक तथा राजनीतिक मूल्य समाप्त होते जा रहे हैं जबकि बिहार की सांस्कृतिक विरासत मूल्यों के आधार हैं जैसे अहिंसा, बड़ों का सम्मान करना, पारिवारिक रिश्तों से जुड़ी भावनाओं को मजबूत करना और इससे भी ऊपर 'अतिथि देवो भवः' जैसी कोमल और व्यापक भावनाएँ। मगर आज पश्चिमी प्रभाव के साथ ही यह भावना बच्चों द्वारा निभा पाना थोड़ा मुश्किल होता जा रहा है, क्योंकि मूल्यों में टकराव पैदा हो रहे हैं। ईमानदारी और सहजता को रूढ़िवादी नजरिए के रूप में देखने का शगल उभरा है। इसीलिए तो बेईमानी का ग्रॉफ बढ़ा है। इस पर चिंतन-मनन की आवश्यकता है। किसी भी सभ्य और जागरूक समाज की पहचान उसके अतीत की सुरक्षा, संरक्षा और स्मृति में ही निहित होती है। अतीत और अपनी परंपरा को विस्मृत कर बेहतर और उन्नत वर्तमान की कल्पना नहीं की जा सकती है।

सन् 1974 में विभिन्न छात्र संगठनों तथा राजनीतिक दलों ने जिन मुद्दों पर छात्र आंदोलन को बड़ा फलक प्रदान किया था, उसके प्रभाव लगातार छीजते हुए चिंताजनक के तल तक गिर चुका है। पिछले साढ़े तीन दशक में राजनीतिक एक युग बीत चुका है, मगर बात जहाँ से शुरू की गई थी, उसकी तार्किक परिणति तक पहुँचने की बजाय उसी विराट शून्य पर लौट आई है। जे.पी. ने जिस सत्ता और समाज का चरित्र बदलने की कोशिश की थी, आज, दोनों का चरित्र तकरीबन वही है, बल्कि, सच कहा जाए, तो उसमें और गिरावट आई है और वह जानलेवा ही हुई है।

लोकनायक जयप्रकाश नारायण के राजनीतिक दल में दीक्षित लोग जब सत्ता में आए, तो उनमें से बहुतों ने सत्ता की सीढ़ियाँ चढ़ने या उनपर बने रहने के लिए हर तरह के समझौते किए। इस बहुआयामी राजनीतिक प्रदूषण में वे लोग पीछे छूटते गए, जिन्हें वक्त के मुताबिक रंग बदलना नहीं आया। जो न जाति को भुनाकर टिकट ले पाए, न कार्यकर्ता के ठेकेदार बन पाए; उन्हें जे.पी. ब्रांड के सत्ता प्रतिष्ठान ने भी भुला दिया। नव शासकों को अपनी प्रतिष्ठा के पुराने कार्यकर्ताओं से शेयर करना असहज लगने लगा। सादगी के मूल्य पीछे छूट गए। मंत्री बनने पर लोग न सिर्फ बड़े बंगले के अभिलाषी दिखे, बल्कि उसकी शान में दो-चार चाँद और जड़ने के लिए जनता के कुछ लाख रुपए बहाने में उन्हें कोई संकोच नहीं हुआ।

इन कसैली बातों से ऐसा प्रतीत होता है कि संभवतः हम आज भी किसी की प्रतीक्षा में हैं बिसराए हुए, जे.पी को याद करते हुए। ऐसी विषम एवं भयावह स्थिति में बिहार के वर्तमान मुखिया यहाँ की

विविध सामाजिक समीकरणों को प्रतिबिंबित कर रहे हैं, इसमें तनीक संदेह नहीं। हालांकि इनके इर्द-गिर्द ऐसा नहीं है कि गिद्ध नहीं हैं, मगर वह अपनी पीढ़ी के ऐसे नेता हैं, जो बिहार की नई पहचान हैं। आज का बिहार 21वीं सदी का बिहार है, जो एक ओर जहाँ अपनी अस्मिता के संकट से गुजर रहा है, तो वहीं दूसरी ओर नए प्रतीकों का सृजन भी कर रहा है। नीतीश कुमार बिहार के विकास के प्रतीक बनकर उभरे हैं और जिस प्रकार अपनी इच्छाशक्ति और संकल्प के बल पर बिहार का चेहरा बदलने का प्रयास कर रहे हैं उसमें यहाँ के नेताओं की मक्कारी, चालाकी, धोखाधड़ी, झूठ, हेराफेरी, अहंकार, दिखावा, दोहरा जीवन जीने तथा अपराधपूर्ण व्यवहार पर अंकुश के आसार नजर आ रहे हैं, क्योंकि सामाजिक एवं राजनीतिक मूल्यों की वापसी के ये पक्षधर हैं और इनका स्पष्ट मत है कि दूसरों के प्रति अकारण ईर्ष्या व कड़वाहट स्वयं का कद छोटा करता है।

यह कहने की आवश्यकता नहीं कि पिछले तकरीबन दो दशक से बिहार में जातीय संघर्ष की आग राज्य के सामाजिक ताने-बाने को तोड़ने पर आमादा होती जा रही थी। सामाजिक ताने-बाने का चुनौती देने वाला कोई भी अपनी हठधर्मिता त्यागना नहीं चाहता था, जिससे बिहार में विकास को काफी क्षति पहुँची, जिसकी भरपाई में काफी वक्त लगेगा, किंतु वर्तमान सरकार के आने के बाद वोट की आड़ में खेले जाने वाले खेल को खत्म करने का प्रयास जारी है और समाज में अशिक्षा एवं अज्ञानता दूर करने का प्रयत्न किया जा रहा है ताकि बिहार की अस्मिता बच सके। कहना नहीं होगा कि बिहार को कई तरह के प्रतिकूल मौसम की वजह से कभी सुखाड़ तो कभी बाढ़ जैसी आपदाओं का भी सामना करना पड़ता है जिसके कारण विकास के किए-कराए सारे प्रयासों, पर पानी फिर जाता है और मुद्दा इस कारण और पेंचीदा हो जाता है। फिर आतंकवाद और नक्सलवाद की उपस्थिति से भी यहाँ के लोगों की समस्याएँ बढ़ी हैं, जिसके निदान के लिए पूरे राजनीतिक प्रतिष्ठान को कमर कसनी होगी।

देश-विदेश की राजनीति, अर्थव्यवस्था तथा उसके तनाव बिंदुओं के बारे में लंबी-लंबी सोचने और बहस करने वाले बिहार के प्रबुद्धजनों, साहित्यकारों, लेखकों तथा सजग नागरिकों को भी अपने राज्य के बारे में सोचना चाहिए और चिंतन-मनन करना चाहिए कि वह आजकल किन परिवर्तनों से गुजर रहा है। उन परिवर्तनों की वजह से कितने तनाव उस पर हावी हैं। किन संकेतों को झेलता हुआ वह आगे बढ़ रहा है। अगर यहाँ के समाज ने इतिहास बनाने का गर्व कई बार संजोया है, तो उसे एक जिंदा समाज ही होना चाहिए और वह जिंदा समाज ही होता है, तो संकटों से जूझता है, दवाबों से टकराता है और लगातार परिवर्तन की तलाश में रहता है। इसलिए समय का तकाजा है कि बिहार आज जिस चौराहे पर खड़ा है, अपने परिवर्तन के हर आयाम को भलिभाँति समझे और उसके कारण-परिणाम के ग्रॉफ को भी अपनी चिंता का विषय बनाए। राष्ट्रीय विचार मंच की बिहार इकाई द्वारा आयोजित यह चर्चा-परिचर्चा इसी उद्देश्य को लेकर की गई है जिसमें आप सभी विद्वत्जन भाग लेकर इसे सार्थक बनाएँ।

संपर्क: 'दृष्टि', यू 207, शकरपुर, विकास मार्ग, दिल्ली-92
दूरभाष: 011-22530652, 011-22059410

पृष्ठ 108 का शेषांश

है। स्थानीय लेखकों की कृतियों के प्रकाशन के अलावा शैक्षिक सामग्री का हिंदी में प्रकाशन के लिए भी सुविधाएँ उपलब्ध हैं।

हिंदी लेखन के परिप्रेक्ष्य में तमिलनाडु में हिंदी के विकास का विवेचन ही इस लेख का मुख्य उद्देश्य है। अत: यहाँ हिंदी लेखन में योगदान देने वाले लेखकों एवं उनके कृतित्व की संक्षेप में चर्चा की जा रही है।

तमिलनाडु में हिंदी लेखन का विसतृत अध्ययन करने पर यह स्पष्ट होता है कि यहाँ केवल कविता और उपन्यास विधाओं की रचनाएँ ही नहीं लिखी गई, बल्कि हिंदी साहित्य के लगभग सभी पुरानी तथा नई विधाओं में साहित्य का सृजन हुआ है। आरंभिक दौर में छोटी-मोटी सर्जनात्मक रचनाओं के साथ-साथ अनुवाद का कार्य बड़ी मात्रा में हुआ था। आदान-प्रदान की इस प्रवृत्ति से हिंदी तथा तमिल साहित्य भी समृद्ध हुए हैं। तमिलनाडु में हिंदी साहित्य सृजन के आरंभिक दौर में हिंदी एवं तमिल के बीच अनुवादों की अधिकता के कारण इस अवधि को 'अनुवाद युग' या 'आदान-प्रदान' युग की संज्ञा दी सकती है। 1930 दशक में ही तमिल की पत्र-पत्रिकाओं में हिंदी के प्रतिष्ठित लेखकों की रचनाएँ अनूदित होकर प्रकाशित होती थीं। हिंदी-तमिल के आदान-प्रदान के कार्य में सक्रिय आरंभिक साहित्यकारों में सर्वश्री बी. एम.कृष्णस्वामी, का. श्रीनिवासाचारी, आक्कूर अनंताचारी, श्री अंबुजम्माल, क.म. शिवराम शर्मा, एस. महहालिंगम, शा.रा. शारंगपाणि, रा. विळिनाथन, श्रीमती सरस्वती रामनाथन, श्री र. शौरिराजन, श्रीमती तुलसी जयरामन, डॉ. एन.सुंदरम, डॉ.पी.जय रामन, बालशौरि रेड्डी आदि के नामों का सादर उल्लेख किया जा सकता है। इनका न केवल अनुवाद के क्षेत्र में, बल्कि आगे चलकर हिंदी में मौलिक सृजन में भी योगदान अवश्य रहा है। उक्त लेखकों के अलावा कुछ और नाम भी हमारे सामने आते हैं जिनका आदान-प्रदान एवं मौलिक सृजन की दिशा में योगदान रहा, उनमें ए. रामय्यर, बी.एम. कृष्णस्वामी, के. राजगोपालन, बी. शेषाद्रि, श्री जमदग्नि, के. नारायण, उमाचंद्रन, श्रीनिवासन, पं. हृषिकेश शर्मा, प्राज्ञनंदन शर्मा, अवधनंदन, एन. वेंकटेश्वरन, रघुवर दयाल मिश्र, एस. धर्मराजन, एस.आर. सुंदरेश शर्मा, प्र. रामानंद शर्मा, रामकोटय्या चौधरी, एस.एन. गणेशन आदि शामिल हैं। तमिल से हिंदी में आदान-प्रदान के संदर्भ में रवींद्र कुमार सेठ के नाम का विशेष उल्लेख किया जा सकता है, जिन्होंने तमिल के प्राचीन भक्ति साहित्य को हिंदी साहित्य की अमूल्य निधि, बनाने में योगदान दिया है।

संपर्क: सहायक निदेशक (राजभाषा), कर्मचारी, राज्य निधि संगठन, क्षेत्रीय कार्यालय, डॉ. बालसुंदरम रोड,

बिहार में संपूर्ण समाज के संर्वागीण विकास की सार्थक पहल

○ रामनाथ ठाकुर

विगत 24 नंवबर, 2005 को सत्ता पर विराजमान हुई बिहार की वर्तमान सरकार 24 नवंबर, 2008 को तीन साल पूरे कर रही है। लोकप्रिय मुख्यमंत्री नीतीश कुमार के नेतृत्व में वर्तमान सरकार ने इस राज्य के संपूर्ण समाज के सर्वागीण विकास की सार्थक पहल की है। एक जिम्मेदार और संवेदनशील शासन देने के वायदे और न्याय के साथ शुरू की गई विकास यात्र तीन वर्ष पूरे होने पर प्रदेश के चौतरफा विकास के लिए सरकार की लोकोन्मुखी दृष्टि की वजह से यह बदलाव संभव हुआ है। सरकार ने विकास को समग्र रूप में मूर्त रूप देने की कोशिश की है जिसके परिणाम स्वरूप संपूर्ण समाज के संर्वाणीण विकास का मार्ग प्रशस्त हुआ है। निश्चित रूप से यहां की जनता की सक्रिय हिस्सेदारी निरंतर सहयोग और नियमित प्रोत्साहन का ही यह नतीजा है। यह तो कहिए कि प्रत्येक वर्ष खासकर उत्तरी बिहार को अत्यधिक बाढ़ की अप्रत्याशित त्रासदी झेलनी पड़ी जिसकी वजह से विकास कार्यों पर प्रतिकूल असर पड़ा अन्यथा यह विकास पथ पर लंबी दूरी तय कर लेता। मगर सरकार की नीयत और दृढ़ इच्छाशक्ति के बलबूते इसने राहत कार्यों के साथ-साथ विकास कार्यों की गति को भी बनाए रखा। सच तो यह है कि संभवत: राज्य में पहली बार युद्ध स्तर पर बाढ़ प्रभावित प्रत्येक परिवार को ससमय खाद्यान्न उपलब्ध कराने के साथ-साथ नकद राशि का भुगतान किया गया। बाढ़ प्रभावित आबादी के बीच सौ करोड़ से अधिाक रुपए नकद अनुदान भी वितरित किए गये। यही नहीं, भविष्य में बाढ़ की विभीषिका को घटाने के लिए नदी का पानी दूसरी नदियों में हस्तांतारित किए जाने की योजना से नदियों को जोड़ा जाना है।

इसमें कतई संदेह नहीं कि सरकार के संकल्प के अनुरूप बिहार में विकास का वातावरण बना है जिसके परिणामस्वरूप देश-विदेश के व्यावसायिक प्रतिष्ठान राज्य में में निवेश करने के इच्छुक हैं और राष्ट्रीय तथा अंतरराष्ट्रीय स्तर पर प्रदेश की छवि में सकारात्मक बदलाव आया है, यहाँ के लोगों की सोच में भी परिवर्तन दिख रहा है। आखिर तभी तो बिहार से बाहर भी बिहारवासियों को उचित सम्मान होने लगा है। दरअसल, बिहार के मुख्यमंत्री में आत्मविश्वास इस कदर कूट-कूटकर भरा है कि उन्होंने अपने ऊपर विश्वास रखकर लक्ष्य निर्धारित किया है। उनका यह आत्मविश्वास उन शक्तियों एवं परिस्थितियों को आकर्षित करता है, जो इस राज्य की जनता की इच्छापूर्ति को संभव बनाती है। बाइबिल में यह वर्णन किया गया है कि मानव में यदि आत्मविश्वास हो, तो वह सब कुछ प्राप्त कर सकता है। बाइबिल में यह भी कहा गया है 'यदि तुम्हारे भीतर राई के दाने के बराबर भी विश्वास है, तो तुम इस पर्वत से कहो कि यहाँ से खिसक जाओं, तो वह खिसक जाएगा।'' कहने का अर्थ यह कि असंभव कार्यों में भी सफलता मिल सकती है। बिहार के आत्मविश्वास से भरे एक इंसान दशरथ मांझी तो इसके ज्वलंत उदाहरण हैं, जिन्होंने अपने घर के आगे के पहाड़ को कई वर्षों तक हथौड़ा से काटकर एक ऐसी सड़क का निर्माण किया जिसमें कस्बे व शहर की दूरी में काफी कमी हुई और वहां की जनता को शहर जाना आसान हो गया। हमारे मुख्यमंत्री भी आत्मविश्वास से लबालब हैं इसलिए उनके चरण को सफलता निश्चित रूप से चूम रही है और यह राज्य उनके नेतृत्व में तरक्की की सीढ़ियों चढ़ रहा है। इसने नए रास्ते की तलाश की है, जो इसे नई मंजिल की ओर ले जा रहे हैं। सच तो यह है कि जो लोग नई राहों पर चलते हैं, वे ही नई मंजिलों तक पहुँचते हैं। बिहार की वर्त्तमान सरकार ने अपने राज्य की अस्मिता की पहचान और प्रगति के लिए चुनौतियाँ स्वीकार की है और समाज के अनेक क्षेत्रों में गुणात्मक सुधार लाने के लिए कई महत्वपूर्ण पहल एवं योजनाएँ प्रारंभ की गई हैं।

राज्य की इन महत्त्वाकांक्षी योजनाओं को साकार करने के लिए सरकार ने विगत तीन वर्षों में न केवल नए कानून और नई नीतियाँ बनाई हैं, बल्कि विधि-व्यवस्था में स्थापित हुआ है। शिक्षा में गुणात्मक सुधार लाने के लिए पंचायती राज संस्थाओं एवं नगर निकायों के जरिय बड़े पैमाने पर शिक्षकों की नियुक्ति की गई है और पुन: तकरीबन एक लाख शिक्षकों की नियुक्ति के लिए प्रक्रिया शुरू हो चुकी है। इसके अतिरिक्त प्राथमिक विद्यालयों में चारदीवारी निर्माण, खेल-कूद शौचालय और पेयजल की व्यवस्था अतिरिक्त कमरों का निर्माण और बच्चों के लिए शिक्षण-परिभ्रमण की व्यवस्था की गई है। उच्च शिक्षा के लिए राष्ट्रीय स्तर का चाणक्य नेशनल विधि विश्वविद्यालय, नालंदा में अंतर राष्ट्रीय स्तर का यूनिवर्सिटी ऑफ नालंदा तथा इंडियन इंस्टीच्यूट ऑफ मैनेजमेंट तर्ज पर गुणवत्ता भक्त राष्ट्रीय स्तर के प्रबंधन के लिए स्थान बनाए जाने का कार्य प्रगति पर है।

कहना नहीं होगा कि बुनियादी पढ़ाई-लिखाई के मामले में अपनी नाकामियों के लिए बदनाम इन दिनों बिहार का समाज बदलाव की इबादत लिख रहा है। कभी स्कूल से महरूम सबसे ज्यादा बच्चों के

लिए बदनाम यह राज्य अब तारीफ के लायक काम करने लगा है। आखिर तभी तो राष्ट्रीय बाल अधिकार और बालश्रम आयोग ने बिहार के तजर्बों से सीखने तक की हिमायत की है। आयोग की अध्यक्ष शांता सिन्हा का मानना है कि राज्य में सर्व शिक्षा अभियान निश्चित तौर पर अद्वितीय भूमिका निभा रहा है। गौरतलब है कि सर्वशिक्षा अभियान के तहत बच्चों को 'ब्रिज कोर्स' की ऐसी सुविधाा है, जिसे करने के बाद वे स्कूलों में दाखिला लेकर आगे की पढ़ाई जारी रख सकते हैं। इस प्रकार अब इस राज्य में भी लोग अपने आपको स्थापित करने में संलग्न हैं और राज्य सरकार बिहार की छवि को राष्ट्रीय स्तर पर बनाए रखने का हर संभव प्रसास कर रही है।

जहाँ तक स्वास्थ्य का संबंध है, रोगियों को अस्पतालों तथा प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्रों में दवा का नि:शुल्क वितरण किया जा रहा है, जहाँ 39 मरीज आते थे, आज सुविधा बढ़ने से यह संख्या भी बढ़कर चार हजार तक पहुँच गई है तथा प्राय: सभी में रोगियों की बड़ी कतार देखी ज... गंभीर रोगों से पीड़ित मरीजों की मदद के लिए मुख्यमंत्री चिकित्सा कोष बनाकर इसकी राशि विमुक्ति प्रक्रिया का भी सरल बना दिया गया है।

अल्पसंख्यक समुदाय के विकास और कल्याण की कई योजनाओं के तहत राज्य की सभी कब्रिस्तानों गरीब छात्र-छात्राओं के लिए नि:शुल्क कोचिंग की व्यवस्था स्वरोजगार हेतु आर्थिक मदद की योजना द्रुत गति से अल्पसंख्यक छात्रावास का निर्माण कराया जा रहा है। भागलपुर दंगा के मृत एवं लापता के अश्रितों को 2500 रुपया प्रतिमाह पेंशन दिया जा रहा है। दंगा पीड़ित बुनकरों को मूलधन देकर पुराने कर्ज के बोझ से मुक्त कर दिया गया है।

इसी प्रकार पहली बार नगरनिगमों और नगरनिकायों के सभी कोटि के पदों पर त्रिस्तरीय पंचायतों वर्ग के लिए 20 प्रतिशत और दलित-आदिवासियों के लिए उनकी आबादी के अनुरूप आरक्षण कर उनका प्रतिनिधित्व सुनिश्चित किया गया। सभी 534 प्रखंड़ों में प्रखण्ड सूचना केंद्र की स्थापना, सामाजिक सुरक्षा वृद्धावस्था पेंशन की राशि 100 से बढाकर 200 रूपया तथा स्वतंत्रता सेनानियों के पेंशन की राशि 400 से बढ़ा कर 2000 रुपया की गई।

विकास कार्यों पर रिकार्ड व्यय के बावजूद राजकोषीय घाटा राज्य के सकल

बेहतर वित्तीय प्रबंधन के कारण एक दिन भी ओवरड्रॉफ्ट और बाजार से कर्ज नहीं लिया जाना विकास की तेज रफ्तार का घोतक है।

बिहार की आम जनता अपनी समस्याओं को राज्य के मुखिया तक पहुँचा सके और उसकी शिकायतों और समस्याओं का त्वरित निष्पादन हो सके, इस उद्देश्य से 'जनता के दरबार में मुख्यमंत्री' कार्यक्रम निरंतर जारी है। जहाँ तक पथ निर्माण की विकास यात्रा का संबंध है राज्य में 360 कि०मी० राष्ट्रीय उच्च पथों के उन्नयन तथा 870 कि०मी० में कार्य प्रगति में है। इसी प्रकार 3000 कि०मी० वृहद जिला पथों चहुमुखी विकास हेतु बिहार आधारभूत संरचना विकास अधिनियम नई औद्योगिक प्रोत्साहन नीति, वैट प्रक्रिया का सरलीकरण तथा उद्यमियों को विभिन्न प्रकार की सुविधाएं उपलब्ध कराई गई।

कृषि तथा सहकारिता के क्षेत्र में भी वर्तमान सरकार ने राज्य तथा जिला स्तर पर 'किसान रत्न', 'किसान श्री' और 'किसान भूषण' पुरस्कार की स्वीकृति और वितरण के अतिरिक्त बाढ़ से प्रभावित जिले के किसानों को उनकी फसल की क्षति 50 प्रतिशत से अधिक होने पर भरपाई के लिए राज्य रोष से कृषि इनपुट अनुदान दिया जा रहा है और राष्ट्रीय फसल बीमा योजना लागू की गई है। राजस्व एवं भूमि सुधार के तहत अर्जित की जाने वाली भूमि के मूल्य निर्धारण भू-अर्जन हेतु अधि नियम की धारा- 4 के तहत अधिसूचना के तुरंत पहले समरूप भूमि के निबधन मूल्य पर 50 प्रतिशत अतिरिक्त जोड़ का तय किया जा रहा है। अधि ग्रहित भूमि पर तीन वर्षों में अधिक अवधि से मजदूरी का कार्य करने वालों को 200 दिनों की मजदूरी एवं जॉब कार्ड ...नों को नवीतम सूचनाएँ और समाचार उपलब्ध कराने के उद्देश्य से न केवल सूचना भवन को आधुनिक तकनीक एवं उपकरणों से सुसज्जित कर कार्यरत किया गया है, बल्कि इलेक्ट्रॉनिक डिस्पले बोर्ड भी स्थापित किया गया है। प्रत्येक जिले में सूचना भवन स्थापित करने का निर्णय, दूरदर्शन, पटना के माध्यम से सप्ताहिक 'बिहार वीडियों डायरी' का प्रसारण प्रारंभ किया गया है। विभागीय प्रत्रिका ''बिहार'' का हिंदी, अँग्रेजी एवं उर्दू भाषा में नियमित प्रकाशन तथा पंचायत स्तरों तक वितरण की व्यवस्था की गई है।

इस प्रकार जब हम बिहार सरकार के विगत तीन वर्षों की उपलब्धियों का विश्लेषन करते हैं, तो पाते हैं कि 'न्याय के

डॉ0 भीमराव अम्बेडकर का राष्ट्र-चिंतन

○ नन्द लाल
भा.ले.एवं.ले.प.से.,
वित्त सदस्य, दिल्ली विकास प्राधिकरण

आप बाबा साहब डॉ० भीमराव अम्बेडकर की विचारधारा से सहमत हों या नहीं, मगर इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता कि भारत को सही तरीके से समझने वालों में उनका नाम सर्वश्रेष्ठ श्रेणी में आएगा। पिछली सदी के सर्वश्रेष्ठ भारतज्ञाता डॉ० अम्बेडकर इसलिए बन सके, क्योंकि उन्होंने भारत को भारतीय स्रोतों और भारतीय विचारधाराओं के आधार पर समझने का प्रयास किया, न कि कुछ उन अहंकारी विद्वानों की तरह, जिन्हें भारत को समझने के लिए विदेशी स्रोतों और विदेशी विचार-परंपराओं पर ही अधिक भरोसा रहा है। पश्चिम के विद्वानों ने कहा कि इस देश में जो आर्य आए वे बाहर से यहाँ आए। मगर डॉ० अम्बेडकर का इससे भिन्न तर्क था। उनका मानना था कि वेदों में आर्य ऋषियों ने जितनी ममता और आत्मीयता से भारत की नदियों और पर्वतों का गुणगान किया है, वह ममता, वह आत्मीयता किसी धरतीपुत्र में तो हो सकती है, विदेश से यहाँ आकर बसे किसी अजनबी में नहीं। इसलिए अम्बेडकर के अनुसार अगर कोई आर्य थे, तो वे कहीं बाहर से नहीं आए थे; बल्कि इसी भारत नामक धरती की ही कोख से पैदा हुई संतान थे। अम्बेडकर का यह दृष्टिकोण इस बात का परिचायक है कि वे राष्ट्र के प्रति काफी लगाव रखते थे, राष्ट्रीयता की भावना उनमें कूट-कूटकर भरी थी और यहाँ की सोंधी मिट्टी से उन्हें गज़ब का प्रेम था।

डॉ० अम्बेडकर का स्पष्ट मत था कि भारत को समझने के लिए उसकी शर्त यह है कि उसे यहाँ की परंपराओं, ज्ञान-विज्ञान के स्रोतों और उपकरणों तथा यहाँ की धरती और सोच में रचे-बसे बाशिंदों के जरिए ही समझना होगा। भारत की आबादी का 84-85 प्रतिशत हिंदू है, जिसे अब तक प्राय: हर राजनीतिक पार्टियाँ और विचारधारा ने दुखाए हैं और गरियाया है। राजनीतिक दलों और विचारधाराओं ने भारत की सबसे बड़ी जनसंख्या के साथ जो सलूक किया है, उसकी तुलना दुनिया के इतिहास में किसी भी देश या घटना से नहीं हो सकती।

खुद को धर्मनिरपेक्ष और आधुनिक मानने की बहस में हम इतने आगे बढ़ गए

कि हम हिंदू विरोधी और हिंदू समाज को तोड़ने वाले हो गए। नतीजन आज हम खुद के हिंदू होने पर इतना शर्मिंदा हो गए कि हिंदुत्व हमें इस देश की हर घृणात्मक वस्तु का जनक और प्रतीक नजर आने लगा। जैसे कोई पुत्र अपनी माता के चरित्र पर ही शक करने लगे और अपने पिता की पागल तलाश में भटकना प्रारंभ कर दे, वैसे ही हमने हिंदू शब्द को ही विदेशियों की देन मानकर खुद को कहीं बाहर से आया हुआ और न जाने क्या-क्या कहना शुरू कर दिया। हमें आज इस बात पर विचार करने की जरूरत है कि कैसे इतनी विचार-परंपराएँ इस देश में पनपीं और उसका स्वरूप क्या है। आखिर देश वैसा ही तो बनेगा जैसा देश की 84-85 प्रतिशत आबादी चाहेगी। यह तानाशाही नहीं, लोकतंत्र की सहज स्थिति है। मगर उसे जातियों में बाँटकर बिखेर देने की कोशिश की और आज भी कर रहे हैं। अगर किसी देश की इतनी बड़ी आबादी एकजुट नहीं रहेगी, तो दुनिया की कोई ताकत इस देश को टूटने से बचा नहीं सकती। इसलिए समय का तकाजा है कि हम देशवासियों सहित यहाँ के राजनीतिक दलों, उसके नेताओं तथा सत्ताधारियों को दीवार पर लिखा सच पढ़ने की जरूरत है कि इस देश की पचासी प्रतिशत जनता क्या चाह रही है। वे ही देश की नब्ज हैं और हमारी उँगली देश की नब्ज पर रहनी चाहिए तभी देश के लगातार परिपक्व, प्रगतिशील और खूबसूरत होने की गुँजाइश है। किसी भी कड़ी को तभी मजबूत माना जाएगा जब उसकी सारी कड़ियाँ मजबूत हों। बाबा साहब डॉ० भीमराव अम्बेडकर इन्हीं सारी कड़ियों को मजबूत कर राष्ट्र की मुख्य धारा से जोड़ना चाहते थे, क्योंकि इसी की साम्यता में किसी भी देश की समृद्धि, गरीब और पिछड़ेपन को आंका जा सकता है। गरीबों की भीड़ में चंद समृद्ध लोग सागर में तैरते कुछ द्वीपों की तरह हैं जो किसी गिनती में नहीं आते।

जब हम डॉ० भीमराव अम्बेडकर के राष्ट्र-चिंतन पर नजर डालते हैं तो पाते हैं कि वह राष्ट्रोत्थान के लिए देश के 85

प्रतिशत दलित, पीड़ित, शोषित, पिछड़े और समाज के हाशिए पर खड़े लोगों के उत्थान के लिए प्रयासरत रहे। किंतु आजादी के इकसठ साल बीत जाने के बावजूद आज हकीकत यह है कि बरस दर बरस, मालदार और निर्धन, अमीर और गरीब के बीच का फासला लगातार बढ़ता जा रहा है जिसका सीधा-सीधा प्रभाव समाज पर भी पड़ रहा है। आय और धन की बढ़ोतरी करने की धुन में शांति, प्रशांति तथा खुशी जैसे अंतिम उद्येश्यों को हम दरकिनार करते जा रहे हैं। जिस तरह से आज धन विकास और हैसियत ही एकमात्र कसौटी बन चुका है, वह हमारे उच्च सांस्कृतिक जीवन मूल्यों में गिरावट को दर्शाता है। दुर्भाग्य है कि आज राजनेता, जो गरीबों और दलितों का मसीहा बनने की कोशिश करते हैं, वे सबसे पहले अपने धन में इजाफा करने की सोचते हैं। वह दिन दूर नहीं जब जनता के कुछ सेवक अरबपति क्लब के सदस्य बन जाएँगे। वैसे भी आपने सुना और समाचार पत्रों में पढ़ा भी कि कुछ समय पूर्व फोर्ब्स मैग्जीन की एक रिपोर्ट में बताया गया था कि एशिया भर में सबसे ज्यादा अरबपति भारत में हैं तथा भारत का एक आदमी विश्व का सबसे अमीर आदमी है। भारत में जापान से ज्यादा अरबपति हैं, किंतु बाकी सब बातों में जापान भारत से आगे है। आश्चर्य तो तब होता है जब अपने मुँह मियां मिट्ठू बनने वाले लोग यह भूल जाते हैं कि इस देश में गरीबों की संख्या लगातार बढ़ती जा रही है और वैसे लोगों की रोटी, कपड़ा और मकान जैसी बुनियादी जरूरतें भी पूरी नहीं हो पा रही हैं। यही नहीं दलितों के साथ बड़े स्तर पर भेदभाव किया जा रहा है। शिक्षा एवं पद से संबंधित योग्यता एवं प्रशिक्षण के बावजूद दलित उम्मीदवार को उनकी जाति की वजह से नौकरियों में नहीं लिया जाता। बाबा साहब की चिंता इसी को लेकर थी कि जबतक समाज के इस हाशिए पर पड़े दलित को राष्ट्र की मुख्यधारा से जोड़ने के लिए उनका उत्थान नहीं किया जाएगा, राष्ट्र के सबल होने की बात केवल सपना बनकर रह जाएगी। डॉ० अम्बेडकर के दौर की बात तो छोड़िए, आजादी के इकसठ साल बीत जाने के बावजूद शिक्षा एवं पद से संबंधित योग्यता एवं प्रशिक्षण के अलावा उम्मीदवार की पृष्ठभूमि एवं जाति बहुत महत्त्व रखती है। अभी-अभी पिछले दिनों की एक घटना है कि उड़ीसा के मयूरभंज का एक छात्र विद्युत, जो जवाहरलाल विश्वविद्यालय, नई दिल्ली में पढ़ता था, जब एक जानी-मानी बहुराष्ट्रीय कंपनी में रोजगार हेतु साक्षात्कार देने गया, तो उससे उसकी शिक्षा एवं योग्यता के अलावा सबकुछ पूछा गया और उसने सबका उत्तर संतोषप्रद एवं सही सही दिया। फिर भी साक्षात्कार करने वाले ने कहा कि तुम कैसे इस पद के लिए योग्य हो सकते हो? तब विद्युत ने वहीं जवाब दे डाला, ''क्योंकि मैं अनुसूचित जाति से हूँ, इसलिए आप मुझे रखना नहीं चाहते।' दूसरे जे.एन.यू. के छात्र नत्थू प्रसाद के साथ भी कुछ ऐसा ही हुआ कि योग्यता या शिक्षा से संबंधित बातें न पूछकर उसके परिवार एवं सामाजिक पृष्ठभूमि के बारे में साक्षात्कार करने वाले पूछते रहे जबकि वह नेट उतीर्ण था और उसे उम्मीद थी कि व्यवसाय से संबंधित प्रश्न किए जाएँगे। इस प्रकार देश के नागरिकों के साथ जात-पांत, ऊँच-नीच के आधार पर राष्ट्र कलंकित होता है।

सच तो यह है कि मानव समुदाय की सामूहिक ईकाई को राष्ट्र कहा जाता है। सामूहिक भाव मानव की प्रकृति ही नहीं जीवन का सिद्धांत भी है। इस प्रकार जब हम राष्ट्र की बात करते हैं तो वह किसी वर्ग या जाति या धर्म का नहीं, बल्कि उन सबका है जो उसके नागरिक हैं और उन नागरिकों के साथ ऊँच-नीच, जात-पांत, धर्म-भाषा, क्षेत्र, अमीर-गरीब का भेदभाव नहीं होता और संविधान भी इसकी इजाजत नहीं देता। संविधान के प्रावधान के अनुसार इस देश के सभी नागरिकों का समान अधिकार है। इस तरह राष्ट्र का गौरव और संप्रभुता-एकता तभी कायम रह सकती है जब हम एक सूत्र में बँधे रहकर अपने राष्ट्र के प्रति समर्पित बने रहें। बाबा साहेब डॉ० भीमराव अम्बेडकर आजीवन राष्ट्र की इसी अवधारणा की वकालत करते रहे।

बाब साहब डॉ० अम्बेडकर ने कभी कहा था कि भारत एक राष्ट्र बनने की प्रक्रिया से गुजर रहा है। भारत का वर्तमान परिदृश्य उनकी बात को सही सिद्ध कर रहा है। भारत एक तो आतंकवाद के मोर्चे पर लड़ रहा है, तो दूसरी तरफ क्षेत्रवाद का भी मोर्चा लगा हुआ है। नक्सलवादी शक्तियाँ धीरे-धीरे राज्य का स्वरूप ग्रहण करने की ओर बढ़ रही हैं। छतीसगढ़ के आदिवासी क्षेत्रों में तथाकथित लिबरेटेड जोन का आकार बढ़ रहा है। वे भी शीघ्र ही एक राजनीतिक फ्रंट या मुखौटा तलाश लेंगे। नेपाल का उदाहरण सामने है। वहाँ अचानक ही सबकुछ नहीं हो पाया। आदिवासी अथवा दलितों जैसा सरल समाज यदि आज शस्त्र उठाने को विवश है, तो यह संपूर्ण लोकतांत्रिक व्यवस्था के लिए शर्म की बात है। यह राज्य की असफलता है। विकास का एजेंडा उनसे दूर क्यों रहा? भारत दो युद्धों के दुष्चक्र में एक साथ फँसने जा रहा है। आतंकवाद के विरूद्ध लंबी खिंचती जंग के कारण नक्सलवादियों के राज्य विरोधी क्षेत्र के विस्तार की अपशंकाएँ बलवती होंगी। ऐसा प्रतीत होता है कि एक त्रिकोणात्मक संघर्ष की भूमिका सामने आने वाली है। चीन का उदाहरण सामने है। चीन में राष्ट्रवादी शक्तियों ने कम्युनिस्ट आंदोलन को पूर्णत: नेस्तनाबूद कर दिया होता, अगर जापान के हमले से एक तीसरा मोर्चा न खुला होता। च्यांग काई शेक की राष्ट्रवादी सरकार जापान युद्ध में जूझते-जूझते कमजोर होती गई और माओ के नेतृत्व में सोवियत रूस के सहयोग से कम्युनिस्ट शक्तिशाली होते चले गए। तकरीबन बीस वर्षों में स्थिति पलट गई। भारत में भी राज्य व्यवस्था जिस तरह धीरे-धीरे कमजोर हो रही है, अपने-अपने तरीके से मजबूत हो रही शक्तियाँ अचानक सामने आकर लंबे गृह युद्धों की भूमिकाएँ बना रही हैं और राज्य की सत्ता और शक्ति के बावजूद नक्सलवादी जिस तेजी से क्रमश: प्रभावी होते जा रहे हैं, भारतीय राष्ट्रवाद वर्तमान मध्यमवर्गीय

स्वरूप इन शक्तियों के सम्मुख कहाँ तक टिकेगा, यह विचारणीय है। ऐसे में डॉ० अम्बेडकर का मानना सच हो सकता है, क्योंकि भारतीय समाज ने अभी तक लोकतंत्र को बड़े धैर्य के साथ संजोकर रखा है, लेकिन जो भावी लोकतांत्रिक राज सुखवादी नेतृत्व सामने आ रहा है उसे लेकर बड़े से बड़ा आशावादी भी राष्ट्र के भविष्य के प्रति संशयग्रस्त हो सकता है। याद रहे देश और राष्ट्र से ही हमारी पहचान बनती है। एक बार यह बात हर देशवासी के दिल में बैठ जाए, तो हम फिर एक मजबूत लोकतंत्र के साथ-साथ अपने राष्ट्रीय गौरव को भी पा सकेंगे। बाबा साहब डॉ० भीमराव अम्बेडकर के दिल में यह बात बैठ चुकी थी, इसी वजह से वह देश की पचासी प्रतिशत लोगों के उन्नयन की बात करते थे। बल्कि सच तो यह है कि डॉ० अम्बेडकर जातिविहीन समाज की स्थापना के लिए जीवनभर प्रयासरत रहे, क्योंकि जातिवाद को एक अभिशाप मानते थे, जो सदियों से हमारे समाज को खोखला करता जा रहा है। दुर्भाग्य से यह सामाजिक बुराई आज भी इस देश में यथावत विद्यमान है। कारण कि जातिविहीनता किसी को राजनीतिक सत्ता के करीब नहीं ले जाती है इसलिए सभी राजनीतिक दल और उसके नेता जाति समीकरण को अपने-अपने पक्ष में भुनाने पर आमादा हैं। इसी वजह से जातियाँ टूटी नहीं हैं और न समाज के ढाँचे बदले हैं। डॉ० अम्बेडकर सामाजिक क्रांति को सफल बनाने के लिए समाज के मौलिक ढाँचे में बदलाव चाहते थें ताकि स्वस्थ समाज का निर्माण हो सके और स्वस्थ समाज से ही राष्ट्र सबल बन सके। मगर आज सत्ता पर विराजमान लोग जाति व्यवस्था को बरकरार न रखना चाहते हैं ताकि उनका स्वार्थ सिद्ध होता रहे, भले ही समाज का पतन हो जाए। सामाजिक पतन से उन्हें क्या लेना-देना?

यह कहने की आवश्यकता नहीं कि जाति व्यवस्था की वजह से अनेक जातियों, मजहबों, आर्थिक असमानताओं और अभावों ने समाज के बीच तनावों को जन्म दिया है जिसके परिणामस्वरूप न केवल सामाजिक समरसता चरमराई है, बल्कि सामाजिक एकरूपता प्रभावित हुई है, सार्वजनिक जीवन में मूल्य-मर्यादाओं का ह्रास हुआ है और संवैधानिक एवं लोकतांत्रिक संस्थानों और व्यक्तियों के प्रति विश्वास में कमी आई है। वर्गभेद के बढ़ने से जहाँ जातीय हिंसा-प्रतिहिंसा में वृद्धि हुई है, वहीं राष्ट्रीय एकता को भी खतरा पैदा हुआ है। स्वस्थ समाज और सबल राष्ट्र के लिए यह जरूरी है कि समाज में कलह न हो, शोषण न हो और सभी जातियों के लोग भेदभाव भुलाकर या उससे ऊपर उठकर कँधे से कँधा मिलाकर कार्य करें। राष्ट्रहित में जातिवाद के उन्मूलन के लिए पूरे देश में इस बुराई के विरूद्ध एक आम सहमति तथा जागरूकता का माहौल बनाने की जरूरत है जैसा कि डॉ० भीमराव अम्बेडकर चाहते थे। उपर्युक्त तथ्यों के आलोक में हम कह सकते हैं कि डॉ० अम्बेडकर का राष्ट्र चिंतन प्रखर था।

बाबा साहब डॉ० भीमराव अम्बेडकर ने 25 नवंबर, 1949 को संविधान सभा के आखिरी भाषण में कहा था, ''मोहम्मद बिन कासिम के सिंध आक्रमण के समय राजा दाहिरा के सेनापति ने घूस ली और युद्ध से अलग रहा। मोहम्मद गोरी को पृथ्वीराज के विरूद्ध जयचंद ने यहाँ बुलाया। जब शिवाजी हिंदुओं की मुक्ति के लिए युद्ध कर रहे थे तब अन्य मराठा सरदार और राजपूत मुगल बादशाहों की ओर थे। जब अँग्रेज सिख शासकों को मिटाने में लगे थे, सिखों का मुख्य सेनापति गुलाब सिंह चुपचाप बैठा रहा। क्या इतिहास की पुनरावृत्ति होगी? क्या भारतवासी मतमतांतरों से देश को सर्वश्रेष्ठ मानेंगे?'' डॉ० अम्बेडकर का सवाल आज भी अनुत्तरित है? परिस्थितियाँ भी वैसी ही हैं। राष्ट्रीयता की भावना का लोप होता जा रहा है, जबकि राष्ट्र गठन का मुख्य आधार संस्कृति है। भारत के संविधान में यह इंडिया है, राज्यों का संघ है। तुष्टीकरणवादी इसे अनेक संस्कृतियों से मिली-जुली संस्कृति बताते हैं। वे भारत को एक राष्ट्र नहीं मानते। वे यहाँ आदिवासी, द्रविड़, आदि द्रविड़, अगड़ी-पिछड़ी तमाम राष्ट्रीयताएँ-उपराष्ट्रीयताएँ व नस्लें देखते हैं।

उपर्युक्त तथ्यों के आलोक में हमें यह कहने में कोई एतराज नहीं कि संविधान के माध्यम से भीमराव अम्बेडकर द्वारा किए गए युगांतरकारी सामाजिक-राजनीतिक सुधारों तथा राष्ट्र को सबल बनाने के उनके विचारों को कमतर आंका गया। 25 नवंबर, 1949 को संविधान सभा के अंतिम पाठ में उन्होंने स्पष्ट और दूरदर्शी विचारों के साथ राजनीतिक व सामाजिक लोकतंत्र के लिए महान योजना का जो खाका खींचा था वह अब्राहम लिंकन को भी गर्व से भर देता। इसी प्रकार आज सामाजिक और राजनीतिक सौहार्द दिखाई पड़ता है और मतभेदों को लोकतांत्रिक तरीके से हल करने की उम्मीद बँधती है, तो उसके लिए हम डॉ० अम्बेडकर के कृतज्ञ हैं। उन्होंने संविधान सभा में दिए गए अविस्मरणीय भाषण में लोकतंत्र और सामाजिक समरसता का मार्ग प्रशस्त किया। यह किसी भी भारतीय राजनेता द्वारा दिए गए सर्वश्रेष्ठ भाषणों में से एक है। इसकी तुलना में नेहरू जी का ''ट्रिस्ट विद डेस्टिनी'' भाषण चलताऊ लगता है। राजनीति के छल-छद्म बौद्धिक उद्यम की कृपा की वजह से ही इस देश के बच्चे डॉ० अम्बेडकर के राष्ट्रीय एकता और लोकतंत्र के प्रति समर्पण और दर्शन से परिचित नहीं हो पाए। आशा है राष्ट्रीय विचार मंच की बिहार इकाई द्वारा आयोजित ऐसी संगोष्ठियों तथा मंच के मुख-पत्र 'विचार दृष्टि' के माध्यम से बाबा साहब डॉ० भीमराव अम्बेदकर के राष्ट्र चिंतन और सामाजिक सुधारों से संबंधित सत्य भारतीय जनमानस को परिचित कराने का प्रयास सफल होगा।

८५वें जन्म दिवस पर

बहुमुखी प्रतिभा के दक्षिण-भारतीय लब्धप्रतिष्ठ हिंदी साहित्यकार : डॉ. एन. चन्द्रशेखरन नायर

○ डॉ. (श्रीमती) एस.तंकमणि अम्मा

केरल के लब्धप्रतिष्ठ सारस्वत साधक डॉ.एन.चन्द्रशेखरन नायर बहुमुखी प्रतिभा के व्यक्ति हैं। वे उदात्त देशप्रेमी, महात्मा गाँधी अनुयायी, खादी-व्रती, समर्थ चित्रकार, यशस्वी हिंदी एवं मलयालम कवि, नाटककार, कथाकार तथा स्वनामधन्य साहितयकार, तथा कर्मठ कार्यकर्त्ता हैं। उनका प्रत्येक कार्य भारतीय संस्कृति की पूजा में अर्पित पुष्प है। उनकी सृजनधर्मिता की अंतर्धारा स्वयं में भारतीय संस्कृति की उदात्तता की उद्घोषणा करती हैं नायर जी सच्चे अर्थ में भारतीय संस्कृति के प्रबल पोषक हैं। नायरजी के इस संस्कृति प्रेम ने उन्हें न केवल मातृभाषा मलयालम में साहितय-सृजन की ओर प्रेरित किया है बल्कि राष्ट्रभाषा हिंदी के भी उच्चकोटि के रचनाकार बना दिया हैं राष्ट्रभाषा हिंदी में उनके सृजन कार्य ने उनकी सांस्कृतिक चेतना के वृत्त को बहुत विस्तृत किया है। इससे उनकी सृजनधर्मिता को एक नया आयाम भी प्राप्त हुआ है।

देशप्रेमी तथा भारतीय संस्कृति के उपासक

विद्यार्थी-जीवन से ही देश प्रेम की उदात्त भावना की ओर डॉ. नायर उन्मुख हुए थें। उनके इस असीम देशप्रेम से जुड़े हुए हैं उनका राष्ट्रभाषा प्रेम तथा खादी-व्रत।

महात्मा गाँधी जी के वे सच्चे अनुयायी हैं। वे गाँधीवाद के सवल समर्थक भी हैं। गाँधी जी के सादा जीवन और उच्च विचारवाले आदर्श को अपने जीवन में अमल में लाने वाले कर्मठ कार्यकर्ता हैं डॉ. नायर। अपने लंबे अध्यापन काल मं उन्हें आशातीत सफलता प्राप्त हुई है तो उसके मूल में उनका अप्रतिम संस्कृति-प्रेम ही कार्यरत रहा है। आज केरल में ही नहीं, पूरे देश और विदेशों में भी उनके अनगिनत शिष्यगण हैं जो अपने संपूज्य गुरुवर का सतत आदर एवं श्रद्ध से स्मरण करते हैं। डॉ. नायर जैसे सच्चे गुरु के लिए इससे अधिक संतोष की और क्या बात हो सकती है।

डॉ. नायरजी केरल के विविध सामाजिक सांस्कृतिक एवं धार्मिक संगठनों से जुड़े हैं और उनका कुशल संचालन करने में संलग्न है। उनके सामाजिक सांस्कृतिक कार्यक्रमों का प्राण है भारतीय एकता। भारत की भावात्मक एकता को दृष्टि में रखकर ही आपने केरल हिंदी साहित्य अकादमी जैसी महत्वपूर्ण संस्था की संस्थापना की है जो हिंदीतर भाषी हिंदी लेखकों को प्रेरणा-प्रोत्साहन देती है तथा हिंदी के उत्कृष्ट साहितयकारों को सम्मानित और पुरस्कृत भी करती आ रही रही है।

एक बहुचर्चित चित्रकार

हिंदी के बहुत से पाठक कदाचित नहीं जानते कि डॉ. नायर एक समर्थ चित्रकार भी हें। उन्होंने कई जलरंग और तैल चित्र बनाए हैं, जिनमें अधिकांश वहुचर्चित भी हुए हैं। प्रकृति और पुरुष, सीता-राम, गीतोपदेश, भगवान बुद्ध, विवेकानंद आदि आपके ख्याति प्राप्त चित्र हैं। डॉ. नायर के चित्रकार व्यक्तित्व में भी उनकी उदात्त लोक-मंगल की भावना उभर कर आयी है। स्वयं कलाकार होने के साथ-साथ भारतीय और पाश्चात्य चित्रकला के वे अच्छे मर्मज्ञ भी हैं। भारतीय एवं पाश्चात्य चित्रकला की वारीकियों और उसके विभिन्न पहलुओं पर आपके कई प्रमाणिक आलेख स्तरीय पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हुए हैं।

हिंदी के लब्धप्रतिष्ठ साहित्यकार

सुदूर दक्षिणी प्रदेश केरल में रहकर मातृभाषा मलयालम में ही नहीं, राष्ट्रभाषा

हिंदी में भी अपनी प्रखर प्रतिभा का प्रसार करने वाले हैं डॉ. नायर। मलयालम और हिंदी में अथक साहित्य सेवा करके एक ओर वे दक्षिण और उत्तर को जोड़ने का सराहनीय कार्य करते हैं तो दूसरी ओर तुलनात्मक अध्ययनों और अनुवादों के द्वारा विभिन्न भारतीय भाषाओं और साहित्यों को परस्पर जोड़ कर भारत को एक सूत्र में बाँधने का श्रमसाध्य कार्य संपन्न कर रहे हैं।

डॉ. नायरजी के सृजन संसार का वृत्त बहुत व्यापक एवं विशाल है। कविता, कहानी, नाटक, एकांकी, निबंध, समीक्षा आदि साहित्य की विविध विधाओं में आपने अपनी सफल लेखनी चलाई हैं। साहित्येतिहास प्रणयन तथा शोध के क्षेत्र में भी उन्होंने श्लाघनीय कार्य किए हैं। अपने व्यक्तित्व में अन्तर्लीन सांस्कृतिक चेतना को खूब प्रस्फुटित होने का अवसर इस साहितय सृजन ने उन्हें प्रदान किया हैं डा. विजयेन्द्र स्नातक ने ठीक ही लिखा है कि, श्री नायर सच्चे अर्थों में हिंदी भाषा के गौरवशाली बकील हैं, जो विवाद नहीं करते, प्रतिद्वंद्विता खड़ी नहीं करते, सीधे और सहज ढ़ंग से हिंदी की गरिमा स्थापित करते हैं। राष्ट्रीय भावात्मक एकता का पथ

प्रशस्त करते हैं। भाषाओं की दूरी को मिटाते हैं, भारतीय सांस्कृतिक एकता को सुदृढ़ बनाते हैं और दक्षिण तथा उत्तर भारत के बीच सेतु का काम करते हैं।

डॉ. नायर की समस्त कृतियाँ उनके संस्कृति प्रेम के निस्तुल निदर्शन हैं। हिंदी और मलयालम में उनके पचास ग्रंथ प्रकाशित हुए हैं, तथा 350 से अधिक रचनाएँ स्तरीय पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित भी हुई हैं। कई पत्रिकाओं व उत्कृष्ट ग्रंथों के संपादन का कार्य भी उन्होंने किया है।

ओजस्वी कवि

कवि के रूप में डॉ. नायर यशस्वी हैं। हिमालय गरज रहा है उनका ख्यातिप्राप्त खण्डकाव्य है। किसी भी हिंदीतर भाषी हिंदी साहितयकार के द्वारा विरचित यह प्रथम प्रबन्धकृति है। इसमें कवि का उज्जवल राष्ट्रप्रेम व सांसकृतिक प्रेम प्रकाशमान हो उठा हैं चीनी आकमण की पृष्ठभूमि में विरचित यह कृति अपनी ओजपूर्ण भाषाशैली के कारण विशेष आकर्षक बन पड़ी है। चिरंजीवी और अन्य कविताएँ में नायरजी की अनूठी कविताएँ संकलित हैं। भारतीय संस्कृति के उच्चादर्शों की सार्थक अभिव्यक्ति करने में उनकी कविताएँ सर्वथा सक्षम है। राष्ट्रीय गीतकार के नाम से वे जाने जाते हैं।

संस्कृति-पोषक नाटककार

हिंदी नाटक क्षेत्र को डॉ. नायर की देन अनुपम है। एक विशिष्अ सांस्कृतिक आयाम प्रदान करके आपने हिंदी नाटकों को महत्वपूर्ण भूमिका दी है। द्विवेणी, कुरुक्षेत्र जागता हे, युग संगम, सेवाश्रम, देवयानी, धर्म और अधर्म आदि आपके नाटक हिंदी सांस्कृतिक नाटक क्षेत्र की महहत्वपूर्ण उपलब्धियाँ हैं। डॉ. नायर के सांस्कृतिक चिंतन का प्रस्पष्ट रूप इन नाटकों में परिलक्षित होता हैं यही कारण है कि नायरजी की सांस्कृतिक उपलब्धियों की पहचान के लिए उनके नाटकों का सम्यक अनुशीलन नितांत अनिवार्य हो जाता है। डॉ. नायर के नाटकों में परिलक्षित भारतीयता को रेखांकित करते हुए हिंदी के मूर्धन्य समीक्षक डॉ. नत्थन सिंह ने लिखा हे-उनके सामने भारतीय आदर्शों की अभिव्यंजना का प्रश्न प्रमुख है, भारतीलयता की रक्षा की भावना अधिक प्रिय हे और साहित्य के माध्यम से लोक-मंगल-पोषक समर्थक एवं सबल मानव की प्रतिष्ठा का विचार अधिक प्रधान है.....डॉ. नायर के अंतस में भारतीय संस्कृति की गंगा प्रवाहित होती है। ये भारतीय पहले हैं और अन्य कुछ बाद में।

मानवीय आदर्शों के कहानीकार

हार की जीत, प्रोफेसर और रसोइया आदि डॉ. नायर के विशिष्ट कहानी संग्रह हैं। इन संग्रहों की अधिकांश कहानियों के कथ्य का सीधा सरोकार भी भारतीय संस्कृति तथा मानवीय आदर्शों की प्रतिष्ठापना से है।

मनीषी निबन्धकार

उनके निबन्ध संकलनों और समीक्ष ग्रंथों (जिनकी सूची काफी लंबी है) में भी भारतीय संस्कृति के स्वादर्शों की महिमा का गायन यत्र-तत्र-सर्वत्र हुआ है। भारतीय साहित्य, भारतीय साहित्य और कलाएं जैसे शीर्षक ही इस तयि के प्रस्पष्ट प्रमाण प्रस्तुत करते हैं।

डॉ. नायर का बहुचर्चित शोध प्रबंध हिंदी और मलयालम के दो सिंबोलिक (प्रतीकवादी) कवि उत्तर और दक्षिण के दो महान कवियों की कविताओं के साम्य-वैषम्य के रेखांकन के साथ-साथ वैविध्य में एकत्व को संजोनेवाली भारतीय संस्कृति की अस्मिता का उद्घोषक भी है। कविवर पंत जी का यह कथन है कि -वस्तुत: एक दाक्षिणात्य विद्वान के द्वारा रचित यह ग्रंथ हिंदी साहितय के लिए ही नहीं, अपितु समस्त भारतीय साहितय के लिए एक विशिष्ट देन है।

महात्मा गाँधी, महर्षि विद्याधिराज जैसे जीवनी ग्रंथों के मूल में भी लेखक का संस्कृति-प्रेम ही कार्य करता दिखाई देता है।

समग्रत: विचार करने पर ज्ञात होगा कि डॉ.एन. चन्द्रशेखरन नायर जी की सृजनधर्मिता की अन्तसलिला के रूप में प्रवाहमान भारतीय संस्कृति की उदात्त चेतना नायर जी की रचना धर्मिता को एक नूतन आयाम देने में सर्वथा सक्षम निकली है तथा नायरजी के साहित्य को राष्ट्रीय स्तर पर पुरस्कृत एवं सम्मानित करने में भी समर्थ रही हे। राष्ट्रीय और राज्य स्तरीय कई पुरस्कारों से वे सम्मानित हैं, कई मानद उपाधियों से भी विभूषित हुए है। नायरजी की रचना धर्मिता में परिलक्षित भारतीयता और सांस्कृतिक परिचिंतन इतना चर्चित हुआ है कि उनकी रचनाओं पर शोध कार्य करके डॉ. गोपालजी भटनागर ने रीवाँ विश्वविद्यालय से पी. एच.डी की उपाधि प्राप्त की हैं हिंदी के लब्ध प्रतिष्ठ समीक्षक डॉ. नत्थन सिंहह ने कुछ समय पूर्व ही भारतीयता के संरक्षक साहित्यकार : डॉ.एन.चन्द्रशेखरन नायर शीर्षक उत्कृष्ट शोध प्रबन्ध की रचना की है। उस यशस्वी सारस्वत साधक के नाम पर दिल्ली से एक प्रौढ़ अभिनंदन ग्रंथ भी समर्पित हुआ हैं समकालीन भारतीय नाट्य साहितय शीर्षक संदर्भ ग्रंथ का समर्पण करे उनके हितैषियों ने उनके प्रति आदर प्रकट किया है। भारत सरकार के कई मंत्रालयों की सलाहकार समितियों के वे सदस्य रहे हैं, तथा विश्वविद्यालय अनुदान आयोग का समेरिटस प्रोफेसर का विशिष्ट पद भी उन्हें प्राप्त हुआ है। तृतीय विश्व हिंदी सम्मेलन में वे समादृत हुए हैं। उनकी कई रचनाएँ केरल तथा उत्तर भारत के विश्वविद्यालयों के पाठ्यक्रमों में संलग्न हैं। 1994 में ऐसे संस्कृतिक प्रेमी रचनाधर्मी कलाकार का सप्तति समारोह धूमधाम से मनाने और उन्हें हिंदी और मलयालम में प्रौढ़ अभिनंदन ग्रंथ समर्पित करने के सारस्वत प्रयास में उनके शुभेच्छु मित्र एवं शिष्यगण लगे हुए हैं। यही कामना है कि ऐसे प्रतिभा-धनी कर्मठ कलाकार स्वस्थ, सानंद और दीर्घायु रहें और भावी पीढ़ियों का पथ प्रदर्शन करते रहें।

संपर्क: अध्यक्षा, हिंदी विभाग,
केरल विश्वविद्यालय

राष्ट्रीय अधिवेशन

"विदेशी माटी में पल्लवित और पुष्पित हिंदी"

○ डॉ० एन. एस. शर्मा

बेल्जियम में जन्में फ़ादर कामिल बुल्के संस्कृत-हिंदी सीख भारत में बसकर पक्के भारतीय बन गए थे और रामायण के प्रकांड विद्वान थे। वे कहते थे कि 'संस्कृत माँ, हिंदी गृहिणी और अँग्रेजी नौकरानी है। अमेरिका के प्रो. माइकेल सी. शेपिरो के अनुसार 'दुनिया भर के साहित्य के संदर्भ में हिंदी-साहित्य की विविधता और प्रचुरता का महत्त्व बढ़ गया है।' इंग्लैंड के विद्वान् डॉ.आर.एस. मेक-ग्रेगर तो यहाँ तक कहते हैं कि 'विदेशी विद्यार्थी यह जानकर प्राय: आश्चर्यचकित रह जाता है कि आज हिंदी-साहित्य आबदार चमकीले जवाहरातों से ठूँस-ठूँसकर भरा एक ऐसा ख़ज़ाना है जो निरंतर बढ़ रहा है। हिंदी के बारे में 1655 ई. में एक अँग्रेज़ यात्री ने भ्रमण के बाद लिखा था "तीर्थ-स्थानों में, पर्यटन-केंद्रों में, 'व्यापारिक मंडियों में, साधु-संतों में, सार्वजनिक उत्सवों में, कवि-पंडितों में, राज-दरबारों में आदान-प्रदान की भाषा हिंदी रही है। बंगाल से लेकर काबुल तक और श्रीनगर से लेकर कोलंबो तक आम बोल-चाल की भाषा के रूप में हिंदी फैली है। हिंदी का यह फैलाव-स्वयंभू है।" अँग्रेज़ी, जिसे कुछ लोग भ्रम-वश विश्व-भाषा समझे बैठे हैं, ऐसा श्रेय पाने की कल्पना भी नहीं कर सकती, क्योंकि वह ऐसी जड़, दुराग्रही, अवैज्ञानिक, अविकसित और अटपटी भाषा है जिसके दोष सदा से ही बड़े-बड़े विद्वानों को चिंतित और परेशान करते हैं। आर्थर मैक-डोनल के अनुसार भी 'यूरोपीय लोग 2500 वर्ष बाद इस वैज्ञानिक युग में भी वही वर्ण-माला प्रयोग कर रहे हैं जो हमारी भाषा की सभी ध्वनियों को व्यक्त करने में भी अक्षम है, अभी तक हम उसी अव्यवस्थित वर्ण-क्रम से चिपके हुए हैं, जो यूनान के आदिवासियों ने 3000 साल पूर्व अपनाई थी। इसी प्रकार सर आर्थर विलियम जोन्स भी कहते हैं अँग्रेज़ी वर्णमाला और वर्तनी ऐसी बुरी तरह अधकचरी है कि प्राय: अत्यंत हास्यास्पद तक हो जाती है'। रिचर्ड लैडरर महोदय ने तो झल्लाकर "क्रेजी इंग्लिश' अर्थात् 'पागलपन की भाषा अँग्रेज़ी' नामक एक ग्रंथ ही लिख डाला।

अब भी इस भाषा के सुधार के न कोई लक्षण हैं न प्रयास ही। इसलिए यह न तो विश्व-भाषा है, न होने-योग्य ही है। अनेक राष्ट्रों में, जहाँ यह साम्राज्यवादी व्यवस्था में लादी गई थी, इसके प्रति चाह ही नहीं है। कहीं-कहीं इसके प्रति घृणा अवश्य है चीन, जापान, रूस, फ्रांस, जर्मनी, नार्वे, स्वीडन, इटली आदि, यहाँ तक कि ग्रेट ब्रिटेन के ही एक द्वीप आयरलैंड की भी, सबकी अपनी-अपनी भाषाएँ हैं, कोई अँग्रेजी पर निर्भर नहीं है। भारत के 32,87,262 वर्ग किलोमीटर क्षेत्र की राजभाषा हिंदी 22 प्रादेशिक भाषाओं के साथ सौहार्दपूर्ण संबंध बनाए हुए है, जबकि लगभग उतने ही (3,27,417 वर्ग किमी) क्षेत्र में बसे पश्चिमी यूरोप के 20 देशों में 22 भाषाएँ (पुर्तगाली, स्पेनिश, फ्रांसीसी, डच, जर्मन, जेक, स्लोवाक, इटैलियन, रोमन, हंगेरियन, मगयार, पोलिश, बल्गेरियाई, नवीन, यूनानी, डेनिश, लटवियन, लियुआनियन, अल्बैनियन, इस्टोनियन, सर्बो, क्रोशियन और मैसीडोनियन हैं जो परस्पर मिलने-जुलने से कतराती हैं। संस्कृत संसार की श्रेष्ठतम और पूर्णतया संस्कारित भाषा है। पाणिनि-सरीखे विद्वानों ने इसका व्याकरण रचा जो इतना गहन और विस्तृत, वैज्ञानिक और व्यवस्थित, ध्वन्यात्मक और सर्वांग-संपूर्ण है कि इसका पूरा-पूरा ज्ञान प्राप्त करने के लिए डॉक्टरेट स्तर तक का अध्ययन आवश्यक होता है, जबकि किसी भी अन्य भाषा के व्याकरण का ज्ञान कक्षा 10-12 तक की पढ़ाई में ही पूरा हो जाता है।

भारत के बाहर नेपाल की राष्ट्र-लिपि नागरी है : भूटान की भीटी लिपि (तिब्बती) का नागरी से भगिनी संबंध है। पाकिस्तानी की पंजाबी, बलूची और सिंधी भाषाओं को प्रकट करने की पूरी क्षमता नागरी में है। इस प्रकार सार्क-देशों के विद्वान यदि नागरी को अपनी एक साझी लिपि बनाएँ तो कोई आश्चर्य नहीं है। नागरी के बारे में आचार्य विनोबा भावे कहते हैं कि यह भारत और दुनिया को जोड़ेगी। चीनी और जापानी भाषाएँ रोमन में लिखना संभव नहीं है, उनके लिए नागरी लिपि अच्छी है। क्योंकि नागरी में सभी ध्वनियाँ साफ-साफ बिना किसी भ्रम या भुलावे के लिखी और पढ़ी जा सकती हैं, इसलिए संसार की अन्य सभी भाषाओं के लिए भी यह अत्यंत उपयुक्त लिपि है। आज हिंदी का भूमंडलीकरण हो गया है। भारत इस इक्सीसवीं सदी में एशिया की महाशक्ति बनेगा। जिस तीव्र गति से स्वतंत्रता के बाद विज्ञान, व्यापार तथा विविध क्षेत्रों में भारत ने विकास किया है उससे विविध विदेशी शक्तियाँ भारत में रुचि ले रही हैं। बहुराष्ट्रीय कंपनियों का व्यापार के लिए बड़े पैमाने पर भारत में पूँजी निवेश, भारतीयों की विश्व के विविध देशों में पद-प्रतिष्ठा तथा विज्ञान व सामाजिक ज्ञान के क्षेत्र में निरंतर बनती-बढ़ती सम्मानजनक स्थिति से विश्व पटल पर भारत एक नव संसाधन संपन्न शक्तिशाली महादेश के रूप में उभरा है। भारत यों तो चिर काल से कला, विज्ञान तथा अनेक क्षेत्रों में संपन्न होने के कारण विदेशियों ने पर्याप्त रुचि भी ली है, किंतु इधर पिछले पाँच दशकों में भारत के प्रति

विदेशियों की रूचि में अभूतपूर्व वृद्धि हुई है। आज विदेशी बहुराष्ट्रीय उपभोक्ता सामग्री उत्पादक कंपनियाँ भी हिंदी के महत्त्व को समझते हुए अपने विज्ञापन में तो हिंदी का प्रयोग बड़े पैमाने पर करती ही है, हिंदी का ज्ञान अँग्रेजी की तुलना में अधिक आवश्यक मानती हैं। आज देश में किसी भी भाषा का साहित्यकार अपनी रचना को हिंदी भाषा में प्रकाशित देखना चाहता है।

अँग्रेजी संसार के मात्र पाँच देशों की भाषा है। इंग्लैंड में अँग्रेजी के साथ-साथ वेल्स, स्काटिश भाषा-भाषी भी पर्याप्त है। कनाडा के समानांतर फ्रेंच भाषा भी चलती है। अमरीका में सर्वत्र अँग्रेज़ी का ही में अँग्रेज़ी वर्चस्व है, यह धारणा भी व्यर्थ है। यहां स्पेनिश भाषियों की संख्या भी करोड़ों में है। जिन देशों में हिंदी बोली जाती है तथा जहाँ हिंदी का अध्ययन अध्यापन होता है उन देशों को हम तीन वर्गों में विभक्त कर सकते हैं:

(क) वे देश जहाँ अप्रवासी भारतीय बहुत बड़ी संख्या में रहते हैं: मारीशस, फीजी, सूरीनामा, गयाना, ट्रिनीडाड

(ख) भारत के पड़ोसी देश: पाकिस्तान, बंगलादेश, श्रीलंका, नेपाल, भुटान, म्यांमार (बर्मा) आदि।

(ग) अन्य देश:

अमेरिका महाद्वीप - संयुक्त राज्य अमेरिका, कनाडा, मैक्सिको, क्यूबा

यूरोप महाद्वीप- रूस, ब्रिटेन (इंगलैण्ड), जर्मनी, फ्रांस, बेल्जियम, हालैण्ड (नीदरलैंड), आस्ट्रिया, स्टिज़रलैण्ड, डेनमार्क, नार्वे, स्वीडन, फिनलैंड, इटली, पोलैंड, चेक, हंगर, रोमानिया, बुल्गारिया, उक्रैन, क्रोशिया

अफ्रीका महाद्वीप- दक्षिण अफ्रीका, री-यूनियन द्वीप

एशिया महाद्वीप- चीन, जापान, दक्षिण कोरियाद्व मंगोलिया, उजबेकिस्तान, ताजिकिस्तान, तुर्की, थाईलैंड

आस्ट्रेलिया महाद्वीप- ऑस्ट्रेलिया

इन 46 देशों के अतिरिक्त कुछ देशों में भारत, पाकिस्तान, बंगलादेश, नेपाल, भूटान आदि देशों के नागरिक काफी बड़ी संख्या में नौकरी, व्यापार, उद्योग आदि में कार्यरत हैं। इनके बीच बोलचाल की हिंदी-उर्दू का व्यवहार होता है। हिंदी के गाने, ग़ज़लें, भजन तथा हिंदी फिल्में यहाँ बहुत लोकप्रिय हैं। इन देशों में निम्नलिखित देश उल्लेखनीय हैं : अर्जेन्टीना, इराक, ईरान, इंडोनेशिया, फिलिपीन्स, बहरीन, बोत्स्वाना, मलेशिया, यमन, लेबनान, सऊदी अरब, सिंगापुर आदि।

भारतीय मूल के प्रवासी फीजी, मॉरिशस, सूरीनाम, त्रिनिदाद, गुयाना तथा दक्षिण अफ्रीका में बसे हुए हैं। ये भारतीय आपस में हिंदी का ही प्रयोग करते हैं तथा हिंदी को अपनी अस्मिता से जुड़ा हुआ मानते हैं। इनके अतिरिक्त भारत के पड़ोसी देशों जैसे-नेपाल, भूटान, पाकिस्तान, अफगानिस्तान और श्रीलंका में भी हिंदी बोलने और समझने वाले भारतीयों की संख्या बहुत है। आजीविका अथवा व्यापार आदि के लिए भारतीय लोग अमरीका, कनाडा, जर्मनी, इंग्लैंड, अफ्रीका तथा खाड़ी के देशों में गए और वहीं बस गए। इन सभी देशों में बसे भारतीय यद्यपि भारत के विभिन्न भागों से गये थे, किंतु सबकी संपर्क भाषा हिंदी ही बनी, क्योंकि संख्या की दृष्टि से हिंदी प्रदेश के ही व्यक्ति सबसे अधिक थे। प्रवासी भारतीयों के अतिरिक्त विदेशी मूल के भी कितने ही लोग हिंदी भाषा बोलते, समझते हैं तथा भारतीयों के साथ संपर्क-भाषा के रूप में हिंदी का प्रयोग भी करते हैं। पाकिस्तान में सभी उर्दू भाषी हिंदी बोलते और समझते हैं, फीजी तथा मारिशस में तो हिंदी सभी जानते हैं, मूल निवासी भी हिंदी का प्रयोग करते हैं।

सूरीनाम में हिंदी देवनागरी लिपि के साथ-साथ रोपन लिपि में भी लिखी जा रही है जिसे 'सरनामी हिंदी कहा जाता है। इण्डोनेशिया की भाषा के 18 प्रतिशत से अधिक शब्द संस्कृत एवं हिंदी के हैं। वहाँ की तीनों सेनाओं का जो समाचार-पत्र प्रकाशित हो रहा है उसका नाम 'त्रिशक्ति' है।

विदेशों के लगभग 165 विश्वविद्यालयों में हिंदी की व्यवस्था है। संपूर्ण पश्चिमी दुनिया में हिंदी के प्रचार-प्रसार में विश्वविद्यालयों का उल्लेखनीय योगदान है। यूरोप, अमेरिका, आस्ट्रेलिया का शायद ही कोई स्तरीय विश्वविद्यालय हो जहाँ हिंदी के पठन-पाठन की सुचिंतित व्यवस्था न हो। जर्मनी के 17 विश्वविद्यालयों में आज हिंदी के स्वतंत्र विभाग है। जर्मनी का रेडियो कोलोन संसार का एकमात्र केंद्र है जहाँ से संस्कृत में समाचार ही नहीं, अपितु प्रति सप्ताह नियमित रूप से शोधपूर्ण आलेख भी प्रसारित किए जाते हैं।

गत पचास वर्षों में हिंदी की शब्द-संपदा का जितना विस्तार हुआ है, उतना विश्व की शायद ही किसी भाषा में हुआ हो। अँग्रेजी जिसे महत्त्वपूर्ण अंतरराष्ट्रीय भाषा का गौरव प्राप्त है, उसके मूल शब्द जहाँ मात्र 10 हजार हैं, वहाँ हिंदी के दो लाख पचास हजार से भी अधिक शब्द हैं। हिंदी प्रचार की दृष्टि से फिजी, मारिशस, त्रिनीडाड स्थित हमारे दूतावासों में राजभाषा अधिकारी एवं अतासे नियुक्त किए जाते हैं और हिंदी के प्रचार-प्रसार में इनका योगदान उपयोगी सिद्ध हुआ है। इन अधिकारियों की सहायता से वहाँ हिंदी पाठ्यक्रम के निर्माण और टेलीविजन के प्रसारण में मानस चतु:शती जैसे अवसरों पार सांस्कृतिक आयोजन किया जाता है प्रसिद्ध संस्थाओं द्वारा संचालित परीक्षाओं के आयोजनों में भी विदेश स्थित ये अधिकारी संस्थाओं को यथासंभव सहायता प्रदान करते हैं। इस संदर्भ में यह उल्लेखनीय है कि अकेले मारिशस में हजारों व्यक्ति हिंदी साहित्य सम्मेलन की विभिन्न परीक्षाओं में भाग लेते हैं। परीक्षाओं के संचालन में विदेश मंत्रालय

और विदेश स्थित हमारे दूतावास सार्थक सूत्र का कार्य करते हैं। भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद की हिंदी और भारतीय भाषाओं के पठन-पाठन को प्रोत्साहित करने की दृष्टि से बुखारेस्ट, त्रिनीडाड, सूरीनाम, गयाना में भी हिंदी अध्यापन की व्यवस्था है। विदेश मंत्रालय भारतीय दूतावासों में हिंदी की श्रेष्ठ पुस्तकें भेजता है। भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद् हिंदी की त्रैमासिक पत्रिका गगनांचल को भी संपूर्ण विश्व में भारतीय दूतावासों में भेजती हैं आस्ट्रेलिया के निकट, एक छोटा-सा द्वीप फिजी है जहाँ हिंदी को हमेशा प्रतिष्ठा मिली है और अनेक पत्र-पत्रिकाएँ वहाँ से प्रकाशित होती हैं। वहाँ के बाज़ारों में दुकानों पर नामपट्ट अँग्रेज़ी के साथ-साथ हिंदी में भी लिखे रहते हैं। सड़कों के नाम भी दो भाषाओं में हैं। वहाँ की सरकार द्वारा भी हिंदी को मान्यता मिली हैं सन् 1916 में भारतीयों ने वहाँ अपनी पहली पाठशाला स्थापित की थी जिसे आज तक गौरवपूर्ण स्थान प्राप्त है। वहाँ हिंदी शिक्षण का कार्य एक धार्मिक अनुष्ठान की तरह चलता आ रहा है। फ्रेंच, गुयाना में भी आर्य समाज द्वारा स्थापित पाठशालाएँ तथा अन्य धार्मिक/सांस्कृतिक संस्थान हिंदी जानने वालों की एक नई पौध तैयार कर रहे हैं दक्षिण अफ्रीका में छोटे-छोटे 365 द्वीपों को मिलाकर बने गुयाना में 50 प्रतिशत से भी अधिक भारतीय मूल के लोग रहते हैं। यहाँ भारतीय तीज-त्योहार हैं। श्रीरामचरितमानस और गीता यहाँ के भी समादृत धर्म-ग्रंथ हैं। यहाँ के रेडियो एवं टेलीविजन पर हिंदी-गीतों के कार्यक्रम होते हैं तथा सिनेमा घरों में हिंदी-फिल्में निरंतर प्रदर्शित की जाती हैं। गुयाना की तरह सूरीनाम के कई भागों में भी हिंदी के प्रति लोगों का बहुत आदर है। रोज़ी-रोटी की तलाश में लगभग एक शताब्दी पूर्व भारतीय अप्रवासी यहाँ पहुँचे थे। वे अपने साथ अपनी भाषा, अपनी बोली और अपने संस्कार ले जाना नहीं भूले थे।

भारत से बाहर 165 विश्वविद्यालयों में हिंदी के अध्ययन-अध्यापन की व्यवस्था है और विदेशों का युवा वर्ग भारतीय संस्कृति एवं हिंदी को पढ़ने में रुचि लेता है। अमरीका के अनेक विश्वविद्यालयों, जैसे केलिफोर्निया, शिकागो, टेक्सास, कोलंबिया आदि में हिंदी के अध्ययन-अध्यापन की व्यवस्था है। अमरीका के अनेक विश्वविद्यालयों में भारतीय संस्कृति, संगीत, भाषा विज्ञान और हिंदी साहित्य में रुचि दिखाई देती है और उसमें उत्तरोत्तर वृद्धि हो रही है। लंदन विश्वविद्यालय का 'स्कूल ऑफ आरिएंटल एंड अफ्रीकन स्टडीज़' ऐसी अत्यंत प्राचीन संस्था है जहाँ हिंदी के अध्यापन की व्यवस्था है। भारतीयों के संपर्क में आने के कारण वहाँ रह रहे अफ्रीकी मूल के लोगों ने अनेक हिंदी शब्दों को आत्मसात कर लिया है और यहाँ हिंदी अनिवार्य विषय के रूप में पढ़ाई जाती है। जापान के टोकियों विश्व-विद्यालय में विद्यार्थियों के लिए हिंदी विषय लेने का प्रावधान है। इसी तरह ओसाका विश्वविद्यालय में भी हिंदी एक विभाग के रूप में प्रतिष्ठित है। विश्वविद्यालयों के अतिरिक्त हिंदी के विकास में रेड़ियो जापान का भी महत्त्वपूर्ण योगदान है। यहाँ से नियमित रूप से हिंदी प्रसारण होता है। जापान में 8 विश्वविद्यालय एवं संस्थान हिंदी की पढ़ाई में जुटे हैं। जापान में हिंदी का शिक्षण सर्वप्रथम लगभग साठ साल पूर्व टोक्यो विश्वविद्यालय में प्रो. वायाओ दोई ने आरंभ किया था। उन्होंने प्रयाग विश्वविद्यालय से एम.ए. ही नहीं पी-एच.डी. की उपाधि प्राप्त की थी। उन्होंने प्रेमचंद के उपन्यास 'गोदान' का मूल हिंदी से जापानी में अनुवाद किया था। जापान में आकाशवाणी से नियमित रूप से हिंदी में समाचार ही नहीं अन्य साहित्यिक-सांस्कृतिक कार्यक्रम प्रसारित होते हैं। लगभग 20 वर्षों से जापान में 'सर्वोदय' एवं ''जापान भारती'' नामक पत्रिकाएँ प्रकाशित हो रही हैं। कोरिया स्थित विदेशी भाषाओं के विश्वविद्यालय हाकुक में हिंदी के अध्ययन-अध्यापन का कार्य भी होता है। यहाँ स्नातकोत्तर तक हिंदी शिक्षण की व्यवस्था है। हिंदी की अनेक कृतियों का कोरियाई भाषा में अनुवाद का कार्य भी चल रहा है।

लगभग सत्तर साल पहले बीजिंग विश्वविद्यालय में भारतीय भाषाओं को पढ़ाने के लिए एक विभाग खुला था। प्रो० ची-श्येन पहले व्यक्ति थे, जिन्होंने आधुनिक चीन में भारतविद्या का श्रीगणेश किया था। प्रो० च-श्येन विश्व में संस्कृत के अग्रणी विद्वान हैं। जर्मनी के गौटिगन विश्वविद्यालय में उन्होंने संस्कृत का अध्ययन किया था। चीन लौटकर उन्होंने संस्कृत विभाग ही नहीं खोला, बल्कि वाल्मीकी रामायण का चीनी में पद्यबद्ध अनुवाद भी किया था। भारतीय भाषा विभाग में हिंदी के पाठ्यक्रम को विधिवत आरंभ करने का श्रेय प्रो० चिन्टिन-हान, प्रो. ल्यू को नान आदि को दिया जाता हैं प्रो. चिन्टिन-हान द्वारा चीनी में अनूदित पहली पुस्तक थी, मुंशी प्रेमचन्द की कृति 'निर्मला'। लगभग सात वर्षों के अथक परिश्रम के बाद उन्होंने रामचरित मानस का पद्यबद्ध अनुवाद चीनी में प्रकाशित किया था। अपने कर्मठ जीवन के 32 वर्षों में प्रो. चिन्टिन-हान ने लगभग 620 छात्रों को हिंदी का ज्ञान कराया था। विश्व कवि रवीन्द्रनाथ टैगोर की सत्तर पुस्तकों के अनुवाद चीनी भाषा में प्रकाशित हुए। 'चित्रलेखा', 'मैला आंचल' जैसी अनेक कालजयी कृतियों के अनुवाद चीनी पाठकों तक पहुँच चुके हैं। पेइचिंग रेडयो प्रतिदिन हिंदी के अनेक कार्यक्रम प्रस्तुत कर रहा है। वहाँ गत तीन वर्षों से ''सचित्र चीन'' का हिंदी संस्करण निरंतर प्रकाशित हो रहा है। चीनी लोग इस सत्य को आज भी स्वीकार करते हैं कि चीनी भाषा के निर्माण में पाणिनी के व्याकरण का विशेष योगदान है। अनेक अंतर्विरोधों के बावजूद चीन

आज भी भारतमय लगता है। चीन की ऐतिहासिक दीवार की स्वागत शिला पर ''ओम नमो भगवते'' आज भी दर्शकों को आकृष्ट करता है। बर्मा में भारतवासियों का हिंदी के प्रति लगाव कम नहीं है। मांडले चोगला में हिंदी साहित्य सम्मेलन की शाखाएँ हैं। अनेक स्थानों पर राष्ट्रभाषा प्रचार समिति की परीक्षाए आयोजित हो रही है। श्रीलंका के तीनों विश्वविद्यालय में उच्च स्तर परी हिंदी पढ़ाने की व्यवस्था है। पाकिस्तान में पंजाब विश्वविद्यालय के साथ-साथ कराची विश्वविद्यालय में भी हिन्दी पढाई जाती है। हिंदी उर्दू में बहुत अंतर न होने के कारण, अनेक अवरोधों के पश्चात भी हिन्दी-उर्दू मिश्रित हिंदुस्तानी वहाँ खूब बोली जा रही है। पाकिस्तान के ''लोक सेवा आयोग'' की परीक्षाओं में हिन्दी वैकल्पिक विषय है। यहाँ के कई शायर अपनी नज्मों में हिंदी का प्रयोग करते है। यूरोप और आस्ट्रेलिया का शायद ही कोई स्तरीय विश्वविद्यालय हो जहां आज हिंदी के पठन-पाठन की समुचित व्यवस्था न हो।

स्वीडन के स्टाकहोम विश्वविद्यालय में भारतीय विद्या का एक अलग समृद्ध विभाग है। जिसमें संस्कृत, तामिल, बांग्ला तथा हिंदी साथ-साथ पढ़ाई जा रही हैं। यूगोस्लाविया के जाग्रेत तथा बेल्ग्रेड विश्वविद्यालयों में गत 25 वर्षों से हिंदी अध्यापन का कार्य चल रहा है। बुल्गारिया-हंगरी में हिंदी का कार्य और भी व्यापक स्तर पर है। रोमानिया के बुखारेस्ट विश्वविद्यालय में भी हिंदी का एक स्वतंत्र विभाग है, जहां स्नातक स्तर के पाठ्यक्रम हैं। फ्रांस के सौवन विश्वविद्यालय में पिछले अनेक वर्षों से हिंदी पढ़ाई जा रही है। 'गोदान', 'मैला आंचल', 'त्यागपत्र' आदि कृतियों के फ्रांसीसी भाषा में अनुवाद भी छपे हैं। क्षेत्रफल एवं जनसंख्या की दृष्टि से बेल्जियम छोटा-सा देश है, परंतु गत 35 वर्षों से वहाँ के वेंट, ल्यूवेन और ल्येम विश्वविद्यालयों में हिंदी के अध्ययन की व्यवस्था है। इटली का भारतीय साहित्य एवं दर्शन के प्रति विशेष आकर्षन रहा है। वहां के नेपल्स तथा वेनिस विश्वविद्यालयों के हिंदी विभागों में अनेक इटालियन छात्र हिन्दी के अध्ययन में रत हैं। इंग्लैण्ड में अँग्रेजी के पश्चात जो भाषा सबसे अधिक बोली जा रही है वह हिंदी ही है।

सन् 1600 में कोलम्बस भारत की खोज में निकला था और यहाँ के रैड इंडियन को देखकर वह इसे ही भारत समझ बैठा। बाद में मालूम हुआ कि भारत नहीं, बल्कि कोई अन्य महाद्वीप है। जब इंग्लैण्ड ने इसको अपना राज्य बना लिया तो उन्होंने रैड इंडियन को मार भगाया और स्वयं बस गए। रैड इंडियन यदि अकेरिका में दिखाई देते हैं, तो इटालियन भी हैं, जापानी, चीनी व एशियन ग्रुप के भी। अकेले न्यूयार्क में ही लगभग डेढ़ लाख भारतीय हैं। भारतीय लोग जहाँ कहीं भी मिल जाते हैं वे हिंदी का ही प्रयोग करते है। न्यूयार्क में तो 74 नं. स्ट्रीट पर भारतीयों की ही दुकानें हैं वहाँ पर देखने से ऐसा लगता है कि यह मिनी भारत ही है। न्यूयार्क में एक पत्रकार, कवि, लेखक श्री रामेश्वर अशांत जी ने वर्ष 1975 में एक विश्व हिन्दी समिति की नींव डाली।

समिति त्रैमासिक पत्रिका ''सौरभ'' का प्रकाशन हिंदी में करती है। इसके साथ ही वहाँ के निवासी हिंदी लेखकों की पुस्तकें भी समिति द्वारा प्रकाशित की गई हैं। इसमें डॉ विजय रामेश्वर अशांत का ''यशोधर्मन'' उपन्यास है। भारत की ही भाँति वहाँ हिंदी सप्ताह का शुभारम्भ भी 5 सितंबर से कवि सम्मेलन से हुआ। कवि सम्मेलन में भारतीय परिवार भारी संख्या में उपस्थित थे। सम्मेलन की समाप्ति भी ''वंदे मातरम'' गीत के साथ की गई।

समय-समय पर हिंदी भजनों का भी कार्यक्रम होता है। इसी प्रकार एक कार्यक्रम पश्चिमी वर्जिनिया के ''हरे राम हरे कृष्ण'' मंदिर में समिति द्वारा किया गया। न्यूयार्क से ही एक अन्य हिंदी की सप्ताहिक पत्रिका ''नारद समाचार'' भी प्रकाशित होती है। अमेरिका में आज से 16 वर्ष पूर्व ही हिंदी समाचार पत्र प्रकाशित होने आरंभ हो गए थे। विश्व विश्वविद्यालयों में भी भारतीय बच्चों ने अपनी संस्कृति एवं अपनी भाषा के प्रसार के लिए एशोसिएशन बनाई हुई है। एसोसिएशन हारबर्ड एसोसिएशन द्वारा अपने सांस्कृतिक कार्यक्रमों में हिंदी के फिल्मी गानों, हिंदी ग़ज़लों, भजनों के माध्यम से हिंदी का बहुत प्रचार होता है। संयुक्त राज्य अमेरिका के 28 विश्वविद्यालय तथा अनेक स्वंयसेवी संस्थाएँ हिंदी के प्रति पूर्ण समर्पित भाव से कार्य कर रही हैं। संस्कृत का अध्यापन वहाँ सन् 1815 से आरंभ हो गया था, 1875 में अमरीका में हिंदी व्याकरण तैयार किया गया जो आज भी अपनी उपयोगिता बनाए हुए है। पिछले वर्षों में मैक्सिको तथा अनेक लातिनी देशों में हिंदी का विस्तार हुआ है। क्यूबा, वेनेजुएला कोलंबिया, पेरू, अर्जेंटीना, चिली आदि इसके जीवंत उदाहरण हैं।

जर्मनी में संस्कृत तथा भारतीय भाषाओं के प्रति सदा ही आदर का भाव रहा है। संस्कृत वहाँ डेढ़ सौ सालों से विधिवत् पढ़ाई जा रही है। जर्मनी के 17 विश्वविद्यालयों में आज हिंदी के स्वतंत्र विभाग है। जर्मनी का रेडियो-कोलोन संसार का एक मात्र केंद्र है, जहाँ से संस्कृत समाचार ही नहीं, संस्कृत में शोध-पूर्ण आलेख भी प्रसारित किए जाते हैं। डेनमार्क, स्विटजरलैंड, आस्ट्रिया, यूरोप के प्राय: सभी देशों में अनेक माध्यमों से हिंदी पढ़ाई जा रही है। सोवियत संघ के अतिरिक्त मंगोलिया, रोमानिया, आस्ट्रिया, पोलैण्ड आदि पूर्वी यूरोपीय देशों के छात्र उच्च हिंदी शिक्षा के लिए लेनिनग्राद अथवा मास्को विश्वविद्यालय में आते थे। हिंदी का रूसी में जितना अनुवाद प्रकाशित हुआ, उतना शायद ही संसार की किसी भाषा में हुआ

है। मध्य एशियाई देशों से भारत का व्यापार बढ़ रहा है। इससे आशा बंधती है कि हिंदी शिक्षण का कार्य भी अब उन देशों में कुछ तीव्र गति से होगा। कनाडा में भारतीय अप्रवासी कुछ कम संख्या में नहीं हैं। पंजाब से गए लोग पंजाबी के साथ-साथ हिंदी का भी प्रयोग करते हैं। वहाँ से हिंदी में दो स्थानीय समाचार पत्र प्रकाशित होते हैं। वेंकुवर ओरंटो विंडसर विश्वविद्यालयों में हिंदी विभाग हैं। टोरेंटो में आधुनिक ही नहीं मध्यकालीन हिंदी साहित्य वर्षों से पढ़ाया जाता है।

फिजी, मारीशस, केनिया, युगांडा या मध्यपूर्व देशों में तो हिंदी चलचित्र खूब देखे जाते हैं, क्योंकि यहाँ भारतीय मूल के लोग रहते हैं। आस्ट्रेलिया, थाइलैंड, हाँगकाँग, मलेशिया में हिंदी फिल्मों का अच्छा बाज़ार है। सुप्रसिद्ध रूसी विद्वान डॉ० प०अ० वारानिकोव आजकल रूसी भाषा में हिंदी फिल्मों पर समाचार पत्र निकाल रहे हैं। सोवियत संघ के विघटन के पश्चात बहुत कुछ बदल गया है, परंतु हिंदी फ़िल्मों के लिए लगाव अभी तक बना हुआ है। इंग्लैंड के बी०बी०सी० दूरदर्शन पर महाभारत इतना लोकप्रिय हुआ कि भारतीय ही नहीं स्वयं ब्रिटेन के तरूणवृद्ध भी अतीत के भारत की इस शौर्य गाथा पर गुग्ध हो गए। सूरीनाम के दूरदर्शन पर दो बार इसका प्रदर्शन हुआ। जापानी दर्शकों ने इस धारावाहिक के संवादों को जोड़-जोड़ कर जापानी में महाभारत की अलग पुस्तक तैयार कर दी, जो बहुत लोकप्रिय हुई। तुर्की, इराक, सउदी अरब, मिस्र, लीबिया, अल्जीरिया आदि इस्लामी देशों का भी हिन्दी फिल्मों के प्रति विशेष लगाव रहा। इंग्लैंड, कनाडा, अमरीका, नार्वे, स्वीडन, डेनमार्क, मारीशस, फीजी, त्रिनीडाड, मलेशिया, सिंगापुर, हांगकांग, जहाँ-जहाँ भारतीय, पाकिस्तानी, बंगलादेशी या नेपाली मूल के लोग रहते हैं, वहाँ के बाजार हिंदी फिल्मों के कैसेटों से भरे पड़े होते हैं। नार्वे, स्वीडन, जापान, रूस, अमरीका, ब्रिटेन, कनाडा आदि अनेक देशों में आज अनेक हिंदी पत्र-पत्रिकाएँ प्रकाशित हो रही हैं। दूर संचार माध्यमों, फिल्मों, गीतों आदि ने भी हिंदी के प्रचार-प्रसार में अपनी अहम् भूमिका अदा की है। विदेशों से प्रकाशित हिंदी पत्र-पत्रिकाओं ने भी अंतरराष्ट्रीय स्तर पर हिंदी के प्रचार-प्रसार में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

संस्कृत की पुत्री होने के कारण हिंदी को यह आधार मिला है। इसीलिए इसमें अँग्रेज़ी-फ्रेंच आदि की अपेक्षा अधिक संभावनाएँ हैं, सही अर्थों में विश्वभाषा बनने की। विदेशियों के बीच हिंदी के प्रति रुचि इसलिए भी है कि हिंदी के माध्यम से भारतीय मूल के व्यापारियों के साथ व्यापार करने के लिए वे हिंदी सीखना चाहते हैं। डेनमार्क, नार्वे, स्वीडन और फिनलैंड आदि में भी हिंदी बोलने वाले लोग काफी संख्या में मिलते हैं। इंग्लैंड, जहाँ एशियाई मूल के लोग पर्याप्त मात्रा में रहते हैं और विभिन्न भाषाएँ बोलते हैं, उन लोगों के बीच काम करने वालों को संपर्क भाषा के रूप में हिंदी की आवश्यकता होती है। हिंदी स्वयं में विश्वसमाज को समाहित किए हुए है। हिंदी में आर्य, द्रविड़, आदिवासी, स्पेनी, पुर्तगाली, जर्मन, फ्रेंच, अंग्रेज़ी, अरबी, फ़ारसी, चीनी, जापानी आदि शब्द हिंदी के अंतरराष्ट्रीय स्वरूप को, अंतरराष्ट्रीय शैली को अभिव्यक्ति देने वाले आयाम हैं। हिंदी को संयुक्त राष्ट्र संघ में प्रवेश दिलाने के लिए भारत के साथ विश्व के अन्य देश भी निष्ठापूर्वक उसका समर्थन कर रहे हैं। भारत के बाहर फीजी, मारिशस, सूरिनाम, त्रिनिदाद तथा दक्षिण अफ्रीका में बसे लाखों प्रवासी भारतीय जो आज से लगभग डेढ़ सौ वर्ष पूर्व शर्तबंदी प्रथा के अंतर्गत इन देशों में गन्ने के खेतों में काम करने के लिए मजदूरों के रूप में भेजे गए थे और आज वहाँ के स्थायी नागरिक हैं, मातृभाषा के रूप में हिंदी का ही व्यवहार करते हैं। वे मानते हैं कि हिंदी ही समस्त भारतीयों को जोड़े रखने का एक महत्त्वपूर्ण सांस्कृतिक माध्यम है हिंदी इन देशों में केवल भारतीयों के बीच ही नहीं, बल्कि इन देशों के मूल निवासियों के बीच भी अच्छी तरह समझी व बोली जाती है। फीजी में तो हिंदी को संवैधानिक संसदीय मान्यता भी प्राप्त है और देश का कोई भी सांसद हिंदी में अपने विचारों और भावों को अभिव्यक्त कर सकता है। भारत के पड़ोसी देशों में पाकिस्तान, नेपाल, बंगला देश व बर्मा में हिंदी भाषा बोलने और समझने वालों की संख्या पर्याप्त है। पाकिस्तान की राजभाषा उर्दू तो भाषा विज्ञान की दृष्टि से खड़ी बोली प्रधान शैली है। नेपाल में हिंदी पूरे देश के 53 प्रतिशत नेपालियों की मातृभाषा है। इन देशों के अतिरिक्त भारतीय मूल के लोग अमेरिका, यूरोप, आस्ट्रेलिया या अफ्रीका-चाहे कहीं भी बसे हों हिंदी बोलते और समझते हैं। वस्तुत: हिंदी विदेशों में बसे भारतीयों के मध्य संपर्क भाषा के रूप में व्यवहृत होती है।

भाषा की सामाजिक प्रतिष्ठा उसके बोलने वालों की सामाजिक प्रतिष्ठा से जुड़ी होती है। भारतीय विश्व के अनेक देशों में आजीविका की खोज में सुनहले भविष्य का सपना लिए हुए मजदूरों के रूप में गए थे, किंतु अपने परिश्रम, लगन तथा ईमानदारी से वे हर देश में सुशिक्षित, सुप्रतिष्ठित तथा सम्मानित नागरिक बन गए। उनकी उन्नत सामाजिक स्थिति के कारण ही उनकी भाषा भी सम्मानित भाषा बनी प्रवासी भारतीयों का बड़ा दल सबसे पहले मारिशस, 1834 ई० में गया था फिर 1845 में त्रिनिदाद, 1860 ई० में दक्षिण अफ्रीका, 1870 में गुयाना, 1873 में सूरिनाम तथा 1879 ई० में फीजी समुद्री जहाज से पहुँचा था। इन देशों में जाने वाले भारतीय सामान्यत: अवधी तथा भोजपुरी बोलते थे। कुछ खड़ी बोली का भी प्रयोग करते थे। अन्य प्रदेशों से जाने वाले भारतीय संख्या में

इतने कम थे कि उनके बीच पारस्परिक व्यवहार की संपर्क भाषा अवधी और भोजपुरी रही जिनमें कुछ अन्य भाषाओं के शब्दों का भी समुद्री यात्रा के दौरान समाविष्ट हो गया।

प्रवासी भारतीय हिंदी को उन देशों में भी सुरक्षित रखने के लिए प्रयत्नशील हैं रेडियो पर लंबी अवधि के हिंदी प्रसारण होते है और इतना ही नहीं प्रवासी भारतीय हिंदी में साहित्य सृजन भी करते हैं। फिजी में बोली जाने वाली हिंदी को वहाँ के प्रवासी भारतीय फीजी बात कहते हैं सूरिनाम की हिंदी को सरनामी कहा जाता है तथा दक्षिण अफ्रीका की हिंदी को नैताली।

अमरीका में ही 113 विश्वविद्यालयों और कॉलेजों में हिंदी अध्ययन की सुविधाएँ उपलब्ध हैं जिनमें से 13 तो शोध स्तर के केंद्र बने हुए हैं। आज कितने ही विदेशी धारा प्रवाह हिंदी में लिख रहे हैं। उनकी हिंदी रचनाएँ उनके देशों में तथा भारत में सम्मान पाती हैं। कुछ रचनाएँ तो भारतीय विश्वविद्यालयों के पाठ्यक्रमों में स्थान प्राप्त कर हिन्दी साहित्य में अपना विशिष्ठ स्थान बना चुकी हैं। फीजी के कमला प्रसाद मिश्र, मारिशस के अभिमन्यु, अनत, सोमदत्त बरचौरी, सूरीनाम के मुंशी रहमान खान, सूर्य प्रसाद वीरे के साहित्यिक अवदान को कौन भुला सकता है। अंग्रेज कवि चैम्बर लेन ने हिंदी में अनेक गीत लिखे, जे.टी. थामसन ने खीष्ट चरितामृत दोहा चौपाई में लिखा, जूलियस फेडरिक उलभन ने हिंदी में ''वह श्रेष्ठ मूलक था'' लिखा तो ओदोलेन, स्मेकल के 'मेरी प्रीत तेरे गीत', स्वाति बूं. कमल को लेकर चल आदि कितने ही ग्रंथ हिंदी में प्रकाशित हुए। आज विदेशों में कई हिंदी पत्र निकल रहे हैं जो बड़ी संख्या में छपते हैं जिनमें प्रवासी भारतीय लेख, कविता तथा कहानियाँ आदि लिखते हैं। इनमें तरह-तरह के विज्ञापन प्रकाशित होते हैं तथा भारतीयों के लिए महत्त्वपूर्ण सूचनाएँ भी इनमें छपती हैं। फीजी टाइम्स द्वारा प्रकाशित साप्ताहिक 'शांतिदूत' एक ऐसा ही पत्र है, जो फीजी से लंब समय से निकल रहा है और अपनी जीवन यात्रा के साठ वर्ष पूरा कर चुका है। आज भी यह पत्र विदेशी हिंदी पत्रकारिता का कीर्तिस्तंभ बना हुआ है। हिंदी साहित्य का विश्व की अनेक भाषाओं में निरंतर अनुवाद हो रहा हैं प्रेमचंद की कृति ''गोदान'' का विश्व की लगभग सभी प्रमुख भाषाओं में अनुवाद हुआ। तुलसी कृत रामचरितमानस के अनुवाद तो बाइबिल के बाद विश्व की विविध भाषाओं में सब से अधिक हुए हैं। जर्मन, फ्रेंच तथा अँग्रेजी में साहित्य के अनुवाद की परंपरा रही है। समकालीन हिंदी साहित्य के अनुवाद के प्रति विदेशियों की रुचि इधर और बढ़ी है। हिंदी पत्रकारिता का विदेशों में निरंतर विकास हो रहा है, हिंदी साहित्य के अध्ययन और अनुवाद के प्रति भी विदेशियों की रुचि बढ़ रही है। हिंदी आज भारत की ही नहीं विश्व भाषा का रूप ले चुकी है।

भारत के बाहर विदेशों में रह रहे मूल भारत-वंशियों के अतिरिक्त उन लोगों की भी एक बहुत बड़ी संख्या है, जो भारत-वंशी न होते हुए भी हिंदी और भारतीय भाषाओं के पठन-पाठन और शोध कार्यों में संलग्न हैं। ऐसा करके वे भारत को भली प्रकार जानना चाहते हैं और इस दिशा में उनकी प्रगति सराहनीय रही है। यूरोप, अफ्रीका, आस्ट्रेलिया, अमरीका और एशिया महाद्वीप के अनेक देशों में हिंदी और भारतीय भाषाओं के पठन-पाठन की व्यवस्था वर्षों से चली आ रही है। जिन देशों में भारतवंशी बड़ी संख्या में निवास करते हैं, वहां तो हिंदी का होना स्वाभाविक है, किंतु उनके अतिरिक्त रूस, अमरीका जर्मनी, पोलैंड, चेकोस्लोवाकिया, फ्रांस, ब्रिटेन के विभिन्न हिस्सों में लगभग डेढ़ सौ ऐसे विश्व-विद्यालय हैं, जिनमें हिंदी के पठन-पाठन की व्यवस्था है। पिछले दो-तीन दशकों से ऐसा तारतम्य बन गया है कि निरंतर सम्मेलन, सभा और संगोष्ठी के माध्यम से इन विद्वानों के बीच विचारों का आदान-प्रदान होता रहता है। यह एक शुभ संकेत है, क्योंकि हिंदी सभी को जोड़ने वाली भाषा है। सबसे पहला विश्व हिंदी सम्मेलन सन् 1975 में नागपुर (भारत) में हुआ। इस सम्मेलन का उद्घाटन तत्कालीन प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गाँधी ने किया और इसकी अध्यक्षता मॉरीशस के तत्कालीन प्रधानमंत्री सर शिव सागर राम गुलाम ने की। इसमें लगभग 30 देशों ने भाग लिया और इसमें यह प्रस्ताव पारित किया गया कि हिंदी को संयुक्त राष्ट्र की एक भाषा के रूप में स्वीकार किया जाए। 1976 में दूसरा विश्व-हिंदी सम्मेलन मॉरीशस में आयोजित किया गया। जिसको याद कर लोग कहा करते हैं- ''न भूतो भविष्यति'', न पहले कभी ऐसा सममेलन हुआ है और न भविष्य में होगा। इस सम्मेलन में भारत से लगभग 250 विद्वानों एवं राजनेताओं ने भाग लिया और सभी इस बात से अत्यंत प्रफुल्लित थे कि मॉरीशस की सुंदर भूमि पर हिंदी का बिरवा किस प्रकार फलता-फूलता और पुष्ठ होता जा रहा है। इसके बाद सन् 1983 में तीसरा विश्व-हिंदी सम्मेलन नई दिल्ली में आयोजित किया गया जिसका उद्घाटन पुनः तत्कालीन प्रधानमंत्री श्रीमती इन्दिरा गाँधी ने किया और इसकी अध्यक्षता कैम्ब्रिज के हिंदी विभागाध्यक्ष प्रोफेसर मैग्रेसर ने की चौथा हिंदी विश्व-सम्मेलन पुनः मॉरीशस की भूमि पर संपन्न हुआ। यहाँ माँग की गई कि अब तक के चार विश्व हिंदी सम्मेलनों में जो भी प्रस्ताव पारित किए गए हैं, उनके क्रियान्वयन के लिए भारत और मॉरीशस की सरकार को यह जिम्मेदारी दी गई कि इस कार्य को संपन्न करने के लिए आवश्यक कदम शीघ्रातिशीघ्र उठाए जाएँ। पांचवाँ विश्व हिंदी सम्मेलन ट्रिनिडाड में वर्ष 1996 में आयोजित किया गया जाए, क्योंकि इसी वर्ष भारतीयों के उस देश में पहुँचने के डेढ़

सौ वर्ष पूरे हुए थे। यह सम्मेलन पूरे पाँच दिनों तक चला और इसकी अनेक विशेषताएँ उल्लेखनीय हैं। छठा सम्मेलन 1999 में हुआ था।

भारत को छोड़कर विदेशों में डेढ़ सौ से भी अधिक विश्वविद्यालयों में हिंदी पढ़ाई जाती है और अमरीका से लेकर मॉरीशस तक तथा जापान से लेकर दक्षिणी अफ्रीका तक अनेक देशों में स्थानीय स्तर पर हिंदी की संस्थाएँ काम कर रही हैं। मॉरीशस ट्रिनिडाड, गयाना, फीजी, सूरीनाम आदि देशों में अब यही लोग सत्ता के भागीदार भी हो गये हैं। वर्ल्ड एलमानेक एण्ड बुक ऑफ फैक्टस की रपट के अनुसार चीनी भाषियों की संख्या 87 करोड़ से अधिक है, वहीं हिंदी बोलने वाले 60 करोड़ से अधिक और अँग्रेजी भाषी मात्र 34 करोड़ हैं। एक आश्चर्यजनक तथ्य और भी है कि भारत की ही एक और भाषा बंगला का विश्वभाषाओं में पांचवा स्थान है। बंगला के बोलने वालों की संख्या 27 करोड़ है। अन्य में चौथे स्थान पर स्पेनिश, छठे स्थान पर अरबी, सातवें स्थान पर पुर्तगाली, आठवें स्थान पर रूसी नौवें स्थान पर जापानी और दसवें स्थान पर जर्मन भाषा आती है। यह कम गर्व की बात नहीं है कि विश्व की "टॉप टेन" भाषाओं में हिंदी द्वितीय स्थान पर और बंगला पाँचवें स्थान पर है। रूस में हिंदी के प्रति लगाव कुछ और भी अधिक है। वहाँ के रामभक्त कवि बारानिकोव ने रामायण का रूसी भाषा में पदानुवाद किया था। वहां पर हिंदी के साहित्यकार तुलसी, कबीर, मीरा, प्रेमचन्द, यशपाल, जैनेन्द्र, अश्क, रेणु, पंत, निराला, इलाचंद्र जोशी, अमृतलाल नागर, विष्णु प्रभाकर, भीष्म साहनी, गुप्त, जयशंकर प्रसाद, महादेवी वर्मा, नागार्जुन, बच्चन, दिनकार आदि अधिक लोकप्रिय हैं। हिंदी लेखकों का रूसी में अनुवाद भी व्यापक स्तर पर हो रहा है। हिंदी भाषा, साहित्य और व्याकरण पर शोध कार्य हो रहा है। अध्ययन-अध्यापन की विशेष व्यवस्था है। जर्मनी, बेल्जियम, फ्रांस, इटली, स्वीडन, हॉलैंड, नार्वे, डेन्मार्क, पोलैंड, जेकोस्लोवाकिया, युगोस्लाविया, हंगरी, रोमानिया, बुलगारिया, ब्रिटेन, कनाडा सहित बर्मा, पाकिस्तान, फीजी, सूरीनाम, श्रीलंका आदि देशों में भी हिंदी अपना स्थान बना चुकी है।

आओस, थाइलैंड, कंबोडिया और मयानमार बौद्ध देश हैं, जिन का संबंध भारत के साथ हज़ारों वर्षों से है। इन देशों का प्राचीन साहित्य हमारे संस्कृत और पाली साहित्य का भाषांतर है। जातक कथाएँ जनता में अधिक लोकप्रिय हैं। लाओ भाषा में बौद्ध धर्म के प्रचारार्थ उपन्यास भी लिखे गये हैं, जिनका इतिवृत्त बुद्ध की जीवनगाथा व जातक कथाएँ हैं। इन लोगों के महातीर्थों में लुम्बिनी, बुद्ध गया, सारनाथ और कुशीनगर प्रसिद्ध हैं। त्योहारों में विजयादशमी, दिपावली, बुद्ध पूर्णिमा, बसंतपंचमी और होली आदि प्रसिद्ध हैं। धार्मिक, साहित्यिक, सांस्कृतिक सन्निकटता के साथ-साथ इन देशों की भाषाओं पर संस्कृत और पाली भाषाओं का प्रभाव भी देखा जाता है। मयानमार एक समय में ब्रिटिश इंडिया का अंग रहा था। यहाँ बड़ी संख्या में भारतीय मूल के लोग कई पीढ़ियों से बसे हुए हैं, जो व्यापार-वाणिज्य के बारोबार में लगे हुए हैं। इनके कारण इन देशों में हिंदी संपर्क भाषा के रूप में प्रचलित ही नहीं रही, अपितु हिंदी के माध्यम से धार्मिक एवं सांस्कृतिक अनुष्ठान व समारोह संपन्न किये जाते रहे हैं। शैक्षिक संस्थाएँ संचालित की जाती रहीं तथा हिंदी की पत्र पत्रिकाएँ प्रकाशित की जाती रहीं। म्यानमार की राजधानी यांगून के प्राची प्रकाशन से पहले हिंदी दैनिक प्राची और इसी नाम से साप्ताहिक पत्र भी निकलता था। हिंदी साहित्य सम्मेलन की तरफ से बर्मा में "ब्रह्मभूमि" नामक मासिक पत्र भी निकलता था।

इंडोनेशिया, मलेशिया और सिंगापुर में भारतीय मूल के लोग कई पीढ़ियों से रहते आ रहे हैं। इन देशों के भारतीय मूल के लोग अपनी भाषा, संस्कृति व संस्कारों की रक्षा करते हुए और उनकी व्याप्ति के लिए भी भरसक प्रयत्न कर रहे हैं। यहाँ ललित कलाओं में रामायण व महाभारत की आख्यानों का बड़ा प्रभाव है। इंडोनेशिया का एक द्वीप बाली तो हिंदू बहुल द्वीप है।

भारत पर विदेशी प्रभुत्व के कारण इसमें कतिपय विदेशी शब्द दूध-पानी की तरह घुल-मिल गए हैं। इसलिए हिंदी का शब्द-भंडार सीमित से असीमित की ओर अग्रसर होता आया है। भारत को छोड़कर दुनिया के कोने-कोने में आज अनिवासी भारतीय और भारत वंशी विराजमान हैं और उनमें से बहुत बड़ी संख्या उन लोगों की है, जो लगभग सौ डेढ़-सौ साल पहले मॉरीशस, फिजी, सूरीनाम, ट्रिनिडाड, गुयाना, बारबाडोसा जमैका, दक्षिण अफ्रीका आदि देशों में जाकर बस गए। इन सबके साथ भारतीय मिट्टी की सुगंध भी वहाँ पहुँची। यही नहीं, इनके साथ हमारा जीवन-दर्शन, जीवन-शैली, हमारे गीता-रामायण जैसे ग्रंथ वहाँ पहुँचे और इस प्रकार उन दूर-दूर के देशों में भारतीय संस्कृति और हिंदी की गूँज आज भी निरंतर सुनाई पड़ती है।

इस प्रकार की भाषिक, साहित्यिक एवं सांस्कृतिक सन्निकटता के कारण भारत से हजारों मील दूर होकर भी इन देशों ने हिंदी साहित्य को इतनी सुदृढ़तापूर्वक छाती से सटा रखा है कि विरोधाभास विचारों की कैसी भी प्रचण्ड आँधी उन्हें नहीं हिला सकती। इन देशों की बालू के कशा-कण पर हिंदी की ऐसी अमिट छाप अंकित है कि विश्व का समुचा पानी भी उसे नहीं धो या मिटा सकता। हिंदी भी इन देशों की माटी में निरंतर पल्लिवित और पुष्पित हो आसपास के वातावरण को बराबर सुवासित कर रही है।

संपर्क: मार्फत श्री आर० डी० गुप्ता
ब्लॉक-48, फ्लैट-515, प्रथम तल, टाईप-4, सेक्टर-2,
सी०सी०एस० कॉलोनी,
(अन्टाप हिल), मुंबई-400 037
(महाराष्ट्र)

त्रिभाषा सूत्र-दशा और दिशा

○ डॉ. गार्गीशरण मिश्र 'मराल'

26 जनवरी 1950 को लागू भारतीय संविधान के अनुच्छेद 343 के खंड 1 के अनुसार देवनागरी लिपि में लिखि जाने वाली हिंदी को संघ की राजभाषा घोषित किया गया। इसी अनुच्छेद के खंड 3 के अनुसार यह व्यवस्था की गई कि राजभाषा हिंदी के साथ सहभाषा के रूप में अँग्रेजी के प्रयोग की छूट बराबर बनी रहेगी। संविधान के उपरोक्त प्रावधानों को ध्यान में रखते हुए माध्यमिक शिक्षा आयोग या मुदालियार शिक्षा आयोग (52-53) ने माध्यमिक शिक्षा के स्तर पर हिंदी के प्रचार-प्रसार को महत्त्व देते हुए त्रिभाषा सूत्र के प्रारंभिक रूप को प्रस्तुत किया। इसके अनुसार माध्यमिक स्कूल के सभी स्तरों पर मातृभाषा या क्षेत्रीय भाषा शिक्षा का माध्यम हो। मिडिल स्कूल स्तर पर हिंदी और अँग्रेजी इस प्रकार लागू की जावें कि दोनों भाषाएँ एक ही साथ न शुरू कर उनके बीच एक वर्ष का अंतर रखा जावे। माध्यमिक शिक्षा आयोग के बाद केंद्रीय शिक्षा सलाहकार बोर्ड ने भी यह राय दी कि माध्यमिक स्तर पर तीनों भाषाओं के अनिवार्य अध्ययन के लिए व्यवस्था की जानी चाहिए। दूसरे शब्दों में केंद्रीय शिक्षा सलाहकार बोर्ड ने स्पष्ट रूप से माध्यमिक स्तर के लिए त्रिभाषा सूत्र अपनाने की सलाह दी।

इस त्रिभाषा सूत्र पर विभिन्न राज्यों की प्रतिक्रिया जानने तथा उनकी सहमति और सहयोग पाने के लिए अगस्त 1961 को भारत की राजधानी दिल्ली में भारत के सभी राज्यों के मुख्य मंत्रियों का सम्मेलन बुलाया गया। इस सम्मेलन ने भी त्रिभाषा सूत्र को यह कहकर स्वीकार किया कि यही भाषा समस्या का सर्वोत्तम समाधान है। मुख्यमंत्रियों के सम्मेलन ने इसे निम्नांकित रूप में स्वीकृति दी-

1. क्षेत्रीय भाषा या मातृभाषा क्षेत्रीय भाषा से भिन्न हो।

2. हिंदी या हिंदी भाषा क्षेत्रों में कोई अन्य भारतीय भाषा।

3. अँग्रेजी या अन्य कोई आधुनिक यूरोपीय भाषा।

तत्पश्चात् अक्टूबर 1961 में राष्ट्रीय एकता सम्मेलन में भी उपरोक्त त्रिभाषा सूत्र विचारार्थ प्रस्तुत किया गया जहाँ इसे पुन: स्वीकृति मिली। इसी समय कोठारी आयोग (62-64) का गठन हुआ। इस आयोग ने त्रिभाषा सूत्र को निम्नांकित रूप में प्रस्तुत किया-

1. मातृभाषा या क्षेत्रीय भाषा

2. केंद्र की राजभाषा या सहभाषा जब तक यह रहे

3. कोई आधुनिक भारतीय या विदेशी भाषा जो उपयुक्त संख्या (1) या (2) की न हो तथा जो शिक्षा का माध्यम भी न हो।

सन् 1967 में पुन: राष्ट्र सम्मत भाषा नीति पर विचार-विमर्श हेतु सभी राज्यों के शिक्षा मंत्रियों का सम्मेलन बुलाया गया। इतना ही नहीं इस विषय पर सुझाव देने हेतु सदस्यों की एक समिति बनाई गई। इस अवसर पर भारत के तत्कालीन शिक्षा मंत्री डॉ. त्रिगुण सेन ने सुझाव दिया कि छात्र पर एक समय में दो भाषाओं से अधिक का बोझ नहीं डाला जाना चाहिए। अत: कक्षा 1 से 5 तक केवल मातृभाषा या क्षेत्रीय भाषा अपर माध्यमिक स्तर पर सिखाई जानी चाहिए। कक्षा 5 से 7 तक दो भाषाएँ मातृभाषा या क्षेत्रीय भाषा और हिंदी या अँग्रेजी पढ़ाई जानी चाहिए। अप्पर माध्यमिक स्तर पर अयोग का विचार था कि तीसरी भाषा हिंदी, अँग्रेजी या क्षेत्रीय भाषा वैकल्पिक भाषा के रूप में पढ़ाई जावे। इस प्रकार इस सम्मेलन ने भी त्रिभाषा सूत्र में क्षेत्रीय भाषा हिंदी, अँग्रेजी तीनों को पढ़ाये जाने का सुझाव दिया। फलत: 1968 में बनी शिक्षा नीति के अनुसार सभी राज्यों को त्रिभाषा सूत्र को अपनाने का सुझाव दिया गया। यहाँ यह स्पष्ट किया गया कि हिंदी भाषी राज्यों में हिंदी और अँग्रेजी के अतिरिक्त एक आधुनिक भारतीय भाषा (एक दक्षिण भारतीय भाषा) पढ़ाई जानी चाहिए तथा अहिंदी भाषी राज्यों में क्षेत्रीय भाषा और अँग्रेजी के साथ हिंदी पढ़ाई जावे।

उल्लेखनीय है कि संसद ने 27 नवंबर 1967 को राजभाषा अधिनियम में संशोधन कर यह व्यवस्था दी थी कि जब तक अहिंदी भाषी राज्यों की विधान सभाएँ अपनी सहमति न दें और संसद के दोनों सदनों द्वारा उक्त सहमति की पुष्टि न हो जाये तब तक हिंदी के साथ-साथ अँग्रेजी का प्रयोग संघ के राजकीय प्रयोजनों के लिए जारी रहेगा। उपरोक्त संशोधन के अतिरिक्त भारतीय संसद ने इसी समय राजभाषा संकल्प 1968 भी पारित किया। इसमें भारत सरकार द्वारा राज्य सरकारों के परामर्श से तैयार किये गे त्रिभाषा सूत्र को सभी राज्यों को पूर्णत: क्रियान्वित करने के लिए लिए प्रभावी उपाय किये जाने पर बल देते हुए हिंदी भाषी क्षेत्रों में हिंदी और अँग्रेजी के अतिरिक्त एक आधुनिक भारतीय भाषा को (दक्षिण भारत की भाषाओं में से किसी एक को तरजीह देते हुए) और अहिंदी भाषी क्षेत्रों में प्रादेशिक भाषा और अँग्रेजी के साथ-साथ हिंदी के अध्ययन के लिए आदेशित किया गया।

इस प्रकार यह बात स्पष्ट हो जाती है कि अनेक वर्षों के विचार विमर्श सुधार एवं देश के सभी राज्यों के मुख्यमंत्रियों, शिक्षा मंत्रियों तथा शिक्षाविदों के अनुमोदन के बाद त्रिभाषा सूत्र हिंदी के प्रसार-प्रचार हेतु आम सहमति का आधार बना। इस कारण राजभाषा संकल्प 1968 द्वारा इसे क्रियान्वित करने हेतु प्रभावी उपाय किये जाने के निर्देश दिये गये। किंतु त्रिभाषा सूत्र का क्रियान्वयन पूरी तरह सफल नहीं हो सका। इसके कई कारण हैं-

पहला तो यह कि इसके सफल क्रियान्वयन करने हेतु केंद्र सरकार द्वारा

कोई निगरानी समिति या मानिटरिंग कमेटी नहीं बनाई गई जो राज्यों में इसके क्रियान्वयन पर नज़र रखती। इतना ही नहीं केंद्र सरकार ने स्वयं अपने द्वारा संचालित केंद्रीय विद्यालयों में भी इसे लागू नहीं किया। दूसरे शब्दों में केंद्र सरकार ने इसे पूरी तरह राज्यों का मामला समझ लिया। उसने इसके लिए मात्र राज्य सरकारों को उत्तरदायी समझकर उससे अपना पल्ला झाड़ लिया। तभी तो आज तक केंद्र सरकार ने राज्यों से त्रिभाषा सूत्र के क्रियान्वयन के संबंध में कोई रिपोर्ट या जानकारी नहीं माँगी और न ही इसकी समीक्षा हेतु कभी राज्यों के मुख्यमंत्रियों या शिक्षामंत्रियों की बैठक ही बुलाई।

दूसरा यह कि केंद्र सरकार की इस उदासीनता के कारण राज्य सरकारों ने भी इसे गंभीरता से नहीं लिया। वरन अपने-अपने हितों को महत्त्व देते हुए इसे तोड़ा-मरोड़ा। अर्थात् राज्यों द्वारा त्रिभाषा सूत्र को उसकी संपूर्णता में तथा मूल रूप में लागू नहीं किया गया। उदाहरण के लिए मध्यप्रदेश में त्रिभाषा सूत्र की अपेक्षानुसार हिंदी और अँग्रेजी को तो स्वीकार किया, किंतु तीसरी भाषा के रूप में दक्षिण भारत की कोई भाषा को स्वीकार करने की बजाय संस्कृत को स्वीकृति प्रदान की। इसी प्रकार तमिलनाडु ने भी तमिल और अँग्रेजी को तो स्वीकार किया, किंतु हिंदी को स्वीकार करने की बजाय संस्कृत को स्वीकृति प्रदान की। अत: त्रिभाषा सूत्र के क्रियान्वयन में राज्यों की राजनीति ने प्रवेश पा लिया। कुछ वर्षों बाद कई राज्यों ने त्रिभाषा सूत्र को द्विभाषा सूत्र में बदल दिया। मध्यप्रदेश, उत्तरप्रदेश में केवल हिंदी और संस्कृत को स्वीकृति दी गई। अँग्रेजी का बहिष्कार किया गया। 1967 का संशोधन पारित हो गया। तात्पर्य यह कि केंद्र सरकार ने हिंदी प्रांतों के इस अँग्रेजी विरोध को कोई तरजीह नहीं दी और अँग्रेजी को अनिश्चित काल तक हिंदी के साथ जारी रखे जाने का निर्णय ले लिया। अहिंदी भाषा प्रदेश तमिलनाडु ने भी प्रतिक्रियास्वरूप हिंदी का बहिष्कार कर केवल द्विभाषा सूत्र को अपनाते हुए तमिल और अँग्रेजी को माध्यमिक स्तर की कक्षाओं में स्थान दिया कर्नाटक, केरल जैसे कुछ प्रदेश इसके अपवाद हैं। उन्होंने त्रिभाषा सूत्र को उसके मूल रूप में अपनाया।

तीसरा यह कि केंद्र और राज्य सरकारों ने त्रिभाषा सूत्र को क्रियान्वित करने हेतु कोई नीति नियम निर्धारित न कर उसके क्रियान्वयन का उत्तरदायित्व वहाँ के नौकरशाहों पर छोड़ दिया। ये सभी अँग्रेजी के पक्षधर थे तथा हिंदी को आगे बढ़ते नहीं देखना चाहते थे। अत: उन्होंने जान-बूझकर इसके क्रियान्वयन में उदासीनता बरती, उसके क्रियान्वयन में कोई विशेष दिलचस्पी नहीं ली अन्यथा संसद के द्वारा 1968 का संकल्प पारित कर त्रिभाषा सूत्र को लागू करने के निर्देश के बावजूद इसका क्रियान्वयन इतना कमजोर, शिथिल एवं उपेक्षित न होता। संसद ने भी इसके क्रियान्वयन के संबंध में न तो दुबारा निर्देश दिये और न इसकी जानकारी ही सरकार से माँगी।

वस्तुत: केंद्र सरकार प्रारंभ से ही हिंदी का मार्ग अवरुद्ध करती प्रतीत होती रही है। संविधान के अनुच्छेद 343 के अनुसार देवनागरी लिपि में लिखी जाने वाली हिंदी को राजभाषा घोषित किये जाने के बाद हिंदी के कार्य में पहला अवरोध केंद्र सरकार ने यह खड़ा किया कि आगामी पंद्रह वर्षों तक हिंदी के साथ अँग्रेजी सहभाषा के रूप में जारी रहेगी। इसके लिए तत्कालीन प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू ने जो तर्क दिये उन पर भी गौर करना उचित होगा- उन्होंने काँग्रेस संसदीय पार्टी की कार्यकारिणी की बैठक में कहा- "इस समय देश में एकता रखना अत्यंत आवश्यक है, हिंदुस्तान को बिगाड़कर हिंदी की तरक्की नहीं हो सकती। हमें दक्षिण के लोगों में यह विचार पैदा नहीं होने देना चाहिए कि उत्तरवाले उन पर हिंदी थोप रहे हैं। हिंदी तथा अहिंदी भाषियों को दो भागों में बाँट देने से देश का भारी अहित होगा। हिंदी को रजामंदी से आगे ले जाना है, अगर हिंदीवाले जबरदस्ती करेंगे तो दूसरे लोग ऐंठ जायेंगे। इससे ऐसी खाई पैदा हो जायेगी जो हिंदी के लिए ही नहीं बरन् पूरे देश के लिए घातक सिद्ध होगी। हिंदी को और ताकत मिलेगी। हिंदी के साथ अँग्रेजी को सहायक भाषा रहने दिया जाये क्योंकि अँग्रेजी के जरिये नये-नये विचार आते रहेंगे।"

प्रधानमंत्री पं. नेहरू के उपरोक्त वक्तव्य में हिंदी और गैर हिंदीवालों के बीच खाई पैदा होने का जो हौआ खड़ा किया गया वह वस्तुत: निरर्थक था, क्योंकि स्वतंत्रता प्राप्ति के पूर्व तक महात्मा गाँधी के प्रभाव से सारे भारत में, जिसमें दक्षिण भारत के प्रदेश भी शामिल थे, हिंदी को राष्ट्रभाषा बनाने की मानसिकता विकसित हो चुकी थी। इसके प्रमाण तमिलनाडु के तत्कालीन मुख्यमंत्री राजाजी के ये शब्द हैं। "केंद्रीय सरकार तथा कानून की भाषा और प्रांतीय सरकारों के परस्पर तथा भारत सरकार के साथ व्यवहार की भाषा हिंदी अवश्य स्वीकार करनी होगी।" इसी क्रम में बंगाल के प्रसिद्ध विचारक डॉ. सुनीति कुमार चटर्जी के ये शब्द भी स्मरणीय हैं- विभिन्नता रहते हुए समस्त भारत की जड़ें अखण्ड हैं। भाषा और संस्कृति के क्षेत्र में इस सत्य का प्रतीक हिंदी है।" इसके अतिरिक्त संविधान लागू होते समय पं. जवाहरलाल नेहरू भारत के हृदय सम्राट या अघोषित तानाशाह थे। अत: यदि वे उस समय हिंदी का पक्ष लेते, तो दक्षिण में भी उसका विरोध करने का साहस कोई नहीं करता। इसका सर्वोत्तम प्रमाण यही है कि पं. नेहरू के व्यापक प्रभाव के कारण अनेक हिंदी समर्थकों ने इसका विरोध नहीं किया। केवल सेठ गोविन्द दास ऐसे सांसद थे जिन्होंने पार्टी की अनुमति लेकर काँग्रेस पार्टी के इस विधेयक का विरोध किया और कहा-"भले ही मुझे काँग्रेस छोड़नी पड़े पर मैं आँखों देखा विष नहीं खा सकता।" लेकिन पं. नेहरू स्वयं अँग्रेजी के पक्षधर थे। इसका सबसे बड़ा प्रमाण यही है कि 15 अगस्त 1947 को भारत के आजाद होने पर पं. नेहरू के द्वारा तत्कालीन लोकसभा में दिया गया पहला भाषण अँग्रेजी को अनिश्चित काल के लिए भारत की सहभाषा बनाना, हिंदी के साथ उसके पूर्ववत् जारी रखना,

उनकी अँग्रेजी मानसिकता का प्रमाण है। अन्यथा श्रीमती इंदिरा गाँधी भी उस समय प्रधानमंत्री के रूप में भारत देश के हृदय की धड़कन थी। अत: यदि वे उस समय हिंदी का पक्ष लेती, तो विरोधी स्वर तुरंत शांत हो जाते। लेकिन उन्होंने अँग्रेजी का पक्ष लिया। इसे देश का दुर्भाग्य वे उस समय हिंदी का पक्ष लेती तो विरोधी स्वर तुरंत शांत हो जाते। लेकिन उन्होंने अँग्रेजी का पक्ष लिया। इसे देश का दुर्भाग्य ही मानना चाहिए। संविधान लागू होने के बाद आज तक राजभाषा हिंदी के साथ सहभाषा अँग्रेजी का जारी रहना। **वस्तुत: अँग्रेजी को आगे बढ़ाने और हिंदी को पीछे ढकेलने का उपक्रम मात्र था, जिसका परिणाम यह हुआ है कि आज हमारा देश राष्ट्रभाषा विहीन एक गूँगा-बहरा राष्ट्र बनकर रह गया है। इस प्रकार वास्तविकता यह है कि विगत छ: दशकों में शासकीय स्तर पर हिंदी को पीछे ढकेलने और अँग्रेजी को आगे बढ़ाने का काम अधिक हुआ है जबकि संविधान की भावना के अनुरूप हिंदी को आगे बढ़ाने और अँग्रेजी को पीछे ढकेलने का काम होना था।**

इस स्थिति का लाभ उठाकर अँग्रेजी परस्त नौकरशाहों और तकनीकीशाहों ने अँग्रेजी को अघोषित राष्ट्रभाषा बना दिया है और हिंदी को उसकी सहभाषा। इसी कारण हमारे देश में उच्च शिक्षा तकनीकी शिक्षा, उच्च स्तरीय न्याय विदेशी भाषा में देने की व्यवस्था जारी है। जबकि देश को स्वतंत्र हुए साठ वर्ष हो चुके हैं। यह सोचनीय बात है कि जो अँग्रेजी संसार के किसी देश में, इंग्लैंड और अमेरिका को छोड़कर, यहाँ तक कि कामनवेल्थ राष्ट्रों में भी विशेष महत्त्व प्राप्त नहीं कर सकी वह भारत में क्यों इतना महत्व प्राप्त कर रही है। यह राष्ट्रनीति पर स्वार्थनीति के हावी होने की घृणास्पद स्थिति का जीवंत प्रमाण है। यह भारत की बहुसंख्यक जनता की भावना के साथ क्रूर मज़ाक है और देश के प्रजातंत्र का घृणित उपहास है।

ऐसा नहीं है कि यह स्थिति आज निर्मित हुई है। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद से ही देश के नौकरशाहों और तकनीकीशाहों ने हिंदी को आगे बढ़ाने के निर्णयों को यथासंभव उपेक्षित किया। उदाहरण के लिए 7 जून 1955 को श्री बाल गंगाधर खेर की अध्यक्षता में राजभाषा आयोग की नियुक्ति महामहिम राष्ट्रपति द्वारा की गई। आयोग ने अस्तित्व में आते ही लगभग 20 सुझाव हिंदी को आगे बढ़ाने हेतु दिये। इनमें से कुछ महत्त्वपूर्ण सुझाव निम्नांकित हैं-

1. चौदह वर्ष तक की उम्र के प्रत्येक विद्यार्थी को हिंदी का समुचित ज्ञान कराया जाय।

2. समूचे देश में माध्यमिक स्तर पर हिंदी का शिक्षण अनिवार्य कर दिया जावे।

3. सभी विश्वविद्यालयों को चाहिए कि हिंदी माध्यम से जो विद्यार्थी परीक्षाओं में बैठना चाहें उनके लिए उचित प्रबंध करें।

4. प्रशासनिक कर्मचारियों के लिए हिंदी का निश्चित अवधि में आवश्यक ज्ञान प्राप्त करने के लिए नियम लागू करें। जो ऐसा न करें उन्हें दंडित किया जाय।

5. राज्य और संघ सरकारों के अधिकारियों के लिए किसी स्तर का हिंदी ज्ञान अनिवार्य कर दिया जाय।

6. संघ भाषा हिंदी तथा क्षेत्रीय भाषाओं के विकास के लिए भारतीय भाषाओं की राष्ट्रीय अकादमी की स्थापना की जाय।

किंतु इनमें से किसी का भी क्रियान्वयन नौकरशाहों द्वारा नहीं किया गया, क्योंकि उन्हें 1965 तक हिंदी के साथ अँग्रेजी के जारी रखे जाने का सबल समर्थन प्राप्त था।

इस शर्मनाक दशा से बाहर निकलने हेतु हमें स्वार्थी दृष्टिकोण त्यागकर राष्ट्रीय दृष्टिकोण अपनाने, प्रांतीयता की बजाय राष्ट्रीयता को महत्त्व देने तथा निष्पक्षता से त्रिभाषा सूत्र लागू करने की तथा देशहित में कठोर निर्णय लेने की आवश्यकता है। यह बात अवश्य है कि आज की गठबंधन सरकारों के लिए यह काम कठिन है, लेकिन प्रधानमंत्री के रूप में पं. नेहरू और श्रीमती इंदिरा गाँधी के लिए यह एक सरल काम था।

इस प्रकार वास्तविकता यह है कि विगत छ दशकों से शासकीय स्तर पर हिंदी को पीछे ढकेलने और अँग्रेजी को आगे बढ़ाने का काम अधिक हुआ है। जबकि संविधान की भावना के अनुरूप हिंदी को आगे बढ़ाने और अँग्रेजी को पीछे ढकेलने का काम होना था।

संपर्क:- 1436/बी, सरस्वती कॉलोनी, चेरीताल वार्ड, जबलपुर-482002
मो० 9425899232

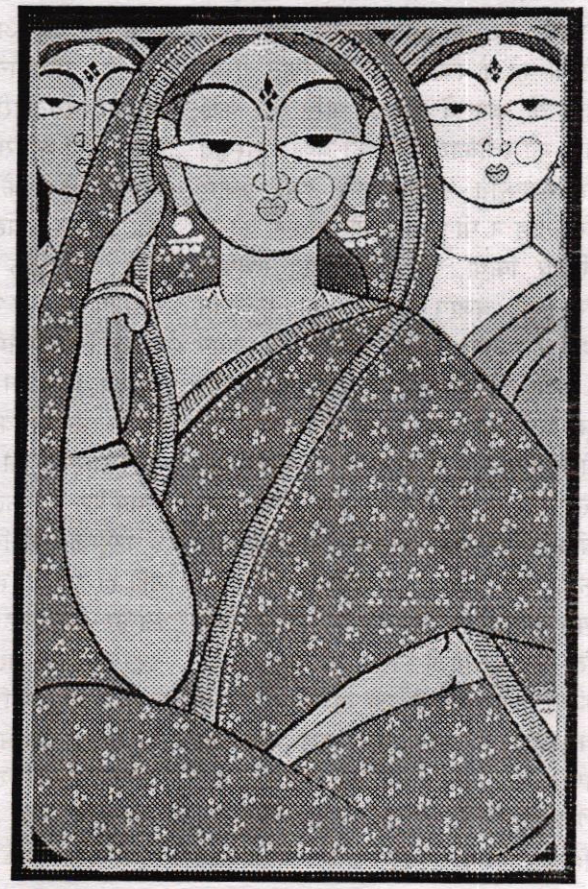

हिंदी भाषा में अनुनासिकता और अनुस्वारता

○ अतुल कुमार रस्तोगी, मुंबई

प्राणियों के ध्वनि उच्चारण में मुख्यत: मुख-यंत्रों एवं गौणत: नासिका अर्थात् नाक का प्रयोग होता है। इसी से भाषा के उच्चारण में मुख-यंत्र भाषा के उच्चारण के मूल साधन हैं, वहीं नासिक्यता भाषा का एक प्रमुख लक्षण हैं हिंदी भाषा में नासिक्यता के दो स्वरूप मिलते हैं। एक अनुनासिकता एवं दूसरी अनुस्वारता। हिंदी भाषा में दोनों का प्रयोग बहुतायत से होता है। इसी कारण लिपि में इनके पृथक चिह्न निर्धारित हैं, जिन्हें वर्णमाला के अभिन्न अंग के रूप में रखा गया है। ये चिन्ह क्रमश: चंद्रबिंदु (ँ) एवं बिन्दु (ं) हैं। जहाँ अनुनासिक स्वर का एक विशेष लक्षण है, वहीं अनुस्वार स्वर के बाद आने वाला शुद्ध नासिक्य व्यंजन, अर्थात् शुद्ध पंचमाक्षर।

सामान्यत: यह देखा गया है कि आजकल अनुनासिकता के प्रतीक चंद्रबिंदु के स्थान पर अनुस्वारता के प्रतीक चंद्रबिंदु के स्थान पर अनुस्वारता के प्रतीक बिंदु का प्रयोग किया जा रहा है, यद्यपि इसके उच्चारण में कोई साम्य नहीं है। सामान्यत: यह धारणा है कि पहले वाक् भाषा या उच्चारण में परिवर्तन होता है, उसके बाद तदनुरूप उसके लिखित रूप में। किंतु हिंदी भाषा की अनुनासिकता के मामले में ऐसा नहीं हुआ है। जहाँ उसका औच्चारणिक रूप ज्यों का त्यों बना हुआ है, वहीं लिखित रूप में चंद्रबिंदु के स्थान पर केवल बिन्दु का प्रयोग किया जा रहा है, जैसे- जाएँगे के स्थान पर जाएँगे।

अनर्ह प्रतिस्थापन की यह प्रवृत्ति लेखन, टंकण, कंपोज़िंग और मुद्रण में प्रयत्न-लाघव के कारण उत्पन्न हुई है। किंतु यहाँ यह विचारणीय है कि जिस प्रकार लैखिक प्रयत्न लाघव के बावजूद, भिन्न स्वनिकता एवं स्वनिमिकता के परोक्ष बोध के कारण ई को इ, ड़ को ढ, ढ़ ऐ को ए, ऊ को उ तथा औच्चारणिक प्रयत्न-लाघव के बावजूद क्ष को छ, ण को न या ष को श लिखा जाना स्वीकार्य नहीं हो सकता, वैसे ही चंद्रबिंदु के स्थान पर केवल बिंदु का प्रयोग स्वीकार्य नहीं है। स्पष्ट है कि उपर्युक्त परिवर्तन करते समय केवल लैखिक सुगमता को दृष्टिगत रखा गया और अनुस्वारता से अनुनासिकता की अर्थ-भेदकता को पूर्णत: विस्मृत कर दिया गया।

अनुनासिकता के विपरीत, अनुस्वारता के लैखिक रूप में कोई परिवर्त्तन नहीं हुआ है, किन्तु औच्चारणिक स्तर पर कुछेक परिवर्तन अवश्य हुए हैं, जैसे-मांस के स्थान पर माँस।

ऊपर नासिक्यता के दो स्वरूपों का उल्लेख किया गया है। इनमें से स्वर में निहित नासिक्यता अनुनासिकता कहलाती है और व्यंजन में होने वाली नासिक्यता अनुस्वारता कहलाती है। दूसरे शब्दों में, स्वरों का उच्चारण दो रूपों में, अर्थात् अनुनासिक एवं निरनुनासिक होता है, जबकि अनुस्वारता के चिह्न का प्रयोग शुद्ध नासिक्य व्यंजनों के स्थान पर किया जाता है।

स्पष्ट है कि इन दोनों का न केवल कार्य-क्षेत्र अलग-अलग है, बल्कि प्रकार्य भी विभाजित है। अत: इनका परस्पर प्रतिस्थापन किसी भी परिस्थिति में स्वीकार्य नहीं हो सकता है। उपर्युक्त परिवर्तन न केवल भाषागत अव्यवस्था को जन्म देता है, बल्कि प्रयोक्ताओं के लिए भ्रमपूर्ण स्थितियाँ भी उत्पन्न करता है। इससे बचने के लिए यह नितांत आवश्यक है कि अनुस्वारता एवं अनुनासिकता का स्वनिमिकता के दृष्टिकोण से विवेचन किया जाए और प्रयोक्ताओं को इनके कार्य-क्षेत्र, अर्थ-भेदकता, प्रकार्यों प्रयोग के स्वरूपों और इन पर लागू स्वनिक प्रतिबंधों से परिचित कराया जाए।

अनुनासिकता

जैसा कि पहले उल्लेख किया जा चुका है- अनुनासिकता स्वरीय या स्वरगत लक्षण है अर्थात् स्वर से संबंधित है। सामान्यत: स्वरों के उच्चारण में मुख-विवर से वायु नि:सृत होती है। स्वरों के उच्चारण में मुख-विवर के साथ-साथ नासिका-विवर से भी वायु नि:सृत होती है, तो उस स्थिति को अनुनासिकता कहते हैं और अनुनासिकतासह स्वर, अर्थात् जिस स्वर में अनुनासिकता निहित होती है, उसे अनुनासिक स्वर कहते है। इस औच्चारणिक स्थिति को लैखिक रूप में लिपिबद्ध करने के लिए संबद्ध स्वर के स्वन-प्रतीक या ध्वनि-चिन्ह अर्थात वर्ग के ऊपर अनुनासिकता के स्वन-प्रतीक चन्द्र-विन्दु (ँ) का प्रयोग किया जाता है।

अनुनासिक शब्द के दो भाग के दो भाग हैं। अनु + नासिक। इससे नासिका का बाद में प्रयोग होने का बोध स्पष्ट है। यदि अनुनासिक-युक्त किसी अक्षर यथा-माँ की उच्चारण ध्वनियों का सूक्ष्म विग्रह (मू + आ + ँ) किया जाए, तो स्पष्ट होता है कि यहाँ पहले मुख-विवर से म और फिर स्वर आ का उच्चारण प्रारंभ होने के तत्काल बाद नासिका-विवर से अनुनासिकता का उच्चारण शुरू हो जाता है। यहाँ स्वर आ और अनुनासिकता के उच्चारण के मध्य समय अंतराल इतना सूक्ष्म होता है कि इसका आभास नहीं होता और सामान्यत: यह मान लिया जाता है कि अनुनासिक के उच्चारण में स्वर और अनुनासिकता का उच्चारण एक साथ होता है। इस स्थिति को निम्नलिखित रूप में दर्शाया और स्पष्ट किया जा सकता है। जहाँ माँ को म + आँ (M + aa ँ) के रूप में लिखा जा सकता है, वहीं मांधाता में म + आ + न् + धाता (Maa +n+dhata) के रूप में लिखा जा सकता है, वहीं मांधाता में म + आ + न् + धाता (Maa +n+dhata) के रूप में। अनुनासिकता का उच्चारण मुख एवं नासिका दोनों से होने के कारण कोमल होता है।

अनुनासिकता को स्वतन्त्र स्वनिम अक्षर या व्यंजनगत'लक्षण की श्रेणी में नहीं रखा जा सकता, क्योंकि इसकी व्याप्ति

केवल स्वरों के साथ होती है। दूसरे शब्दों, में, शब्दों में अनुनासिकता का औच्चारणिक योग स्वरों के साथ होता है, इसीलिए यह एक स्वरीय लक्षण है। इसी कारण से, शुद्ध व्यंजन के ऊपर अनुनासिकता का प्रयोग नहीं होता हे। साथ ही, जब स्स्वर व्यंजन के ऊपर अनुनासिक का चिन्ह लगाया जाता है, तो भी उसे व्यंजन के ऊपर न लगाकर स्वर के प्रतीक-चिन्ह अर्थात् स्वर की मात्रा पर लगाया जाता है, जैसे-डाँ (अर्थात् ड + ाँ) जिन व्यंजनों में स्वर की मात्रा अलग से नहीं लगी होती है (जैसे - ग् +अ = ग), वहाँ उसे व्यंजन के सबसे पिछले हिस्से अर्थात् पाई (ा) पर लगाया जाता है। किन्तु जिन सस्वर व्यंजनों में खड़ी पाई नहीं होती है और स्वर की मात्रा के रूप में कोई खड़ी पाई भी नहीं होती है, जैसे-ट, र, ह, ड, आदि, तो ऐसी स्थिति में अनुनासिक चिह्न का प्रयोग व्यंजन के ऊपर किया जाता है, पर औच्चाराणिक स्तर पर (अर्थात् उच्चारण में) उसका योग स्वर के साथ ही होता है।

जिस रूप या रूपिम में अनुनासिकता का प्रयोग होता है, उसके संबंधित स्वर के ऊपर अनुनासिकता के स्वन-प्रतीक का प्रयोग किया जाता हैं किन्तु लेखन, टंकण एवं स्थान-लाघव को ध्यान में रखते हुए, उन स्थानों पर अनुनासिकता के स्वन-प्रतीक (ँ) के स्थान पर अनुस्वारता के प्रतीक-चिह्न (ं) या कहें चंद्र-रहित बिंदु का प्रयोग अनुमन्य है, जहाँ संबंधित वर्ण में शिरोरेखा के ऊपर (यथा- े या ै) या बराबर के साथ-साथ शिरोरेखा से ऊपर निकली हुई मात्रा (यथा - ो, ौ, ि या ी) लगी हो। यह अनुमति कतिपय स्वरों के स्वन-प्रतीकों (यथा-ई, ऐ ओ या औ) के साथ अनुनासिकता के प्रयोग में भी उपलब्ध है। दूसरे शब्दों में, ऊपर लगी मात्राओं से युक्त वर्णों या ऐसे स्वरों के स्वन-रहित बिन्दु का प्रयोग किया जाता है, जिनके स्वन-प्रतीकों में शिरोरेखा से ऊपर कोई भाग हो। ऐसी स्थितियों में, केवल बिन्दु होने के कारण उसे अनुस्वारता समझ लेना मात्र भ्रम है, कुछ और नहीं।

अनुस्वारता

यदि अनुनासिकता स्वरीय लक्षण है, तो अनुस्वार व्यंजनगत, अर्थात् इनका प्रयोग शुद्ध नासिक्य व्यंजनों (ङ्, ञ्, ण्, न्, म्) के स्थान पर किया जाता है। इस स्थिति में उपर्युक्त व्यंजनों का उच्चारण मुख-विवर से न होकर नासिका-विवर से होता है। अनुनासिकता की तुलना में अनुस्वार की अनुनादित मुखरता (Reasonant Sonority) अधिक होती है।

यहाँ यह ध्यान देने योग्य तथ्य है कि यद्यपि अनुस्वार शुद्ध नासिक व्यंजनों के बदले में उपयोग किया जाता है, किंतु इसका नामकरण अनुस्वार किया गया है, जिसका शब्दिक अर्थ है, स्वर के बाद (अनु + स्वर) साथ ही, इसे प्रकट करने के लिए अ स्वर का आश्रय लिया जाता है। (वर्णमाला में इसका चिन्ह प्रकट करने के लिए अं लेखिम प्रयोग किया जाता है) और अं कोई स्वर न होने के बावजूद उसे व्यंजनों के साथ न रखकर स्वरों के अंत में स्थान दिया गया है। यह विचार अवश्यंभावी है कि अनुनासिक के प्रतीक चिन्ह (ँ) की भाँति इसे भी केवल (ं) प्रतीक-चिन्ह से प्रकट किया जा सकता था। ऐसा किए जाने के पीछे सूक्ष्म वैज्ञानिक अवधारणा है। नीचे दिए गए कुछ उदाहरणों पर ध्यान दें:

अंक = अङ्क = अ + ङ् -क् +अ

चंचु = च्ञ्चु = च् + अ + ञ् + च् + उ (ु)

खंड = खण्ड = ख् + अ + ण् + ड् + अ

संधि = सन्धि = स् + अ + न् + ध् + इ (ि)

अंबर = अम्बर = अ + म् + ब् + अ + र् + अ

हिंदी = हिंदी = ह् + इ (ि) + न् + द् + ई (ी)

मुंडन = मुण्डन = म् + उ (ु) + ण् + अ + न् + अ

इन उदाहरणों से स्पष्ट है कि यद्यपि अनुस्वारता शुद्ध नासिक्य व्यंजनों के लिए प्रयोग होती है, किंतु इनका प्रयोग सदैव स्वर के बाद होता है, न कि किसी व्यंजन के साथ या उसके बाद। इसीलिए वर्णमाला में इसे स्वरों के बाद स्थान दिया गया है। स्वर के बाद प्रयोग होने के कारण ही, अनुनासिक की भाँति, लेखन व्यवस्था में अनुस्वार का प्रतीक-चिन्ह स्वर के प्रतीक-चिन्ह के ऊपर लगाया जाता है, न कि व्यंजन के ऊपर। साथ ही चूँकि अ स्वर सभी व्यंजनों के वर्णमाला रूप में सर्वव्यापी है, इसीलिए अनुस्वार को प्रकट करने के लिए अन्य स्वरों की अपेक्षा इसे अधिक वरीयता और स्वीकार्यता प्राप्त हैं इससे भ्रम की संभावना भी कम होती है। तथापि, इसका यह तात्पर्य नहीं लगाया जातना चाहिए कि अनुस्वार का प्रयोग केवल अ स्वर के बाद ही होता है। वाक् में अनुस्वार का उच्चारण स्वर-आधारित होने के फलस्वरूप इसका उच्चारण सभी स्वरों के साथ या कहें, बाद समान रूप से होता है और किया जा सकता है। अंत चिन्ह नियत किया जाना इस बात का संकेत-मात्र है कि लैखिक रूप में इसका प्रयोग स्वर के साथ और उच्चारण में स्वर के बाद होता है।

स्वरों से ध्वनि-साम्यता और वर्णमाला में उनके बाद स्थान, किन्तु व्यंजन का प्रकटीकरण, इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि अनुस्वार अलग से न तो कोई व्यंजन है और न ही स्वर। वस्तुतः यह रूप (Morph) या रूपिम (Morpheme) में जिस नासिक्य व्यंजन-ध्वनि का प्रतिनिधित्व करता है, उसी के अनुसार, यह स्वनिम (Phoneme) या संस्वन (Allophone) होता है।

अनुनासिक यदि स्वर का लक्षण है और स्वर के स्वन के साथ उसका योग होता है, तो अनुस्वार का स्वर या व्यंजन किसी के साथ योग नहीं होता है। विसर्ग (:) की भाँति यह एक अयोगवाह (Isolating) ध्वनि है।

वर्ग (Pentab) (क वर्ग, च वर्ग, ट वर्ग, त वर्ग और प वर्ग) के पंचमाक्षर (ङ्, ञ्, ण्, न् और म्) के स्थान पर उसके प्रतिनिधित्व के रूप में अनुस्वार के प्रयोग की समानान्तर व्यववस्था केवल लैखिक प्रयतनलाघव के फलस्वरूप उपजी हैं किंतु औच्चारणिक स्तर पर कोई परिवर्तन नहीं होता है। दूसरे शब्दों में, औच्चारणिक स्तर पर पंचमाक्षर का उच्चारण यथावत् रहता है। तथापित, यह व्यवस्था अनियंत्रित नहीं हैं इसके प्रयोग के नियम निश्चित हैं। नियम यह है कि किसी रूप या रूपिम, अर्थात् किसी शब्द में अनुस्वार का प्रयोग होने पर उसका उच्चारण परवर्ती व्यंजन के वर्ग के पंचमाक्षरवत् होता है। यदि पंचमाक्षर का द्वित्व हो, तो वह पंचमाक्षर अनुस्वार रूप में प्रयोग नहीं किया जाता है, बल्कि हल् रूप (जैसे - ़, ञ्, ण्, न्, और म् या ङ्, ञ, ण, न और म) में प्रयुक्त होता है।

उदाहरणार्थ-वाङ्मय, अन्न, अन्याय, सम्मान, उन्नत, कण्व, अरण्य, पुण्य। इन्हें वाँमय, अंन, अंयाय, संमान, उंनत, कंव, अरंय या पुंय नहीं लिखा जा सकता है।

अनुनासिक एवं अनुस्वार के औच्चारणिक लक्षण का एक और आयाम है मुखरता या अनुवाद में भिन्नता। दोनों के उच्चारण में कहीं अधिक दीर्घता है, तो ठूँठ में कम, बंद में अधिक दीर्घता है, तो अंक में कम। इस भिन्नता का कारण शब्द में प्रयुक्त व्यंजन का सघोष या अघोष होना है। अनुनासिक या अनुस्वार के तुरंत बाद में आने वाला व्यंजन यदि घोष व्यंजन है, तो इनके उच्चारण में मुखरता और घोष व्यंजन जैसा घोषत्व या अननाद उत्पन्न होता है, जबकि अघोष व्यंजन होने पर ऐसा नहीं होता है।

अनुनासिकता एवं अनुस्वार की पहचान के कुछ व्यावहारिक एवं पारस्परिक एवं पारम्परिक आधार

1. अनुस्वार का उच्चारण पूर्णत: नासिका से होता है और अनुनासिक का अंशत:। दूसरे शब्दों में, अनुनासिकता का उच्चारण मुख-विवर एवं नासिका-विवर दोनों से होता है, जबकि अनुस्वार का सिर्फ नासिका से।

2. अनुस्वार में अनुनाद (Resonance) की तीव्रता अधिक होती है, अनुनासिक में कम।

3. अनुनासिकतायुक्त स्वरों का उच्चारण स्वर + अनुनासिकता से एक ही प्रयत्न में होता है, जबकि अनुस्वार में व्यंजन एवं अनुस्वार का उच्चारण क्रम से एक के बाद दूसरे का होता है।

4. चूँकि अनुसार एवं अनुनासिकता दोनों का प्रयोग स्वर आधारित है। (अनुनासिकता का प्रयोग स्वर में होता है अनुस्वार का प्रयोग स्वर के बाद होता है), अत: इनका प्रयोग कभी भी शुद्ध व्यंजन अर्थात् स्वर-रहित व्यंजन (यथा- क्, च्, ट्, त्, प्) के साथ नहीं होता है।

5. ध्वनि-प्रक्रिया से प्रतिबंधित होने का कारण अनुनासिक एवं अनुस्वार का रूपिम से पृथक कोई अस्तित्व नहीं होता है। दूसरे शब्दों में, इन ध्वनियों का अकेले स्वतन्त्र प्रयोग संभव नहीं है। या यों कहें कि ये पूर्ण स्वर या व्यंजन नहीं हैं। तथापि, स्वतन्त्र स्वर या व्यंजन न होते हुए भी, प्रयोग में इनकी अर्थ-वहन क्षमता अक्षुण्ण है।

6. अनुनासिक एवं अनुस्वार दोनों का प्रयोग शब्द के प्रारंभिक, मध्यवर्ती और अंतिम तीनां स्थानों पर होता है। जैसे-गाँठ, करूँगा, जाएँ और बंदर, उमंग, एवं। तथापि, मध्य में अनुनासिक का प्रयोग अत्यल्प और अधिकतर भविष्यकालिक क्रियावाचक शब्दों के साथ होता है।

7. शब्द के अंत में व्यनांत अ के साथ नासिक्यता, हो, तो वह अनुस्वारता होती है (जैसे-एवं, स्वयं, शिवं) और यदि व्यंजनांत किसी अन्य स्वर की मात्रा के साथ हो अर्थात् वर्ण के अंत में कोई मात्रा के साथ हो अर्थात् वर्ण के अंत में कोई मात्र हो, तो वह अनुनासिकता होती है। दूसरे शब्दों, में, शब्द के अंत में बिना मात्रा का, अ स्वर से युक्त व्यंजन हो, तो उस पर लगा बिन्दु अनुस्वार होता है, किन्तु यदि उस वर्ण में किसी स्वर की शिरोरेखा से ऊपर लगी हुई या बगल में लगकर ऊपर निकली हुई मात्रा लगी हो, तो उस पर लगा बिन्दु अनुनासिक होता है, जैसे-नहीं, वहीं, कहीं, थीं, में, मैं, हैं, लड़कों, बंदरों, जौं।

8. इसके अतिरिक्त, यदि शब्द का अंत अ को छोड़कर किसी अन्य स्वर के स्वन-प्रतीक (यथा-इ, ई, उ, ऊ, ए, ऐ, ओ औ) के साथ होता है, तो उसके ऊपर अनुनासिकता अर्थात् चन्द्रबिन्दु का प्रयोग होता है। जैसे-आईं, गाऊँ, बताऊँ, आएँ।

9. यदि किसी शब्द के नासिक्य व्यजनांत में आ (ा), उ (ु) या ऊ (ू) की मात्रा लगी हो, तो वहाँ अनुनासिक के प्रतीक-चिन्ह अर्थात् चन्द्रबिन्दु का ही प्रयोग होता है। जैसे-जहाँ, वहाँ, कारवाँ, समाँ, चहुँ, करूँ, हूँ।

10. शब्दों के बहुवचन बनाते समय भी अनुनासिक का प्रयोग किया जाता है, यथा-भाइयों, बहनों, लड़कों, लड़कियों, माताओं, देवियों, सज्जनों, गाँवों, नदियों आदि। किन्तु संबोधन के लिए प्रयुक्त ऐसे शब्दों में नासिक्यता का प्रयोग नहीं होता है, यथा-भाइयों, बहनों, लड़कों, लड़कियों, माताओं, देवियों, सज्जनों।

11. कुछ शब्दों के प्रथम वर्ण में अनुनासिकता के लिए भी चंद्रबिंदु के स्थान पर बिंदु का प्रयोग किया जाता है। जैसे-संयम, यंत, सांकल, सांस-वस्तुत: ऐसे प्रयोग नियमानुकूल नहीं हैं।

12. इसी प्रकार, कुछ शब्दों के अंत में व्यंजनांत अ के साथ अनुनासिक के लिए चंद्रबिंदु के स्थान पर अनुस्वार के प्रतीक़-चिन्ह बिंदु का प्रयोग किया जाता है, जैसे-सायं। यह भी अपवाद है और नियमानुकूल नहीं है।

उपर्युक्त विवेचना से स्पष्अ है कि हिंदी भाषा में अनुनासिकता और अनुस्वारता के स्वरूप एवं अर्थ-भेदकता में पूर्णरूपेण भिन्नता है। भाषा-अलंकरण की दृष्टि से, इनका त्रुटिपूर्ण प्रयोग यदि अलंकारजन्य दोष को जन्म देता है और असंबद्ध ध्वनि-प्रतीकों के साथ या ऐसी परस्पर विपरीत प्रयुक्ति का भाषा पर वैसा ही प्रभाव पड़ता है, जैसे कि किसी महिला के मुख पर दाढ़ी-मूँछ की उपस्थिति से उसके प्रेमी जन पर, जो अर्थ के स्तर पर, इनका गलत प्रयोग उसी प्रकार भ्रम उत्पन्न कर सकता है, जैसे वास को बास, वाद को बाद या वहन को बहन कहने से। असंबद्ध शब्दों के साथ इनका अनावश्यक प्रयोग (जैसे-अटैची को अँटैची या चअ को चं) या सम्बद्ध अपेक्षित स्थलों पर इनका प्रयोग न करना (जैसे-मंदिर को मँदिर या माँ का मां) भाषा के साथ-साथ सामाजिक एवं सांस्कृतिक मूल्यों के क्षरण का कारण बन सकता है। असंबद्ध ध्वनि-प्रतीकों के साथ प्रचलित प्रयोग- एवं, संयम, सांकल, सांस और सायं का प्रयोग भी नितांत असंगत और औच्चारणिक स्वरूप से भिन्न ही होता है।

इस दृष्टि से, हिंदी से अनुनासिक एवं अनुस्वार का प्रयोग न केवल नितांत वांछनीय है, बलिक इस संदर्भ में सजगता और सतर्कता की अपेक्षा भी रखता हैं अन्यथा, इससे न केवल भाषा के रूप में अवांछित एवं अर्थ-भेदक अधोमुखी परिवर्तन होने का खतरा उत्पन्न होता है, बल्कि भाषा की आलंकारिता पर भी प्रभाव पड़ता है।

तमिलनाडु में हिंदी का विकास

○ डॉ. सी. जय शंकर बाबु

तमिलनाडु द्रविड़ भाषा एवं संस्कृति का संगम स्थान है। दक्षिण भारत में तमिल के अलावा तेलुगु, कन्नड एवं मलयालम भाषाओं का प्रचलन हैं। अल्प प्रचलित तुळु को मिलाकर इन पाँचों भाषाओं को पंचद्रविड़ भाषाओं की संज्ञा दी गई है। इनमें तमिलनाडु की बहुप्रचलित भाषा तमिल द्रविड़ परिवार की भाषाओं में अत्यंत प्राचीन, सरल एंव समृद्ध भाषा है। तमिल की लिपि भी दक्षिण की अन्य तीनों लिपियों से अलग एवं विलक्षण लिपि है। तमिल भाषा की सुसमृद्ध साहित्यिक परंपरा भी है। तमिल प्रदेश में हिंदी के प्रचार-प्रसार का प्रसंग भारत की आज़ादी आंदोलन से जुड़ा हुआ है।

बहु-भाषाई भारत में भिन्न भाषा-भाषियों के बीच एक सफल संपर्क माध्यम के रूप में सदियों से हिंदी भाषा की सुनिश्चित भूमिका रही है। भारत की स्वाधीनता की लड़ाई के दिनों में भारतवासियों में एकता की भावना जागृत करने हेतु हिंदीतर प्रदेशों में हिंदी प्रचार कार्य आरंभ हुआ था। दक्षिण भारत की जनता की हिंदी भाषाई ज्ञान को बढ़ाने की संकल्पना से किए गए प्रयासों में राष्ट्रीय एकता की पहल निहित थी। इसी पहल को 'हिंदी प्रचार आंदोलन' की संज्ञा भी दी गई है। यह बात सर्वविधित है कि दक्षिण भारत में व्यवस्थित हिंदी प्रचार आंदोलन का केंद्र तमिलनाडु का मुख्य नगर मद्रास (चेन्नई) ही था। तमिलनाडु की राजधानी चेन्नई दक्षिण भारत में हिंदी प्रचार की अग्रभूमि रही हैं दक्षिण भारत में हिंदी लेखन एवं हिंदी पत्रकारिता की जन्मभूमि भी चेन्नई ही है। दक्षिण भारत में हिंदी प्रचार कार्य आरंभ करने की संकल्पना गाँधीजी के मानस पटल पर 1917 में बनी थी। किंतु गाँधी जी की इस संकल्पना के लगभग ग्यारह वर्ष पूर्व ही चेन्नई में एक तमिलभाषी मनीषी ने हिंदी प्रचार की नींव डाली थी। यह मनीषी कोई और नहीं, तमिल के सुख्यात महाकवि सुब्रह्मण्यम भारती जी थे। सर्वप्रथम भारती जी ने अपने संपादन में निकलने वाली तमिल पत्रिका 'इंडिया' के 15 दिसंबर, 1906 के अंक में तमिलभाषियों से हिंदी सीखने की अपील की थी। इसके अलावा हिंदी जानने वालों के लिए 'इंडिया' पत्रिका में कुछ पृष्ठ नियमित रूप से हिंदी की सामग्री प्रकाशन के लिए सुरक्षित रखे जाने की घोषणा की थी। महाकवि सुब्रह्मण्यम भारती ने न केवल समूचे तमिलनाडु वासियों के प्रतिनिधि के रूप में अपनी भावनाओं की अभिव्यक्ति दी थी, बल्कि राष्ट्रीय एकता के भविष्यद्रष्टा के रूप में भी उन्होंने एकता की भाषा हिंदी का पक्ष समर्थन किया था। भारती जी के ही नेतृत्व में 1908 में सर्वप्रथम चेन्नई के तिरुवेल्लिकेणि (ट्रिप्लिकेन) में हिंदी वर्गों के संचालन का श्री गणेश हुआ था। इस घटना के दस वर्ष बाद गाँधीजी की संकल्पनाओं के अनुरूप दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा की नींव पड़ी। इस कार्य हेतु गाँधीजी ने अपने सुपुत्र देवदास गाँधी को चेन्नई भेजा था।

स्वाधीनता पूर्व युग में ही तमिलनाडु में हिंदी लेखन का आरंभ भी हुआ था। उस समय हिंदी प्रचार की गतिविधियों के लिए प्रकाशित 'हिंदी-प्रचारक' पत्रिका में छोटी-मोटी कविताओं, लेखों के प्रकाशन के साथ ही यहाँ के हिंदी-प्रेमियों में हिंदी में लेखन की प्रवृत्ति विकसित हुई थी। आगे चलकर चेन्नई हिंदी लेखन-प्रकाशन एवं हिंदी पत्रकारिता के लिए उर्वर भूमि साबित हुई। इसी क्रम में तमिलनाडु में हिंदी लेखन का बहुआयामी विकास हुआ है। तमिलनाडु में हिंदी लेखन का लगभग 80 वर्षों का समृद्ध इतिहास है। 1921 में 'स्वयं सेवक' एवं 'भारत तिलक' तथा 1923 में 'हिंदी प्रचारक' के प्रकाशन के साथ ही यहाँ हिंदी लेखन के कुसुम उगने लगे थे। आगे चलकर हिंदी लेखन का इतना विकास हुआ कि देशभर में दक्षिण भारत के हिंदी लेखन की खुशबू फैलने लगी। तेलुगु भाषी हिंदी लेखक आरिगपूड़ि रमेश चौधरी के उपन्यास उत्तर भारत में बड़े चाव से पढ़े जाने लगे थे। आज भी इनके उपन्यास हिंदी प्रदेशों के कई विश्वविद्यालयों के पाठयक्रम में शामिल हैं। तमिलनाडु में हिंदी लेखन की प्रवृत्ति की पुष्टि यहाँ स्वाधीनतापूर्व प्रकाशित हिंदी पत्र-पत्रिकाओं से मिलती है। स्वाधीनतापूर्व युग में ही तमिलनाडु में कुल नौ हिंदी की पत्र-पत्रिकाएँ प्रकाशित हुई थीं। स्वातंत्र्योत्तर युग में इनकी संख्या साठ तक बढ़ गई। हिंदी लेखन के परिप्रेक्ष्य में तमिलनाडु में हिंदी का विकास अवश्य सुनिश्चित होने लगा।

तमिलनाडु में हिंदी लेखन का विश्लेषण करने से यह स्पष्ट होता है कि यहाँ हिंदी साहित्य लेखन के आरंभिक काल में मुख्यत: तमिल एवं हिंदी के बीच आदान-प्रदान का कार्य सुसंपन्न हुआ। प्राचीन तमिल साहित्य की उत्कृष्ट साहित्यिक कृतियों का हिंदी में अनुवाद हुआ। हिंदी के प्राचीन साहित्य का भी यदा-कदा तमिलीकरण हुआ। इससे तमिल एवं हिंदी के बीच तुलनात्मक अध्ययन का मार्ग प्रशस्त हुआ। आगे जाकर भी इस आदान-प्रदान का कार्य तो जारी रहा, मगर एक स्वागतयोग्य प्रगति के रूप में यहाँ के तमिल एवं तेलुगुभाषी भी मौलिक हिंदी लेखन में आगे बढ़ने लगे। हिंदी साहित्य की विभिन्न विधाओं में इनके मौलिक लेखन से हिंदी साहित्य की श्रीवृद्धि में अवश्य योगदान रहा। यहाँ के हिंदी लेखकों में विभिन्न क्षेत्रों के एवं विभिन्न व्यवसायों से जुड़े लोग हैं, जिनमें चंद हिंदी भाषी भी हैं, जिनमें अधिकांश लोगों का जन्म एवं पढ़ाई तमिलनाडु में हुई तथा नौकरी-पेशा एवं स्थाई निवास भी तमिलनाडु में ही है। ऐसे सभी लेखकों के योगदान की यहाँ चर्चा की जा रही है। इनके साहित्य में भी स्थानीय भाषा, रीति-रिवाज, मान्यताएं एवं संस्कृति का स्पष्ट प्रभाव नज़र आता है। इन सभी लेखकों के योगदान एवं लेखन कार्य में निरंतर सक्रियता से हिंदी साहित्य की समृद्धि के साथ-साथ तमिलनाडु में तथाकथित हिंदी विरोध के आलोक में अधिकांश लोग इस तथ्य से अपरिचित हैं कि यहाँ हिंदी लेखन की लगभग एक शताब्दी की परंपरा है और लेखन-प्रकाशन में निरंतरता है। कई लेखकों के उत्कृष्ट सृजन ने राष्ट्रीय स्तर की ख्याति अर्जित की है। यहाँ हिंदी प्रकाशन प्रगति पर

शेष पृष्ठ 88 पर

राष्ट्रीय विचार मंच का गठन क्यों?

○ सिद्धेश्वर

देश में आज कई ऐसे वर्ग हैं, जो अपनी-अपनी काली करतूतों से समाज व देश को दूषित कर रहे हैं। खासकर जब देश के कर्णधार लोग मार्ग से भटक रहे हैं, अपने पवित्र पेशे के साथ विश्वासघात कर रहे हैं, तो ऐसे समय में प्रबुद्ध तथा समाज के जागरुक लोग ही हैं, जो उनकी काली करतूतों का भंडाफोड़ कर सकते हैं तथा आमजनमानस को कुरेदकर उन्हें दिशा प्रदान कर सकते हैं। कुछ इसी भाव से प्रेरित होकर राष्ट्रीय चेतना की वैचारिक संस्था 'राष्ट्रीय विचार मंच' की स्थापना की गई है। पिछले वर्षों में इसने राष्ट्रीय स्तर पर अपना अभियान चलाकर कुछ संवेदनशील लोगों की तलाश के लिए अपना क़दम बढ़ाया है, जिसका परिणाम यह निकला कि पश्चिम भारत के कई राज्यों के अतिरिक्त दक्षिण भारत के चारों राज्यों की राजधानी में मंच की शाखाएँ काम कर रही हैं, किंतु उनकी गति अभी धीमी है, कारण कि मैंने भी समन्वय करने में शिथिलता बरती है।

दरअसल, आज कोई लोहिया या जे०पी० हमारे बीच नहीं हैं और न गाँधी अवतार लेने वाले हैं। बुद्धिजीवी वर्ग राजनीति को गंदा बताकर वे अपने को गंदगी से दूर रखना चाहते हैं और आज की गंदी राजनीति को वे नियति मान बैठे हैं यही उनकी नासमझी है। वह वर्ग हमेशा इस भ्रम में रहा है कि क्रांति उसकी मुट्ठी में बंद है और फड़फड़ाती कविता, कहानी लिखकर वह भ्रष्टाचार, झूठ और पाखंड की व्यवस्था के ख़िलाफ़ युद्ध लड़ रहा है। वह यह जानता ही नहीं कि वह चोरों और लूटेरों की आपसी लड़ाई में उनका हथियार बना हुआ है। इन आत्ममुग्ध बुद्धिजीवियों को अब जागना होगा और आज की समस्याओं से रूबरू होकर उनका समाधान निकालना होगा। और यह काम वैचारिक क्रांति के द्वारा संभव है। राष्ट्रीय विचार मंच इसी दिशा में प्रयत्नशील है और विचार एवं विवेक की सहायता से इसके सदस्य अपने अनुभव को परिभाषित कर संकल्प के ज़रिए विषम से विषम परिस्थितियों में भी अपने समाज व देश की समस्याओं का सफलतापूर्वक समाधान निकालने के लिए प्रयासरत हैं। मन में अगर दृढ़ इच्छाशक्ति और संकल्प हो, तो कठिन से कठिन कार्य भी सरल हो जाता है बशर्ते कि विवेक से काम लिया जाए। विवेक और संकल्प व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन में सामंजस्य, अनुरूपता और सफलता का संचार करते हैं। इन दोनों में इतनी अदभुत शक्ति होती है कि मात्र कुछ नारों से समाज को आंदोलित किया जा सकता है मंच ने इन्हीं दोनों के बल पर आगे बढ़ने का निर्णय लिया है।

आज हमारे सामने सबसे बड़ी चुनौती भाषा, क्षेत्र और धार्मिक संकीर्णता के नाम पर अलगाव, परस्पर शत्रुता और घृणा तथा हिंसा फैलाने वाली ताकतों को रोकना है। हमें विभिन्न धार्मिक, भौगोलिक और भाषाई वर्गों के बीच सौहार्द का वातावरण बनाना है, ताकि न केवल हमारी राष्ट्रीय एकता व अखंडता अक्षुण्ण रह सके, बल्कि विकास की गति तेज हो सके और लोगों का जीवन बेहतर बन सके। इसके लिए वैचारिक क्रांति जरूरी है। राष्ट्रीय विचार मंच और इसके मुख-पत्र 'विचार दृष्टि' वैचारिक क्रांति को उकसाने के साथ-साथ अतीत की समृद्ध परंपराओं एवं वर्तमान के बदलते परिवेश से देशवासियों को परिचित करा रही है और अँधकार को धिक्कारने की बजाय एक दीप जलाने का प्रयास कर रही है। 30 एवं 31 अक्टूबर, 2008 को नई दिल्ली में मंच एवं पत्रिका के द्वितीय राष्ट्रीय अधिवेशन का आयोजन भी कुछ इसी उद्देश्य से किया गया है। अधिवेशन की पीठिका तैयार करने हेतु मंच का एक चार-सदस्यीय दल ने इसके राष्ट्रीय महासचिव के नेतृत्व में दक्षिण भारत के चारों राज्यों के विभिन्न क्षेत्रों का दौरा पिछले 24 जुलाई से 10 अगस्त 2008 तक किया और नई विचार क्रांति के प्रति लोगों को सजग किया।

वैसे भी जब देश में हर आदमी ग़लत काम कर रहा हो, प्रवृत्ति सुविधाभोगी हो, लोकतंत्र की ओट में निरंकुश भीड़तंत्र की हुकूमत हो, ऊँची कुर्सियों पर विराजमान लोगों ने क़ानून अपने हाथ में ले लिया हो, प्रशासनिक अधिकारी अपने कर्त्तव्य भूल गए हों, पूरा प्रशासन सिर से पाँव तक आकंठ भ्रष्टाचार में डूब गया हो तथा जनता किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो गई हो तब खूनी क्रांति नहीं वैचारिक क्रांति जरूरी हो जाती है, और यह क्रांति सत्ता का सुख भोग रहे न तो राजनीतिज्ञ ला सकते हैं और न सुविधाभोगी भ्रष्ट अधिकारी के वश की यह बात है। यह वैचारिक क्रांति एक ही बात को सदियों से दोहराते आ रहे कथावाचक भी नहीं ला सकते। लोगों के सोचने का ढंग, विचार करने का ढंग, अन्याय के खिलाफ लड़ने की लचर प्रणाली को बदलने की क्षमता यदि किसी में है, तो वह है प्रबुद्धजन। चाहे वह कॉलेज व विश्वविद्यालय के विचारवान छात्र समुदाय हों या प्राध्यापक, मीडिया के प्रबुद्ध पत्रकार हों या रचनाकार-साहित्यकार, सच की लड़ाई लड़ने वाले वे ही हो सकते हैं। चिंतक तथा विचारक ही वैचारिक क्रांति लाने में समर्थ हैं। अब वह वक़्त आ गया है जब उन्हें सक्रिय होना चाहिए। 'राष्ट्रीय विचार मंच' और 'विचार दृष्टि' इसी दिशा में प्रयासरत है। आज हमारे समाज में ऐसे लोगों की कमी नहीं है, जो सारी स्थिति को भलि-भाँति समझते हैं और जिनके सक्रिय हस्तक्षेप से व्यापक फेरबदल की गुँजाइश भी है। ज़रूरत केवल इस बात की है कि वे नक़ली कुहासेवाले खोल से बाहर आएँ। यह संस्था ऐसे प्रबुद्धजनों को एकतरफ़ जहाँ नक़ली कुहासेवाले खोल से बाहर लाने का प्रयास कर रही है, वहीं वैचारिक क्रांति लाने वाले पहरुए की तलाश कर रही है।

संपर्क: राष्ट्रीय महासचिव, संपादक,
'विचार दृष्टि', 'दृष्टि', यू० 207,
शकरपुर, विकास मार्ग,
दिल्ली-110092
फोन : 011-22530652

दांपत्य के रिश्तों में तेजी से विघटन

○ सिद्धेश्वर

भारत में विवाह को स्त्री-पुरुष के बीच जन्म-जन्मांतर का संबंध समझा जाता है, मगर जैसे-जैसे पश्चिमी देशों की तर्ज पर तलाक लेने की प्रवृत्ति बढ़ रही है उससे ऐसा लगता है कि दांपत्य के रिश्तों में तेजी से विघटन हो रहा है। ताजा आँकड़ों के अनुसार दिल्ली की विभिन्न अदालतों में प्रतिवर्ष दस हजार से ज्यादा तलाक के मामले दायर हो रहे हैं और राजधानी की निचली अदालतों में पाँच हजार से अधिक तलाक के मामले विचाराधीन हैं। यह दांपत्य जीवन के लिए शुभ संकेत कतई नहीं हो सकते। यह तो सरकारी आँकड़े हैं। इसके अतिरिक्त काफी बड़ी संख्या में ऐसे दंपति भी हैं, जो आपसी मतभेदों की वजह से स्त्री-पुरुष एक दूसरे से अलग रह रहे हैं। इसी प्रकार गुजारा भत्ता के लिए भी अदालतों में हजारों की संख्या में मामले लंबित हैं।

स्त्री-पुरुष के रिश्तों में तेजी से हो रहे विघटन के कारणों की तह में जाने से ऐसा लगता है कि आज की युवा पीढ़ी पश्चिमी संस्कृति से प्रेरित होने की वजह से रिश्तों का बोझ उठाने में समर्थ नहीं हो पा रही है। कारण कि युवा पीढ़ी निश्चित तौर पर अपने कैरियर को लेकर अधिक सजग हुई है। इसी का परिणाम है कि खासकर नगरों और महानगरों में एकल परिवार की संख्या में लगातार बढ़ोतरी हो रही है। अधिकांश एकल परिवार ने आधुनिक जीवन को अपनाया है। अपनी जरूरतों को पूरा करने के लिए धन कमाने की होड़ ने तनाव को बढ़ा दिया है जिसका दुष्परिणाम यह होता है कि कई बार पति-पत्नी के रिश्तों में खटास उत्पन्न हो जाती है।

दांपत्य जीवन में अशांति के लिए अक्सर महिलाएँ भी कम जिम्मेदार नहीं होती हैं। वे अपने पति की आमदनी के साधनों की सीमा को दरकिनार कर अपनी फरमाइश बढ़ा देती हैं जिससे तनाव बढ़ता है। दूसरों की देखा-देखी में भौतिक सुविधाओं की माँग बढ़ने से भ्रष्टाचार एवं गलत कार्यों को बढ़ावा मिलता है। यदि महिलाएँ अपने ही साधनों में संतुष्ट रहें, तो तनाव से बचा जा सकता है। इसी प्रकार आधुनिकता के नाम पर महिलाओं में बढ़ती धूम्रपान व शराब सेवन की प्रवृत्ति स्वस्थ रिश्तों में आड़े आती है। कुछ महिलाएँ आजादी के नाम पर 'खुली छत' चाहती हैं

विवाहेतर संबंध रिश्तों के विघटन के कारकों में से एक है। वैसे भी हिंदू विवाह काफी लचीला है। उच्चत्तम न्यायालय ने भी कहा है कि यह अधिनियम घरों को जोड़ने की बजाय, तोड़ रहा है। विवाह जैसे पवित्र संबंध को बचाने के लिए समाजसेवी संस्थाओं को आगे आने की आवश्यकता है। परिवारों का इस कदर टूटना समाज को कमजोर बना सकता है।

आधुनिक समाज में परिवर्तन के इस दौर में उपभोक्तावादी संस्कृति ने मानव की सहजात संस्कृति को सबसे ज्यादा प्रभावित किया है। एक ओर जहाँ इस संस्कृति ने जीवन शैली में काफी बड़े स्तर पर बदलाव किया है, वहीं दूसरी ओर मानव संबंधों को भी प्रभावित किया है। आज मानवीय संबंध उपभोक्तावादी समझौते की कसौटी पर कसे जा रहे हैं। सहज, स्वाभाविक, संबंध आडंबरपूर्ण, यांत्रिक व नकली बनते जा रहे हैं और निजी स्वार्थ हर जगह हावी होते जा रहे हैं। इस बाजारी संस्कृति का सबसे आसान शिकार सरल, सहज और निष्कपट स्त्री होती है जो अपनी छटपटाहट तक व्यक्त नहीं कर पाती।

दरअसल, आज के उपभोक्तावादी संबंधों में नैतिकता बिल्कुल गायब होती जा रही है। हालाँकि, नैतिकता के मापदंड वही हैं लेकिन मापित वस्तु के पैमाने बदल गए हैं, अर्थ ही नहीं, शब्द भी बदल गए हैं। आधुनिकता की इस अँधेरी दौड़ में व्यवस्था ही परिवर्तित हो गई है। नए मानक स्थापित हो रहे हैं। ऐसी स्थिति में स्वार्थ सिद्धि तक यह उपभोक्तावादी संबंध चलता है, फिर नए संबंध तलाशे जाते हैं। समाज में व्याप्त स्वार्थपरता और स्वार्थ सिद्धि की इस कुत्सित बुराई में उपभोक्तावादी संबंध ही जिम्मेदार है। तेजी से विकसित हो रही इस संस्कृति की बलिवेदी की आह नहीं सुनी जाती, सिर्फ वाह का जनून मनाया जाता है। ऐसे में समाज को जरूरत है सही मार्गदर्शन की, जागरूकता की और सही समझ की।

दांपत्य में दरार पड़ने के कई कारणों में एक कारण यह भी है कि जिस अच्छी शिक्षा, सुघड़ गृहिणी, विभिन्न प्रकार के कामों को सुचारू रूप से कर सकने की क्षमता, सुंदरता, सुघड़ता जैसे गुणों से प्रभावित होकर पत्नी का चयन किया जाता है वही पति के लिए अविश्वास, ईर्ष्या का कारण बन जाता है, पत्नी का सौंदर्य पति को घुन की तरह खाने लगता है। इसी प्रकार कोई स्त्री अपने पति का चयन करते समय पुरुष के आकर्षण, प्रभावशाली, कैरियर में सफल, प्रेमपूर्ण और लोकप्रिय होने की बात को ध्यान में रखती है, शादी के कुछ समय बाद पति के प्रति उसका रूख भी शंकालु होने लगता है, जो दांपत्य जीवन को बरबादी के कगार पर ला देता है।

इसी तरह कामकाजी दंपत्तियों के बीच धन और संपत्ति पर नियंत्रण का प्रयास खतरनाक टकरावों में बदल जाता है और दांपत्य सूत्र में बँध पति-पत्नी के बीच पैसों की दीवार खड़ी हो जाती है। अक्सर अच्छी कमाई करने वाली महिलाएँ अपने पैसे पर पति का नियंत्रण बरदाश्त नहीं कर पाती हैं। कारण कि महिलाएँ वैवाहिक जीवन में खुद को असुरक्षित महसूस करती हैं और वे धन पर नियंत्रण प्राप्त करना चाहती हैं, ताकि दांपत्य में कोई प्रतिकूल परिस्थिति उत्पन्न होने पर वे मजबूर न होने पाएँ। यह मुद्दे स्वाभाविक रूप से झगड़ों को जन्म देते हैं, क्योंकि पुरुष इस बात को आसानी से पचा नहीं पाते कि महिलाएँ आर्थिक रूप से उनके बराबर खड़ी हो जाएँ। इस दृष्टिकोण से मेरा ख्याल है कि दांपत्य जीवन में दोनों जीवन साथियों की समान भूमिका होनी चाहिए। यदि पत्नी वफादारी, प्रेम, खुशी, विश्वास और संपत्ति के समर्पण की भावना रखती है, तो पति भी ऐसा क्यों नहीं कर सकता? दरअसल दांपत्य जीवन में दोनों जीवन साथी प्रसन्नता और सुरक्षा के मोती चाहते हैं। इनकी अनुपस्थिति में दांपत्य जीवन खोखली सीप-सा व्यर्थ हो जाता है।

कहना नहीं होगा कि संबंधियों और ससुराल पक्ष का हस्तक्षेप भी कई दंपत्तियों में तनाव की वजह बनता है। इसलिए जरूरत इस बात की है कि ससुराल पक्ष के लोगों के साथ-साथ सगे-संबंधियों का हस्तक्षेप दंपत्तियों में नहीं हो। इसी प्रकार वैवाहिक जीवन में दंपत्ति एक दूसरे के लिए जब घटिया भाषा का इस्तेमाल करने लगते हैं, तो दांपत्य में दरारें पड़ने लगती हैं इसलिए आवश्यकता इस बात की है कि अवमानना, अविश्वास और, एक दूसरे को नीचा दिखाने वाले शब्द और उपनाम को जीवन शैली में शामिल न किया जाए यह एक ऐसी खतरनाक परिस्थिति है जिससे कई बार उबरना मुश्किल हो जाता है।

संपर्कः संपादक, 'विचार दृष्टि', 'दृष्टि', यू० 207, शकरपुर, विकास मार्ग, दिल्ली-92

जून, जुलाई और अगस्त, ०८ में यात्रा ही यात्रा

खुब भायी देहरादून और मसूरी की यात्रा

उत्तर प्रदेश से कुछ वर्ष पूर्व बँटा उत्तराखण्ड एक नई राज्य इकाई है। देशवासियों के मन में वह हिमालय की दिव्यता से जुड़ा क्षेत्र है। आस्थावादी धार्मिकों के लिए वह ऐसी देवभूमि है जिसकी पावनता परितृप्ति देती है। आजादी के संघर्ष की अवधि में किस तरह देवभूमि के आम लोगों ने अपनी सुख-सुविधाओं की बलि देकर आस्था के बलबूते पर निहत्थे होते हुए भी जंगलों में अपने को एकजूट किया था-यह आज भी भारतीय राष्ट्रीय गौरव की अविस्मरणीय गाथा है।

उत्तराखण्ड के वर्त्तमान परिदृश्य वैश्वीकरण की चमक-दमक में धन्ना सेठों और उनके कारिंदों का जीवन तो थोड़ा जीने योग्य बना डालता है, वरना पहाड़ों में तीर्थयात्रियों की सेवा करते बाल मजदूर, सड़क निर्माण में खटते स्त्री-पुरुष, भयंकर शीत में नंगे बदन रहने के लिए मजबूर ग्रामीण अब भी वैसी ही हालत में देखने को मिले। आज राजनेताओं के मोटे पेट और चमकीले चेहरे, लाल बत्तियों की चमक-दमक में फुर्तीले षड्यंत्रकारी- ये सब नहीं जानते कि उत्तराखण्ड जैसे भरपूर खजाने को लोकोपयोगी बनाने के लिए किस किस्म की नियोजनाओं की जरूरत है।

प्रकृति ने उत्तराखण्ड को फुर्सत के क्षणों में सजाया-संवारा है। सैकड़ों की संख्या में ऐसे पर्यटन स्थल उत्तराखण्ड और उसकी राजधानी देहरादून के अतिरिक्त उसके आसपास हैं, जो अपनी एक अलग पहचान बनाए हुए हैं और जो पर्यटकों के दिलो-दिमाग में छा गए हैं। जैसे मसूरी, हरिद्वार, ऋषिकेश और नैनिताल ऐसे स्थल हैं जहाँ पर्यटक हर मौसम में पहुँच सकते हैं। वहाँ खिली चटक धूप पर्यटकों के लिए आकर्षण का काम करती हैं। गर्मियों में तो यहाँ की सुंदरता और शीतलता आने वाले शैलानियों को जैसे नवजीवन का अहसास कराती है। उनी कपड़े हर समय साथ रखना बेहतर होता है। चलते-चलते थकान मिटाने के लिए इन स्थलों के किसी मैदानी भाग में बैठकर सामने दिखाई देते हरियाली बिखेरते पहाड़ किसी कवि को कविता कहने और किसी भी चित्रकार को तुलिका उठाने के लिए मजबूर कर देते हैं। कई ऐसे भी स्थल हैं, जो विस्मयकारी हैं। कभी-कभी घने जंगलों के बीच से गुजरते हुए ये रास्ते मन मोहने वाले हैं।

उत्तराखण्ड के दो स्थल- देहरादून और मसूरी ने पिछले दिनों मेरे मन को भी मोहा जब देहरादून से प्रकाशित 'साहित्य प्रभा' पत्रिका के संपादक डॉ. चंद्र सिंह तोमर 'मयंक' ने देहरादून में पत्रिका की ओर से आयोजित दो दिवसीय राष्ट्रीय सम्मेलन में न केवल 'वर्तमान बाल साहित्य के विकास में अवरोधक तत्त्व और समाधान, विषय पर अपने आलेख का पाठ करने, बल्कि राष्ट्रीय शिखर साहित्य सम्मान समारोह में मुझे साहित्य प्रभा भाषा भारती सम्मान से सम्मानित करने के लिए सादर आमंत्रित किया। यह अवसर मेरे लिए सुखद और गरिमामयी इसलिए रहा कि निर्धारित विषय पर अपने विचार व्यक्त करने के साथ-साथ उत्तराखण्ड के स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण मंत्री डॉ० पोखरियाल 'निशंक' द्वारा मैं भाषा भारती सम्मान से सम्मानित भी किया गया और साथ ही समारोह में पधारे अनेक सुधी साहित्यकारों सहित देहरादून में पदस्थापित ओएनजीसी के मुख्य प्रबंधक (राजभाषा) तथा राष्ट्रीय स्तर के ख्याति प्राप्त गीतकार डॉ. बुद्धिनाथ मिश्र, डॉ. राजनारायण राय, डॉ० रामनिवास 'मानव', प्रो० 'शैलेश' जी तथा श्रीमती वीणा पानी जोशी जैसे सप्रसिद्ध साहित्यकारों से मिलने और विचारों का आदान-प्रदान करने का सुअवसर भी मिला। मैं तहेदिल से आभार व्यक्त करता हूँ देहरादून दूरदर्शन के श्री रावत और दैनिक जागरण सरीखे अनेक समाचार पत्रों से जुड़े पत्रकार बंधुओं के प्रति जिनके सौजन्य से दूरदर्शन पर हमारे साक्षात्कार प्रसारित हुए तथा दैनिक समाचार-पत्रों में सचित्र समाचार प्रकाशित हुए। डॉ० बुद्धिनाथ मिश्र का विशेष रूप से आभारी हूँ, जिन्होंने देहरादून के वसंत विहार इन्क्लेव में अपनी नवनिर्मित कोठी में मुझे चाय-पान का अवसर दिया जहाँ मुझे न केवल उस इलाके की प्राकृतिक छटा का अवलोकन करने का मौका मिला, बल्कि घोष दा तथा मुरादाबाद से पधारे कविवर माहेश्वर तिवारी सरीखे सुप्रसिद्ध गीतकारों से रू-ब-रू होने का अवसर भी और सबसे बड़ी बात तो यह हुई कि लगभग एक वर्ष से मेरे मन में अनजाने एक भ्रम समा गया था, वह डॉ० मिश्र के निवास पहुँचते ही दूर हो गया। हुआ यूँ कि जैसे ही डॉ० मिश्र की गाड़ी उनके द्वार पर लगी जिस भद्र महिला ने डॉ० मिश्र का स्वागत किया और मैंने उनका अभिवादन, उन्हें देखकर मैं असमंजस में पड़ गया कि पिछले वर्ष न्यूयार्क में आयोजित आठवें विश्व हिंदी सम्मेलन में जो महिला डॉ० मिश्र के हर कदम का साथ दे रही थी और सम्मेलन के दौरान अथवा भ्रमण के दौर में हमेशा छाया की तरह लगी रही, क्या वह महिला इनकी असली पत्नी नहीं हैं? डॉ० मिश्र ने एक पल के लिए भी यह संकेत नहीं दिया कि उनके साथ छाया की तरह रहने वाली महिला उनकी धर्म पत्नी नहीं, बल्कि ओएनजीसी की दिल्ली स्थित कार्यालय में राजभाषा अधिकारी हैं जिनका नाम श्रीमती इला शर्मा है। डॉ० मिश्र ने इस राज़ को राज़ रहने दिया वह भी सही इसलिए था कि पुरुष प्रधान समाज की सोच-मानसिकता की कुत्सित उपज से नारी

आज अभिशप्त है। जब कभी डॉ० मिश्र को अपने कैमरे में कैद करना चाहा श्रीमती इला शर्मा भी बतौर उनकी धर्मपत्नी कैद कर ली गईं। यहाँ तक कि हमारी प्रकाश्य पुस्तक 'समकालीन संपादकीय' में भी कुछ तस्वीरों का समावेश कर लिया गया। बिहार से साहित्यकार जो भी भारतीय प्रतिनिधि मंडल में शामिल थे उनकी तस्वीर के साथ भी श्रीमती इला शर्मा जी खड़ी हैं, मगर श्रीमती डॉ० बुद्धिनाथ मिश्र के रूप में। यह तो कहिए कि देहरादून जाते वक्त अपनी प्रकाश्य 'समकालीन संपादकीय' पुस्तक की कम्प्यूटर पर अक्षर संयोजित सामग्री को अपने पेन ड्राइव में कैद कर डॉ० मिश्र के अवलोकनार्थ लेते गया था, जहाँ राज़ खुलने पर मेरा माथा चकराया और मैं अपराधबोध से ग्रस्त हो गया। डॉ० मिश्र ने अपने कम्प्यूटर पर अपनी पुत्रबधु के सहयोग से जब पेन ड्राइव की सामग्री को सेव किया, तो अपनी अनभिज्ञता में की गई गलती का मुझे अहसास हुआ। यह बात डॉ० मिश्र की धर्मपत्नी के सामने जब हिचकिचाहट के साथ मैंने रखी, तो उन्होंने भी बहुत विनोदपूर्ण और सरस एवं सहज ढंग से कहा, 'सिद्धेश्वर जी, इन कवियों का क्या ठिकाना? कब और किस घड़ी में कवयित्री के रूप में कबूतरी मिल जाए। उनके विनोदपूर्ण उत्तर सुनकर मेरे मन के कोने में उन दिनों की यादें उमड़ने-घुमड़ने लगीं, जब कार्यालय, महालेखाकार, राँची अथवा पटना में केंद्रीय सचिवालय हिंदी परिषद और बदम-ए-अदब की ओर से मैं प्रत्येक वर्ष बड़े पैमाने पर अखिल भारतीय कवि व मुशायरा सम्मेलन आयोजित किया करता था और परिषद के अध्यक्ष की हैसियत से आयोजक होने के नाते कवि-कवयित्रियों के आवभगत में कुछ समय देना पड़ता था और उस कुछ समय में ही कवि-कवयित्रियों के सारे नखरे देखने को मिलते थे जिसके प्रत्यक्ष साक्षी कई सम्मेलन में डॉ० मिश्र स्वयं रह चुके हैं। अजी साहेब! कई बार तो उनकी ऐसी करकतें होती थीं कि मुझे हारकर अपने सहकर्मी भाई उमेश्वर सिंह को अपना वह दायित्व सौंपकर चैन लेना पड़ता था, क्योंकि भाई उमेश्वरजी कवि-कवियित्रियों के प्रति समुचित सम्मान भाव दर्शाने में कभी कोई-कसर नहीं उठा रखते थे।

यह किस्सा यहीं खत्म नहीं होता, दिल्ली वापस आने पर शीघ्र ही मैंने अपने मुद्रक भाई आशीष से संपर्क साधा और हमारी सारी व्यथा-कथा सुनने के बाद उसने तस्वीर के नीचे लिखे शब्द 'श्रीमती डॉ० बुद्धिनाथ मिश्र की' जगह श्रीमती इला शर्मा किया। तब कहीं जाकर मैं भूल से हुए अपने भ्रम और अपराध बोध से मुक्त हो पाया। इस मायने में देहरादून स्थित डॉ० मिश्र के नवनिर्मित आवास में जाकर चाय की चुस्की लेना कारगर साबित हुआ। विश्व की सर्वशक्तिशाली और विकसित देश अमेरिका के न्यूयॉर्क की भौतिक सुख-सुविधाओं की चकाचौंध से भ्रमित मन रिश्ते की सच्चाई-गहराई को अच्छी तरह समझ नहीं पाता और समझ तब आती है जब अपने देश लौटने पर भ्रम का मायाजाल टूटता है। जैसा कि मेरे साथ हुआ। अब बढ़ें अपनी यात्रा की अगली कड़ी की ओर।

देहरादून के कर्णपुरा स्थित होटल पथिक जहाँ हमलोग ठहरे थे, में बारिश की फूँहारों का जो आनंद मिला, उसका क्या कहना!

'विचार दृष्टि' के सहायक संपादक उदय कुमार 'राज' के सपत्निक सानिध्य ने इस यात्रा में चार चाँद लगाया, क्योंकि मेरी धर्मपत्नी श्रीमती बच्ची प्रसाद, जो 10 दिसंबर 2005 में बिटिया अंजलि के परिणय-सूत्र में बँधने के पश्चात् से हमारी निजी सचिव का काम भी देख रहीं हैं यात्रा में साथ थीं।

सच मानिए, किसी को जानने के लिए यूँ तो पूरी जिंदगी कम पड़ जाती है, पर यदि थोड़ा-सा प्रयास करें, तो बहुत हदतक आप बिना एक शब्द बोले दूसरे को जान सकते हैं। हमारे साथ भी वही हुआ। बॉडी लैंग्वेज की थोड़ी समझ आपको सामनेवाले के मन में चल रही उन बातों को आसानी से बता देती हैं, जिनको जानना मुश्किल होता है। भाई उदय जी और उनकी पत्नी लताजी की भाषा भोजपुरी होते गए भी हम दोनों पति-पत्नी के लिए उन्हें जानना मुश्किल नहीं हुआ और बड़ी अतरंगता के साथ यात्रा की दूरी तय की।

16 जून 2008 को अहले सुबह होटल पथिक को अलविदा कह एक प्राइवेट कार से हम चारों उत्तराखण्ड की राजधानी और देवभूमि के नाम से मशहूर देहरादून से कुछ ही दूरी पर स्थित पहाड़ों की रानी मसूरी के लिए चल पड़े। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि मसूरी अपनी कुदरती खूबसूरती, घुमावदार हरे-भरे रास्तों और इन सबसे अहम पहाड़ियों से खेलते, टकराते और बरस जाते बादलों के चलते पर्यटकों को लुभाने के ढेरों स्थान उपलब्ध कराती है। मसूरी के इर्द-गिर्द कई रोचक स्थल हैं जिन सब का तो हमलोगों ने भ्रमण नहीं किया, पर उन पहाड़ियों की चोटियों पर अठखेलियाँ करते बादलों के अद्भुत नजारों का भरपूर आनंद उठाया जिसके लिए 'विचार दृष्टि' के संपादकीय सलाहकार तथा राष्ट्रीय विचार मंच के वरिष्ठ उपाध्यक्ष और भारतीय लेखा एवं लेखा परीक्षा सेवा के वरिष्ठ अधिकारी श्री नंदलालजी के प्रति मैं आभार व्यक्त करता हूँ, जिन्होंने हमें पत्नी को साथ ले जाने का सुझाव व निर्देश दिया।

जैसाकि मैंने पूर्व में कहा कि अहले सुबह मसूरी पहुँचकर पराठे और चाय का आनंद लिया और बाहर रिमझिम वर्षा होती रही। सच कहिए, तो मौसम कैसा भी हो, प्रकृति का सर्वाधिक सुंदर रूप अहले सुबह में ही होता है। जन-जागरण और चिड़ियों की चहचहाहट के साथ प्रकृति भी जागती जान पड़ती है। ओस से भीगी धरती को देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि जैसे रात के आँसू मोती के मुस्कराहट बन गए हों सूर्य की किरणों का सुनहरा आवरण तब धरा पर फैलने को होता है और पहाड़ों के पास से गुजरते हुए उमड़ते-घुमड़ते बादलों के बीच निकलता दिखता है। हवाएँ रात की चाँदनी में नहाकर आई होती हैं, तो पेड़ों पर पत्ते क्या, टहनियाँ भी उजाले का राग सुनकर झूम रही होती हैं। प्रात: की वह छटा आँखें मलकर नींद को दूर करती जैसे कह रही हो- 'उठ जाग मुसाफिर भोर भई, अब रैन कहाँ जो सोवत है।' इस संसार का मुसाफिर जागे न जागे, प्रकृति का जागरण तो सूर्य की किरणों से पहले फूटे उजास के साथ ही हो जाता है। सो प्रकृति के इस जागरण और सूर्य की किरणों से फूटे उजास का जो आनंद हमलोगों ने उठाया वह वर्णनातीत है, शब्दों में बाँधना मुश्किल हो रहा है। दूसरी तरफ नव नियुक्त 'विचार दृष्टि' के उत्तराखण्ड ब्यूरो प्रमुख भाई शशिभूषण बडोनी का सान्निध्य और सदाशयता ने हम चारों को भाव-विह्वल कर दिया और मसूरी को अलविदा कर देहरादून आकर रात साढ़े दस बजे की बस से नई दिल्ली वापस लौट आया उन्हीं यादों को संजोए।

बीकानेर की अनायास यात्रा:

बीकानेरी भुजिया से अधिक भाए छोटू-मोटू के रसगुल्ले

17 जून 2008 को प्रातः देहरादून और मसूरी की यात्रा से दिल्ली लौटे ही थे कि 22 जून को बीकानेर की अनायास यात्रा का कार्यक्रम बन गया एक सामाजिक काम को लेकर। 'विचार दृष्टि' के वित्त प्रबंधक भाई अरबिंद कुमार उर्फ पप्पू की छोटी बिटिया शिल्पा की शादी को लेकर किसी योग्य वर की तलाश कर ही रहे थे कि बीकानेर स्थित नेशनल रिसर्च सेंटर ऑन कैमेल (एन.आर.सी.सी.) में पदस्थापित एक वैज्ञानिक के बारे में पता चला। फिर क्या था भाई पप्पूजी के आग्रह पर उनके साथ 22 जून 2008 की रात दस बजे दिल्ली के सराय रोहिल्ला स्टेशन पहुँचकर राजस्थान संपर्क क्रांति एक्सप्रेस से बीकानेर के लिए हमलोग प्रस्थान कर गए। साथ में थे 'विचार दृष्टि' के विपणन प्रबंधक भाई सतेन्द्र सिंह। इसे महज संयोग कहा जाएगा कि प्रस्थान के दिन यानी 22 जून को ही मंच की राष्ट्रीय कार्यकारिणी की नई दिल्ली के दीन दयाल उपाध्याय मार्ग स्थित राजेन्द्र भवन के सेमिनार हॉल में एक महत्त्वपूर्ण बैठक भी थी जिसमें आगामी 30-31 अक्टूबर 2008 को नई दिल्ली में आयोजित मंच एवं पत्रिका के द्वितीय दो दिवसीय राष्ट्रीय अधिवेशन के स्वरूप को अंतिम रूप देना था और उसी शाम पौत्र समीर रंजन का 6वाँ जन्म दिवस भी। ठीक संध्या 7 बजे बैठक की समाप्ति के उपरांत समीर के जन्म दिवस समारोह में शामिल हुआ, किंतु केक कटने के पूर्व ही गाड़ी पकड़ने के लिए रवाना होना पड़ा, क्योंकि गाड़ी तो अपनी सवारी के लिए इंतजार नहीं करती। हालाँकि ऐसा कहना भी युक्तिसंगत इसलिए नहीं लगता, क्योंकि भारतीय राजनीति की वर्तमान लोकतांत्रिक व्यवस्था में गिरावट के चलते कई अति विशिष्ट नेताओं के अतिरिक्त उनके सगे संबंधियों के लिए कई स्टेशनों पर गाड़ी इंतजार करते सुना गया है। समाचार पत्रों में इस आशय की खबर कई बार आई है। खैर! छोड़िए इन बातों को। बड़े लोगों की बड़ी बात। वर्तमान लोकतांत्रिक व्यवस्था और भारतीय राजनीति के गिरते स्तर में कुछ भी अनहोनी संभव हो सकती है।

गाड़ी के तीन घंटे विलंब से चलने की वजह से अगले दिन 23 जून को तकरीबन 2 बजे अपराह्न बीकानेर जं० हम तीनों पहुँचे। इसके पूर्व कि बीकानेर जंक्शन की राजस्थानी कला में निर्मित भवन तथा वहाँ के दर्शनीय स्थलों की चर्चा करूँ, गाड़ी में चल रहे सहयात्रियों के संबंध में कुछ रोचक घटनाओं का उल्लेख करना मैं लाजिमी समझता हूँ। जिस डिब्बे में हमलोग सवार हुए उसकी दो शायिकाओं पर दो यात्री जिसमें से एक बुजुर्ग और दूसरे अधेड़ यही 25-30 की उम्र के लेटे हुए थे। शुरू में लगा कि ये दोनों यात्री सारी शालीनता की हदों को पार कर गए हैं, मगर कुछ दूरी तय करने के बाद मालूम हुआ कि दोनों काफी अस्वस्थ हैं। जहाँ बुजुर्ग यात्री कमर तथा पीठ के दर्द से परेशान थे, वहीं अधेड़ नौजवान की एक बाँह में काफी पीड़ा थी। ऐसा लगता था कि उनकी बाँह टूट गई है। यह तो हुई उन दोनों की अस्वस्थता की बात, मगर रोगी की सेवा में जो दो व्यक्ति लगे थे उनसे ऐसा नहीं लगता कि वर्तमान युग के आधुनिक दौर में रिश्तों में तेजी से दरार पड़ रहे हैं। क्योंकि जो बुजर्ग रोगी थे उनकी सेवा-सुश्रुषा कर रहा था उनका सुपुत्र और जो नौजवान रोगी थे उनकी सेवा में तल्लीन थे उनके बुजुर्ग पिताश्री। सेवा में कहीं कोई कमी नहीं। बार-बार शायिका से उठाना और लेटाना, समय पर नाश्ता, और खाना तथा कभी-कभी आइसक्रीम अथवा कोई दूसरा पेय पदार्थ। आज जिस प्रकार आधुनिकता की अँधी दौड़ में जिस तेजी से नई पीढ़ी पश्चिमी सभ्यता-संस्कृति का अँधानुकरण कर रही है और तेजी से रिश्तों का विघटन होता जा रहा है, वैसी परिस्थिति में दो विपरीत रिश्तों के द्वारा अपने-अपने बाप-बेटे की सेवा देखकर मुझे लगा कि यही वह भारतीय संस्कृति है जिससे अभिभूत होकर इकबाल ने लिखा–

"कुछ बात है कि हस्ती मिटती नहीं हमारी,
सदियों रहा है दुश्मन दौरे जमाँ हमारा।"

जी हाँ, यही भारतीय संस्कृति वह बात है जिसके चलते भारत की हस्ती नहीं मिट पा रही है। मुझे लगता है गाड़ी में बैठे दो जोड़े बाप-बेटे इसी भारतीय संस्कृति के प्रतीक हैं, जो इसे आज भी बरकरार रखे हुए हैं। निश्चित रूप से बाप-बेटे की वह सेवा उस भारतीय संस्कृति के सार को, सर्वस्व को उसके अंतर्गत स्वरूप में आलोकित करती है। सचमुच किसी राष्ट्र की वास्तविक पहचान उसकी संस्कृति है।

गाड़ी अपनी धीमी चाल में चली जा रही थी और इतने में ही मेड़ता रोड जं० पर आते ही भाई सतेन्द्र जी ढेर सारी कचौड़ियाँ-पकौड़ियाँ ले आए जिसे न चाहकर भी खाने को मजबूर होना पड़ा, क्योंकि रोज की तरह मेरे लिए दही-चूड़ा की व्यवस्था तो वहाँ हो नहीं सकती थी। मेड़ता रोड जं० से गाड़ी बीकानेर के लिए बदलनी पड़ती है, लेकिन हमारी गाड़ी सराय रोहिल्ला से सीधे बीकानेर तक की थी इसलिए गाड़ी बदलने की नौबत नहीं आई। गाड़ी जब मेड़ता रोड जं० से थोड़ी ही दूर आगे बढ़ी तो दो गायक अपनी खंजड़ी बजाते-गाते हमारे डिब्बे में प्रवेश कर गए और गीत-भजन आदि से यात्रियों का मनोरंजन करने लगे। गायकों में एक थे सुरेश भांड़ और दूसरे थे मारवाड़ी भांड़, जो मेरे पूछने पर उन दोनों ने बताया। हमलोगों के समीप जब दोनों गायक पहुँचे तो संगीत से शौक रखने वाले तथा हमारे मंच के सांस्कृतिक प्रकोष्ठ के संयोजक भाई सतेन्द्र

के अनुरोध पर दोनों गायकों ने राजस्थानी भाषा में जब लोकगीत शुरू किया, तो यकीन मानिए, पूरे डिब्बे के यात्रियों ने उसका भरपूर रसास्वादन किया। उनके लोकगीत के बोल थे–

'बन्ना ओ बागा में फूला गाल्या'

सच मानिए, राजस्थानी लोक गीतों का कुछ और ही मजा है जिसे सुनकर कोई भी और किसी भाषा-भाषी के लोगों का मन-मयूर नाच उठेगा। सो वैसा ही हमलोगों के साथ हुआ।

बीकानेर जं० पहुँचते ही राजस्थानी कला और शिल्प में निर्मित बीकानेर जंक्सन भवन को देखकर हमलोगों को बड़ी प्रसन्नता हुई और शीघ्र ही पास के वातानुकूलित होटल जोशी का कमरा नं. 110 आरक्षित कराया तथा उसमें पांव रखते ही चैन की सांस इसलिए ली, क्योंकि गर्मी पराकाष्ठा पर थी। वैसे भी राजस्थान का बीकानेर इलाका गर्मी के लिए मशहूर है ठीक उसी तरह जिस प्रकार यहाँ के छोटू-मोटू होटल के रसगुल्ले। होटल जोशी का ही प्रतिष्ठान होने की वजह से हमलोगों के भोजन की व्यवस्था वहीं से की गई। मारवाड़ी भोजन थाली में दो-दो बड़े-बड़े रसगुल्ले जरूर रहते थे, सो हम तीनों ने भोजन का भरपूर आनंद उठाया घर की तरह। उसी दिन यानी 23 जून को ही अपराह्न एक टैक्सी किराए पर लेकर हमलोग नेशनल रिसर्च सेंटर ऑन कैमेल के लिए रवाना हो गए जहाँ पहुँचते ही भाई अरबिंद तथा सतेन्द्र जी को वहाँ के वैज्ञानिक से बातचीत करने के लिए कहकर मैंने स्वयं वहाँ के निदेशक प्रो. के.एम.एल. पाठक से मिलना इसलिए लाजिमी समझा कि 'विचार दृष्टि' के संपादक होने के नाते रेगिस्तान के एक अति महत्त्वपूर्ण पशु ऊँट पर किया जा रहा देश का पहला अनुसंधान केंद्र है, जिसके बारे में अपनी पत्रिका के जरिए पाठकों को जानकारी देना मैंने जरूरी समझा। वैसे भी बीकानेर के नागरिकों से पता चला कि यहाँ के दर्शनीय स्थलों में यह केंद्र महत्त्वपूर्ण है और बाकी तो यहाँ के राजे-महाराजाओं के किले और धार्मिक स्थल में लालेश्वर मंदिर। इसलिए भारत सरकार के इंडियन कांउसिल ऑफ एग्रीकल्चरल रिसर्च के तत्त्वावधान में बीकानेर के जोरबीर में स्थापित इस अनुसंधान केंद्र में पहुँचकर निदेशक की अनुपस्थिति में उनके सचिव श्री सूरी तथा वरीय वैज्ञानिक डॉ. चंदा भगत के सौजन्य से सारी जानकारी उपलब्ध हुई। राजस्थान के निर्जल व अनुर्वर और अर्ध निर्जल व अनुर्वर क्षेत्र के सामाजिक-आर्थिक विकास के लिए ऊँट के महत्त्व के मद्देनजर शुरू में 5 जुलाई, 1984 को यहाँ ऊँट योजना निदेशालय की स्थापना हुई जिसे बाद में 20 सितंबर 1995 को अपग्रेड कर नेशनल रिसर्च सेंटर ऑन कैमेल कर दिया गया। यह बीकानेर रेलवे स्टेशन से तकरीबन 10 किलोमीटर की दूरी पर बीकानेर-जोधपुर उच्च पथ के बाईपास रोड पर अवस्थित है। वरीय वैज्ञानिक डॉ. भगत से यह मालूम हुआ कि यह एनआरसीसी काफी बड़ी संख्या में समाज के किसान, वैज्ञानिक, दर्शनार्थी तथा पशुचारणिक वर्ग के लोगों को आकर्षित करता है। दरअसल इस केंद्र का मुख्य उद्देश्य है ऊँट की उन्नति के लिए बुनियादी एवं व्यावहारिक शोध की जिम्मेवारी अपने ऊपर लेना तथा नेतृत्व प्रदान करना और राष्ट्रीय स्तर पर ऊँट के शोध और प्रशिक्षण कार्य का समन्वय करना एवं सूचना के राष्ट्रीय निधान के रूप में कार्य करना। इसके अतिरिक्त ऊँट अनुसंधान एवं उन्नति के लिए राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय एजेंसियों के साथ सहयोग करना भी इस केंद्र का उद्देश्य है। इन उद्देश्यों को मूर्त रूप प्रदान करने के लिए इस केंद्र का एक प्रशासनिक भवन, पुस्तकालय, एरिस-सेल, प्रयोगशाला, पशुधन फार्म, आवासीय कॉम्पलेक्स, संग्रहालय, अतिथिशाला तथा ऊँट दुग्ध बैठकखाना निर्मित हैं। डॉ. भगत तथा सूरी के सौजन्य से इन सभी का मुयायना कर इन्हें समझने का मुझे मौका मिला। मुझे यह भी जानकारी मिली कि यह केंद्र ग्राम पंचायत समितियों तथा ऊँट रखने वालों को राजस्थान के पशुपालन विभाग के माध्यम से उन्नत आनुवंशिकी ऊँट-सांढ़ का वितरण करता है तथा ऊँट रखनेवालों एवं पशु चिकित्सकों के प्रशिक्षण की व्यवस्था भी करता है। केंद्र की अबतक की उपलब्धियों में बीकानेर, जयसलमेर और कुच्छी के 270 ऊँटों के सर्वोत्कृष्ट नस्लों को चयनात्मक प्रजनन के द्वारा विकसित करना रहा है। साथ ही गाड़ीवानी और कृषि प्रचालन (Agricultural operations) की अवधि में ऊँट कर्षण क्षमता (Camel draught ability) का मूल्यांकन तथा निर्धारण करना भी रहा है।

इस प्रकार पूरे केंद्र का मुयायना और इसके बारे में जानकारी हासिल करने के उपरांत इस केंद्र में पदस्थापित वैज्ञानिक के कार्यालय में मैं दाखिल हुआ जहाँ भाई अरबिंद तथा सत्येन्द्र उनसे बातचीत कर रहे थे। मुझे तो उनके बारे मे सारी जानकारी मिल ही चुकी थी। फिर दूसरे दिन यानी 24 जून को काफी गर्मी पड़ने की वजह से अपने वातानुकूलित कमरे में ही बिताना और छोटू-मोटू होटल के स्वादिष्ट भोजन व पेय पदार्थों के साथ रसगुल्ले का सेवन करते रहना ही हमलोगों ने इसलिए उचित समझा कि दिल्ली के लाल किले की सैर करने के बाद बीकानेर के किले को देखने का न तो कोई औचित्य था और न ही युक्तिसंगत, उसमें भी ठेठ लहलहाती गर्मी में। सुबह की सैर में ही हमलोग जेल के पीछे के नवनिर्मित पार्क में जाते वक्त शहर के रंगीन बाजारों से गुजर चुके थे, सो शाम होते ही पाँच बजकर बीस मिनट पर वही राजस्थान संपर्क क्रांति एक्सप्रेस से दिल्ली के लिए प्रस्थान कर गए और अहले सुबह वहाँ पहुँच कर पूरे दिन सामाजिक कार्यों में व्यस्त रहे तथा संध्या समय ही संपूर्णक्रांति एक्सप्रेस से पटना के लिए रवाना हो गए और वहाँ पहुँचकर, अपनी अस्मिता की पहचान और प्रगति के लिए जूझता बिहार विषय पर एक बहस का आयोजन करने की तैयारी में जुट गया।

संपर्क: संपादक, 'विचार दृष्टि',

दक्षिण भारत की एक अंतहीन सुखद यात्रा का अहसास

○ सिद्धेश्वर

यों तो दक्षिण भारत की यात्रा पर हम लगभग चार-पाँच साल पहले भी गए थे, मगर इस बार की यात्रा अनोखी और अनूठी रही। मंच की राष्ट्रीय कार्यकारिणी के निर्देशानुसार 24 जुलाई 2008 से 10 अगस्त तक के कुल अठारह दिनों के लिए दक्षिण भारत के चारों राज्यों सहित तिरुपति और कन्याकुमारी का कार्यक्रम इसलिए बना ताकि आगामी 30 एवं 31 अक्टूबर 2008 को नई दिल्ली में आयोजित राष्ट्रीय विचार मंच तथा उसके मुख-पत्र 'विचार दृष्टि' के द्वितीय राष्ट्रीय अधिवेशन को सफल बनाने हेतु उन राज्यों में स्थापित मंच की शाखाओं के कार्यों का समन्वयन और शैक्षणिक संस्थानों के विद्वत्जनों के बीच जाकर अधिवेशन के लिए अधिकाधिक प्रतिनिधियों को सादर आमंत्रित किया जा सके। फिर 'विचार दृष्टि' पत्रिका के अक्टूबर 2008 में सफलतापूर्वक 10 वर्ष पूरे होने पर अधिवेशन के अवसर पर प्रकाशित उसके दस-वर्षांक, जो पत्रकारिता के विभिन्न आयामों पर केंद्रीत है के लिए स्तरीय रचनाओं को जुटाना भी था।

प्रस्तुत यात्रा कार्यक्रम में मंच के राष्ट्रीय महासचिव सह संपादक, 'विचार दृष्टि' की हैसियत से मेरे साथ सहायक संपादक तथा मंच की दिल्ली इकाई के महासचिव उदय कुमार 'राज़' को तो शामिल करने का निर्देश मिला ही, साथ ही मेरी धर्मपत्नी श्रीमती बच्ची प्रसाद, जो बिटिया अंजलि के परिणय-सूत्र में बँध जाने के बाद से निजी सचिव का भी काम बखूबी कर रही हैं तथा सहायक संपादक की पत्नी श्रीमती लता को भी साथ ले जाने का निर्देश मिला। अब क्या चाहिए! अँधे को जैसे दो आँखें मिल गईं हों। साठ की उम्र पार कर जाने के बाद भी यदि लंबी यात्रा में पत्नी साथ में हों, तो यात्रा का अच्छी तरह कटना स्वाभाविक है और पत्नियों को भी यह अहसास हो कि पतियों द्वारा किए जा रहे साहित्यिक, सांगठनिक तथा पत्रकारिता के कार्यों में सहयोग प्रदान करने का यही तो प्रतिफल है। दक्षिण भारत की यह यात्रा तो विशेष मजेदार तब होती जब 'विचार दृष्टि' के उप संपादक तथा मंच की बिहार इकाई के महासचिव डॉ० शाहिद जमील भी सपत्निक साथ होते, क्योंकि वह संपादक के हर कदम के साथ हैं, मगर उनकी तीन सुपुत्रियों को विद्यालय की पढ़ाई-लिखाई से 20-25 दिनों तक वंचित रखना किसी हिसाब से कतई उचित नहीं जान पड़ा। इसलिए 'आज नहीं फिर कभी, और नहीं और सही' को मानकर 24 जुलाई 2008 को तमिलनाडु एक्सप्रेस से रात 10.30 बजे हम चारों जनें नई दिल्ली रेलवे स्टेशन से चेन्नई सेंट्रल के लिए प्रस्थान कर गए।

चेन्नई में तमिल संस्कृति का अहसास:

नई दिल्ली से चेन्नई सेंट्रल यानी 24 की रात और 25 का दिन और रात गाड़ी में बिताने का जो मजा मिला उसका वर्णन करने से यात्रा वृतांत लंबा खींच जाएगा। पर जैसी गर्मी दिल्ली में थी उससे रास्ते में सावन की रिमझिम फुहारों से राहत मिली,

क्योंकि चेन्नई तक बारिश की रिमझिम फुहारों से वातानुकूलित डिब्बों-सा आनंद मिला। इसलिए यहाँ सिर्फ मैं यह बता दूँ कि मूलत: साहित्यकार और उसमें भी पत्रकार तथा सामाजिक कार्यकर्ता होने की वजह से उसे सर्जन, शोर, भीड़ और व्यस्तताएँ मुझे परेशान नहीं करती। आपने देखा नहीं देहरादून, मसूरी और बीकानेर की यात्रा के बाद निकल पड़ा फिर दक्षिण भारत की यात्रा पर। दरअसल, पत्रकार का कार्यक्षेत्र आज विस्तृत और व्यापक हो गया है और उसका काम जोखिम भरा भी। सच्चाई की खोज में उसे एक शहर से दूसरे शहर और उस घटना-दुर्घटना के भीतर भी घुसना होता है, जिसके आतंक से ही लोग घरों की खिड़कियाँ-दरवाजे बंद कर लेते

हैं, रास्ते बदल लेते हैं। मगर पत्रकारिता जब जुनून बन जाती है, पत्रकार व संपादक को राहत देती है और संतुष्टि भी। पत्रकारिता के जुनून में मैं भी यही महसूस करता हूँ और मेरे उपसंपादक व सहायक संपादक को भी ऐसा ही अहसास होने लगा है, क्योंकि पत्रकार मूलत: बुद्धिजीवी हैं, उनके पास चिंतन है और समझ भी, जिसकी अभिव्यक्ति की शक्ति भी उनमें होती है, किंतु अपने और अपनों के जीवन की बुनियादी जरूरतों को पूरा करने की आर्थिक

सामर्थ्य नहीं है। हालांकि यह भी सच है कि आज के बहुतों पत्रकार बिकाऊ भी होते हैं। दरअसल पूँजीवाद एक ऐसी प्रबल ताकत है, जिसके आगे कोई भी नतमस्तक हो सकता है। हम जैसे पत्रकार के पास जीवन की अनेक श्वेत-श्याम कहानियाँ हैं, जो साथियों को मंत्रमुग्ध कर देने वाली हैं, मगर उनका जिक्र करना हमारा अभीष्ट नहीं। हम तो केवल अपने यात्रा-वृतांत से आप पाठकों को अवगत कराने आए हैं। पर मैं इतना कहना चाहूँगा कि चेन्नई सेंट्रल पहुँचते ही मंच की तमिलनाडु इकाई की अध्यक्षा डॉ० मधु धवन जिन्हें गाड़ी विलंब से पहुँचने की वजह से लगभग तीन घंटे तक स्टेशन पर इंतजार करना पड़ा, ने गर्मजोशी से हमारे दल का स्वागत किया। तीन घंटे तक इंतजार करना इस बात का द्योतक है कि हिंदी के प्रति वह पूर्ण रूप से समर्पित हैं। चेन्नई की दो दिनों की यात्रा के दौरान 26 जुलाई 2008 को दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा के उच्च शिक्षा एवं शोध संस्थान की ओर से आयोजित समारोह में जहाँ 'विचार दृष्टि' के संपादक एवं सहायक संपादक को सम्मानित किया गया, वहीं संस्थान के आचार्यों एवं शोधार्थियों के बीच मैंने राष्ट्रीय एकता एवं हिंदी विषय पर अपने विचार प्रस्तुत करते हुए 30 एवं 31 अक्टूबर 2008 को नई दिल्ली में आयोजित राष्ट्रीय अधिवेशन के बारे में विस्तार से चर्चा की। श्री उदय कुमार 'राज' ने भी बाल साहित्य की उपयोगिता पर प्रकाश डाला। फिर उसी दिन संध्या सत्यशीलता ज्ञानालय की ओर से श्री सुब्रह्मनयम 'विष्णुप्रिया' की अध्यक्षता में आयोजित व्याख्यान-माला के अंतर्गत मैंने पत्र-पत्रिकाओं में अंतर्जाल (इंटरनेट) की अनिवार्यता पर अपने विचार प्रस्तुत किए। 27 जुलाई 2008 की संध्या मंच के इस दल के सदस्यों के सम्मान में डॉ० मधु धवन के निवास पर आयोजित समारोह को संबोधित करने के क्रम में चेन्नई के साहित्यकारों को मंच द्वारा चलाए जा रहे अभियान से मैंने परिचित कराया। इसके दूसरे चरण में एक सरस काव्य संध्या का आयोजन भी हुआ। इन दो दिनों की अवधि में अपने घर पर आमंत्रित कर डॉ० बालशौरि रेड्डी, डॉ० निर्मला एस. मौर्य तथा डॉ० मधु धवन ने स्वादिष्ट भोजन कराने के बहाने अपनी आत्मीयता, तमिल संस्कृति तथा सदाशयता का परिचय दिया।

प्रारंभ में ही मैं बता दूँ कि तमिलनाडु सहस्त्राब्दि प्राचीन मूल तमिल संस्कृति को संजोए भारत का यह मंदिर स्थल है। चेन्नई इसकी राजधानी है जिस पर ब्रिटिश वास्तुकला का प्रभाव है। दक्षिण भारत का हॉलीवूड जहाँ अधिकांश दक्षिण भारतीय सिनेमा का निर्माण होता है। फोर्ट सेंट जॉर्ज, सेंट मेरी चर्च, सेंट जॉर्ज कैथेड्रल थियोसोफिकल सोसाइटी, कपिलेश्वर मंदिर पारथासारथी मंदिर, संग्रहालय, आर्ट गैलरी, कला क्षेत्र चोला-मंडलम, गिंडीडियर पार्क तथा सर्प पार्क आदि दर्शनीय स्थल हैं जिनमें तमिलनाडु के तत्कालीन समाज का तथा उसकी संस्कृति का अनुपम समन्वय हुआ है। दरअसल किसी भी देश या राज्य की संस्कृति उस देश या राज्य में निर्मित साधन सामग्री तथा उसकी बनाई हुई संस्थाओं, विचार-शैली, जीवन-मूल्यों आदि का समाहार है। हम एक यात्री व साहित्यकार के रूप में चेन्नई में उपस्थित हैं हमारा काम केवल उसकी संस्कृति को निरूपित करना नहीं है, बल्कि जब हम अपनी प्रतिभा-दृष्टि से देखी हुई वहाँ की सौंदर्य दृष्टि को शब्दों में साकार कर रहे हैं, तब यह अपूर्व प्रतिभा-दृष्टि से जन-संस्कृति को अनेक रूपों में स्पर्श किए बिना नहीं रह सकते। निश्चित रूप से उसकी संस्कृति के सार को, सर्वस्व को पाठक के अंतर्गत स्वरूप में आलोकित करेगा। हमारा काम सिर्फ इतना रहा है कि संस्कृतियों के मिलन को, संघर्ष को महसूस करके उसमें से मानव जीवन में धारक तत्त्व ग्रहण करना और समाज को जीवन की सही राह दिखाना, जिसे हमने बखूबी किया है।

दक्षिण भारत की चेन्नई-यात्रा के दौरान मुझे यह अहसास हुआ कि इसकी कला-संस्कृति, जीवन शैली और स्थापत्य कला के विविध रूप देखने लायक हैं। सचमुच यदि सैर-सपाटे के लिए यहाँ के समुद्र-तट जाना हो, यदि सांस्कृतिक विविधता का नजारा लेना हो और साथ ही आध्यात्मिक अनुशासन एवं अदृश्य की साधना की अनुभूति भी करनी हो, तो यहाँ के ढेर सारे स्थल से अच्छी कोई दूसरी जगह नहीं। दूसरी बात यह कि जिस प्रकार प्रत्येक देश की पहचान उसके साहित्य और उसकी कला से होती है, उसी प्रकार राज्य की पहचान भी उसके साहित्य और कला से होती है। तमिलनाडु एक ऐसा राज्य है जिसके कवि, गीतकार, निबंधकार, कथाकार, रचनाकार, चित्रकार तथा संस्कृति कर्मी समय-समय पर अपनी लेखनी व तुलिका से राज्य के गौरव, उसकी सामाजिक परिस्थितियों और परिवेश का आकलन करते रहते हैं। जिन साहित्यकारों व गीतकारों ने अपने साहित्य से तमिलनाडु में नवचेतना का बिगुल बजाकर राज्य को प्रतिष्ठा के उच्च सोपान पर पहुँचाया उसमें डॉ.एन. शेषण, आर. शौरिराजन, डॉ० बालशौरि रेड्डी, श्रीनिवास राघवन, पी. वेंकटाचारी, लक्ष्मीकांत सरस, के.सी. सेठिया, बालकृष्ण गोयंका, एम. सुब्रह्मण्यन, रुक्माजी राव अमर, आरिगपूडि रमेश चौधरी, टी.ई.एस. राघवन, डॉ० एम. सुमतींद्र, दुलीचंद जैन, डॉ० रामानायडु, विजयलक्ष्मी सुंदरराजन, टी.एस. के. कण्णन, डॉ० ए.बी. साई प्रसाद, श्रीमती

शीरीन भारती, डॉ० एस० विजया, डॉ. मधु धवन, प्रहलाद श्रीमाली पि.के.बाला सुब्रह्मण्यन, डॉ. विद्या शर्मा, डॉ. कोकिला, डॉ. इंदरराज वैद्य, श्री हेमंत श्रीमाली, डॉ. ईश्वर करण, डॉ. चुन्नी लाल शर्मा, डॉ जयलक्ष्मी सुब्रह्मण्यन डॉ. श्रीमती निर्मला एस मौर्य, आर पार्वती, डॉ० रवीन्द्र कुमार जैन, रमेश गुप्त नीरद, डॉ. ए.बी. साई प्रसाद, डॉ. एन.सुंदरम, डॉ. सुब्रहमण्यन 'विष्णु प्रिया', वी. एलुमल्लै, दाक्षायनी मेनन, पी.के.इदिराबाई, पी.आर.वासुदेवन, डॉ० कमला विश्वनाथन, सुनीता जाजोदिया, डॉ. गुलाबचंद कोटाडिया तथा विजयलक्ष्मी आदि का नाम उल्लेखनीय है। आप सब ने अपने ओज-माधुर्य-गुण और सामर्थ्य से तमिलनाडु के पाठकों के हृदय पर अपनी एक निराली छाप छोड़ी है और राज्य के साहित्य की समृद्धि में उल्लेखनीय योगदान किया है।

आज जब हमने मंच तथा 'विचार दृष्टि' की ओर से इस राज्य की राजधानी चेन्नई की यात्रा की है आप सब रचनाकारों तथा मंच एवं पत्रिका के शुभेच्छुओं ने अपने हृदय की अव्यक्त छटपटाहट को व्यक्त करने के लिए यात्रा के दौरान आयोजित सभा-संगोष्ठियों का सहारा लिया है। उनके मन की गहरी छटपटाहट और यथार्थ का चित्रण करना मेरे लिए सहज नहीं है। वैसे भी हमेशा हम आप सबसे दिशा पाते रहे हैं। इस बार की यह यात्रा भी दिशा पाने की अगली कड़ी है, क्योंकि साहित्य और साहित्यकार को मैं कला का उत्कृष्ट रूप मानता हूँ। यह उपदेश नहीं, परंतु प्रेरक तो है ही। प्रेरक सदा सही मार्ग की ओर प्रेरित करता है। इनके साहित्य और इनके द्वारा अभिव्यक्त विचारों से सही मार्ग की पहचान हो सकती है। सही मार्ग की पहचान ही समाज को स्वस्थ और राष्ट्र को आदर्श बनाती है। हमारी यात्रा का उद्देश्य भी तो सही मार्ग की तलाश है। वैसे भी राष्ट्र को वही अपना राष्ट्र मान सकता है, जिसे राष्ट्र की पहचान हो। राष्ट्र की पहचान के लिए ही तो दक्षिण भारत की यह यात्रा की गई।

यह कहने की आवश्यकता नहीं कि इस यात्रा के दौरान इन राज्यों के साहित्यकारों से बातचीत कर उनके जीवन-संघर्ष और उनके रचना-संसार को जानने-समझने का मौका तो मिला ही, साथ ही मुझे यह जानने का मौका मिला कि एम.एस. सुब्बुलक्ष्मी की तरह दक्षिण भारत के महाराजापुरम विश्वनाथ अठयर इलैया राजा जैसे शास्त्रीय संगीत के पारंगत संगीतकारों को भी अपनी उत्तरजीविता के लिए सर्जनात्मक रहना पड़ता है। इन संगीतकारों ने हिंदी सिनेमा की तरह तमिल सिनेमा में शास्त्रीय संगीत का प्रयोग एवं नवोन्मेष जारी रखा। कर्नाटक संगीत और पाश्चात्य शास्त्रीय संगीत में पारंगत इलैया राजा ने फिल्म संगीत में शास्त्रीय संगीत के महत्त्वपूर्ण प्रयोग किए।

सप्तगिरि तिरुपति में श्री वेंकटेश्वर का दर्शन:

आँध्र प्रदेश स्थित तिरुमुला-तिरुपति विश्व का सबसे धनी और भारत का सबसे पवित्र वैष्णवी तीर्थ मंदिर है। लार्ड वेंकटेश्वर इसके अधिष्ठाता हैं।

28 जुलाई को चेन्नई से सप्तगिरि एक्सप्रेस से हमलोग डॉ० बालशौरि रेड्डी के साथ तिरुपति स्थित उनके फ्लैट पहुँचे जहाँ से भोजनोपरांत उन्होंने श्री वेंकटेश्वर विश्वविद्यालय हिंदी विभाग के प्राध्यापकों से परिचित कराने के बाद पुन: वह चेन्नई लौट गए, क्योंकि दूसरे दिन ही नई दिल्ली में भारत सरकार के वित्त मंत्रालय की हिंदी सलाहकार समिति की बैठक में भाग लेने के लिए उन्हें चेन्नई में फ्लाइट पकड़नी थी। हिंदी विभाग की डॉ० राजू एवं डॉ० गणेश पवार दंपत्ति के अनुरोध पर हमलोगों ने उनका आतिथ्य स्वीकार किया और वहाँ अपने घर-परिवार-सा माहौल पाकर दोनों पति-पत्नी को तहेदिल से अपनी ढेर सारी शुभकामनाएँ दी। 29 एवं 30 जुलाई 2008 को श्री वेंकटेश्वर विश्वविद्यालय, हिंदी विभाग द्वारा डॉ. आई.एन. चंद्रशेखर रेड्डी की अध्यक्षता में आयोजित संगोष्ठी में विभाग के प्राध्यापकों सहित दक्षिण भारतीय भाषाओं के विद्यार्थियों को संबोधित करते हुए देशवासियों में तेजी से लुप्त होती राष्ट्रीयता की भावना के मद्देनजर राष्ट्रीय एकता व अखण्डता को अक्षुण्ण बनाए रखने हेतु वैचारिक क्रांति के माध्यम से जन चेतना जागृत करने पर बल दिया। श्री उदय कुमार 'राज' ने भी विद्यार्थियों को संबंधित किया। विभाग के डॉ० राम प्रकाश ने संचालन तथा आभार व्यक्त किया।

सप्तगिरि यानी सात पहाड़ों का नगर तिरुपति और तिरुमुला को मैंने श्री वेंकटेश्वरमय देखा और किंवदंती यह है कि त्रेतायुग में श्री रामचन्द्र और द्वापर में श्रीकृष्ण की तरह इस कलियुग में श्री वेंकटेश्वर अवतार लेकर हमारी रक्षा कर रहे हैं। इसलिए तो कहा गया है–

''बिना सेंकटेशं न नाथो न नाथ:
सदा वेंकटेशं स्मरामि स्मरामि ।।

बैंगलुरु में आँखों को आराम और मन को मिला चैन:

फिर 31 जुलाई 2008 को काटवाड़ी होते हुए 1 अगस्त 2008 को अहले सुबह बैंगलुरु पहुँचे ।

कर्नाटक की राजधानी बैंगलूरू बहुत सुंदर शहर है जहाँ शीतल और साफ मौसम तो है ही सालों भर फूल खिले रहते हैं और इसके आधुनिक ले-आउट, उद्योग, शोध

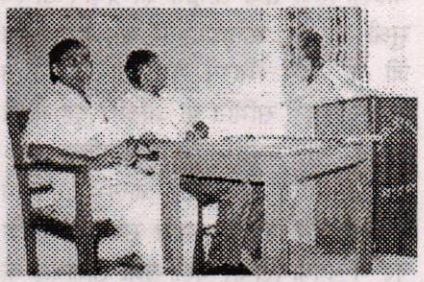

संस्थान तथा सूचना तकनीक की वजह से यह पूरे देश में सबसे तेजी से विकसित करने वाले शहरों में से एक हो गया है। इन चारो राज्यों में खासकर केरल के चप्पे-चप्पे में फैली प्रदूषण मुक्त नयनाभिराम हरियाली, आँखों को ठंढक की तरलता पहुँचाते नीले खुले आसमान में अठखेलियाँ करते मेघदूत, देवदार, केले, चीड़ की नथुनों को सुगंधित कर देने वाली शीतल बयार, जड़ी-बूटियों के सान्निध्य से बहकर आते अनगिनत मीठे जल स्रोत, बारिश के बाद निखरी अनगिनत शेड्स की खुशनुमा मादकता बिखेरती गुलाबी शामें, जंगली-फूलों की अनूठी गँध में

माधुर्य घोलती पक्षियों की चहचहाट से भरपूर संगीतमय सुंदर पर्यावरण, सादगी व लोक संस्कृति को संप्रेषित करते पहाड़ के सीधे-साधे लोग। यहाँ का सबकुछ सहज है। यहाँ प्रकृति की अनछुई उन्मुक्त सुंदरता आपको कायल करने को आतुर है। सड़क पर ज्यादा वाहन के बावजूद यात्रा का मजा बरकरार रहा। सीधे-सीधे संप्रेषित करते प्रकृति के सबकुछ हमें बाध्य करते हैं कि उनमें से कितना हम आत्मसात कर पाते हैं, उन्मुक्त प्रकृति के अधीन निकट होने का कितना लुत्फ ले सकते हैं। लंबे-लंबे कद्दावर वृक्ष, सीढ़ीनुमा खेतों के रंग-बिरंगे बिछौने, मनभावन नीले खुले आसमान के नीचे यहाँ से वहाँ तक फैली खूबसूरत पर्वतशृंखलाएँ और यहाँ के कुदरत रस घोलते हैं, आँखों को आराम मिलता है, और मन को चैन।

तिरुपति से चलकर हमलोग काटवाडी जंक्सन में कावेरी एक्सप्रेस द्वारा 31 जुलाई 2008 को अहले सुबह चार बजकर चालीस मिनट पर बैंगलुरु सिटी पहुँचने पर वहाँ के कुमार पार्क स्थित वल्लभ निकेतन में कुछ देर रुकने के बाद चामराजपेट स्थित कर्नाटक महिला हिंदी सेवा समिति की प्रधान सचिव सुश्री बी.एस. शांताबाई से जब हम उदय जी के साथ मिलने गए, तो उन्होंने न केवल अपनी समिति के अतिथि गृह में ही ठहरने का अनुरोध किया, बल्कि प्रो० वीरप्पातिमय्या चुँचा को वल्लभ निकेतन भेजकर हमलोगों का सारा सामान अतिथि गृह में मंगवा लिया। जहाँ सुश्री शांताबाई के अभिभावकत्व में दो दिन अपने अभियान को मूर्त रूप देने में हमें आशातीत सफलता मिली। समिति द्वारा संचालित हिंदी प्रशिक्षण महाविद्यालय के आचार्यों सहित वहाँ के सभी विद्यार्थियों को संबोधित करने के क्रम में राष्ट्रीय एकता और राष्ट्रभाषा हिंदी पर विस्तार से चर्चा करने का अवसर मिला। श्री उदय जी ने भी राष्ट्रीय अधिवेशन के लिए लोगों को आमंत्रित करते हुए निर्धारित विषयों पर प्रकाश डाला।

सुश्री बी.एस. शांताबाई ने अपने अध्यक्षीय भाषण में मुझे हर तरह का अपेक्षित सहयोग प्रदान करने का आश्वासन देते हुए अधिवेशन में भाग लेने की बात कही। जब राष्ट्रीय विचार मंच की कर्नाटक इकाई की कार्यकारिणी के पुनर्गठन तथा 'विचार दृष्टि' के कर्नाटक ब्यूरो प्रमुख के लिए मैंने शाताबाई से सादर अनुरोध किया, तो इकाई की अध्यक्षता तथा ब्यूरो प्रमुख के लिए उन्होंने अपनी सहमति प्रदान कर मंच तथा पत्रिका के प्रति अपनी निष्ठा दिखाई जिसका अनुमोदन मंच की राष्ट्रीय कार्यकारिणी ने अपनी 21 सितंबर 2008 की बैठक में किया गया तथा उनसे आग्रह किया गया कि डॉ० इस्पाक अली, प्राचार्य, लाल बहादुर शास्त्री महाविद्यालय बेंगलूरु को महासचिव मनोनीत करते हुए कार्यकारिणी के अन्य पदाधिकारियों एवं सदस्यों का मनोनयन कर राष्ट्रीय कार्यकारिणी के अनुमोदनार्थ भेज दें।

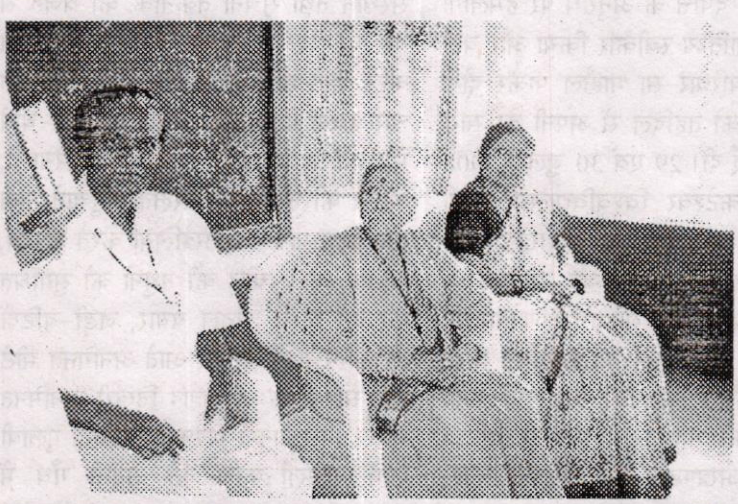

दूसरे दिन यानी 1 अगस्त, 2008 को दक्षिण भारत हिंदी प्रचार समिति के प्रबंध एवं परीक्षा मंत्री श्री बी.आर. देवगिरी, दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा द्वारा संचालित लाल बहादुर शास्त्री महाविद्यालय के प्राचार्य प्रो. इस्पाक अली तथा दक्षिण पश्चिम रेलवे के रेलवे मंडल कार्यालय, बैंगलुरु के राजभाषा अधिकारी श्री चंद्रपाल सिंह से मिलकर आयोजित अधिवेशन के कार्यक्रमों की जानकारी देते हुए उन्हें अपने-अपने प्रतिष्ठान का अधिवेशन में प्रतिनिधित्व करने का आग्रह किया। फिर कर्नाटक महिला हिंदी सेवा समिति के अतिथि गृह में लौटकर सुश्री प्राचार्या शांताबाई तथा परीक्षा नियंत्रक श्रीमती विनीता जैन से विदा ली। समिति के वाहन चालक श्री सुरेश ने हमलोगों को बैंगलुरु सिटी स्टेशन पर वाहन से छोड़ा जहाँ से हमलोग रात नौ

बजकर पैंतालिस मिनट पर कन्याकुमारी एक्सप्रेस द्वारा त्रिवेंद्रम के लिए प्रस्थान किए। सच मानिए बैंगलुरु की यह यात्रा सुश्री शांताबाई के सान्निध्य और नेतृत्व में काफी सफल इस मायने में रही कि दक्षिण भारत में रहकर राष्ट्रभाषा हिंदी के उन्नयन और प्रचार-प्रसार के लिए जितना और जो कुछ उनसे संभव हो सकता है, कर रही हैं और आगे भी जरुरत पड़ी तो इसके लिए वह संघर्ष करने को सतत् तैयार हैं। हिंदी के प्रति समर्पित ऐसी संघर्षशील महिला के प्रति मैं नतमस्तक हूँ जिन्होंने मंच तथा उसके मुख-पत्र 'विचार दृष्टि' के माध्यम से भी अपने आंदोलन को गति प्रदान करने का हमें आश्वासन दिया है। एकबार पुन: उनके प्रति हार्दिक आभार। यह यात्रा-वृतांत लिखते हुए मंच के अभियान दल के हम चारों लोग कन्याकुमारी एक्सप्रेस से तिरुवनंतपुरम के लिए चल रहे हैं केरल की प्राकृतिक छटा का अवलोकन और आनंद उठाते हुए। 1/8/2008 को रात 9 बजकर 45 मिनट पर बैंगलुरु सिटी से जब कन्याकुमारी एक्सप्रेस रवाना हुई, तो कुछ ही देर में एक ऐसी मजेदार घटना घटी जिसका जिक्र किए बिना पाठक इस यात्रा-वृतांत का मजा नहीं ले पाएँगे। हुआ यूँ कि रेलवे कर्मचारी से यह जानकारी मिली कि इस ट्रेन में पैंटरी कार नहीं है। मेरी श्रीमती जी ने भी एक पुलिस अधिकारी से पुछकर इसकी संपुष्टि की। इसी के मद्देनजर हमलोगों ने खाने-पीने की आवश्यक चीजें यथा स्लाइस्ड ब्रेड, बटर तथा पावभाजी बैंगलुरु स्टेशन पर खरीद कर रख लिया था जिसकी जानकारी संभवत: हमारी श्रीमती जी को नहीं हो पाई थी। पैंटरी कार नहीं रहने पर मेरी श्रीमती जी ने शब्दों के अभाव में व्रत रखने की बजाय अनसन पर रहने का एलान किया, मगर हमने उनसे जब यह कहा कि 'हमलोग जब खाना खाएँगे, तो आपके मुँह से लार लपकेगा।' बस इस अदना-सी बात पर वह रुस गईं। फिर क्या था मैंने उन्हें मनाना शुरू किया तब जाकर उन्होंने गुस्से में कहा- 'आप मुझे खिल्ली उड़ाते हैं यह कहकर कि मुँह से लार लपकेगा।' अजी साहब उन्हें मनाने में मुझे इतना पापड़ बेलना पड़ा कि मत पुछिए। हालांकि मेरी श्रीमती जी भी जानती हैं कि रूठी स्त्री को मनाने में मैं माहिर हूँ, सो किसी तरह ब्रेड में मक्खन लगाने के साथ-साथ अपनी श्रीमती जी को भी खुब मक्खन लगाया, तब जाकर कहीं ब्रेड-बटर और पाव भाजी वह खा पाईं और फिर तो रात के दस बजने पर मेरे सोने का समय हो चुका था, सो उनके लिए नीचे की शायिका छोड़कर मैं मध्य की शायिका पर जाकर सो गया और अहले सुबह शौचादि से निवृत्त होकर जब इतमिनान से सीट पर बैठकर जलपान के साथ कॉफी की चुस्की लेने लगा, तो देखा कि श्रीमतीजी का मूड अभी-भी बहुत ठीक नहीं हो पाई है और कॉफी पीना उन्होंने स्वीकार नहीं किया हालांकि वह कॉफी पीना पसंद भी नहीं करती हैं। सच कहिए तो हमने श्रीमती जी से हारने में ही अपनी जीत समझा। दरअसल, दांपत्य जीवन में हारने का मतलब होता है अपनी सहनशीलता की परीक्षा देना। सो हमने अपनी सहनशीलता की परीक्षा दी और उसमें सफल हुए, क्योंकि विशुद्ध प्रेम ने उनकी सोई हुई शक्ति को जागृत किया। यूँ तो पत्नी जिंदगी की डोर में बँधी कठपुतली कही जाती है, पर वर्तमान दौर के आधुनिक युग में नहीं। आपने देखा नहीं जरा-सी बात पर मेरी पत्नी तुनक गईं और बहुत सहज रूप में कही गई मेरी बात उनकी संवेदना को छु गई। मैंने बड़ी आत्मीयता से उनका हाथ अपने हाथ में लिया और कहा उलझनें तो जिंदगी के साथ हैं, पर यात्रा में तो साझेदारी करनी ही चाहिए। ऐसी आत्मीयता पा पत्नी कुछ क्षणों तक खामोश बैठीं अपने विचारों के कठघरे में कैद हो गईं। उन्हें शायद यह समझ में नहीं आ रहा था कि वह गलत थीं या मैं। सोचते-सोचते वह शायिका पर सो गईं और ठीक दोपहर बारह-साढ़े बारह बजे जब हम लोगों का खाना आया, तो मैंने बड़े प्रेम से उनसे खाना खाने का अनुरोध किया जिसे उन्होंने स्वीकार कर पेट खाना खाया। तब जाकर मुझे आत्मिक संतोष हुआ। ऐसी ही होती है जिंदगी तरह-तरह के रंगों से भरी और जीने का संघर्ष, वह तो कभी खत्म नहीं होता।

इस घटना के पूर्व भी मुझे एक और सहनशीलता तथा धैर्य की परीक्षा से गुजरना पड़ा तिरुपति में। हुआ यूँ कि तिरुपति स्थित श्री वेंकटेश्वर विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग के प्राध्यापकों सहित छात्र-छात्राओं को संबोधित करने के दौरान जब मैं देशवासियों में तेजी से लुप्त होती राष्ट्रीयता की भावना और राष्ट्रीय एकता पर मंडराते खतरे से बचने के लिए मंच द्वारा उठाए गए वैचारिक क्रांति के पहल पर बात कर रहा था, तो विलंब होना स्वाभाविक था, किंतु मंच के सचिव श्री 'राज' को नई दिल्ली में आयोजित राष्ट्रीय अधिवेशन के निर्धारित विषयों पर अपनी बात रखने के लिए जब विभाग के प्राध्यापक प्रो० राम प्रकाश ने सादर आमंत्रित किया, तो अनुभव के अभाव में वह थोड़े उखड़े-उखड़े-से नजर आए, क्योंकि वे मीडिया की भूमिका पर विद्यार्थियों के समक्ष अपनी बात रखना चाहते थे, जबकि उसका वहाँ कोई औचित्य नहीं लग रहा था। फिर देखा कि श्री 'राज' ने एक लंबी चुप्पी साध ली, मगर मैंने यहाँ भी अपनी सहनशीलता का परिचय इसलिए दिया कि समय के अंतराल में आदमी या तो अपनी गलती महसूस करता है या फिर उसे भुला बैठता है। आखिर हुआ भी वही। आगे की यात्रा में मैंने उन्हें भरपूर मौका दिया और शेर ओ शायरी प्रस्तुत करते अधि वेशन के विषयों पर प्रकाश डालत रहे। मेरे लिए यह कोई नई बात नहीं थी। यात्रा में यह सब होता ही है। इस प्रकार इस खट्ठी-मीठी यात्रा का हमने आनंद उठाते हुए राज्य की प्राकृतिक छटा का रसास्वादन किया।

केरल में देखा गंगा जमुनी संस्कृति:

केरल में मैंने देखा कि वहाँ के वातावरण में हल्की गुलाबी ठंड ने तिरुवनंतपुरमवासियों के चेहरों पर गुलाबी-सी रंगत देकर उन्हें और भी हसीन बना दिया था।

दक्षिण भारत के प्राय: सभी राज्यों में,

स्थित प्राचीन मंदिरों में पारंपरिक भवन निर्माण, लोक संस्कृति व आस्था के सशक्त दर्शन होते हैं। कहना नहीं होगा कि ऐसे स्थलों का भ्रमण कर, कुछ समय इक्ट्ठे रहकर, कम होते जा रहे आपसी स्नेह व प्रेम, में न केवल बेहद बढ़ोतरी की जा सकती है, बल्कि शरीर नव ऊर्जा भी ग्रहण करता है। ऐसी जगहों पर एकाग्रता व आत्मिक शक्ति का उदय होता है और हमारे जैसे व्यक्ति को स्वचिंतन करते हुए अपने आप से कई बार मिलने का अवसर मिलता है। हमें तो इन स्थलों पर जाकर एक सीधा लाभ यह मिलता है कि इसी बहाने घुमक्कड़ी भी हो जाती है और मित्र परिचितों तथा विभिन्न भाषा-भाषी साहित्यकारों से मिलने और उनसे प्राप्त अनुभवों को लेखन में समेटने का अवसर प्राप्त होता है।

2 अगस्त 2008 को अपराह्न साढ़े तीन बजे हमलोग जैसे ही कन्याकुमारी एक्सप्रेस से केरल की राजधानी तिरूवनंतपुरम के रेलवे स्टेशन पर पहुँचे केरल हिंदी साहित्य अकादमी के अध्यक्ष तथा उत्तर एवं दक्षिण भारत के साहित्य सेतु डॉ. एन. चंद्रशेखरन नायर हमलोगों के स्वागत में वहाँ खड़े थे। रेलवे के विश्रामालय में ही हमलोगों के लिए ठहरने की व्यवस्था कर स्टेशन के कैंटिन में हमलोगों ने एक साथ चाय ली तथा उन्हें अपने निवास के लिए विदा किया और हम चारो लोगों ने यहाँ के प्रसिद्ध कोवल्लम समुद्रतट पर जाकर भरपूर आनंद उठाया। फिर दूसरे दिन 3 अगस्त 2008 को प्रात: जलपान करने के बाद संगुवलम समुद्र तट पर जा पहुँचे जहाँ हमारे सचिव उदय कुमार 'राज़' अपनी धर्मपत्नी लताजी के साथ समुद्र की लहरों से खेलने में मस्त हो गए और मैं उनके लहरों से खेलने का आनंद उठाता रहा किनारे पर खड़े होकर। मेरी श्रीमतीजी भी बालू की रेत पर जाकर समुद्र की लहरों से खेलने का प्रयास कर रही थीं, पर मैं उन्हें ऐसा करने से मना कर रहा था, क्योंकि समुद्र की लहरों का क्या भरोसा कब किसे अपने आगोस में समेट ले। उल्लेख्य है कि हमारी श्रीमती जी हमारे जीवन-संघर्ष रूपी गाड़ी का एक महत्त्वपूर्ण हिस्सा है।

फिर 3 अगस्त 2008 को ही केरल हिंदी साहित्य अकादमी तथा राष्ट्रीय विचार मंच के संयुक्त तत्वावधान में इसके अध्यक्ष डॉ० एन. चंद्रशेखरन नायर की अध्यक्षता में उन्हीं के निवास में आयोजित नगर के प्रबुद्धजनों व साहित्यकारों की एक बैठक को संबोधित करते हुए हमने जहाँ अपने अभियान और दक्षिण भारत की यात्रा के उद्येश्यों पर प्रकाश डाला और राष्ट्रीय एकता को अक्षुण्ण बनाए रखने के लिए वैचारिक क्रांति और हिंदी के प्रचार-प्रसार पर बल दिया, वहीं उदय कुमार 'राज़' ने राष्ट्रीय अधिवेशन के निर्धारित विषयों पर चर्चा करते हुए वहाँ के प्रबुद्धजनों को उसमें भाग लेने के लिए सादर आमंत्रित किया। इस अवसर पर डॉ० परमेश्वरम्, डॉ० नायर, डॉ० लता ने भी अपने विचार प्रस्तुत किए।

बैठक को केरल विश्वविद्यालय के प्रोफेसर एवं हिंदी विभागाध्यक्ष प्रो०(डॉ०) तंक मणि अम्मा सहित कई महाविद्यालयों के प्राध्यापकों ने अपनी उपस्थिति से गौरवान्वित किया। बैठक में सर्वसम्मति से मंच की केरल इकाई की राज्य कार्यकारिणी का पुनर्गठन किया गया जिसके डॉ० एन. चंद्रशेखरन नायर अध्यक्ष तथा डॉ० तंक मणि अम्मा कार्यकारी अध्यक्षा निर्वाचित हुई। डॉ० पी. लता को महासचिव का दायित्व सौंपा गया। बैठक में राष्ट्रीय एकता पर चर्चा चल रही थी, ऐसे में प्रो० पुष्पम द्वारा देशभक्ति पर प्रस्तुत गीत ने सोने में सुहागा का काम किया। डॉ० नायर के अध्यक्षीय उद्गार और डॉ० सुरेश के धन्यवाद-ज्ञापन के उपरांत बैठक समाप्त हुई। डॉ० नायर के सौजन्य से प्राप्त जलपान के बाद उन्होंने मंच के मुख-पत्र 'विचार दृष्टि' के नियमित प्रकाशन के लिए नई दिल्ली में स्थापित 'विचार दृष्टि सुरक्षित निधि' में दस हजार रुपए का चेक मुझे सौंप कर डॉ० एन. चंद्रशेखरन नायर ने उसके प्रथम दाता सदस्य (Doner Member) होने का गौरव प्राप्त किया। मैंने पत्रिका की ओर से उनके प्रति आभार व्यक्त करते हुए कहा कि उनका यह दान पत्रिका के लिए जहाँ वरदान साबित होगा, वहीं उत्तर भारतीय लोगों को प्रेरित भी कर सकेगा। मैं एक बार पुन: डॉ० नायर की उदारता और सदाशयता के लिए उनके प्रति हार्दिक आभार व्यक्त करते हुए यह आशा रखता हूँ कि उनका मार्गदर्शन हमें सदैव मिलता रहेगा।

कन्याकुमारी का विवेकानंद रॉक मेमोरियल:

दक्षिण भारत की यात्रा हो और उसके अंतिम छोर पर स्थित कन्याकुमारी की यात्रा न की जाए, तो यात्रा पूरी नहीं कही जाएगी। सो 4 अगस्त 2008 को अहले सुबह तिरुवनंतपुरम से नागरकोविल और नागरकोविल से बैंगलुरु-कन्याकुमारी एक्सप्रेस द्वारा हमलोग कन्याकुमारी पहुँचकर वहाँ के समुद्र स्थित स्वामी विवेकानंद रॉक मेमोरियल तथा निर्माणाधीन तिरुवल्लुवर की आदमकद प्रतिमा को देखा और यह संकल्प लिया कि इन महापुरुषों के बताए रास्ते पर चलने के लिए प्रेरित व प्रोत्साहित किया जाए। फिर बस द्वारा हमलोग संध्या समय तिरुवनंतपुरम सेंट्रल के विश्रामालय लौटकर दूसरे दिन 5 अगस्त 2008 को हैदराबाद के लिए रवाना हुए और यह यात्रा-वृतांत लिखते-लिखते गाड़ी सरपट दौड़ी जा रही थी तथा ट्रैक के दोनों ओर नारियल और केले के हजारों नहीं लाखों लाख पेड़ तथा बीच-बीच में बहती नदियाँ संगीत की लहरी बिखेरती जा रही थीं। कुछ ही देर में देखा कि एक दक्षिण भारतीय दंपत्ति हारमोनियम बजाते-गाते डिब्बे में प्रवेश किया जिसने एक प्रसिद्ध हिंदी फिल्म 'राजा हिंदुस्तानी' का एक बेहतरीन गीत प्रस्तुत कर गंगा जमुनी संस्कृति को बिखेर दिया। गाने के बोल थे- 'परदेशी, परदेशी जाना नहीं, मुझे छोड़ के' । मैंने देखा डिब्बे के सभी यात्री चाहे वे दक्षिण भारत के हों या हमारे जैसे उत्तर भारत के हिंदी का, वह गीत सुनकर झुम उठे, क्योंकि गीत की पंक्तियों ने उनके मन-मस्तिष्क को छुआ था। आखिर हम कैसे कहें कि दक्षिण भारतीयों में हिंदी के प्रति सम्मान

का भाव नहीं है? इसी सम्मान भाव के चलते ही तो सबों ने दंपत्ति को खुलकर दान दिया।

फिर संध्या समय बस से तिरुवनंतपुरम वापस होकर दूसरे दिन यानी 5 अगस्त, 2008 को शबरी एक्सप्रेस द्वारा सुबह 7 बजकर 15 मिनट पर रवाना होकर 6 अगस्त, 2008 को अपराह्न एक बजकर 40 मिनट पर हैदराबाद पहुँचे जहाँ 'विचार दृष्टि' के आँध्र प्रदेश ब्यूरो प्रमुख डॉ० ऋषभदेव शर्मा के सौजन्य से खैरताबाद स्थित दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा के अतिथिगृह में हमलोग ठहरे। फिर संध्या समय बिरला मंदिर में बालाजी का हमलोगों ने दर्शन किया और वापसी में स्थानीय रविन्द्र भारती सभागार में आँध्र प्रदेश सरकार, संस्कृति विभाग की ओर से अजंता आर्ट अकादमी द्वारा आयोजित 'एक शाम लता के नाम' सांस्कृतिक कार्यक्रम का भरपूर आनंद हमलोगों ने उठाया। दूसरे दिन यानी 7 अगस्त, 2008 को अहले सुबह टहलने के सिलसिले में हुसैन सागर के चारों ओर

स्थित नेक्लेस रोड तथा हरे-भरे गार्डन का हमने मजा लिया। फिर हैदराबाद स्थित प्रमुख सलारजंग तथा चारमिनार को हमलोगों ने देखा। वहाँ से वापस होकर दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा के उच्च शिक्षा एवं शोध संस्थान के प्रांगण में राष्ट्रीय विचार मंच की आँध्र प्रदेश इकाई की ओर से डॉ० ऋषभदेव शर्मा की अध्यक्षता में आयोजित प्राध्यापकों एवं साहित्यकारों की बैठक को संबोधित करते हुए जहाँ हमने मंच के अभियान के उद्देश्यों पर प्रकाश डाला, वहीं उदय कुमार 'राज़' ने अधिवेशन के निधारित विषयों का खुलासा किया। इसके बाद मंच की आँध्र प्रदेश शाखा की राज्यकार्यकारिणी का पुनर्गठन हुआ जिसकी अध्यक्षा निर्वाचित हुई डॉ० कविता वाचक्नवी तथा श्री चंद्रमालेश्वर प्रसाद को सर्वसम्मति से महासचिव का दायित्व सौंपा गया। प्रो० बालाजी इकाई के कोषाध्यक्ष हुए। डॉ० ऋषभदेव शर्मा जी पुनः आँध्र प्रदेश में 'विचार दृष्टि' के ब्यूरो प्रमुख पद पर निर्वाचित हुए। पूर्व प्राचार्या डॉ० अहिल्या मिश्र ने हमारे अनुरोध पर 'विचार दृष्टि' के नियमित प्रकाशन हेतु स्थापित 'विचार दृष्टि सुरक्षित निधि' की दाता सदस्या (Doner Member) होने की सहमति जताते हुए दो किश्तों में दस हजार रुपए की राशि प्रदान करने की स्वीकृति दी जिसमें से पाँच हजार रुपए का एक चेक संपादक को प्रदान कर अपनी उदारता और सदाशयता का परिचय दिया।

बैठक के दूसरे चरण में मंच की नव निर्वाचित अध्यक्षा डॉ० कविता वाचक्नवी को मैं अंगवस्त्रम प्रदान कर सम्मानित किया और उसके बाद आयोजित लघु काव्य संध्या को डॉ० ऋषभदेव शर्मा, डॉ० कविता वाचक्नवी, श्री उपाध्याय, श्री चंद्रमौलेश्वर प्रसाद, प्रो० बालाजी, श्री उदय कुमार 'राज़' आदि ने अपने काव्य-सुधा-रस का पाठ कर उसे सरस बनाया।

8 अगस्त, 2008 को हमलोगों ने हैदराबाद से कोई 25-30 किलोमीटर दूर स्थित रामोजी फिल्म सिटी का भर दिन भ्रमण कर भरपूर आनंद उठाया। वहाँ से वापस होने के बाद स्थानीय वैंगलराव नगर स्थित डॉ० अहिल्या मिश्र के आवास पर घनघोर बारिश के बावजूद हमलोग जाकर न केवल उनके परिवार के सभी सदस्यों से मिले, बल्कि शुद्ध रूप से तैयार मैथिल भोजन का रसास्वादन किए जिसके लिए

डॉ० मिश्र के साथ-साथ उनकी पुत्रवधु श्रीमती मुक्ता के प्रति हम हार्दिक आभार व्यक्त करते हैं। डॉ० मिश्र के पतिदेव का उनके जन्म दिवस पर हमने अपनी शुभकामनाएँ अर्पित कर उनका स्नेह प्राप्त किया। फिर 9 अगस्त, 2008 को प्रातः 6 बजकर 25 मिनट पर आँध्र प्रदेश एक्सप्रेस द्वारा प्रस्थान कर दूसरे दिन 10 अगस्त, 2008 को सुबह नई दिल्ली पहुँच गए।

दक्षिण भारत की यह यात्रा इस मायने में यादगार और सफल साबित हुई कि इसने न केवल मंच तथा उसके मुख-पत्र 'विचार दृष्टि' के उद्देश्यों को मूर्त रूप प्रदान करने तथा उसे गति देने की कोशिश की, बल्कि मंच द्वारा नई दिल्ली में आयोजित राष्ट्रीय अधिवेशन की पूर्व पीठिका तैयार कर गई।

दक्षिण भारत के राज्यों में केरल एक

ऐसा राज्य है, जो प्रकृति की पूरी आबो-हवा को अपने आगोश में समेटे हुए है। यह प्रकृति, इतिहास और इंसान की मिली-जुली कलाकृति है। इसे प्रकृति की रची गई एक कविता भी कहा जा सकता है। केरल के विभिन्न इलाकों में ईसाई बस्तियाँ तो हैं ही, सदियों पुराने चर्च और उस जमाने की चित्रकारी दिखलाई देती है। यहाँ के ऊँचे पहाड़ी टीले, गहरी खाइयाँ और घाटियाँ देखने लायक हैं जिसने इस इलाके को कल्पना लोक सरीखा बना दिया है। सफाई और अनुशासन के लिए मशहूर केरल मौज-मस्ती के लिए भी अच्छी जगह है। हमने तो खैर राष्ट्रीय विचार मंच और उसके मुख पत्र 'विचार दृष्टि' के नई दिल्ली में आयोजित द्वितीय राष्ट्रीय अधिवेशन को सफल बनाने के सिलसिले में केरल की राजधानी तिरूवनंत पुरम की यात्रा की, मगर पाठक परिवार के साथ आनंद लेने के लिए एक बार केरल की यात्रा अवश्य करें, क्योंकि प्रकृति की गोद में बसा यह रैन बसेरा पूरी दुनिया में प्रकृति प्रेमियों के बीच प्रसिद्ध है जहाँ आप प्रकृति का लुत्फ उठा सकते हैं।

प्राकृतिक रूप से केरल में बहती नदियों का उन्मुक्त प्रवाह जीवनदायी है। अपने इर्द-गिर्द के क्षेत्रों को सींचती आसपास के लोगों व जीव-जंतुओं की प्यास बुझाती,

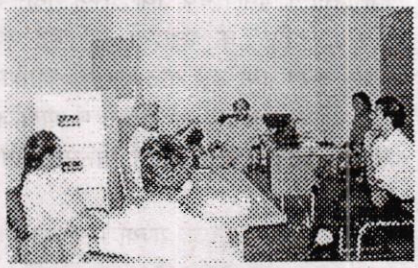

अपने अंदर और बाहर जीवन के विविध रूपों को पालती, पोसती, मार्ग में अनेकानेक जलधाराओं को समेटती नदी अंततः समुद्र में विलीन हो जाती है। नदी का यह प्राकृतिक बहाव व्यर्थ नहीं है, क्योंकि कुरदत की हर देन का अपना एक महत्त्व होता है जिससे जब तक अधिक छेड़छाड़ न की जाए, तब तक सहज ही वह धरती पर जीवन को पोषित करती रहती है और अनेक तरह से मनुष्य को निरंतर लाभ पहुँचाती है।

हमने देखा कि केरलवासी नदी के निकट बस कर नदी से अपना अटूट रिश्ता महसूस करते हैं। नदी का कल-कल बहता पानी और समय-समय पर नदी के बदलते रूप मानो उनसे कुछ कहते हैं, उन्हें कुछ सिखाते हैं। सच तो यह है कि केरल की नदियाँ अपने उन्मुक्त प्राकृतिक प्रवाह में युगों-युगों से केरलवासियों व अन्य जीवों को सहज ही अनेक लाभ देती आई है और उनकी खुशहाली एवं स्थायी प्रगति के लिए प्रकृति की हरीतिमा काफी उपयोगी सिद्ध हुई है, क्योंकि वहाँ के लोगों के मानसिक विकास व शांति के साथ यहाँ के हरीतिमा संवर्धन का घनिष्ठ संबंध है। हमलोगों ने भी केरल की यात्रा करते हुए प्रकृति की सुषमा का चैन से स्वाद लेते दुर्गम पहाड़ों के बीच तीन-चार दिन गुजारे।

पुरातात्विक धरोहरों से भरपूर हैदराबाद का आनंद:

5 अगस्त, 2008 को प्रातः 7 बजकर 10 मिनट पर तिरुवनंतपुरम सेंट्रल से सबरी एक्सप्रेस गाड़ी सं० 7229 द्वारा हैदराबाद के लिए हमलोग प्रस्थान कर गए और गाड़ी खुलते ही हमने डॉ० नायर से दूरभाष पर बात कर उनके प्रति सुक्रिया अदा करते हुए उनसे अशीष प्राप्त किया।

दक्षिण भारत में आंध्र प्रदेश की राजधानी हैदराबाद एक ऐसा महानगर है जहाँ किसी भी मौसम में जाया जा सकता है। यों तो पुरातात्विक धरोहरों की दृष्टि से हैदराबाद, विश्वभर में अपना विशिष्ट स्थान रखता है, किंतु यहाँ का सभी कुछ अद्वितीय हैं। हैदराबाद के हयात नगर क्षेत्र में स्थित आज से तकरीबन डेढ़ दशक पूर्व निर्मित रामोजी फिल्म सिटी अद्‌भुत कल्पनाशीलता का उत्कृष्ट नमूना है। 2000 एकड़ के विस्तृत क्षेत्र में फैला इस कल्पनालोक फिल्मसिटी ने तो तकनीक सुविधाओं की दृष्टि से हॉलीवुड को भी पीछे छोड़ दिया है। 'गिनीज बुक' में दर्ज इस जादुई फिल्म सिटी से फिल्म प्रेमियों और निर्माताओं-निर्देशकों के साथ-साथ आम पर्यटकों का भी गहरा रिश्ता जुड़ गया है। हर वर्ष लगभग 10 लाख से अधिक देशी-विदेशी पर्यटक यहाँ आते हैं। वर्तमान दौर में यहाँ फिल्म निर्माण के विश्वस्तरीय उपकरण व अन्य सुविधाएँ उपलब्ध हैं। खासकर बच्चों के लिए विशेष सुविधाएँ जुटाई गई हैं।

हैदराबाद से 20 किलोमीटर दूर रामोजी फिल्म सिटी जाने के लिए आंध्र टूरिज्म की बसें और टैक्सियाँ उपलब्ध हैं जो उसके प्रवेश द्वार तक ले जाती हैं फिर अंदर की यात्रा के लिए फिल्म सिटी की बसों में जाना होता है यात्रा का समय प्रातः 9 बजे से सायं 6 बजे तक है। बड़ों के लिए 300 रुपए और बच्चों के लिए 250 रुपए प्रवेश शुल्क है। फिल्म सिटी के अंदर जाने पर ऐसी कल्पना नहीं की जा सकती कि ऊँची-नीची पथरीली पहाड़ियों में एक ऐसे अकल्पनीय स्वप्निल संसार की रचना हो सकती है।

रामोजी फिल्म सिटी में व्यक्तिगत खाद्य सामग्री, आग्नेय अस्त्र, मादक पदार्थ व शराब आदि ले जाने की इजाजत नहीं है। खाने-पीने की सभी सुविधाएँ अंदर ही उपलब्ध हैं। 'युरेको' से प्रारंभ होकर फिल्म सिटी की यात्रा यहीं समाप्त भी होती है। यहाँ मनोरंजन के कई गुद-गुदाने वाले साधनों के साथ-साथ, कहीं मौर्य कालील गलियारा दिखता है तो कहीं पाश्चात्य तर्ज पर बनाए गए बाजार के दर्शन होते हैं। यहाँ बच्चों के लिए तो मनोरंजन की ढेर सारी सामग्री हैं ही, बड़ों के लिए भी अपना बचपन लौटाने के भरपूर अवसर सुलभ हैं। युरेका से थोड़ी ही दूर पहाड़ी पर बना भव्य हवा महल तथा

इसकी ढलानों पर हरी घास के मैदान व फूलों के अदभुत संयोजन से सजी-संवरी क्यारियाँ बरबस मन मोह लेती हैं। चौराहों पर खूबसूरत फव्वारे तथा कलात्मक मूर्तियाँ बरबस मन को मोह लेती है जिनमें से सायो नारा, फ्लाइंग किस, हवाई, सिंघूर लेन, मैजेस्टिक फाउंटेन प्रिंस स्ट्रीट उल्लेखनीय हैं। अलग-अलग स्थानों पर विभिन्न पशुओं की भव्य अनुकृतियाँ यानी वन्य पशु अभ्यारण्य इस सिटी की यात्रा का चरम बिंदु है जिसे देखकर एक बारगी तो आँखें धोखा खा जाती हैं। भूख लगने पर अवध की शाही मुगलई तरकारियों-व्यंजनों के लिए 'आलमपनाह' तथा शुद्ध शाकाहारी भोजन के लिए 'चाणक्य' स्वागत के लिए तैयार हैं जहाँ नाना प्रकार के व्यंजन उपलब्ध हैं। इसी प्रकार दक्षिण भारतीय व्यंजनों से सजी थाली का मजा लूटना हो तो 'गंगा जमुना' आपकी आगवानी के लिए तैयार है। 8000 से अधिक लोगों को रोजगार मुहैया कराने वाला यह जादुई शहर लाखों पर्यटकों के दिलों की धड़कन बन गया है।

हैंदराबाद एक ऐसा शहर है जहाँ की मुस्लिम सांस्कृतिक विरासत बहुत समृद्ध तथा वास्तु कला की दृष्टि से बहुत दिलचस्प है। चारमीनार, यूनानी अस्पताल, मक्का मस्जिद चौमहल, सलारजंग संग्रहालय, असाफिया स्टेट लाइब्रेरी, पुरातत्त्व संग्रहालय, नौबत पहाड़ स्थित लॉर्ड वैंकटेश्वर मंदिर, हुसैन सागर, निजामिया वेधशाला, उसमानिया विश्वविद्यालय, गोलकुंडा पोर्ट, ओसमान सागर, नेहरू जैविक उद्यान, आदि अनेक दर्शनीय स्थल हैं।

उपसंहार:

महानगरों की जीवन-शैली को छोड़ दें, तो भी नगरों, शहरों की जीवन-शैली एक समान होती जा रही हैं। अब बहुत से नगर अपनी पहचान खोकर भीड़, यातायात जाम, दुर्घटना और अव्यवस्था की दृष्टि से एक जैसे ही नजर आने लगे हैं। शर्म-लिहाज, मान-मर्यादा, सम्मान; आदर, सामाजिक डर जैसे मूल्य तो मुँह छिपाए कहीं जा बैठे हैं। हिंसा, क्रोध, बेशर्मी, अकड़, गुंडई सड़कों पर बिचरती दिखती हैं। तार-तार होती तहजीब और नई माल संस्कृति ने एक अँधी दौड़ उत्पन्न की है जिसमें कम समय में ज्यादा प्राप्त करने की होड़ है, बेचैनी है, असंतुष्टि और आपाधापी है जो घरेलू हिंसा से लेकर 'रोड रेंज' की हिंसा तक दिख रही है। मगर इन सब के बावजूद मैंने अपनी भाषा और भावों को समयानुकूल व्यक्त करने की कला के बल पर दक्षिण भारत के चारों राज्यों की यात्रा सफलतापूर्वक पूरी कर ली। आज की सिमटती दुनिया में इस छोर से उस छोर तक जहाँ आदमी-आदमी में कामयाब होने का जज्बा भरा होता है भाषा और भाव के बल पर इस घोर प्रतिस्पर्धा के दौर में भी सफलता के मूल-मंत्र समेटे जा सकते हैं। जरूरत केवल इस बात की है कि किस परिस्थिति में किस तरह के भाव व्यक्त किए जाएँ और किस लहजे में किए जाएँ। इसे नहीं जानने पर कतई कामयाबी नहीं मिल सकती।

दक्षिण भारत की यात्रा के संदर्भ में इनके राज्यों के धार्मिक स्थलों की चर्चा करना मैं इसलिए जरूरी समझता हूँ कि धर्म के नाम पर जितना शोषण, दिखावा, लूट, आडंबर, पाखंड, अँध-विश्वास हमारे देश में है, शायद ही विश्व में कहीं हो। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि काशी, मथुरा, वृंदावन, वैष्णो देवी, केदारनाथ यानी चारों धाम से लेकर देश के पूरब-पश्चिम, उत्तर-दक्षिण में जितने भी तिरुपति जैसे नामचीन मंदिर हैं, यहाँ लोग अपनी श्रद्धा से देवी-देवताओं के दर्शन के लिए आते हैं। यहाँ आकर पता चलता है कि इन धार्मिक स्थलों पर लूट की सिवाय और कुछ भी नहीं। श्रद्धा-दर्शन ने निश्चित रूप से दर्शन उद्योग का रूप ले लिया है। पैसे दो और दर्शन करो। जितना अधिक पैसा उतनी जल्दी सुविधाजनक दर्शन। और तो और दक्षिण भारत के सर्वमान्य तिरुपति के दर्शन में भी वही बात। आठ-आठ, दस-दस घंटे तक पंक्ति में खड़े रहिए, तब कहीं जाकर उनका दर्शन कीजिए अन्यथा जेब से जितना अधिक पैसा खर्च कीजिए, दर्शन सुलभ हो जाएगा। सो मैंने न तो घंटों पंक्ति में खड़े रहकर तिरुपति के दर्शन के लिए इंतजार करना लाजिमी समझा और न ही दर्शन के लिए पैसे देना उचित समझा। तिरुपति के दरबार में जाकर दूर से ही नमस्कार करना मुझे यह समझकर अच्छा लगा कि भगवान एक तो सर्वव्यापी हैं और दूसरे अंतर्यामी भी। इसलिए वह हमारे स्वच्छ मन को समझते ही होंगे। फिर तिरुपति जाने का उद्येश्य भी तो 30 एवं 31 अक्टूबर 2008 को नई दिल्ली में आयोजित मंच तथा 'विचार दृष्टि' के दो दिवसीय राष्ट्रीय अधिवेशन को सफल बनाने हेतु प्रचार-प्रसार करना था।

हाँ, तो मैं चर्चा कर रहा था भगवान के दरबार में जाकर दर्शन करने की, जहाँ सब बराबर समझे जाते हैं। लेकिन वहाँ जाकर पता चलता है कि यह सब मात्र दर्शन ही है। हाल ही में माता वैष्णों देवी मंदिर के भी दर्शन की रेट लिस्ट प्रकाशित हो चुकी है। जहाँ तक सेना के जवानों को विशेष द्वार से दर्शन कराना तो उचित जान पड़ता है, क्योंकि उनके पास समय का अभाव होता हैं, मगर बाकी लोगों से धन लेकर दर्शन की सुविधा देना गरीब श्रद्धालुओं की गरीबी का मजाक उड़ाने जैसा है। बात की जाएगी शबरी और निषाद की और पूजा होगी धन-पशुओं की, दक्षिण भारत की यात्रा के दौरान धर्म-स्थलों में स्थित भगवान के दरबार में भी दर्शन और पूजा से बँधे हुए रेट देखकर मैं इस नतीजे पर पहुँचता हूँ कि ये देवालय श्रद्धा के द्वार नहीं, बल्कि 'दर्शन-उद्योग' की दुकान बन गए हैं जहाँ देव-दर्शन के नाम पर जेब काटी जाती है और गरीब श्रद्धालुओं को लूटा जाता है। मंदिर-मस्जिद भी लोलुपता की जगह बन जाए, तो विश्वास उठने लगता है और पाखंड के आराधकों की वजह से आमजन परेशान होने को मजबूर हो जाते हैं। जो हो, दक्षिण भारत के इन चारों राज्यों की हमलोगों की यह यात्रा नई दिल्ली में आयोजित राष्ट्रीय अधिवेशन को लेकर हुई और फिर एक नई विचार क्रांति के प्रति साहित्य से सरोकार रखने वालों को सजग कर गई। एक लंबे समय के बाद की गई दक्षिण भारत के चारों राज्यों की यह यात्रा मंच तथा 'विचार दृष्टि' के लिए एक असाधारण उपलब्धि तो रही ही, इतिहास और वर्तमान के साथ विभिन्न राज्यों की संस्कृति और तकनीक एवं साहित्यकारों के साथ ऐसा सुंदर तालमेल बैठाया गया जो वर्षों तक याद रखा जाएगा। राष्ट्रीय समाज के साहित्यकारों-पत्रकारों तथा प्रबुद्धजनों के बीच तालमेल बिठाने का मंच का एक प्रमुख उद्येश्य भी पूरा हुआ। ऐसी उपलब्धि आमतौर पर आसान नहीं होती। यह मंच की संकल्पशक्ति का ही प्रतिफल है और हमारी यही निष्ठा हमें जीवन लक्ष्य की ओर आगे बढ़ाती है।

एक नये सामाजिक और सांस्कृतिक संघर्ष की ज़रूरत

O डॉ. एम. शेषन

हमारे यहाँ तमिलनाडु में एक लोकप्रिय सिनेमा अभिनेत्री 'खुशबू' ने आज की महिलाओं के बारे में जो 'क्रांतिकारी' विचार व्यक्त किया उसने यहाँ के समाज में बड़ा हंगामा खड़ा कर दिया। उसके विरोध में तमिलनाडु भर में लोग विशेषकर तमिल महिलाओं ने अपना तीव्र आक्रोश व्यक्त किया है। नारी को लेकर व्यक्त उस अभिनेत्री के विचार अवश्य ही समाज के लिए स्वीकार्य नहीं माना जा सकता।

हमारी चिंता केवल यही है कि यह किसी एक व्यक्ति के खिलाफ़ छिड़े आंदोलन सीमित न रह जाये। प्रकट रूप से समाज के सामने उस अभिनेत्री के क्षमा माँगने भर से यह आंदोलन रुकना नहीं चाहिए। ऐसा करें तो आंदोलन का कोई प्रयोजन नहीं निकल सकेगा।

नारी के खिलाफ़ खूशबू द्वारा अभिव्यक्त विचार अवश्य ही खंडन करने लायक ही है। इसे आज के सांस्कृतिक अरक्ष के रूप में समझना बेहतर होगा। हमें समझना होगा कि यह सिर्फ़ शुशबू के विरुद्ध छेड़ा गया आंदोलन मात्र नहीं है। आज के समाज में व्याप्त सांस्कृतिक असुरक्षा पर रोक लगाने के निमित्त शुरु हुए आंदोलन की शुरुआत के रूप में लेना ही सही होगा।

सांस्कृतिक अरक्ष या बढ़ती अपसंस्कृति पर रोक लगाने के लिए सिर्फ़ आंदोलन, नारेबाजी या हंगामा खड़ा करने से कोई विशेष प्रयोजन नहीं निकलने वाला है। ऐसी बात नहीं है कि यह सांस्कृतिक अरक्ष या अपसंस्कृति एक दो दिन में हुई हो। यह तो धीरे-धीरे हमारी संस्कृति को मिटाने वाला कैंसर रोग है।

निकृष्ट और निंदनीय, कुकृत्यों से भरे दृश्यों तथा हिंसात्मक और बलात्कार के दृश्यों के लिए 'रेडकार्पेट' बिछाकर उन्हें हमारे घरों के स्वागत कक्ष में ले आकर दिखाते हुए सांस्कृतिक अध:पतन के लिए बीज बोया जा रहा है हमारे विदेशी चैनल के माध्यम से। उसके लिए खाद डालकर पानी से सींचकर उसे बढ़ा रहा है 'इंटरनेट' का जाल और 'बेबसाइट'।

इस इंटरनेट के जाल का कुप्रभाव हमारे समाज के मध्यम वर्ग तथा उच्च वर्ग के लोगों पर ही ज्यादा पड़ रहा है। लेकिन सिनेमा तो भूखे-नंगे अशिक्षित दलित वर्ग के गरीबों पर जयादा कुप्रभाव डालकर सांस्कृतिक पतन के लिए मार्ग प्रशस्त करता है।

संचार माध्यमों में सिनेमा बड़ा शक्तिशाली एवं ज़बर्दस्त माध्यम माना जाता है। क्योंकि श्रव्य माध्यम की अपेक्षा दृश्य माध्यम का ज़बरदस्त प्रभाव हमारे अशिक्षित (और शिक्षित भी) जनता पर पड़ता है। भारत में अन्य प्रदेशों के बारे में तो मुझे इतनी जानकारी नहीं, लेकिन हमारे तमिलनाडु और आंध्रप्रदेश में सिनेमा के प्रति इतना लगाव देखा जाता है कि गरीब जनता अपनी आमदनी का एक हिस्सा सिनेमा देखने में खर्च करती है। यहाँ तो सिनेमा के प्रति इतना मोह है कि अपने पसंद के अभिनेता या अभिनेत्रियों के लिए आदमकद के 'कटआउट' शहरों के सिनेमा घरों के सामने तथा अन्य जगहों पर देखा जा सकता है सिनेमा घरों में प्रथमदर्शन 'फर्स्ट शो' के दिन इन कटआउटों पर दूध का अभिषेक कर उस पर माला चढ़ाकर उसकी आरती उतारते हैं। इन अभिनेता, अभिनेत्रियों परम रसिकवंद। प्रसिद्ध अभिनेत्री खुशबू के लिए इन रसिकों ने मंदिर भी बनवा डाला है। प्रसिद्ध अभिनेताओं के लिए 'रसिकर मन्द्ररम' (रसिकों का संघ) निर्मित है। पागलपन की अति हो गयी है। इस प्रकार सिनेमा ने हमारे नितप्रति जीवन को बहुत प्रभावित किया है। हमारे जीवन के सुख-दुख, आशा अभिलाषाओं को भूलकर सिनेमा के लिए सभा अपने पसंदीदा अभिनेता या अभिनेत्रियों के लिए प्राणत्याग करने वाले युवा रसिकों की यहाँ कमी नहीं है।

लगभग तीस-पैंतीस साल पहले तक सिनेमा समाजोपयोगी नीति की बातों का आधार लेकर अच्छे अच्छे फिल्म बनाया जा रहा था। स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान तथा उसके तुरंत बाद भी सामाजिक परिवर्तन तथा बदलाव लाने के उद्देश्य से बहुत उपयोगी और सार्थक फिल्म लिये गए थे। लेकिन आज सिनेमा का स्तर एकदम गिरा हुआ है। पहले के चलचित्रों में शराब पीना, सिगरेट फूँकना, चुंबन देना बलात्कार का दृश्य गलत माना जाता था। व्यक्ति मानव के नैतिक आचरण पर ज़ोर देने वाली अच्छी कथायें उनमें पायी जाती थीं। भले ही अपने वैयक्तिक जीवन में ये अभिनेता अभिनेत्री भिन्न प्रकार के रहे हों लेकिन अपने सामाजिक व्यवहार में उनका आचरण बुरा नहीं था।

लेकिन आज के चल-चित्रों की कथायें हमारी परिष्कृत रुचि के अनुकूल नहीं है। उनमें संस्कृति को जड़ से उखाड़कर रखने वाली कथायें, व्यक्ति मानस की मनोवक्रताओं और विकृतियों को भड़काकर उक्साकर अश्लील संवादों और दृश्यों के माध्यम से दर्शकों के मन में विकृति पैदा कर देते हैं। सिनेमावालों के पास कोई लक्ष्मण-रेखा है ही नहीं।

सिनेमावाले यह तर्क पेश करते हैं कि आज के समसामयिक जीवन के यथार्थ को ही हम प्रतिबिंबित करने का काम कर रहे हैं। समाज के किसी अंधेरे कोने में घटने वाली अश्लील या असामाजिक घटनाओं को रोशनी में ले आकर समसामयिक जीवन व्यवस्था एवं जीवन शैली में यह भावना बढ़ती और सुदृढ़ होती नज़र आ रही है।

भूमण्डलीकरण और उदारीकरण इसी उत्तर आधुनिकतावादी जीवन के साथ हमारे देश में आया है। वस्तुओं और माल के साथ-साथ संस्कृति भी एक देश से दूसरे देश में आयातित हो रही है। इस प्रकार एक सांस्कृतिक संक्रमण की दशा यहाँ उत्पन्न हो गयी है। इस सांस्कृतिक संक्रमण की दशा यहाँ उत्पन्न हो गयी है। इस सांस्कृतिक संक्रमण ने हमारी बुनियादी राष्ट्रीय जीवन की जड़ों को ही उखाड़ फेंकने का काम किया है। जिस देश की आर्थिक शक्ति जितनी अधिक हो, वह अपने व्यापार के माल के साथ-साथ अपनी संस्कृति को भी हमारे ऊपर थोपने लगता है। यह संस्कृति, अब तक हम जो इडली, दोसा, या समोसा, पूड़ी, कचौड़ी खाते रहे उन्हें पिज्जा, बर्गर-खाने पर विवश करती है। जगह-जगह पर शहरों में पिज्जा की दूकानें खुल गयी हैं। शताब्दियों से नाटक, संगीत, नृत्य आदि सांस्कृतिक समारोहों में रुचि रखने वाले भारतीय को रात रात भर 'डिस्को' की खोज में जाकर या 'पॉपम्यूजिक' सुनने में आतुर बनाकर आधीरात्री तक नाचते गाते बड़ी देर रात को घर लौट आने का मार्ग दिखाती है। भारतीय मनीषा एवं संस्कृति प्रदूषण से भारतीय जनमानस को बचाने के प्रति वे विकल मानव शक्ति से भी परे एक पराशक्ति पर परमपिता पर विश्वास करने की अपेक्षा, अपने स्वयं को समझने के लिए योग-ध्यान को अपनाकर, व्यायाम करते हुए अपने शारीरिक बल को बढ़ाने में तत्पर एक नयी आध्यात्मिकता का हम स्वागत करने लग गये हैं आज धनार्जन के निमित्त सारा दिन दौड़ धूप करना, सुविधाओं की खोजकर भटकते रहना आदि वस्तु और अर्थ केंद्रीत चिन्तन हमारे जीवन में गहरे उतर रहा है। जीवन की सार्थकता ही धनोपार्जन और अर्थसंग्रह में माना जाने लगा है। हमारी मानसिकता में यह बात घर कर गयी है। इसके परिणामस्वरूप होने वाले अस्वस्थ परिणाम तो अनगिनत हैं।

भारतीय जीवन ने परिवार नामक संस्था को बड़ा महत्त्व प्रदान किया है और मानव की सामाजिक भावना या चेतना को यह बुनियादी तत्त्व मानता आया है। अब यह भावना ढीली होती नज़र आने लगी है। आज वस्तु स्थिति यह है कि परिवार में पति-पत्नी दोनों कामकाजी व्यक्ति होने लग गये हैं। अधिकतर गृहिणियाँ; अब धीरे-धीरे नौकरी पेशेवाली बनती जा रही हैं। दामपत्य जीवन में और पारिवारिक जीवन में बाल-बच्चों के साथ हिल मिलकर खुशी मनाने की पुरानी भारतीय परंपरा और रीति रिवाजों को अब नकारा जाने लगा है। भारतीय पारिवारिक जीवन में विवाह विच्छेद देखने सुनने को मिलते हैं। परिवार टूटने लग जाते हैं तो जीवन की सार्थकता ही निरर्थक हो जाती है। पारिवारिक तनाव टूटन का सीधा प्रभाव (या कुप्रभाव) बाल बच्चों पर पड़ना स्वाभाविक है। इसके परिणाम स्वरूप बच्चे माँ-बाप के सीधे प्यार-प्रेम से वंचित होकर मानसिक दबाव और तनाव का अनुभव करने लगते हैं।

उत्तर आधुनिकतावादी जीवन में इसके द्वारा प्रदत्त बुनियाद रहित, परंपरा से विच्छिन्न एक जीवन शैली के कारण मानव मन में एक खालीपन, एक शून्य पैदा हो गया है।

इसी का परिणाम है यहाँ बढ़ते 'ध्यान केन्द्र', 'मसाज पारलर', 'साधुसंतों की मंडली' आदि। मानसिक शांति की खोज में भटकने वाले किसका अनुकरण करें, किसकी बात सुनें, कौन सा खाना अच्छा है, कौन सा व्यवहार सही है, इन सबको न समझ सकने के कारण भटकने और उलझनों से भरे एक युग में हम जी रहे हैं इस उलझन भरे, तनाव से युक्त जीवन से बचने तथा उत्तर आधुनिकवादी जीवन से उत्पन्न मन के टूटने और छेदों को पाटने के निमित्त मानकी विद्वानों ने तीन प्रकार के मार्गों को हमें सुझाया है।

पहली बात यह है कि कुटुम्ब, परिवार नामक पुरानी संस्था का पुनर्गठन होना ज़रूरी है। परिवार का पुनर्निर्माण होना है। दिन भर जहाँ कहीं भी घूमें, शाम को फिर घर आकर अपने परिवार वालों के साथ खुशी से रहने तथा जो भी काम करें उसे परिवार के सभी सदस्यों के साथ इकट्ठा मिलकर करना होगा। यह भावना या मनोवृत्ति केवल पारिवारिक जीवन ही हममें पैदा कर सकती है।

दूसरी बात है ईश्वर पर आस्था, अँधविश्वास से परे होकर बुद्धिपूर्वक एक परमसत्ता पर विश्वास करना आवश्यक हमारी मानवीय शक्ति की भी एक सीमा होती है इस विचार को मान कर अपने से भी परे एक बड़ी शक्ति अवश्य है यह विचार टूटे हुये जीवन के लिए विश्वास दिलाने वाली, जीवन में आस्था पैदा करने मानसिक तनाव और भार को कम करने वाली एक महाऔषधि, यह ज़रूरी नहीं कि यह विश्वास धर्म समन्वित ही हो, मानवीय शक्ति-क्षमता से भी परे एक पराशक्ति है, यह आध्यात्मिक चिंतन और चेतना रहे तो भी पर्याप्त है।

तीसरा, प्रवृत्ति से लगे रहकर जीवन जीने का एक मानसिक परिपक्वता हम में होना चाहिए।

अप्राकृतिक या कृत्रिम खान-पान, तौर-तरीके, प्राकृतिक शक्ति को क्षीण करने वाली ईंधनों को उत्पादनों को कमकर प्रकृति को महत्त्व देकर जीने वाला जीवन ही सही जीवन है। कांक्रीट जंगलों में रहना त्यागकर, नगर जीवन की यातनाओं से मुक्त होकर ग्रामजीवन जीने का मानसिक परिवर्तन हममें आना चाहिए। समाज चेतना, सामूहिक विकास, देशभक्ति आदि सामाजिक हित की भावना हममें बढ़नी चाहिए। ये तीनों ही पुनः मानव जीवन में एक वांछनीय और कारगर बदलाव लायेगा। परिवर्तन लाएगा। हमारा जीवन स्वर्णिम काल में बदल जायेगा। मन का टूटन गायब होगा, मानसिक शांति स्थापित रहेगी।

संपर्क: 'गुरुकृपा', 790,
डॉ० ए. रामास्वामी मुदालियर रोड,
चेन्नई-600078

गतिविधिया–

'प्रतिशील कवि त्रिलोचन' विषयक संगोष्ठी विचार कार्यालय हैदराबाद

विगत दिनों दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा के उच्च शिक्षा और शोध संस्थान द्वारा खैरताबाद परिसर में कवि डॉ. रणजीत की अध्यक्षता में 'प्रगतिशील कवि त्रिलोचन' विषय पर आयोजित एक संगोष्ठी में विषय प्रवर्तन करते हुए 'विचार दृष्टि' के आंध्र प्रदेश ब्यूरो प्रमुख तथा संस्थान के विभागाध्यक्ष डॉ. ऋषभदेव शर्मा ने कहा कि त्रिलोचन शास्त्री ने अपने रचनाकर्म द्वारा विलक्षणता और साधारणता का उदाहरण प्रस्तुत किया और उनकी कविता उद्यमशीलता एवं जीवट के कारण अपनी साधारणता में भी सबसे अलग दिखती है और प्रमाणित करती है कि सच्ची प्रगतिशीलता लोकतत्त्व और जीवन की धड़कन में रच-बसकर ही प्राप्त की जा सकती है।

'त्रिलोचन: व्यक्तित्व और कृतित्व' पर केंद्रीत अपने आलेख में डॉ. मृत्युंजय सिंह ने प्रतिपादित किया कि त्रिलोचन का कृतित्व उनके संघर्षशील व्यक्तित्व के सर्वथा अनुरूप है। डॉ.जी. नीरजा ने स्पष्ट किया कि त्रिलोचन जी समय के ताप से तपे सच्चे कवि थे न कि शर्तों के। डॉ एस.दत्ता ने कवि त्रिलोचन के स्वाभिमान और जीवट की विशेष चर्चा की। डॉ. बलविंदर कौर ने त्रिलोचन जी को जहाँ मुख्यत: आत्म विश्लेषण का कवि बताया, वहीं डॉ. साहिरा बानू बी. बोरगल ने उनकी सोनेट कला के मुख्य तत्त्वों का विवेचन किया।

संगोष्ठी के मुख्य अतिथि डॉ. रामजी उद्यन ने अपने उद्बोधन में कवि त्रिलोचन को जनपक्षधर और लोकधर्मी योद्धा साहित्यकार की संज्ञा प्रदान करते हुए कहा कि उन्होंने देशजता को बिना किसी मतवाद के जिया है। अपने अध्यक्षीय भाषण में डॉ. रणजीत ने कहा कि त्रिलोचन विलक्षण व्यक्तित्व के ऐसे साधारण कवि थे जिन्हें सहज कविता के मानववादी कवि कहा जा सकता है। संगोष्ठी की चर्चा-परिचर्चा को जीवंत और सार्थक बनाया संजीवनी, शक्ति कुमार, मनोज, कमल भोसलें, अंबरीष, सुषमा, सलमा कौसर तथा आशा मिश्रा आदि शोधार्थियों ने।

हेमलता, स्वप्नश्री, एस. वंदना तथा वंदना आर्या के मंगलाचरण से समारंभ कार्यक्रम का संचालन किया डॉ.जी. नीरजा ने तथा संगोष्ठी में पधारे सुधीजनों के प्रति आभार व्यक्त किया डॉ. ऋषभदेव शर्मा ने।

-डॉ. ऋषभ देव शर्मा, हैदराबाद से।

मंजुला गुप्ता की कहानी 'भाई' पर चर्चा

विचार कार्यालय, जयपुर। विगत 5 जुलाई को राष्ट्रीय विचार मंच की राजस्थान इकाई की ओर से जयपुर के 'राजहंस' में डॉ. मंजूला गुप्ता की कहानी 'भाई' पर आयोजित एक जीवंत चर्चा में 'लोक शिक्षक' के संपादक डॉ. सत्येन्द्र चतुर्वेदी ने कहा कि सरलता, सहजता तथा मार्मिकता से भरी कहानी ही श्रेष्ठ कही जा सकती है। चर्चा में भाग लेती हुई श्रीमती राज चतुर्वेदी, डॉ. कृष्णा रावत, पुष्पा, मंजुला गुप्ता, मनोरमा, ललिता, रजनी शर्मा, तथा डॉ. सुषमा शर्मा आदि ने कहानी को हृदयस्पर्शी तथा टूटते आत्मीय संबंधों की कथा करार दिया। इसी प्रकार ललिता जी ने कहानी को अत्यंत प्रासंगिक बताया। अंत में मनोरमा जी ने अपनी कविता 'जड़' और 'शिशु' तथा डॉ. कृष्णा रावत ने अपनी 'दीया' शीर्षक कविता का पाठ कर कार्यक्रम को जीवंत बनाया।

-डॉ. सुषमा शर्मा, जयपुर से।

राष्ट्रीय विचार मंच की केरल शाखा पुनर्गठित

'राष्ट्रीय विचार मंच और 'केरल हिन्दी साहित्य अकादमी, तिरुवनंतपुरम के संयुक्त तत्त्वावधान में 'केरल हिन्दी साहित्य अकादमी, तिरुवनन्तपुरम के सभागार में 30.08.2008 को अपराह्न तीन बजे आयोजित बैठक में मंच की केरल शाखा की राज्य कार्यकारिणी के निम्नांकित पदाधिकारी तथा निम्नांकित कार्यकारिणी के सदस्य सर्वसम्मति से निर्वाचित हुए। बैठक में मंच के राष्ट्रीय महासचिव सिद्धेश्वर पर्यवेक्षक के रूप में मौजूद थे तथा डॉ. एन. चंद्रशेखरन नायर ने बैठक की अध्यक्षता की।

अध्यक्ष : डॉ०एन० चन्द्रशेखरन नायर
कार्यकारी अध्यक्षा : डॉ० एस. तंकमणि अम्मा
उपाध्यक्ष : डॉ० परमेश्वरम
महासचिव : डॉ०पी०लता
सचिव : डॉ० एन० सुरेश
उप सचिव: डॉ० के० मणिकंठन नायर
कोषाध्यक्षा : डॉ० आशा एस० नायर

सदस्य, कार्यकारिणी समिति :

1. श्रीमती सनी. के.
2. डॉ०एस०आर०जयश्री
3. डॉ०के०एस० विजयलक्ष्मी
4. श्रीमती आर०राजपुष्पम् पीटर
5. डॉ० कविता राज०एन०
6. श्री एस० विमल कुमार
7. श्रीमती के०एस०वत्सला कुमारी
8. डॉ. महेश्वरी एस

सिद्धेश्वर पर्यवेक्षक | डॉ०एस०तंकमणि अम्मा कार्यकारी अध्यक्ष | डॉ०एन चंद्रशेखरन नायर अध्यक्ष

लौह पुरुष सरदार वल्लभभाई पटेल की १३३वीं जयन्ती पर हमारी हार्दिक शुभकामनाएं

प्रो. विनोद कुमार सिन्हा

मे. प्यारेलाल एंड संस
खगौल रोड, मीठापुर,
पटना-800001

अधिकांश समस्याओं की जड़ है हमारी कुत्सित मनोवृत्ति

○ नंदलाल

भारत जैसे विकासशील देश में समस्याओं की जड़ है हमारी कुत्सित मनोवृत्ति। जब तक इसका कायाकल्प नहीं होता समस्याओं का समाधान मुश्किल है। मनोवृत्ति का कायाकल्प आत्मबल से ही संभव है क्योंकि आत्मबल ही जीवन का सत है। यह व्यक्ति की चेतना को आकार देता है और उसके आचार-विचार को निधरित करता है। यह ऐसी धून है, जो मस्तिष्क के अदृश्य पावन स्थल से निकलती है।

देश के प्राय: सभी क्षेत्रों में चाहे वे अदालत हों या मीडिया भ्रष्टाचार रूकने का नाम नहीं ले रहा है। सीबीआई तथा प्रवर्तन निदेशालय जैसी संस्थाएँ भी उसे नहीं रोक पा रही हैं, बल्कि सच तो यह है कि सीबीआई तथा सतर्कता आयोग जैसी संस्थाओं के बावजूद बुराइयाँ परिणाम और तीव्रता दोनों रूपों में लगातार बढ़ती जा रही हैं। दरअसल, भारत में किसी ने भी वह मिट्टी तैयार नहीं की जिसमें रचनात्मक और उच्च विचारों के बीज रोपे जा सकें। उन्हीं से तो रसीले फलों की बहार फलती-फूलती है। लंबे समय से यह देश सामाजिक और सांस्कृतिक पतन की बंजर भूमि बन गया है, जहाँ स्वस्थ से स्वस्थ बीज भी अंकुरित नहीं हो पाते। इसलिए सबसे पहले तो जरूरत इस बात की है कि इस बंजरभूमि को सुधारा जाए, जमीन को उर्वर बनाया जाए।

शासन-प्रशासन में सुधार के लिए लोगों की मनोवृत्ति में परिवर्तन आवश्यक है। उसी के बाद लोगों के दिमाग में सद्वञ्चन जा पाएँगे और संस्थागत संरचना के सकारात्मक परिणाम हासिल हो सकेंगे। इसके लिए ईमानदार प्रशासन संभव नहीं है। स्वामी विवेकानंद ने इसीलिए तो कहा था, "आप हजारों समाजों की स्थापना कर सकते हैं, बीस हजार राजनीतिक सभाएँ बना सकते हैं, पचास हजार संस्थान बना सकते हैं, किंतु ये सब तकतक व्यर्थ हैं जब तक प्यारा, सद्भ्भावना और ऐसा दिल न हो, जो सबके लिए धड़कता हो।" इस दृष्टिकोण से देखा जाए तो पिछले साठ सालों से राष्ट्र जीवन में इस तरह की प्रवृत्ति के लिए प्रयास नहीं के बराबर हुए जिसका दुष्परिणाम यह निकला कि समस्याएँ दिन-ब-दिन बढ़ती गईं। निश्चित रूप से अधिकांश समस्याओं की जड़ दूषित मनोवृत्ति है। इसी वजह से शासन प्रशासन की रग-रंग में भ्रष्टाचार फैल रहा है और इसी कारण केंद्र व राज्य, दोनों स्तरों पर संकीर्ण और गैर-जिम्मेदार नेतृत्व उभर रहा है।

यह बुराई कुछ समझदार और निष्ठावान लोगों पर भी पानी फैर देती है। समाज व राष्ट्र की ढीली-ढाली मन:स्थिति उसी प्रकार स्थितियों को तबाह कर डालती है जिस प्रकार क्राकरी की दुकान में घुसा कोई सांढ़ सबकुछ तहस-नहस कर देता है।

यह कहने की आवश्यकता नहीं कि भारतीय समाज के सभी क्षेत्र और राष्ट्र के सभी अंग नैतिक रूप से बीमार नजर आते हैं। इसलिए आवश्यकता इस बात की है कि भारतीय आत्मा को उसकी अशुद्धियों से मुक्ति दिलाई जाए तभी देश में गैर-जिम्मेदार नागरिक स्वार्थी नेतृत्व और भ्रष्ट राजनीति का बोलबाला समाप्त हो सकेगा। देश में आज पुनर्जागरण की आवश्यकता है, क्योंकि पुनर्जागरण एक ताजा हवा का झोंका है, जो अँधियारी और धुंधलके सहित घुटनभरी रात में धीरे से आता है और कुहासे को दूरद करता है। आज भारतीय समाज की स्थिति यह है कि इसकी स्वस्थ सामाजिक और सांस्कृतिक जड़ों के अभाव में इसकी रगों में विषैला रक्त प्रभावित हो रहा है और भारतीय राजनीति में विरूपताएँ उभर रही हैं इसके अतिरिक्त राजनीति अनेक अन्य गंभीर रोगों का शिकार भी हो गई है। राज्य-तंत्र के प्रत्येक उपकरण के जोड़ खुल रहे हैं, जिसकी वजह से व्यवस्था पतन की राह पर अग्रसर है।

इस देश में हर आम वर्ग के लोगों में, चाहे बच्चे हों या युवा अथवा वृद्ध चारित्रिक पतन हो रहा है। बेईमानी और झूठ से किसी को परहेज नहीं है। ईमानदारी, सत्य, नैतिकता, निस्वार्थ आदि शब्द आदर्श बनकर रह गए हैं। भ्रष्टाचार सहज और सर्वस्वीकार्य सा हो गया है। सरकार और प्रशासन के वायदे एवं दावे हवाई होते जा रहे हैं। महंगाई नियंत्रण से बाहर हो गई है। राष्ट्रभक्ति और समाज सेवा का स्थान व्यक्तिगत स्वार्थ ने ले लिया है। मनुष्य को मारने की बात गाजर-मूली को काटने के समान हो गई है। राष्ट्रीयता और भारतीयता को त्याग कर पाश्चात्य खान-पान, भाषा और संस्कृति को अपनाया जा रहा है। यह सब हमारी मनोवृत्ति का ही परिणाम है। लोगों की सोच में ही खोट है और विचारों में कुप्रवृत्तियाँ। इसी सोच की वजह से लोग दु:खी हैं और एक दूसरे की तरक्की व खुशी को लोग पचा नहीं पाते। ईर्ष्या में जलना कुछ लोगों के स्वभाव का हिस्सा बन जाता है। हम ईमानदार, पढ़े-लिखे शरीफ इंसानों की कद्र करने में झिझकते हैं जबकि अमीर चाहे कितना भी बेईमान हो, हम उसके आगे-पीछे लगने की कोशिश में लगे रहते हैं। अमीर, शक्तिशाली और प्रभावशाली लोगों के नामों से अपने आपको जोड़कर कुछ लोग समाज में रुतबा बनाने की कोशिश करते हैं जबकि सच्चाई से सब वाकिफ़ होत हैं। स्वार्थपूर्ण हितों का हम मित्रता, दोस्ती व जान-पहचान का नाम देते हैं। हित न होने पर हम अच्छे-बुरे लोगों से भी कन्नी काटने लगते हैं। जरुरत से ज्यादा पाने के चक्कर में हम जीवन को दुखी बना लेते हैं। सकारात्मक व रचनात्मक सोच एवं

संतुष्टि ही आनंदमय जीवन का रहस्य है। हमें इस बात को अच्छी तरहद समझकर अपनी मनोवृत्ति में परिवर्तन लाना होगा, तभी समस्याओं का निदान निकल सकता है।

दरअसल, आधुनिक संसाधनों ने लोगों की सोच को इस कदर विकृत किया है कि अब अभिनेता अथवा क्रिकेट खिलाड़ी लोगों की पसंद-नापसंद को निर्धारित करने लगे हैं। यही वजह है कि 'सेलिब्रिटी' पैसे के लालच में किसी भी वस्तु का गुणगान करने लगता है। लोगों की नासमी का फायदा टी.वी. चैनल उठा रहे हैं बच्चों के भोलेपन को टी.वी. के कार्यक्रमों की भाषा का ग्रहण लग गया है। बच्चों के व्यवहार में टी.वी. की परछाईं स्पष्ट नजर आती है। यही कारण है कि छोटे-छोटे बच्चों के पहनावे में बदलाव देखा जा रहा है। बालिकाओं का सौंदर्य प्रसाधनों के प्रति बढ़ता क्रेज विकृतियों की चमक-दमक की ही नकल है जिसके परिणामस्वरूप पारिवारिक व सामाजिक समस्याएँ तो बढ़ ही रहीं हैं, यहाँ तक कि प्रशासन के लिए भी कभी-कभी यह सिर दर्द बन रहा है।

सच तो यह है कि चरित्र बल के कमजोर होने की वजह से हमारे जीवन में आने वाली समस्याओं का सामना करने में हम असमर्थ हो जाते हैं। समाज में व्यक्ति सदाचार से ही अपना एक विशिष्ठ स्थान बना पाता है जिसके निर्माण में पर्याप्त समय लग जाता है। चरित्र बल एक ऐसी शक्ति है जिसके बल पर चरित्रवान व्यक्ति मानसिक और शारीरिक रूप से शक्तिशाली होत हैं। चरित्र की उत्कृष्टता से मानव का सर्वांगीण विकास संभव है। मनुष्य भौतिक रूप से चाहे जितना समृद्ध हो, किंतु यदि उसमें चरित्र बल का अभाव है तो उसकी संपन्नता का सदुपयोग संदिग्ध है। इसलिए अपने चरित्र का हर हाल में कलुषित होने से बचाना है।

संपर्क : 7/1, भगवान दास रोड,
नई दिल्ली-2

फोटो पत्रकारिता की रचनात्मक भूमिका

○ लाल दास पासवान

रचनात्मक लोगों को अलग तरह से आकर्षित करने में फोटो पत्रकारिता मीडिया की एक प्रमुख विधा है, जो पत्र-पत्रिकाओं में शब्दों के रूप में प्रकाशित किसी समाचार या घटना से ज्यादा प्रभावशाली ढंग से अभिव्यक्त व संप्रेषित करने की क्षमता रखती है, क्योंकि इस विधा में केवल विषय-वस्तु ही पर्याप्त नहीं होती, बल्कि उससे आगे, उसके सौंदर्य पक्ष जीवंतता और सत्य का अविष्कार फोटोग्राफर की रचनात्मक शैली को जन्म देता है। कोई भी तस्वीर किसी विषय की हजार शब्दों से अधिक अभिव्यक्त करने का सामर्थ्य रखती है। इसी वजह से पत्र-पत्रिकाओं में फोटो पत्रकारिता की रचनात्मक भूमिका है जिसके महत्त्व के साथ-साथ इसके विभिन्न आयामों से अवगत होना जरूरी है। इस विधा को अपनाने वाले फोटोग्राफर के लिए यह भी जरूरी है कि वह फोटोग्राफी के रोचक इतिहास के साथ-साथ इसके उपकरण एवं तकनीक को जानें। कैमरे की उत्पत्ति, प्रकार, लेंस, फिल्मों के प्रकार यानी आर्थो क्रोमेटिक, पैक्रोमेटिक आदि की जानकारी फोटोग्राफरों के लिए बहुत उपयोगी है। अब तो बाजार में फोटो पत्रकारिता करने वालों के लिए नवीनतम तकनीक से युक्त डिजिटल कैमरे भी उपलब्ध हो चुके हैं जिसके जरिए डी-50 तक की जानकारी मिल जाती है।

फोटो पत्रकारिता के लिए फोटोग्राफर को एक स्पष्ट दृष्टि तो चाहिए ही, उसे इसके लिए पूरी तैयारी भी करनी होगी। यह विधा जोखिम से भरी है, इसलिए इसे व्यवहार और कर्म से बड़ा माना जाता है। फोटो पत्रकारिता के साथ एक अहम सवाल यह भी जुड़ा हुआ है कि बाजार व्यावसायिक, मिजाज देखते हुए भारतीय मूल्यों और नैतिकता पर दृढ़ रहने वाले किसी फोटो पत्रकार का भारतीय चिंतन किस काम आएगा। आज जिस प्रकार पूरी दुनिया एक विश्व ग्राम (Global Village) के रूप में सिमट रही है और दुनिया के एक कोने में होने वाली घटना या फैशन दूसरे कोने के लोगों को गहरे प्रभावित करते हैं ऐसे में फोटोग्राफर को अपनी सोच का दायरा बढ़ाना ही होगा, सच्चाई का सामना करना ही होगा। उसके लिए बाजार की माँग को समझना जरूरी होगा। श्लील और अश्लील को परिभाषित कर लोगों को बरगलाना जितना आसान है, सच्चाई का सामना करना उतना ही कठिन। फोटोग्राफर को इस बात के लिए भी सचेत रहना है कि उसके कैमरे से निकले ऐसे फोटो समाचार-पत्रों अथवा पत्रिकाओं में प्रकाशित न हो जाएँ जिससे किसी खास वर्ग के लोगों की संवेदनाएँ छू जाएँ। आपने देखा नहीं पिछले दिनों गुजरात के समाचार-पत्रों में एक ऐसा फोटो छप गया जिससे दंगे भड़क गए। इसलिए फोटो पत्रकार को इस बात का खास ध्यान रखना है कि उसकी तस्वीर ऐसी भी न हो, जो मानवीय संवेदना को झकझोर दे।

देश की आजादी के बाद से भारतीय भाषाओं में फोटो पत्रकारिता का काफी विस्तार हुआ है और उसका पर्याप्त प्रभाव भी दिखता है। इस दृष्टि से फोटो पत्रकार की रचनात्मक भूमिका अहम हो जाती है और उसका दायित्व भी बढ़ जाता है।

तेलुगु की अत्याधुनिक साहित्यिक प्रवृत्तियाँ व धाराएँ :

○ डॉ. आई.एन.चंद्रशेखर रेड्डी

कंदुकूरी वीरेशलिंगम पंतुलु जैसे भविष्यद्रष्टा एवं आधुनिक तेलुगु साहित्य की प्रथम पीढ़ी के लेखकों के द्वारा प्रतिष्ठित व स्थापित तेलुगु की अनेक विधाओं का उत्तरोत्तर बहुमुखी विकास हुआ है। पूर्व चर्चित विकासात्मक अध्ययन ही इस का बलवती साक्ष्य प्रमाण है। परंतु नित्य नवीन एवं समय सापेक्ष बदलाव साहित्यधर्मिता का अपूर्व लक्षण है। इधर बीसवीं सदी के अंतिम दशकों में हुई वैज्ञानिक प्रगति और मानव जीवन में हुए अनेक परिवर्तनों ने विश्व साहित्य के साथ साथ तेलुगु साहित्य को भी प्रभावित किया। भारत एक विकासशील देश है। विकसित देश उसके आदर्श रहे हैं। इस उच्चादर्श के कारण प्रगति व विकास की ओर उसकी दौड़ तेज हो गयी। भौतिकवादी उन्नति व पारंपरकि मूल्यों की टकराहट के मध्य में भारत की इस दौड़ ने अनेक नये मूल्यों और नये जीवन संघर्ष को जन्म दिया है। एलक्ट्रॉन मीडिया में हुई उन्नति ने राष्ट्रों के बीच की दूरी को कम किया है। देश की राजनीतिक सत्ता ने आर्थिक व्यवस्था के साथ साथ अनेक क्षेत्रों में अंतरराष्ट्रीयता का स्वागत किया है। विदेशी सभ्यता-संस्कृति व साहित्य का भारत पर पर्याप्त प्रभाव इस कारण से देखा जा सकता है। आंध्र का जीवन और उसका साहित्य इससे अलग नहीं है।

समय के साथ जीवन और जीवन के साथ कविता गतिशील होती रही। जीवन की कुछ असाधारण घटनाएँ जीवन को शासित करती हैं। राष्ट्रीय व अंतरराष्ट्रीय प्रेरणा से सामान्य मानव की प्रतिष्ठा को लेकर तेलुगु की भाव कविता ने आधुनिकता की उद्घोषणा की। उपेक्षित का उन्नयन तथा सामाजिक असंतुलन को दूर करके समता भाव के प्रचार के साथ तेलुगु में अभ्युदय कविता ने सांस ली। सतत् विरोध और विद्रोह के बावजूद भी बदलाव के अभाव में गाली गलौज के साथ 'षाक ट्रीटमेंट' देने की कमर कसी दिगंबर कवियों ने। सशस्त्र संघर्ष में विश्वास के साथ पूर्ण क्रांति की आकांक्षा लेकर मेदान में विप्लव कविता आयी। इसी बीच तरिगबडु कवुलु तथा पैगंबर कवुलु ने भी व्यवस्था विरोधी स्वर आलाप किए। पीड़ित जनता, शोषित प्रजा के समर्थन में इस प्रकार तेलुगु कविता में निरंतर वैचारिक-संघर्ष जारी रहा।

इस वैचारिक संघर्ष का मूल कारण आंध्र का बदलता हुआ सामाजिक जीवन और अखिल भारतीय स्तर पर उभरे सामाजिक आंदोलन रहे हैं। आजादी प्राप्ति की एक पीढ़ी के बाद भी प्रत्याशित विकास, अधिकार में साझेदारी, सामाजिक अन्याय से दूर प्रजातांत्रिक स्वेच्छा के अभाव में तेलुगु में आधुनिकोत्तर काल में नए स्वर तथा नई वैचारिक अभिव्यक्ति का केंद्रीकरण शुरू हो गया। यह इसलिए संभव हो पाया कि देश की आजादी से प्रेरित, उत्साहित उन्नति ने विकास की नयी दिशाओं को खोल दिया था। इस विकासोन्मुख दौड़ में बलवान पहले से समाज में उच्च प्रतिष्ठा प्राप्त, साधन संपन्न, गलत साधनों को जुटाने में समर्थ वर्ग ही आगे रहे। पहले से पिछड़े हुए वर्ग, समय के साथ गलत साधनों को अपनाने मे असमर्थ, कई पीढ़ियों के शोषण चक्र से दमित-दलित वर्ग, साधनहीन वर्ग इस दौड़ में अन्यों के साथ चल नहीं सके। परिणाम स्वरूप आजादी प्राप्त होने के बावजूद आजादी का फल उन तक पहुँचता रह गया। विकास या प्रगति के पथ पर आगे चलने वाले वर्ग ने इसे और दबाया। उनके पिछड़ेपन से और फायदा उठाया। राष्ट्रीय विकास में समान साझेदारी व हिस्सेदारी उनकी नहीं हो पायी। सामाजिक प्रगति इस रूप में असंतुलित ही रह गयी। पहले से साधनवान और सबल होकर संपन्न हो गया है। पहले से साधनहीन बचे-कुचे साधन खोकर और गरीब हो गया। सामाजिक प्रगति के सूक्ष्मद्रष्टा, चेतना के सर्वग्राह्यवान साहित्यकार ने विकास के इस असंतुलित फैलाव को पहचाना। इसे वाणिबद्ध करने के लिए बीसवीं सदी के अंतिम दशकों में संघटित रूप में वैचारिक संघर्ष को शुरू किया। यह वैचारिक क्रांति संघर्ष विशेषकर तेलुगु कविता के क्षेत्र में अनेक रूपों में अभिव्यंजित हुआ है। असमानता, अपमान, उपेक्षा तथा मानवीय यातनाओं की बट्टी से झुलस कर अपने तथा अपने वर्ग के कल्याण के लिए सृजनात्मक क्षमता रखने वाले लेखकों का केंद्रीकरण तथा समीकरण हुआ। तेलुगु कविता के क्षेत्र में काफी लंबे समय से इन नये समीकरणों की शुरुआत तो हुई थी, परंतु बीसवीं सदी के अंतिम दशकों में आकर ही उनका वैचारिक-संघर्ष-मोर्चा कायम हो पाया है। इसकी तीन मुख्य काव्य धाराएँ पिछली सदी के अंतिम दशकों में अधिक प्रचलित हुई हैं। वे हैं 1. दलित कविता 2. स्त्रीवादी कविता 3. मैनारिटी कविता।

सामाजिक व आर्थिक असमानता, वैयक्तिक और सामाजिक स्तर पर अपमान आदि इन तीनों काव्यधाराओं के उद्भव के सामूहिक कारण रहे हैं। शोषण और उत्पीड़न के स्तर पर ये तीनों काव्य धाराएँ समस्रोतीय हैं। सामाजिक असमानता और उपेक्षा इन तीनों यानी दलितों, स्त्रियों तथा मैनारिटियों में देखी जा सकती है। स्त्रियों की समस्याओं का संबंध पुरुष वर्ग से है, तो बाकी दोनों का समाज के अन्य वर्गों

के साथ है। अपने वर्ग का कल्याण और अपने वर्ग की सर्वमुखी मुक्ति इन तीनों वर्गों का मुख्य लक्ष्य है। इस लक्ष्य पूर्ति के लिए इन्होंने कविता को एक साधन बनाया। लेखनी के द्वारा अपने हृदय की दावानल को तथा कई युगों से चली आ रही जर-जर परंपराओं को, पहले जिनका आचरण मौन रूप से ही करते थे, चीर कर रख देने की कोशिश की है। इन में से कई लोगों का यह विचार है कि उदारतावादी व मानवतावादी दृष्टि से अन्य लेखकों के द्वारा लिपि व साहित्य क्रमश: दलित साहित्य, स्त्रीवादी साहित्य तथा मैनारिटी साहित्य नहीं हो सकता है। मात्र दलितों के द्वारा लिखा गया, स्त्रियों के द्वारा लिखा गया, मैनारिटी लोगों के द्वारा लिखा गया साहित्य ही दलित साहित्य, स्त्रीवादी साहित्य तथा मैनारिटी साहित्य है।

6.1 दलित साहित्य धारा :

साहित्यकार मूलत: मानवतावादी होती है। मानवीय मूल्यों के लिए वह सतत् संघर्ष करता रहता है। पीड़ित मानवता के प्रति हमेशा उसकी पक्षधरता होती है। साहित्यधर्मिता के इस मूल भूत लक्षण के कारण साहित्य में दलित जीवन का चित्रण बहुत पहले से होता आया है। परंतु छठे व सातवें दशक में दलितों की उन्नति को, उनके साथ होने वाले सामाजिक अन्याय को केंद्र में रखकर एक साहित्यिक आंदोलन के रूप में दलित साहित्य चल पड़ा है। छठे व सातवें दशक की सामाजिक एवं राजनीतिक परिस्थितियों ने तेलुगु में इस साहित्यिक धारा को जन्म दिया है। आधुनिक काल के आरंभ से ही साहित्यकारों की उदात्तता एवं उदारता के कारण साहित्य में दलितों का जीवन चित्रित होता आया है। तेलुगु साहित्य के आधुनिक काल में लिखी गयी तल्लाप्रगड सूर्या नारायण राव की 'हेलावती' (सन् 1913), वेंकट पार्वतीश्वर कवियों की 'मातृ पंदिरमु' (सन् 1919), उन्नव लक्ष्मी नारायण की 'मालपल्लि' (सन् 1922), आचार्य रंगनायकुलु की 'हरिजन नायकुडु' (सन् 1933), अडवि बापि राजु की 'नरुडु' (सन 1946), वट्टिकोट आलवार स्वामी की 'प्रजल मनिषि' (सन् 1955), मुप्पाल्ल रंगनायकम्मा की 'बलिपीठमु' (सन् 1962), महीधरा राममोहन राव की 'कोल्लाई गट्टितेनेमि' (सन् 1964), मल्लादि वसुंधरा देवी की 'नीबांचनु काल मोक्कुता' (सन् 1976) आदि रचनाएँ इसी वर्ग के अंतर्गत आने वाली दलित रचनाएँ हैं। लेखकों ने वर्ग निरपेक्ष अपनी मानवतावादी धारणाओं को इन रचनाओं में व्यक्त किया है। इन लेखकों में दलितेतर ही अधिक हैं। इनकी रचनाओं को भी दलित साहित्य के अंतर्गत रखने में कोई संकोच नहीं होना चाहिए।

परंतु वर्तमान युग में दलित साहित्य के रूप में एक विशिष्ट साहित्य को लिया जा रहा है। दलित व दलित साहित्य का भी विशिष्ट अर्थ लिया जा रहा है। 'दलित' का अर्थ सामाजिक 'लूट' के शिकार हुए, अस्पृश्य या अछूत माने जाने वाले, ओछे धंधे करने वाले, शारीरिक कष्ट से जीविका चलाने वाले हैं। अनेक युगों से शिक्षा और विकास से वंचित दलित आज शिक्षित हो रहे हैं। अनेक युगों से अपने प्रति होने वाले सामाजिक अन्याय के रहस्य को तथा सामाजिक असमानता और उसके लिए जिम्मेदार सामाजिक स्थितियों को समझ रहे हैं। संघटित होकर अपने अधिकारों के लिए लड़ रहे हैं। इनका यह विचार है कि दलितों का दलितों के द्वारा लिखा गया साहित्य दलित साहित्य है। दलित जातियों से शिक्षित होकर चेतना संपन्न बनकर अपने वर्ग के कल्याण के लिए उनको समाज में समान स्थान व अपमान रहित जीवन दिलाने के लिए लिखा गया साहित्य दलित साहित्य है। प्रारंभ में सामाजिक व आर्थिक रूप से समाज के उच्च वर्ग के द्वारा शोषित, पीड़ित, पिछड़ी हुई जातियों के साथ साथ अनुसूचित जाति तथा जन जातियों के अलावा स्त्रियों को भी दलित कहने की कोशिश की गयी है, परंतु बाद में इनके लिए 'बहुजन' शब्द चल पड़ा तथा 'दलित' वर्ग विशेष के लिए रूढ़ हो गया। दलितों में चेतना संपन्न-बुद्धिजीवियों ने अपनी प्राप्त चेतना को अपने भाईयों में फैलाने के लिए साहितय को एक साधन के रूप में स्वीकार किया है। अपने इस प्रयास को उन्होंने योजना बद्ध करके एक आंदोलन का रूप दिया। इनके द्वारा लिखे गये साहित्य को ही दलित साहित्य कहा जा रहा है।

देश की आजादी के पहले गाँधीजी जैसे राष्ट्रीय नेता के नेतृत्व में अस्पृश्यता जैसे दलित विरोधी मूल्यों का विरोध शुरू हुआ था। जाति और वर्ण के नाम पर होने वाले अत्याचारों का कड़ा विरोध किया गया था। डॉ.बी.बार.अंबेडकर जैसे नेताओं ने इसे एक सामाजिक क्रांति का रूप दिया। इनके द्वारा बताये मार्ग पर यह आंदोलन आगे चल पड़ा। महाराष्ट्र में ज्योति-बफुले (सन् 1827-1890) के नेतृत्व में यह आंदोलन चल पड़ा था। उन्होंने सन् 1874 में ही 'सत्य शोधक समाज' की स्थापना करके दलितों को जागृत करने की भरसक कोशिश की है। सन् 1910 तक इसकी विशेष पहचान हुई शिवराम काम्बले ने 'निम्न जातियों की महासभा' की स्थापना की है। इसी समय कर्मवीर सिंधे देश भर भ्रमण करके नारायण गणेश चांदवर्कर के सहयोग से 'दलित जातियों का सेवा संघ' की स्थापना की। राजनीतिक पार्टियों ने भी इस में विशेष सहयोग दिया। सन् 1918 मार्च 23, 24 में बंबई में पहली बार 'अखिल भारतीय दलित जातियों की गोष्ठी' हुई है। विधान सभाओं आदि में आरक्षण की मांग की गयी। सन् 1924 में अंबेडकर ने अस्पृश्यता निवारण आंदोलन को शुरू किया। यही आंदोलन आगे भारत भर में फैल गया।

दलित साहित्य लिखने के लिए प्रेरणादायक बना।

दलितों का दलितों के द्वारा लिखा गया साहित्य दलित साहित्य है। दलित जातियों से शिक्षित होकर चेतना संपन्न बन कर अपने वर्ग की उन्नति के लिए उनको समाज में समस्थान व उचित सीान दिलाने के लिए लिखा गया साहित्य दलित साहित्य है। जातियों के बीच के भेद भाव का वे विरोध करते हैं। अखिल भारतीय स्तर पर अनेक सभाएँ अनेक पत्रिकाओं की स्थापना के साथ साथ आंध्र में हैदराबाद में सन् 1987 अक्तूबर 8-10 तारीखों में 'अखिल भारतीय दलित लेखकों की प्रथम महासभा' संपन्न हुई लगभग सत्रह राज्यों से 528 प्रतिनिधियों ने इस में भाग लियां उन्हों ने 'अखिल भारतीय दलित लेखक संघ' की स्थापना करके योजनाबद्ध ढंग से इस आंदोलन को आगे बढ़ाने का निर्णय लिया।

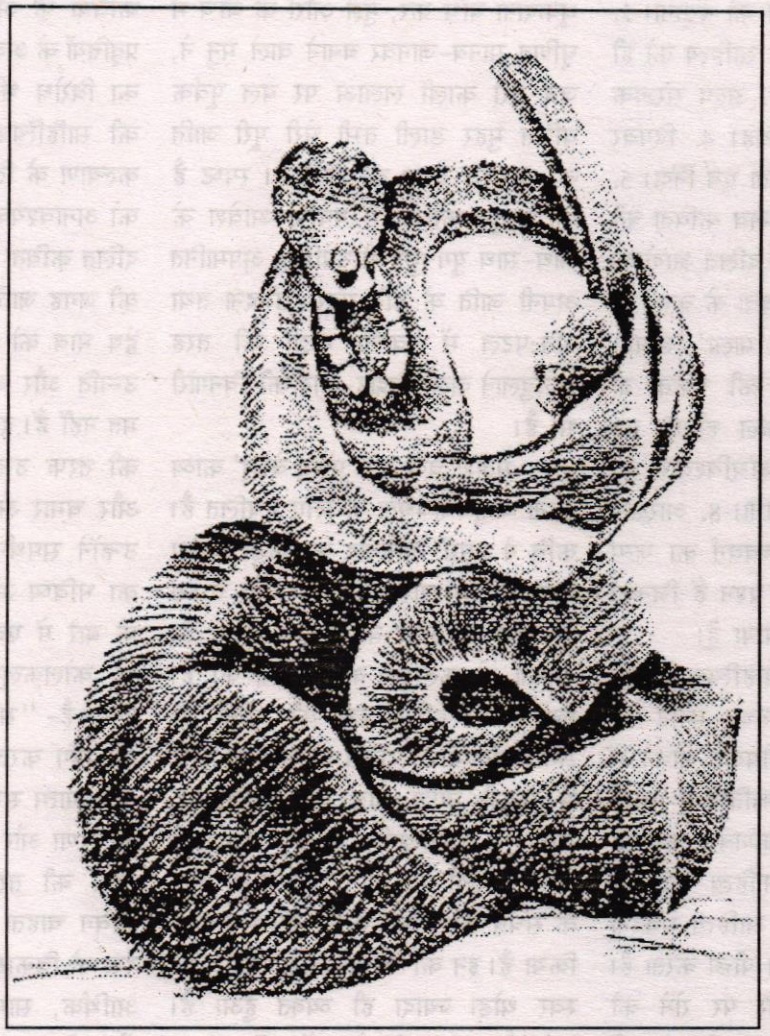

तेलुगु में दलित साहित्य लेखन जाषुवा की 'गब्बिलमु', 'अनाथा' काव्य रचनाओं से शुरू हुआ हैं इन दोनों रचनाओं में उन्होंने अस्पृश्यता समस्या का चित्रण किया है। जाषुवा के बाद उल्लेखनीय दलित कवि जाला रंग कवि, कुसुम धर्मन्न कवि, नक्काचिन वेंकटक्रया, नूतक्कि अब्रहम, प्रेमय्या आदि हैं। राष्ट्रीय आंदोलन के साथ इन कवियों ने अस्पृश्यता के विरोध में कविताएँ लिखी हैं। आंध्र में दलित आंदोलन का नेतृत्व करने वालों में बोज्जा तारकम उल्लेखनीय हैं। 'नदि पुट्टिन गांतुक', 'सूर्युडिवा नीवु' दलित चेतना से भरी इनकी दो प्रमुख काव्य रचनाएँ हैं। इन्होंने दलितों में आत्म विश्वास, आत्म सम्मान जगाने के साथ साथ विद्रोह करने की तथा संघर्ष करने की ताकत को बढ़ाया है। दलितों के गद्य साहित्य में कोलकलूरी ईनाक के 'ऊर बावि' संग्रह की कहानियाँ, बोय जंगय्या का 'जातरा' उपन्यास हैदराबाद बुक ट्रस्ट की ओर से प्रकाशित 'दलित कथलु' ईनाक जी का ही नाटक 'मुनि वाहनुडु' उल्लेखनीय रचनाएँ हैं। इन सभी लेखकों ने जातिवाद के विरोध में वर्ग संघर्ष को ही महत्त्व दिया। इस वर्ग संघर्ष को वर्ग संघर्ष के दायरे में लाकर कुछ कवियों ने इसे व्यापक रूप दिया है। उन में सुब्बाराव पाणिग्रही, शिवसागर (के.जी. सत्यमूर्ति) गद्धार, वे. विजय कुमार, श्रीमती विजयलक्ष्मी, एटुकूरी प्रसाद, श्री मल्लिक, ए. सांबशिव राव, क्रांति किरण आदि उल्लेखनीय हैं।

तेलुगु में दलित साहित्य के लेखन के लिए माकर्सवाद, अभ्युदय कविता, विप्लव कविता आदि ने मार्ग प्रशस्त किया। तेलुगु में वी. सिम्मन्न, कोंडपल्लि सुदर्शन राजु के नेतृत्व में 'दलित कविता' (सन् 1991) शीर्षक से पहला संग्रह निकाला गया। सन् 1995 में जी. लक्ष्मी नरसय्या, त्रिपुरनेनि श्रीनिवास के संपादन में 'चिक्कनवुतुन्न पाट' निकला तो सन्. 1996 में जी. लक्ष्मी नरसय्या के मुख्य संपादन में 'पदुनेक्किन पाट' दलित कविता संकलन निकला। केंद्रीय विश्व विद्यालय, हैदराबाद के विद्यार्थियों ने 'दलित मेनिफेस्टो' और आंध्र प्रदेश दलित लेखक कलाकार और बुद्धिजीवियों के ऐक्य संघटन के लिए बी.यस.रामुलु ने 'प्रवहिंचे पाट-आंध्रप्रदेश दलित पाटलु' संग्रह निकाला। इनके अतिरिक्त 'बहुवचनमु', 'दंडोरा', 'मेमे', 'निशानी' जैसे दिलत कविता संकलन, पैडिते रमेश बाबु, मद्धरी नगेश बाबु, सतीश चंदर, आलुरु गौरीशंकर, नागप्पगारि सुंदर राजु, कत्ति पद्म राजु आदि कवियों के काव्य संग्रह प्रकाशित हुए हैं। इस रूप में तेलुगु में दलित कविता का काफी विस्तार हो रहा है।

दलित कवियों के आवेश को दलित कविता की उपलब्धियों को स्वीकार करते हुए भी तेलुगु आलोचकों ने उसकी कुछ अनावश्यक प्रवृत्तियों का, अवांछित आक्रमणों का विरोध भी किया हैं स्वस्थ दलित साहित्य के लिए इन तत्त्वों को वे अनावश्यक मानते हैं। 1. जाति प्रथा को निर्मूल करने की जगह जाति चेतना को बढ़ाना, जातिगत द्वेष भाव को बढ़ाना। 2. दलितों के द्वारा लिखे गये साहित्य को ही दलित साहित्य मानना। 3. अल्प संख्यक लोग दलित होने का संदेह। 4. दिगंबर कविता की तरह अश्लीलता एवं निंदा। 5. अभ्युदय कविता एवं विप्लव कविता की पृष्ठभूमि को भुलाना तथा दलित आंदोलन से उन्हें दूर रखना। 6. जाषुवा के कहने के अनुसार अनुसूचित जातियाँ 'माला' (डोमर) और 'मादिग' (चमार) की एकता के बिना यह आंदोलन सफल होगा? यह संदेह। 7. अन्य धर्मों के अंधविश्वास एवं दुराचारों का खंडन न करना। 8. आरक्षण के कारण नये दलित उच्चवर्ग का जन्म होना आदि। ये कुछ ऐसे प्रश्न हैं जिनका समाधान अभी नहीं हो पाया है।

दलित साहित्य साहित्यिक गरिमा की दृष्टि से उच्च से उच्च कोटि का माना जा सकता है। विशेषकर जीवन में घृणात्मक जुगुप्साजनक स्थितियों से गुजरते हुए उन्हीं स्थितियों को वाणिबद्ध करने से दलित साहितय जीवंत साहित्य बन गया है। एक बार पढ़ने से यह साहित्य संवेदना के धरातल पर आदमी का पीछा करता है। मानवीय करुणा के स्तर पर रोने को मजबूर करता है। एक युवा कवि एंड्लूरी सुधाकर की प्रस्तुत कविता उसका साक्ष्य प्रमाण प्रस्तुत करती है। दलितों की दयनीय स्थिति से परिचय कराकर मार्मिक वेदना जगाती है। सामाजिक असमानता के विष को पीनेवाले उन मौन दलितों के प्रति असीम मानवीय करुणा जगाती है। ''नेनिंका निषिद्ध मानवुन्ने/नादि बहिस्कृत श्वासा/ना मोलकु ताटाकु चुट्ट्/ना नोटिकि उम्मि मुंत कट्ट्/नन्नु नलुगुरिलो असह्य मानव जंतुवुनि चेसिन मनुवु/ना नल्लनि नुदिटि मीद वलवंतंगा निषिद्ध मुद्र वेसि नप्पुडे/ना जातंता क्रम क्रमंगा हत्य चेय बडिंदि'' अर्थात अब भी मैं वर्जित मानव हूँ। मेरी सांस भी वर्जित सांस है। मेरी कटी पर ताड़ी का पत्ता फिरोकर, मेरे मुह पर थूकदाना बांध कर, मुझे औरों के बीच में घृणित मानव-जानवर बनाने वाले मनु ने, जब मेरी काली ललाअ पर बल पूर्वक वर्जित मुहर डाली तभी मेरी पूरी जाति की क्रमश: हत्या की गयी है। स्पष्ट है कि प्रस्तुत कविता में पर्याप्त आवेश के साथ-साथ युग युगों से उपेक्षित, अपमानित अपनी जाति के प्रति गहरी संवेदना तथा अंत:पटल में ज्वाला मुखी की तरह कुलबुलाने वाली विद्रोह-आग की चिनगारी भी है।

सतीश चंदर की 'पंचम वेदमु' काव्य रचना वस्तु विविधता के लिए प्रचलित है। कवि ने इसमें जातिवाद का कड़ा विरोध किया है। धर्म परिवर्तन, डोमर और चमारों के बीच के अंतर का विरोध किया है। दलितों के कल्याण की कामना की है। विशेष कर दलित स्त्री की मुक्ति का समर्थन किया है। दलित कविता की दृष्टि से मद्धूरी नगेश बाबु का 'वेलिवाडा' संग्रह भी उल्लेखनीय है। इस में उन्होंने अन्य जातियों एवं निम्न जातियों के बीच के संघर्ष को काफी जीवंत ढंग से चित्रण किया है। इन की कविताओं में विद्रोह का स्वर थोड़ा ज्यादा ही व्यक्त हुआ है। 'चुंडूर' मारण कांड ने इन्हें कवि बनाया है। जूलूरु गौरी शंकर के 'पाद मुद्रा' (सन् 1994) 'पोलि कट्टे' (सन् 1995) दलित कविता की श्रेष्ठ रचनाएँ मानी जा सकती हैं। उनकी कविताओं में खासकर ग्रामीण परिवेश के दलितों की दयनीय स्थिति का चित्रण है। 'पोलि कट्टे' संग्रह में पौराणिक एवं ऐतिहासिक पुरुष 'मनु' का विरोध किया है। अस्पृश्यता का कवि ने व्यंग्यात्मक ढंग से कड़ा विरोध किया है। उच्च जातियों के द्वारा जीवन गति को रोकने की असमर्थता की अवहेलना है। कविता ही अस्पृश्य होने की भयंकर स्थिति का कवि ने विरोध किया है। उसके विरोध में कवि स्वयं लठ लेकर खड़ा हो गया।

कुछ तेलुगु के आलोचकों ने दलित कवियों के आवेश का तथा अनावश्यक प्रवृत्तियों के अवांछित एवं अतिशय आक्रमणों का विरोध भी किया है। दलित कविता की साहित्यिक श्रेष्ठता और दलितों के कल्याण के लिए भी वे इस 'अतिशयता' को अनावश्यक मानते हैं। उनकी दृष्टि में दलित कविता जाति प्रथा का निर्मूल करने की जगह जाति चेतना को तद्वारा जातिगत द्वेष भाव को भड़का रही है। दलितों की उन्नति और कल्याण के प्रति उनके दो मत नहीं हैं। दलित वर्ग के अंदर के संघर्ष की तरफ उन्होंने इशारा किया हैं डोमर और चमार आदि दलितों की एकता का उन्होंने समर्थन किया है। दलित कविता का भविष्य और दलित कविता के लक्ष्य के बारे में एक कवि और कथा लेखक प्रो. कोलकलूरी ईनाक जी ने उचित ही लिखा है- ''समाज में दलित अपने अस्तित्व की माँग करता है, अपने लिए व्यक्तित्व और आत्म सम्मान चाहता है। वह समाज की घृणा और नीचता से मुक्ति चाहता है। औरों की तरह समानं, स्वेच्छा स्वातंत्र जीवन चाहता हैं वह यह चाहता है कि देश के विकास में अपना भी योगदान हो। आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक चेतना पुँज के रूप में दलितों की पहचान हो, इसी दिशा में दलित कविता का विकास हो, द्वेष-प्रतिशोध की भावना उसकी बुनियादी न हो।''

संपर्क: प्राध्यापक, हिंदी विभाग,
श्री वेंकटेश्वर विश्वविद्यालय,
तिरुपति, आँ.प्र.

नारी: भारतीय मनीषियों की दृष्टि में

○ बनारसी चौधरी 'वीरेश'

''यत्र नार्यस्तु पूज्यते रमन्ते तत्र देवता''

भारतीय मनीषियों द्वारा उपरोक्त उक्ति का स्पष्ट अर्थ है कि जहाँ नारी की पूजा होती है वहाँ देवता रमण (निवास) करते हैं। किसी ने इसे ईश्वरोक्ति कहा है। यों नारी शब्द का अर्थ भी तो स्पष्ट है-'न अरि नारी अर्थात जिसका कोई शत्रु नहीं, वही नारी है। कितनी महान है वह।

विश्व की प्रत्येक संस्कृति में अलग-अलग विशेषताएँ विद्यमान है। भारतीय संस्कृति में विलक्षणता असीम है। अनादि काल से ही ऋषियों, मनीषियों, मुनियों, चिंतकों ने भारतीय संस्कृति को विकसित किया है जिसे हम विश्व की गौरवशाली संस्कृति के नाम से अभिहित कर सकते हैं।

प्राचीन काल के वेद, ब्राह्मण, आरण्यक, पुराण उपनिषद, रामायण, महाभारत स्मृति आदि महाकाव्य के अवलोकन से स्पष्ट विदित होता है कि ऋग्वैदिक काल से लेकर अन्तर युगों तक पुरूषों और नारियों के समान अधिकार थें वेदों में कहा गया है कि विवाह होने के पूर्व तक कन्या को सोम देवता, गन्धर्व एवं अग्नि देव पालते हैं। फलत: जिस परिवार में बहू और बेटियों की आँखो से आंसू गिरते हैं वह परिवार कभी सुखी नहीं रहता हैं नारियाँ गुरुकुलों में पुरुषों के संग ही वेदाध्ययन करती थी; शिक्षा गहण करती थी, शास्त्रार्थ करती थी, और यज्ञोपवीत भी धारणा करती थी। नारियां ब्रह्मवादिनी होती थी। बाल्मीकि रामायण में भी नारियों द्वारा यज्ञ करने का उल्लेख मिलता है।

पुरातन काल में नारियाँ विभिन्न विषयों ज्ञान, विराम, धर्म, दर्शन, आध्यात्म की शिक्षा ग्रहण कर अविस्मरणीय नाम से प्रख्यात हुई है। यथा घोषा, जुहू, लोपामुद्रा, शची और अपाला प्रभृति नारियाँ ऋग्वेद की ऋचाओं की द्रष्टा थीं। ऋग्वेद में ऐसा उल्लेख मिलता है कि कुछेक नारी युद्ध में भाग लेती थी जिन्हें वीरांगना की संज्ञा से विभूषित किया गया है। नामुचि की सेना में नारियाँ थी जो इन्द्र से युद्ध किया था। शबंरासुर के साथ युद्ध में दशरथ के साथ दो कैकेयी भी थी। दशरथ की रक्षा करने में उसे दो वरदान भी प्राप्त हुए थे।

पुरातन काल में सह शिक्षा का प्रचलन था। भवभूति के 'उतररामचरित' में लव-कुश के साथ आत्रेपी का और मालती माधव में कामदेकी और देवराट् का उल्लेख मिलता है, छात्रों में शालीनता, सात्विकता, सच्चरित्रता एवं सौम्यता विद्यमान रहती थी। नारियाँ शिक्षा के साथ ही, गृह कार्य, संगीत, कला, चित्रकला नृत्य और पशुपालन और कृषि-कार्य में निष्णात होती थीं। विष्णु पुराण में चित्रलेखा कुशल चित्रकार थी। अपाला कृषि कर्म में पारंगत थी।

पौराणिक काल के अवसान काल में आकर शनै: शनै: नारियों की स्थिति में ह्रास होने लगा। उन पर, वेदाध्ययन उपनयन एवं शिक्षा पर भी प्रतिबंध लग गया। फिर भी उनमें स्थित विशिष्ट गुण देश, काल, एवं परिस्थिति तथा वातावरण के अनुसार प्रस्फुटित होती रही जिसका सामना पुरुष भी करने में सक्षम नहीं हुए।

कुछ मेरे अभिन्न संगी साथी मुझसे पुछ बैठते हैं कि आप यदा कदा नारी का ही गुण-गान किया करते हैं। मेरा उत्तर हां में ही होता है; क्योंकि मैं उसमें दिव्यालोक पाता हूँ। जिससे संसार के सभी चराचर आलोक पाते हैं, मै तो कहूंगा कि सृष्टि की दूसरी संज्ञा नारी ही है। नारी न होती तो नर वन्य पशु होता? नारी पुरुष की जननी है और जननकी दर्जा सर्वोपरि है। सर्वश्रेष्ठ है-

''नारी को लघु मत कहो, नारी नर की खान।
नारी से नर उपजे, ध्रुव प्रहलाद समान''

इसकी श्रेष्ठता इससे भी सिद्ध होती है तभी तो कहा गया है ''जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी।'' यदि नारी श्रेष्ठ न होती तो हम स

लक्ष्मीनारायण, गौरीशंकर, सीताराम, राधेश्याम क्यों जपते? आदि-शक्ति के रूप में लक्ष्मी, औरी, सीता और राधे पहले क्यों लगाते।

नारी न होती तो सृष्टि की कल्पना भी हास्यास्पद ही होती वह तो अपराजिता है, अपरिजये है, अवजित है। मैं तो कहूँगा कि बड़े बड़े ऋषि मुनि, तपस्वी, महात्मा योगी, वेरागी, संत एवं उपदेशक, नेता एवं कवि यहाँ तक कि स्वयं स्वयंभू उसके आगे मुंह की खाये हैं- नतशिर हुए है और हुए हैं पराजित। विश्वामित्र महामुनि भी मेनका के आगे नतशिर हुए हैं। कहा जाता है कि सृष्टि के प्रारंभ में ही प्रभु ने अपने को दो भागों में विभक्त कर दिया था। आधा भाग (दाहिना भाग) पुरुष और बायां भाग नारी बना। इसी कारण शंकर भगवान अर्द्ध नारीश्वर रूप में प्रतिष्ठित हुए। ईश्वरेच्छा से उपर्युक्त दोनों भाग एक दूसरे के पूरक बने। तत्पश्चात सृष्टि का सृजन हुआ। गीता में भगवान श्री कृष्णा कहते हैं कि मैं शक्ति का सहारा लेकर ही सृजन करता हूँ। (शक्ति अर्थात् प्रकृतिकियां नारी) ''प्रकृति स्वामवष्टम्य विसृजासि पुन: पुन:।'' इसी आधार पर भारतीय संस्कृति में नारी-समादर के विना सुख समृद्धि की कल्पना भी असंभव है।

'श्री दुर्गा सप्तशती' नामक महान धार्मिक ग्रंथ तथा अन्य पौराणिक ग्रंथों में भी ऐसा उल्लेख मिलता है कि जबतक भारतीय संस्कृति की धरातल पर दानवों का अत्याचार एक दावाचार पराकाष्ठा पर

पहुँचा है तब तब देवताओं के शरीर से नि:सृजदिव्य तेज-पुंज से एक अपराजिता महाशक्ति शलिनी नारी का प्रकाट्य हुआ और उन सभी असुरों का माँ भगवती ने समय समय पर नौ रूपों में अवतरित होकर विनाश किया। तब से हम भारतीय जगत जननी देवी भगवती की अर्चना करते आ रहे हैं-'या देवी सर्वभूतेषु शक्ति रूपेण संस्थिता।

नमस्तयै नमस्तयै नमस्तयै नमो नम: ।।
या देवि सर्वभूतेषु मातृरुपेण संस्थिता ।
नमस्तयै नमस्तयै नमस्तयै नमो नम: ।।''

देवी के इस मातृभाव को प्रतिष्ठाति करते हुए किसी मनीषी ने कहा है-

''कुपुत्रो जायेत क्वचिदपि माता कुमाता न भवति'' राष्ट्र पर जब जब संकट का समय आया तब तक शूर वीरों ने जगत जननी देवी भगवती का स्मरण करके दुश्मनों के दांत खट्टे किए हैं। इसी मातृभाइसी मातृभाव से प्रेरित होकर हम जिसमें माता के गुण समाहित पाते हैं उनके आगे माता लगाकर पूज्य मानते हैं और उनकी पूजा एवं प्रार्थना करते हैं यथा धरती माता गौमाता गंगा माता, लक्ष्मीमाता, सरस्वती माता पार्वती माता आदि। निम्नांकित श्लोक से इसकी पुष्टि होती है और माता को हम स्वर्ग से उच्चतम स्थान पर प्रतिष्ठापित कर रखे हैं-

''भूमे: गरीयसी माता स्वर्गात् उच्चतर: पिता।

जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गाऽदपि गरीयसी ।।''

अब प्रश्न उठता है कि नारी में ऐसी कौन सी विशेषता है कौन सा विभक्ति है? कौन सा वैभव है? कौन सा ऐश्वर्य है? कौन सा गुण है, कौन सा सुवास है? कौन सी सुरभि है? कौन सी सुगन्ध हे? कैसी पवित्रता है? कौन सी सुरभि है? कोन सी सुगन्ध है? कौसी पवित्रता है? कैसा तेज है? कैसा प्रकाश है? कैसी गति है? जिसके धागे देवता-दानव मानव-दानव एवं सभी चराचर समुदाय नतशिर होते हैं। सभी पूजा करते हैं। सभी अर्चना करते हें। सभी वन्दना करते है? सभी उसके पीछे पागल होकर दौड़ते हैं। सभी अपने को लुटा देना चाहते हैं। सभी अपना सर्वस्व न्योछावर कर देना चाहते है। इन प्रश्नों का उत्तर आपको अपनी आत्मा से ही पूछना अधिक श्रेयस्कर होगा मैं तो अपने बौने मष्तिष्क सी समझ से यही कहूँगा कि नारी में क्या नहीं है?

भारतीय संस्कृति में नारी को सदा सर्वोच्च स्थान पर प्रतिष्ठापित किया जाता रहा है। विधाता ने नारी का सर्जन सृष्टि के प्रथम प्रभात में किया था और अपनी सारी मेघा लगा दी थी। अन्यथा नारी इतना सर्वगुण सम्पन्न कैसे होती? मुझे तो ऐसा प्रतीत होता है कि जब नर नीरस बातावरण में घुटने लगा होगा तब नारी को देवि के रूप में प्रतिष्ठापित किया होगा। यही कारण है कि शक्ति की अधिष्ठा भी दुर्गा मां दुर्गति नाशिनी है, जगदम्बा हे, शक्ति-स्वरूपा है, ज्योर्तिमयी है मातेश्वरी और चिदानन्द मयि देवि है। भक्तवत्सला एवं पाप विदारिणी है और भव-वन्धन से एक मात्र मुक्त करने वाली देवी मां है और जिनकी हम सभी पूर्ण श्रद्धा, भक्तिमय लगन से प्रति वर्ष पूजा, अर्चना एवं अभ्यर्थ जाकर अपने में को धन्य मानते हैं।

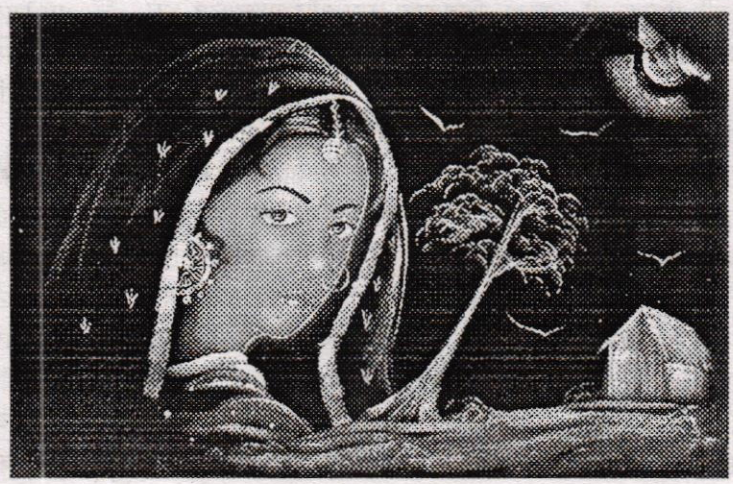

नारी प्रथमत: हमारी माता है जो जन्मभूमि और स्वर्गोसम है। यदि माता रूप में नारी न होती तो निश्चय ही नर वन्य-पशु होता, क्योंकि नारी में जो शुचिता है, पावनता है, गरिमा है, सहिष्णुता है, उदारता है, सहनशीलता है, शक्ति है। सौरम हैं सुगंध है, दिव्यता है और भव्यता है वह हम माता ही में पाते हैं।

इतना ही कहकर मानव को संतोष ना हुआ तो उसने यहाँ तक कह डाला- ''माता न पूजिता येन तस्य वेदा निरर्थक: ।'' जिसने माता की पूजा नहीं की, सम्मान नहीं किया उसका वेद ज्ञान ही निरर्थक है। महावीर नेपोलियन ने तो यहां तक कह डाला है कि ''मैं अपनी माता की आँखों में एक बूँद भी आंसू नहीं देखना चाहता।''

उपर्युक्त भाव को मन में धारण कर ही बंकिम चन्द्र चटोपाध्याय ने अपने महान कालजयी गीत 'बन्दे मातरम्'' की रचना 'आनंद मठ' नाक उपन्यास में की थी-

बंदे मातरम्।
सुजलाम्, सुफलाम्, मलयज शीतलाम्
शस्य श्यामलाम् मातरम्।'' .....

महर्षि अरविन्द ने भी कहा है- ''यह धरा कोई अचेतन भूखण्ड नहीं, साक्षात जननी है, जगत माता है।''

अब हम नारी की विवेचना ''सहचरि एवं प्राण स्वरूपा नारी'' के रूप में करना चाहता हूँ।-

इस रूप में हम उसे प्रेरणा का स्रोत मानते हैं। वह रूप राशि एवं सौंदर्य की निधि है। कोमलता एवं आकर्षण का केन्द्र है। उसके चर्तुदिक सौरभ, सुगंध, सुवास, एवं सरलता बिखरी रहती है। महाकवि कालिदास ने पार्वती के मुख-सौंदर्य के वर्णन करने में कुछ भी नहीं उठा रखा है।

महाकवि का ही कथन है कि जब देवि पार्वती चलती है तो रागारुण चरणों की छाया अग्र भाग में अंकित हो जाती थी, ढेर की ढेर रक्त-कमलों की लाली बिखेर दी गई हो। इसमें वासना की गंध नहीं है। नारी शाश्वत सुन्दरी प्रकृति का दूसरा रूप है। प्रकृति अपने नारी रूप पर इतना रीझि है कि नारी के पैरों का आघात पाकर अशोक फुलने लगते हैं। तिरछी चितवन से फूल और आलिंगन पाकर कमल पुष्पित होता है, सुमधुर बोली सुनकर मंदार वृक्ष गदरा जाते हैं। मुख का विश्वास लगते ही वारिजात लहलहा उठते है। नर्तन लखकर कर्णिकार खिल उठते है।

महाकवि सुमित्रानन्दन पंत ने तो यहां तक कह डाला है-

''यदि स्वर्ग कहीं भी है भू पर तो वह नारी उर के भीतर ।''

''वह स्वस्थ ग्राम नारी, नर जीवन की सहचर है। वह नर की सहकर्मिणी है'' जिसे सदा पिय का कार्य प्रिय लगता है, वह प्रेयसी है। ''वह स्नेह, शील, सेवा एवं ममता की मधुर मूर्ति है।''

महाकवि प्रसाद जी ने भी ''कामायनी'' महाकाव्य में नारी का कितना सुन्दर चित्रांकन किया है-

''नारी तुम केवल श्रद्धा हो,
विश्वास रजत नग पग-तल में
पियूष स्रोत सी बहा करो,
जीवन के सुन्दर सम रस तल में।''

रूप की अधिष्ठात्री नारी में प्राणोदम प्रति के प्रति सर्वस्व समर्पण की चरम परिणति प्राप्त है। महाकवि कालिदास जी ने 'रघुवंश' में इन्दुमति की मृत्यु पर आज का विलाप कराकर नारी की प्रतिष्ठा को उच्चतम शिखर पर प्रतिष्ठार्पित किया है-

''गृहिनी सचिव: सखामित्र:, प्रिये शिष्या ललिते कालाविद्यै ।
करुणा विमुखेन मृत्युनां हरताबद किं न मे हृतम् ।।''

अर्थात् वह मेरी सधर्मणि ही नहीं थी अपितु वह सलाहकार भी थी

पर निष्ठुर मृत्यु: ने उसे छीनकर तुमने क्या नहीं छीना। इतना होने पर किसी ने नारी को अवला का संबोधित किया। परंतु गोस्वामी तुलसीदास जी ने उसमें अपरिमित शक्ति का अवलोकन किया है-

''का न पावक जारिसक। का न समुद्र समाय।
का न करै अबला प्रबल के हि जग काल न खाय ।।''

शाश्वत एवं अमर सौन्दर्य-मण्डित नारी में शक्ति की अपार संभावना होते हुए भी उसमें प्रेरणा का अजस्र स्रोत प्रवाहित होता रहता है जिसकी झांकी इस पद में द्रष्टव्य है:-

''हमीं भेद देती हैं रण में क्षात्र धर्म के नाते।'' मंगलमयी स्त्रियाँ ही अपने हाथों से मंगल टीका लगाकर सहर्ष आरती उतार कर पति को रणां गन भेद देती थीं। राष्ट्रकवि मैथिली शरण गुप्त जी ने नारी के युग युग की कहानी निम्नांकित दो पंक्तियों में कह डाली है

''अबला जीवन हाय तुम्हारी यही कहानी।
आँचल में हैं दूध और आँखों में पानी ।।''

भारतीय साहित्य में वीर नारियों की जितनी उदाहरण मिलता है अन्य किसी भी साहित्य में नहीं। महारानी लक्ष्मीबाई ने नारियों की सेना सजाकर अँग्रेजों के साथ लोहा लिया और स्वतंत्रता की रक्षा में प्राणोत्सर्ग किया था। झड़ा रानी से जब युद्धस्थल से उसके पति ने प्रणय चिन्ह मांगा तो उसने अपना सिर ही काटकर भेज दिया जिससे मेरे पति रण में मेरी चिन्ता छोड़ कर पूरे साहस के साथ युद्ध कर विजय प्राप्त कर सके। युद्ध में पतियों के वीरगति प्राप्त करने का समाचार श्रवण करते ही हजारों की संख्या में क्षत्राणियां जौहर (व्रत का पालन करती थीं और अपने सतीत्व की रक्षा करती रही है। तीन बार ऐसा हुआ और मुगलों को कुछ भी हाथ नहीं लगा।

अब मैं अपने इस निबंध को आगे नहीं बढ़ाना चाहता हूँ, क्योंकि अनदेखे ही कुछ लम्बा सा हो गया है। अन्त में महापुरुषों द्वारा नारी के सम्बन्ध में कही गयी उक्तियों को उद्धृतकर निबंध को विराम देना चाहूँगा।

''नारी वेदों के प्राण हैं। ऋग्वेद में कहहा गया है कि पत्नी के बिना कोई भी पुरुष मरने के बाद स्वर्ग की कामना नहीं कर सकता है। इसलिए यज्ञ में उसकी उपस्थिति अनिवार्य समझी जाती थी, वे यज्ञ एवं तप में ही रत रहती थी।''

''किसान और नागरिक के बिना भी काव्य का काम चल सकता है किन्तु नारी को हटाने से उसका जीवन नष्ट हो जायेगा। नारी वास्तव में काव्य की आत्मा है।-मेयोर

''जिस घर में स्त्रियों का आदर नहीं होता उस कुल का नाश हो जाता है।''- महाभारत

''सितारे आसमान की कविता है तो नारी धरती की कविता है।'' -हारग्नेव

''नापरी रात का तारा और सबेरे का हीरा है। वह शबनम की बूँद है जिसमें कंटकों का कलेवर मोतियों से भर जाता है।'' -सर वसरो

''पति के लिए चरित्र, संतान के लिए ममता, समाज के लिए शील, विश्व के लिए दया तथा जीव मात्र के लिए करुणा संजोने वाली महाप्रकृति का नाम ही नारी है।''-रमण

''काव्य और प्रेम दोनों नारी हृदय की सम्पत्ति है।

पुरुष विजय का भूखा होता है, नारी समर्पण की। पुरुष लूटना चाहता है, नारी लुट जाना।'' -महादेवी वर्मा

'' Woman is a source of inspiration, to satisfy man's life-long thwrst, woman like a lake, is a permanent source of crytal cool water for him. -अज्ञात

संपर्क: नई सराय, भवानी गली
पो० बिहारशरीफ (नालन्दा)
(बिहार) 803101

हिंदी और मलयालम कविता में राष्ट्रीय चेतना : स्वतंत्रता के प्रथम दशक के राजनैतिक परिदृश्य में

○ डॉ0 एस.आर. जयश्री

राषट्रीयता की सत्ता वहन करने वाली शक्तियाँ समय-समय पर अपना प्रभाव समाज पर डालती है और अपने अनोखे प्रवाह द्वारा क्रियात्मक बदलाव करती जाती है। राष्ट्रीयता का यह प्रवाह कभी राजनीति पर, .कभी धर्म पर, कभी संस्कृति पर आधारित रहती है है, पर इन सबके लिए साहित्य का चित्रपट बड़ा सहारा बनता है। संकीर्ण दृष्टि से ऊपर उठकर जब हम साहित्य को परखते हैं, तब संस्कृति को देशीयता से मिलाने वाली खोजें दो प्रकार से प्रमुखता वहन करती हे-पहला अकादमीय और दूसरा राजनैतिक। अपने को दूसरों पर थोपने वाली प्रक्रिया की प्रतिक्रिया के रूप में भारतीय देशीयता का श्रीगणेश हुआ था। परंतु इस दौर में खेद की बात है देशीयता के सहगामी अंग खासकर साहित्य अंतत: विस्मृति के दरारों पर धकेल दिया गया। तब साहित्य केवल देशीयता को घोषित करने वाले अनेक तत्त्वों में एक बनकर रह जाता है। परन्तु यह भूल जाना चतरनाक है कि राष्ट्रनिर्माण की प्रक्रिया में साहित्य और देशीयता एक दूसरे के पूरक है। पिछली सदी के अंतिम दशकों में देशीयता को धर्म की संकुचित गलियों में ले जाने का दर्दनाक दृश्य देखा गया। देशीयता के निर्माण में संस्कृति की दो प्रकार की भागीदारी देखी गयी। पहला मार्ग सांस्कृतिक धाराओं की सहायता से प्रतिरोध का मार्ग था। संस्कृति का पुनर्निर्माण इसका प्रमुख अंग बन गया। सामाजिक तथा राजनैतिक क्षेत्रों में आगे ले जानेवाले तीर के समान संस्कृति मापी गयी। दूसरी देशीयता का जन्म सांस्कृतिक पृष्टभूमि में हुई है। भौतिकता एवं आत्मियता के द्विमुखी प्रवाह में भौतिकता के आगे हम परास्त हो गये। दूसरी ओर आत्मियता को भटकने से बचाने में हम एक हद तक विजयी भी हो गये। सांस्कृतिक देशीयता की यह ऊर्जा प्रतिरोध तथा संघर्ष की उपज हे। सामाजिक दबाव, आर्थिक शोषण तथा धर्म विकृतियों ने समाज के सामने यह प्रश्न खड़ा किया कि देशीयता में संस्कृति की क्या देन है। फलत: यहह स्वीकृत हुआ कि संस्कृति ही देशीयता का प्रमुख अंग है। भारतीय परंपरा की शक्ति भी सांस्कृतिक बहुतला की दृष्टि से मापी गयी। बहुधर्मी एवं बहु सांस्कृतिक परिवेश रखने वाले भारत का अस्तित्व भी उपदेशीयताओं से पोषित माना गया। देशीयता की नियामक शक्तियाँ राजनैतिक स्वतंत्रता, वित्तीय नीति तथा सामाजिक एकता है। इसका पोषण एक जनता को उसके उत्कर्ष की ओर ले जाता है। इसलिए देशीयता के उत्तरोत्तर बढावा के लिए राजनीतिक तथा सांस्कृतिक संघर्षों से उत्पन्न मेल अनिवार्य है। परंतु खेंद की बात है कि वर्तमान परिवेश इसके खिलाफ है। यह हमें चेतावनी देती है कि सांस्कृतिक क्षेत्र को अधिक ऊर्जा ग्रहण करके अधिक प्रभावशाली बनना ही पड़ेगा।

आज के युग में साहित्य और राजनीति परस्पर प्रभावित है और दोनों एक दूसरे को तरंगायित भी करते है। यदि साहित्य समाज का दर्पण हो तो उसमें युगीन राजनैतिक चेतना के प्रतिविंव भी जरूर दिखेगे। राजनीतिक कविता किसी विचिार को प्रतिष्ठित करती है या उसका विरोध करती है।

स्वतंत्रता के बाद का प्रथम दशक-राजनैतिक परिस्थिति राष्ट्रीय चेतना मात्र स्वतंत्रता प्राप्ति तक सीमित नहीं रही। यह नवीन शासन तंत्र के प्रति जागरूक रही जिसपर भारत का भविष्य बनता था। स्वतंत्रता प्राप्ति के साथ भारतीय जनता के मन में एक सुवर्ण सपना जगा था। उनके साक्षात्कार कर देने की संस्थाएं धीरे-धीरे खतम होने लगी थी। क्योंकि इंडिया-पाक विभाजन ने देश की धरती को ही नहीं जनता के दिल को भी विभाजित किया था। उनके दिल की दरारें यह सोचने के लिए उन्हें विवश कर रही थी कि आखिर यह स्वतंत्रता किसके लिए थी। देश के विभाजन से उत्पन्न शरणागतों से अधिक दर्दनाक वे थे जो अपने देश में रहे थे परंतु उनका दिल टूट चुका था। इसलिए जनता के मन में असंतोष विक्षोभ, विरोध की भावना पैदा होना स्वाभाविक था। गाँधीजी और नेहरु के दृष्टिकोण में भिन्नता थी। गाँधीजी धर्मविहीन राजनीति की कल्पना नहीं करते थे। नेहरु का दृष्टिकोण वैज्ञानिक व तकनीकी था। इसलिए दोनों में टकराव होना सहज है।

राष्ट्रीय स्तर पर उत्पन्न असमंजस्य तत्कालीन कवियो की कविताओं में दृष्टिगत होती हैं। भवानीप्रसाद मिश्र ने गाँधी पंचशती का प्रणयन कर गाँधीवादी सामाजव्यवस्था का समर्थन किया। इस प्रकार बालामणि अम्मा, पाला नारायण नायर आदि मलयालम के नामी कवि गाँधीजी के अनुयायी बने। वे धर्मविहीन राजनीति की कल्पना नहीं करते थे। लेकन एम पी अप्पन, इडशेरी आदि कवियों ने साम्यवादी चेतनाभरी कविताएँ लिखकर टूटी हुई जनता के दिल में नया जोश उत्पन्न करने की कोशिश की। दूसरे सप्तक में समाहित शमशेर बहादूर की कविता समय साम्यवादी मार्क्सवादी विचारधारा का प्रयाण है। मलयालम में इस श्रेणी में इडशेरी गोविंदन नायर की पुत्तंकालवुम अरिवालुम, पणिमुडक्कुम-कविताओं के माध्यम से क्रांति के वक्ता वन गये हैं और वे समाज में व्याप्त निराशा को दृढ करके नवीन क्रांति का वीज बोने की कोशिश करने लगे। मुक्तिबोध तो अपनी रचनाओं में अपनी सहानुभूति शोषित जनों के प्रति प्रदर्शित करते हैं।

लेकिन इस काल में नये कवियों की राष्ट्रीय चेतना ने नेहरु और गाँधी के दृष्टिकोण में असमंजस्य की स्थिति उत्पन्न की। मार्क्सवादी चेतना के प्रभावित कवि कम्युनिस्ट देशों में मार्क्स के सिद्धांतों की अवहेलना देखकर आश्चर्यचकित रहे थे। मार्क्सवादी धर्म विरोधी हैं तो मूर्तिपूजा के घोर विरोधी भी थे। किंतु साम्यवादी देशों में व्यक्ति-पूजा को मूर्तिपूजा के धरातल पर प्रतिष्ठापित किया गया है। लेनिन और माओसे तुंङ की प्रतिमाओं की स्थापना उदाहरण है। मार्क्सवादी सिद्धांतों का यह अंतर्विरोध भारतीय जनमानस को पचता नहीं था। इन सब में हावी होकर नये कवि क्रान्ति और वर्ग संघर्ष से अलग होकर मानव नियति की धारणा अभिव्यक्त करने लगे। इस प्रकार तत्कालीन दशक में दोनों भाषाओं के कवियों में राजनीतिक चेतना सवल रही यों समय एवं सिद्धांतों के मिले-जुले उथल-पृथल में अपना बदलाव प्रकट करती थी।

राजनैतिक दृष्टि से स्वतंत्रता के बाद का दूसरा दशक कोलाहल का युग रहा है। आजादी के बाद 1962 के चीनी आक्रमण, 65 और 71 के पाकिस्तानी आक्रमण, नेहरु, शास्त्री जैसे नेताओं की मृत्यु आदि घटनाएँ भारतीय राजनीतिक इतिहास का मोड़ रहा और कवियों की मानसिकता को भी प्रभावित किया। भारतीय राजनीति प्रजातंत्रात्मक होते हुए भी तानाशाही का समाज रही है रघुवीर सहाय, मुक्तिबोध, धूमिल, भवानीप्रसाद मिश्र, आट्टूर रविवर्मा, डॉ विनयचन्द्रन, पी भास्करन, वयलार, ओ. एन.वी आदि कवियों की कविताओं में इसकी अभिव्यक्ति हुई है।

रघुवीर सहाय के काव्य संकलन आत्महत्या के विरुद्ध के अन्तर्गत नेता क्षमा करें, अधेड़ भारतीय आत्मा, लोकतंत्रीयमृत्यु, आत्महत्या के विरुद्ध आदि कविताएं हैं जो हत्कालीन राजनैतिक अव्यवस्था की ओर संकेत करते हैं। इसी प्रकार जनतिंत्र की असफलता भारतभूषण अग्रवाल की अन्वेषक, श्रीराम वर्मा की भेदते हुए, रमेश गौड की अंधेरे तक आदि कविताओं में व्यक्त कर रहे हैं। सातवें दशक के कवियों ने नैतिक समस्याओं को इतिहासांकन करने की कोशिश की हे। जी शंकर पिल्लै की बंगाल, धूमिल के संसद से सड़क तक जैसी कविताओं में इसकी शु/आत देख सकते है। मुक्तिबोध की जन जन की चेहरा एक एन.वी.कृष्णवार्यर की बंगलादेश, ओ. एन.वी.कुरुप के वसुकान्तु, सच्चिदानंदन की आत्मगीत आदि कविताओं में देश की स्थिति की विकरालता, राजनैतिक नेताओं के प्रति रुष्ट एवं आक्रोश है। इतिहास को कविता के अंतर्वस्तु के रूप में परिवर्तित करने की कोशिश तत्कालीन मलयालम कवियों ने भी की हैं।

मलयालम और हिंदी के तत्कालीन अनेक कवियों ने इस भावधारा को आत्मसात् किया है। 67 के आसपास सशस्त्र किसान नक्सलवादी आंदोलन भारतीय राजनीति में आयी। यह उस समय की युवा पीढ़ी के सोच को बहुत गहरे में प्रभावित किया था। इस क्षेत्र में यह नया अनुभव था। जनता के मन में तत्कालीन प्रजातांत्रिक अव्यवस्था के प्रति प्रतिरोध की भाव उत्पन्न करने का श्रम था, जिसके परिणामस्वरूप कविता में एक स्पष्ट परिवर्तन दिखाई देने लगा। कुमार विकल, शलभ श्रीराम वेणुगोपाल, पंकजसिंह आदि आक्रामक लहजे से काम लिए। शलभ श्रीराम सिंह का कल सुबह होने के पर लो संग्रह युयुत्सावाद के दौरान ही प्रकाशित हुआ। मलयालम में इस मुहिम को सच्चिदानन्दन, कुंजप्पू पट्टानूर आदि कवियों ने तेज़ किया।

युद्ध की विस्फोटक स्थिति कवियों की मोहभंग की मानसिकता को तीव्र किया। अज्ञेय, रघुवीर सहाय, भवानी प्रसाद मिश्र आदि कवियों की राष्ट्रीय चेतना का मूल स्वरूप इसी भावधारा को बल दिया। श्री. ओ.एन.वी. कुरुप. वयलार वर्मा बालामणिअम्मा, वेण्णिक्कुलम गोपालकुरुप आदि कवियों की कविताओं में राष्ट्रीयता के स्वर मुखरित हो उठे हैं। मानवीयता और युद्ध की हिंसात्मक प्रवृत्ति चोट करती इसकी अभिव्यक्ति श्रीकांत वर्मा ने आस्था की प्रतिध्वनियों में किया है। इस प्रकार युद्धकालीन नयी कविता में राष्ट्रीय चेतना के प्रति अधिक सजगता व चेतना है, क्योंकि इस काल में राजनीति ने जीवन के हर पहलू को आक्रांत कर रखा था।

आठवें दशक की राजनैतिक परिस्थिति

राष्ट्रीय चेतना के स्तर पर सातवें दशक के काव्य पीढ़ी ने विसंगतियों के विरुद्ध एक सार्थक संघर्ष की पहचान जन सामान्य को करायी। उसी बुनियाद पर आठवें दशक की कविता ने नये संघर्ष का मार्ग प्रशस्त किया। इस दशक में स्वतंत्र भारत में पहली बार गैर कांग्रेस मंत्री सत्ता में आयी। यह एक युगान्तकारी घटना थी। जनता के मन में सत्ताधारी के प्रति मोहभंग हुआ। फलत: 1980 में हुए लोकसभा के चुनावों में कांग्रेस विजयी हुई। जीवन के प्रत्येक स्तर पर संत्रास उभरने लगे। भ्रष्टाचार, कालाबाज़ारी, घूसखोरी पूरे देश में बोलबाला, मज़दूर हड़तालें, इंदिरा गाँधी अनुशासन, आपातकालीन स्थिति, पुन: इंदिरा गाँधी सत्ता में आने, ये तत्कालीन संदर्भ इस दशक की कविता में पूरी तीव्रता से महसूस होने लगी। छोटे वडे कवियों के नाम इस तरह गिने जा सकते थे।

तत्कालीन मलयालम कवियों ने भी सड़ी हुई इस व्यवस्था के प्रति शोभा और कुंठा प्रकट की है। यह जनता की दीनता ही नहीं, बल्कि अपनी ओज भरी वाणी द्वारा क्रांति दकी आग भी धधकाने लगी। लोकप्रिय कवि चेंम्मनस चाक्को इस भावधारा की अभिव्यक्ति कनकाक्षरम, नेल्लु, दुखं आदि कविताओं की है। इन्दिरा गाँधी सरकार के गरीबी हटाओ नारे का व्यग्य करते हुए सर्वेश्वर दयाल सक्सेना ने कुआनो नदि और जंगल का दर्द काव्य में भूख और गरीवी से त्रस्त परिवेश को उभारा है। नागार्जुन से लेकर युवा और युवातर तचनाकारों ने दमन और उत्पीड़न के विरुद्ध शब्द की ताकत से काम किया।

आपात स्थिति का संत्रास

आपातकाल आठवें दशक की महत्वपूर्ण घटना थी। अमानुषिक अत्याचार और पीड़ा की अनकही कहानियाँ थी। देश के साहित्यकारों पर प्रतिबंध लग दिये गये

थे। तब कुछ साहित्यकार तो आंख मूद कर सत्ता की प्रशस्ति गाने में लग गये। देश के प्रति निष्ठावान रचनाकार चुप नहीं रहा। कवि श्री रघुवीर सहाय ने लोकतंत्रीय मृत्यु शीर्षक कविता में इस संदर्भ में अपने भावों को इस प्रकार व्यक्त किया है। अतएव हिंदी और मलयालम दोनों में ही आपातकालीन अव्यवस्था के खिलाफ आवाज़ बुलंद की गई हे। भवानी प्रसाद और सच्चिदानंदन से क्रमश: त्रिकालसंध्या और नावुमरम इस दौरान लिखी गयी हैं गणतंत्र में एक अनाम साधारण जन की तर्जनी का भी विशेष महत्व है तो इसकी अभिव्यक्ति नरेश मेहता ने पवाद पर्व में की हैं शासक कितना ही महान हो वह शासक ही होता है। राष्ट्र नहीं होता है। जिस दिन राजा अथवा शासक की राष्ट्र मान लिया जाएगा उसी दिन लोकतंत्र समाप्त हो जाएगा।

इस दशक के कवियों ने राजनीतिक संत्रास की अनुभूति को राष्ट्रीय चेतने के स्तर पर अभिव्यक्त किया गया है। आज़ादी से अब तक के सामाजिक परिदृश्य में अनेक महत्त्वपूर्ण बदलाव लक्षित होते है। इस दौरान की राजनीतिक परिस्थितियों ने कई साहित्यिक आन्दोलनों को जन्म दिया। बहुत से साहित्यिक वाद आए और गए। स्वाधीनता आंदोलन की विासत को बचाये रखने की चिंता समय के आगे बढ़ने के साथ साथ भिन्न भिन्न रूपों में तमाम भाषाओं में अभिव्यक्ति पाती गई है। राष्ट्रप्रेम एक अखण्ड भावना है जिससे मनुष्य अपने प्राणों तक की आहूति चढ़ा देता है। राष्ट्रीयता अपने भूगोल की पूजा में निहित नहीं अपितु उन भावों और आदर्शों के प्रति निष्ठा में निहित है जो किसी राष्ट्र की मूल मानसिक शक्ति रहे हैं, शाश्वत प्रेरणा रही है। इन दशकों कवियों ने भी कविताओं के माध्यम से जनसाधारण में राष्ट्र के प्रति प्रेम की भावना जागरित करने में अपने पुनीत दायित्व समझ लिया और बखूबी निभाया। राष्ट्रीय चेतना के चढ़ती-उतरती लहरों में उठ-गिरकर राष्ट्रवादी कवियों ने स्नातंत्र्योत्तर दशकों में स्वतंत्रता की सच्ची परिभाषा देने की कोशिश ही नहीं की, अपितु अपनी अपरिमेय कवित्व शक्ति के सहारे राष्ट्रीयता के नाम पर अपना समर्थन करने वाली राष्ट्रविरोधी शक्तियों की जड़ों को हिला देने की कोशिश भी की।

संदर्भग्रंथ

1. नागार्जुन ग्रंथावली-संपादक संयोजन शोभाक्रॉन्त राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली।

2. मलयालम कविता साहित्य चरित्रम डॉ एम लीलावती प्रकाशक केरल साहितय अकादमी तृश्शूर

3. मुक्तिबोध रगचनावली सं नेमिचन्द्रजैन राजकमल

4. रघुवीर सहाय रचनावली राजकमल प्रकाशन

5. वयलार कृतिकल डी सी बुकस

6. संसद से सड़क तक धूमिल राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली

संपर्क : हिंदी विभाग,
एम जी कॉलेज, त्रिवेन्द्रम

राष्ट्रीय चेतना की वैचारिक संस्था राष्ट्रीय विचार मंच

द्वारा

लौह पुरुष सरदार वल्लभभाई पटेल की १३३वीं जयंती तथा 'विचार दर्ष्टि' के सफलतापूर्वक दस वर्ष पूरे होने पर ३० एवं ३१ अक्टूबर, २००८ को नई दिल्ली में आयोजित द्वितीय राष्ट्रीय अधिवेशन की सफलता के लिए हमारी

हार्दिक शुभकामनाएँ

बी.एस. शांता बाई

अयक्ष, राष्ट्रीय विचार मंच, सह-व्यूरो प्रमुख, विचार दृष्टि, कर्नाटक
अधयक्ष, कर्नाटक महिला हिंदी सेवा समिति, चामराज पेट, बैंगलुरु (कर्नाटक)

राष्ट्रीय कार्यालय

राष्ट्रीय विचार मंच एवं 'विचार दृष्टि'

दृष्टि, यू. २०७, शकरपुरा विकासमार्ग, दिल्ली-१२

फोन ०११-२२५३०६५२, ०११-२२०५९४१०, ०६१२-२५१०५१९

'विचार दृष्टि निधि' स्थापित

एक विनम्र अपील

उदारतापूर्वक दान देकर अपनी सहृदयता का परिचय दें।

मान्यवर,

पटना के प्रो०एम.पी० सिन्हा के प्रस्ताव तथा राष्ट्रीय विचार मंच की बिहार इकाई की अनुशंसा पर मंच की राष्ट्रीय कार्यकारिणी द्वारा 22 जून 2008 को सर्वसम्मति से मंच के मुख-पत्र 'विचार दृष्टि' के नियमित और सफल प्रकाशन हेतु एक **'विचार दृष्टि निधि'** स्थापित की गई है जिसमें एक मुस्त दस हजार रुपए का दान देकर इस निधि को पूरा करने की कृपा करें दाताओं के नाम और पते सहित उनके रंगीन चित्र 'विचार दृष्टि' में प्रकाशित किए जाएँगे।

प्रो० एम० पी० सिन्हा के प्रस्ताव की भाषा कुछ इस प्रकार है– "राष्ट्रीय विचार मंच के मुख-पत्र के रूप में राष्ट्रीय चेतना की वैचारिक संवाहिका 'विचार दृष्टि' पिछले दस साल से लगातार नियमित रूप से मात्र इसके संपादक सिद्धेश्वर जी के संकल्प के बल पर दिल्ली से प्रकाशित हो रही है और यह अपने साज-सज्जा एवं अपनी स्तरीयता से बिना कोई समझौता किए अपने उद्येश्यों के अनुरूप कामयाब रही है, मगर कोई भी पत्रिका केवल संकल्प के बदौलत अधिक दिनों तक नहीं टिक सकती, क्योंकि जो सपने व्यक्ति के होते हैं वे व्यक्ति के साथ ही खत्म हो जाते हैं। हाँ, सपने वही बचते हैं या फलते-फूलते हैं जहाँ उस सपने को बचाने का सामूहिक प्रयास होता है। वरना आदमी व्यक्ति के रूप में बहुत निरीह होता है। उसकी सारी ताकत उसकी सामूहिकता में होती है। मुझे लगता है आदमी के किसी भी सपने का समाज और सामूहिकता के बाहर कोई अर्थ नहीं है।

'विचार दृष्टि' के संपादक सिद्धेश्वर जी ने हम सब को साथ लेकर हमेशा चलने का प्रयास किया है और इन्होंने जो अपनी सामूहिकता में पाया है, जो उसकी उपलब्धि है जरा उस पर हम सब आज 'विचार दृष्टि' के दस बर्ष पूरे होने पर गौर करें। मैं कई बार हैरान होता हूँ यह सोचकर कि आज के इस भौतिकवादी युग में सिद्धेश्वर जी ने अपने अबतक के जीवन काल में समाज, संगठन, पत्रकारिता और हिंदी साहित्य को लेकर जो कुछ किया है वह एक थाती है, एक ठोस उपलब्धि है जिसे कायम रखने के लिए इनके दर्द और पीड़ा को महसूस करने की जरूरत है, क्योंकि इनकी भी अपनी एक सीमा और सामर्थ्य है। अबतक इन्होंने जो कुछ किया है और कर पा रहे हैं वह सब उसी अनवरत प्रक्रिया का हिस्सा है, जो पिछले अनेक वर्षों से चली आ रही है। इसी को हमें संजोकर रखना हमारी नैतिक जिम्मेदारी है और सजग नागरिक होने के नाते एक परम कर्त्तव्य भी।

तो आइए, इस अनवरत प्रक्रिया का मंच तथा पत्रिका से जुड़े सजग शुभेच्छुओं में से प्रत्येक को इसका हिस्सा बनना समय की माँग है। इसे मद्देनजर रखते हुए आप प्रबुद्धजनों एवं सजग नागरिकों से मेरा विनम्र सुझाव है, जिसे प्रस्ताव के रूप में मैं प्रस्तुत करता हूँ कि 'विचार दृष्टि' की एक स्थाई निधि कायम की जाए जिसमें कम-से-कम एक सौ सदस्य दस-दस हजार रुपए की राशि प्रदान कर इसके दाता (Doner member) बनें। इससे दस लाख रुपए की राशि जमा हो जाएगी जिसे 'विचार दृष्टि निधि' में स्थाई कोष के रूप में जमाकर उससे प्रति वर्ष ब्याज तकरीबन एक लाख रुपए से पत्रिका नियमित रूप से प्रकाशित होती रहे। यही इसका एक मात्र स्थाई निदान है। इस निधि का संचालन 'विचार दृष्टि' के संचालन मंडल के जिम्मे होगा।

मेरा अनुरोध है कि इस तरह स्थापित 'विचार दृष्टि निधि' का प्रथम दाता सदस्य होने का मुझे मौका दें, ताकि पत्रिका चलाने में मुझे गर्व का अहसास हो सके। विश्वास है हमारे इस प्रस्ताव पर मंच की सभी इकाईयों सहित राष्ट्रीय कार्यकारिणी एवं 'विचार दृष्टि' के संचालक-मंडल तथा आप सभी विद्वतजन सकारात्मक विचार कर इसे मूर्त रूप देंगे। धन्यवाद।"

मंच के राष्ट्रीय उपाध्यक्ष तथा विचार दृष्टि के संपादकीय सलाहकार तथा इसके संचालक-मंडल की ओर से यह अपील है कि राष्ट्रीय कार्यकारिणी द्वारा पारित उपर्युक्त प्रस्ताव के तहत स्थापित 'विचार दृष्टि निधि' में दस-दस हजार रुपए का दान देकर आप अपनी उदारता एवं सहृदयता का परिचय दें। यह आपकी गरिमा के अनुरूप भी होगा। व्यक्तिगत रूप से भी आप दाताओं के हम आभारी होंगे।

डॉ० बाल शौरि रेड्डी
वरिष्ठ राष्ट्रीय उपाध्यक्ष, राष्ट्रीय विचार मंच
परामर्शी, विचार दृष्टि,
चेन्नई, तमिलनाडु

नंदलाल
वरिष्ठ राष्ट्रीय उपाध्यक्ष
राष्ट्रीय विचार मंच
संपादकीय सलाहकार 'विचार दृष्टि' नई दिल्ली

DENSA

PHARMACEUTICALS PVT. LTD.

Fact. Add. :Plot No. 10, Dewan & Sons Udyog Nagar,
Taluka Palghar, Dist. Thane, MAHARASHTRA
Phone No.: (952525) 55285, 54471, Fax: 55286

&

DANBAXY

PHARMACEUTICALS PVT. LTD.

(SOFT GELATIN)

Fact. Add: Plot No. K-38, MIDC Tarapur,
Dahisar, Dist. Thane, MAHARASHTRA

Office Address:

1, Anurag Mansion, Ashokvan,
Shiv Vallabh Raod, Dahisar (E),
Mumbai-400068
Phone No.: 28974777, Fax: 28972458
MR. DEVENDRA KUMAR SINGH, C.M.D

'विचार दृष्टि' के दस वर्षों का संदर्भ

प्रस्तुति : डॉ॰ शाहिद जमील, उप संपादक

प्रवेशांक वर्ष-01नवंबर-दिसंबर, 1999
प्र॰ संपादक-प्रकाशक – सिद्धेश्वर

रचना	रचनाकार
पैनी दृष्टि (संपादकीय)	सिद्धेश्वर
डॉ॰ अंबेडकर फ़िल्म और दलित आंदोलन (विरचा प्रवाह)	मोहनदास नैमिशराय
मतदाता आख़िर क्यों उदासीन रहे	सिद्धेश्वर
राजग का स्पष्ट जनादेश (आलेख)	सिद्धेश्वर
तेली की खोपड़ी (कहानी)	जिया लाल आर्य
नागरी लिपि हमारी राष्ट्रीय लिपि है (आलेख)	शकुन सिन्हा
भ्रम (व्यंग्य)	डॉ॰ एच॰एन॰ सिंह
कालिक चेतना के समग्र दूत : बाबा नागार्जुन	संजय सिन्हा
क्या संविधान निष्प्रभावी हो गया है?	राजेंद्र प्रसाद
महिला लेखिकाएँ और अस्मिता की खोज	निर्मला जोशी
वज्रादपि कठोराणि मृदूनि कुसुमादपि	डॉ॰ डी॰आर॰ ब्रह्मचारी
राष्ट्रीय एकता के कर्णधार : सरदार पटेल	डॉ॰ जगदीश सिंह राठौर
पड़ोसी राष्ट्र नेपाल की लोक संस्कृति	डॉ॰ हरिकृष्ण प्र॰ गुप्त

वर्ष-१ अंक २ जनवरी-मार्च, २०००

संपादकीय	सिद्धेश्वर
स्वर्ण जयंती वर्ष में हमारा गणतंत्र और हमारे प्रथम राष्ट्रपति डॉ॰ राजेंद्र प्रसाद	डॉ॰ लाल नारायण शर्मा
मौलाना अबुल कलाम आज़ाद : भारत के प्रथम शिक्षा मंत्री	एस॰एम॰तलहा साजिद
वित्त रहित शिक्षा नीति	राजेंद्र प्रसाद
मेहरबानी(व्यंग्य)	चितरंजन भारती
जंगे आज़ादी का एक अज़ीम सिपाही : सुभाषचंद्र बोस	संजय सिन्हा
मंदिर-मस्जिद की राजनीति कबतक और क्यों?	बैद्यनाथ शर्मा
बाल वेश्यावृति की अंतर्राष्ट्रीय समस्या	डॉ॰ शुभंकर बनर्जी
नारी चेतना	अजीत कुमार
उदीयमान तथागत ने तीन विश्व कीर्तिमान बनाया	अरुण कुमार गौतम
हरियाणा के लोकगीतों का सवरूप	डॉ॰ हरिकृष्ण प्र॰ गुप्त
बचिए बाज़ीगरी से : प्रज्ञा जो करती है!	अशोक जोशी
नष्ट हो गईं प्रेमचंद की बहुमूल्य पाण्डुलिपियां	कृष्ण कुमार राय

वर्ष-१ अंक ३ जनवरी-मार्च, २०००

चुनाव परिणाम के संकेत (संपादकीय)	सिद्धेश्वर
आतंक और दहशत के साये में कांपता लोकतंत्र का महापर्व	डॉ॰ बैद्यनाथ शर्मा
क्या आप वोट देते हैं	राय प्रभाकर प्रसाद
संविधान की समीक्षा : क्यों और कहाँ?	प्रो॰ एल॰एन॰ शर्मा
करमुआ (कहानी)	गिरीशचंद्र श्रीवासतव
डॉक्टर माने डेकारा (व्यंग्य)	डॉ॰ कृष्णानंद द्विवेदी
कि अकबर नाम लेता है खुदा का इस ज़माने में (व्यंग्य)	डी॰ आर॰ ब्रह्मचारी
रेणु साहित्य में समकालीन यथार्थ	डॉ॰ शशि सिंह
संपर्क भाषा के रूप में हिंदी	सुंदर गोपाल कृष्णन
हिंदी और उच्च प्रौद्योगिकी	विजय कुमार मल्होत्रा
जीत राजद की हुई या राजग की	विनय कुमार सिन्हा
क्या हम लोकतंत्र में जी रहे हैं	रामसंजीवन शर्मा
क्या करेंगे राजा साहब	दिलीप कुमार सिन्हा
साम्प्रदायिकता के बढ़ते ख़तरे	हरींद्र विद्यार्थी
वर्तमान भारतीय समाज व संकृति का बदलता परिदृश्य	डॉ॰ राजेंद्र गौतम
गहराता वैचारिक संकट	शेखर कुमार श्रीवास्तव
साहित्यकारों का संस्कार ही बिगड़ गया है, हरि प्रसाद दास	सिद्धेश्वर
तुम आदमी हो कि पायजामा, परमेश्वर गोयल	सिद्धेश्वर
महाकवि अरुण का महाप्रयान	जिया लाला आर्य

वर्ष-२ अंक ४ जुलाई-सितंबर, २०००

संपादकीय	सिद्धेश्वर
आज का राजनीतिक परिदृश्य और वी॰पी॰ सिंह की प्रासंगिकता	दिनेश कुमार
जातिवाद का नग्न रूप बिहार का नरसिंहार	सिद्धेश्वर
संख्या-वाहिनी परियोजना : संदेह के घेरे में	डॉ॰ एस॰एफ़ रब
चार मंज़िला बिल्डिंग (कहानी)	गिरीश चंद्र श्रीवास्तव
जीवन धन (लघु कथा)	डॉ॰ मधुधवन
अंतर्बोध (प्रेरक लघु बोध)	कृष्ण कुमार राय
नक्सली हिंसा, आई॰एस॰आई॰ और राजनीतिक दल	अखिलेश कुमार
बिहार की युवा पीढ़ी किस राह में?	मनीष शर्मा
सिविल सेवा परीक्षा की तैयारी कैसे करें	संजय सौम्य

वर्ष-२ अंक ५ अक्टूबर-दिसंबर, २०००

संपादकीय	सिद्धेश्वर
साहित्य में अवसरपंथ तथा माफियावाद : एक चिंतन	डॉ॰ श्याम सिंह 'शशि'
बाक़ी बिहार के पुनर्निमाण में जुट जाना	सिद्धेश्वर

With Best Compliments From

Axion Furniture & Interior's

Approved Supplier of N.C.C.F. of India Ltd

Customise

- Chairs, Steel
- Wooden
- Modular Office Furniture
- Turnkey Projects

Regd. Office/Works :

886/5-A, Ward-8, Mehrauli, New Delhi-110030

Ph. : 9899813013 • Tel/Fax: 91-11-26644218

E-mail :axiomfurniture@rediffmail.com

इसे कायरता कहें या ...? विभूति कु॰ रसतोगी 'मनु'
भारत में विभाजन की एक नई लकीर संजय सौम्य
बिहार पुनर्निमाण रैली सिद्धेश्वर
भारतीय राजनीति में दक्षिण का स्वस्थ आगमन अनिल कु॰ सिन्हा
बिहार को टूटते देखा 20 वीं सदी में डॉ॰ हरिवंश नारायण
लौह पुरुष सरदार वल्लभ भाई पटेल डॉ॰ मधु धवन
प्रेम चंद के जीवन का चरमोत्कर्ष और अवसान के॰ कृष्ण कुमार राय
जे॰पी॰ के विचारों के प्रयोग स्थली : सेखो देवरा सर्वोदय आश्रम गोविंद शर्मा
युवतियों में जागरूकता शादी से पहले ही क्यों? श्रीमती शशि
विदेशी ठाठ (व्यंग्य) डॉ॰ कमला विश्वनाथन
सास का सासपन पी॰ गीता
रिक्शावाला (कहानी) कृष्ण कुमार राय
तालाब का पानी नहीं, नदी की धार बनाना चाहता हूँ (भेंट-वर्ता) सत्यरंजन महतो

वर्ष-२ अंक ६ जनवरी-मार्च, २००१

संवैधानिक संस्थाओं का संकट (संपादकीय) सिद्धेश्वर
संघर्ष डॉ॰ श्याम सुंदर सिंह
मानवाधिकार का हनन ज्ञानेंद्र नारायण
कवि अटल बिहारी बाजपेयी : कृतित्व एवं व्यक्तित्व डॉ॰ वैद्यनाथ शर्मा
अली सरदार जाफ़री : एक संक्षिप्त परिचय डॉ॰ शाहिद जमील
डॉ॰ बालशौरि रेड्डी : एक अप्रतिम पुरुष डॉ॰ महेंद्र कार्त्तिकेय
पारंपरिक मूल्यों के प्रति युवा पीढ़ी का दृष्टिकोण अमरनाथ 'अमर'
मैंने भी बाल रंवाया (व्यंग्य) राम भगवान सिंह
बिहार की समकालीकविता-धारा वंशीधर सिंह
नाट्य मंच का विकास और नाटककार लमगोड़ा बाबू राम वर्मा
रीति कविता और अहम-कविता का रचना-विधान डॉ॰ रेखा मिश्र
समस्या, समाधान और सहजयोग डॉ॰ यजुनंदन प्रसाद
स्थानांतरण (कहानी) डॉ॰ राजनारायण राय
चुंबन : प्रेम अभिव्यक्ति या रोग संवाहक गुलाब चंद कोटड़िया
सहजभावों के ऋजु गीत-कवि : विंध्यावासनी दत्त त्रिपाठी डॉ॰ शिवनारायण
'कैक्टस' कहानी संग्रह : एक समीक्षा डॉ॰ तपेश्वर नाथ

वर्ष-३ अंक ७ अप्रैल-जून, २००१

भारतीय रानीति भ्रष्टाचार के भंयकर भंवर में सिद्धेश्वर
मनुस्मृति-एक अनुशीलन जियालाल आर्य
क्यों बढ़ रही है आत्महत्या की घातक प्रवृत्ति? डॉ॰ शुभंकर बनर्जी
जनसंख्या-नियंत्रण देश की मूलभूत समस्या दिलीप कुमार सिन्हा
तमिल में उर्वशी-साहित्य डॉ॰ तेज नारायण कुशवाहा
रेणु के उपन्यासों में आँचलिकता सिद्धेश्वर
रेणु साहित्य के विविध रंग-गंध और बिंब रंजनीकांत
दौलत (कहानी) कृष्ण कुमार राय
भूमंडलीकरण और स्त्री-विमर्श सुशीला झा
कैक्टसों के बीच खिला गुलाब डॉ॰ विद्या शर्मा
रास्ते बताने वाले (व्यंगय) अलका पाठक

वर्ष-३ अंक ८ जुलाई-सितंबर, २००१

जयललिता ने लोकतंत्र को कलंकित किया (संपादकीय) सिद्धेश्वर
दलितों को सामाजिक नतृत्व की ज़रूरत ह मोहनदास नैमिशराय
आर्थिक उदारीकरण के दौर में देश की संप्रभुता और स्वाभीमान दाव पर सिद्धेश्वर
'गदर' के बहाने धर्मांध मानसिकता का क्षुद्र इज़्हार दिलीप कुमार सिन्हा
क्षमा कीजिए - मैं माँगकर नहीं पढ़ता प्रकाश कुमार 'विद्यालंकार'
डाकुओं की रूह तक काँप जाती है प्रियंका के नाम से शशि भूषण
कबीर का समय और समाज डॉ॰ शंकर प्रसाद
शब्दों के कठघरे में खड़े बेक़सूर मुजरिम से एक जिरह नचिकेता
मज़हब नहीं सिखता ... (कहानी) कृष्ण कुमार राय
कहानी -एक हवेली की उर्मिला शुक्ल
आचार्य रामेश्वर नाथ तिवारी : वैनिबंध एक लघुकथा के प्रणेता डॉ॰ सुरेंद्र प्रसाद जमुआर
लापरवाही भी दृष्टिहीनता का कारण डॉ॰ शुभंकर बनर्जी
याददाश्त बढ़ाई जा सकती है सुधा सिंन्हा
हैदराबाद में जुटा एक स्वस्थ सांस्कृतिक कुंभ मछली की अनुठी दवा डॉ॰ जितेंद्र गौतम
कम्प्यूटर क्रांति और साहित्य-विश्लेषण पी॰आर॰ वासुदेव
विकासोन्मुखी शिक्षा में नाटक की भूमिका हरिवंश नारायण

वर्ष-३ अंक ९ अक्टूबर-दिसंबर, २००१

आतंकवाद : नई सदी का नया आयाम (संपादकीय) सिद्धेश्वर
भगवाकरण नहिं, भारतीयकरण डॉ॰ वैद्यनाथ शर्मा
सीताशरण शर्मा : जिन्होंने जीवन को तराशा नहीं, बल्कि उसकी अनगढ़ता में जीवन देखा सिद्धेश्वर
आज़ादी के ज़ब्त तराने जितेंद्र धीर
राष्ट्रीय एकता पर चौतरफा हमला : एक विशलेषण डॉ॰ राधाकृष्ण सिंह
सांप्रदायिकता राष्ट्रीय एकता में रोड़ा गुलाब चंद कोटड़िया
राष्ट्रीय एकता एवं मीडिया रत्नेश कुमार गौतम
देश की एकता के बाधक तत्त्व डॉ॰ एन॰ चंद्रशेखरन नायर
आज़ाद होना चाहते हैं पाक अधिकृत कश्मीर के लोग राधेश्याम तिवारी
सिर पटकने की कला (व्यंग्य) डॉ॰ रामाशंकर श्रीवास्तव
मलयालम साहित्य और राष्ट्रीय चेतना नृपेंद्र नाथ गुप्त
कहानी - एक हवेली की उर्मिला शुक्ल

With Best Compliments From

SANJIEEV

(M) 9811187035

Matta Sports

DEALS IN ALL LEADING SPORTS GAME

950, Rani Bagh, Delhi-110034

Ph.: 2702-4514, 2701-7186 • Fax : 2701-7512

E-mail : matta_sports@ahoo.co.in

Vsit at : www.indiamart.com/matasports

राष्ट्रपिता गाँधी : महात्मा क्यों? कृष्ण कुमार विद्यार्थी
पूरे कश्मीर के हिमायती थे सरदार पटेल डॉ॰ राम सिया सिंह पटेल
जे॰पी॰ का वह सपना जो साकार न हो सका नीतीश कुमार
हम रहें या न रहें, पर यह देश रहना चाहिए सुमन यादव
भारतीय संस्कृति में एकता और सद्भावना प्रतिबिंबित अमर नाथ 'अमन'
किसानों का हक़ छीनने की साज़िश दीपक जोशी
धरती की माटी कृष्ण कुमार

वर्ष-४ अंक १० जनवरी-मार्च, २००२

देश की संप्रभुता की रक्षा के लिए शत्रु को सबक़ सिद्धेश्वर
राष्ट्रीय इतिहास की वैज्ञानिकता डॉ॰ राम कृष्ण प्र॰ सिन्हा
दलित साहित्य दर्शन और हिंदी कविता वंशीधर सिंह
लेखक और समाज पी॰आर॰वासुदेवन 'शेष'
सरकार का व्याकरण (व्यंग्य) प्रो॰ रामभगवान सिंह
बात जो वह कह न सकी (कहानी) जिया लाल आर्य
प्रतिशोध (कहानी) कृष्ण कुमार राय
आरक्षण : नीति, नीयत और नियम श्रीकृष्ण शर्मा
आदर्श शिक्षक एवं आदर्श शिक्षण सुभाष शर्मा
शिक्ष का 'अँग्रेज़ीकरण' ख़तरनाक क़दम डॉ॰ राधाकृष्ण सिंह
खण्डित होती जिजीविषा और आदमीपन
की तलाश (समीक्षा) सिद्धेश्वर
नेपाल में माओवादी विद्रोह से भारत को चिंता संजय सौंम
दक्षेस सम्मेलन के बाद छिन जाती है
किसी न किसी की कुर्सी डॉ॰ शाहिद जमली
ऋण लेने में राजस्थान के किसान अग्रणी सुनीता रंजन
साठोत्तर राजस्थान की महिला रचनाकारों
का हिंदी में योगदान डॉ॰ तारालक्ष्मी गहलोत
हिलसा के शहीद मिथिलेश कुमार 'अकेला'

वर्ष-४ अंक ११ अप्रैल-जून, २००२

गाँधी की धरती पर हैवानियत की हद (संपादकीय) सिद्धेश्वर
हिंदी संस्कृति और राष्ट्र-निर्माण रवि भूषण
संस्मरण-रेखाचित्र : भ्रांति और स्थिति डॉ॰ डी॰आर॰ ब्रह्मचारी
रेणु साहित्य में सामाजिक एवं राजनीतिक चेतना डॉ॰ रामदेव प्रसाद
पुनर्मिलन (कहानी) कमल किशोर दुबे 'कमल'
चाँदनी में लिपटा पलाश प्रो॰ लखनलाल सिंह 'आरोही'
देख ली तेरी मुंबई नगरी (व्यंग्य) वीरेंद्र कुमार सिन्हा
रेड्डी ने अपने लेखन में कुछ नहीं दिपाया कमलेश्वर
बिन माँगे ही जिसके हाथों में
एक पशस्त्रि पत्र थमा दिया प्रो॰ रामबुझावन सिंह
जनबल को जगाना चाहते थे लोहिया और जे॰पी॰ सिद्धेश्वर
गोपीवल्लभ : जे॰पी॰ आंदोलन के एक चर्चित कवि अरुण कु॰ भगत
गीत गोपीवल्लभ के (समीक्षा) डॉ॰ नंदकिशोर नवल
गोपीवल्लभ : दुख का गाता हुआ चेहरा मैथिली वल्लभ परिमल
जन्म-मरण गीतों में गूँजा सत्यनारायण
हमारे गोपी भैया ई॰ बाँके बिहारी साव
लोकतंत्र व्यवस्था की घटती जवाबदेही सिद्धेश्वर
कम ख़र्च में निष्पक्ष चुनाव : एक सुझाव भारत ज्योति
कुर्सी की भूख ने भारतीय राजनीति
को रसातल में पहुँचाया सुधीर रंजन
राष्ट्रीय एकता और आज की युवा पीढ़ी पल्लवी सिंह चौहान
लौट आओ प्राणेंद्र कुमार सिंह
नई सदी में महज़ नारे उछलते रहे सुशीला झा
सत्ता-विकेंद्रीकरण महज़ एक नारा बनकर रह गया मोहन कुमार
रमा प्रसाद : जिसके नृत्य से सपने हुए अपने राजकिशोर राजन
मंच : एक परिचय सिद्धेश्वर

वर्ष-४ अंक १३ अक्टूबर-दिसंबर, २००२

आख़िर कैसे लगेगा राजनीतिक अपराधीकरण
पर अंकुश (संपादकीय) सिद्धेश्वर
विचारों की मौत रिचर्ड कापुसिंस्की
अम्मा (कहानी) नीरज श्रीवासतव
गो-वंश रक्षक तुरुक (कहानी) कृष्ण कुमार राय
क्या गाँधी विचारधारा आज भी सार्थक है? किशन शर्मा
वह अजनबी (व्यंग्य) गगनसुत नवीन
बदलता रूप रहज़नी का (व्यंग्य) जय प्रकाश मल्ल
क्यों याद आते हैं जे॰पी॰ डॉ॰ रमाशंकर श्रीवास्तव
सरदार पटेल : जिनके लिए राष्ट्र ही सब कुछ है ई॰ के॰के॰सिंह
ग़रीबी में पले, भारतीयता में ढले
लाल बहादुर शास्त्री सुधांशु कुमार
प्रगतिशील विचारक स्वमी विवेकानंद डॉ॰ वैद्यनाथ शर्मा
स्त्री, तुम मिटने के लिए नहीं हो जय प्रकाश कर्दम
ठिठकी-सहमी हमारी आधी आबादी परमानंद 'दोषी'
स्पंदित प्रतिबिंब (समीक्षा) ब्रजेश कुमार
दलितों के लिए सही शिक्षा का स्वरूप विजय प्रकाश

वर्ष-५ अंक १४ जनवरी-मार्च, २००३

आज़ादी के बाद वैचारिक क्रांति के नए आयाम
और हमारा दायित्व (संपादकीय) सिद्धेश्वर
व्यवस्था के ख़िलाफ़ बग़ावत क्यों? जी॰पी॰ सिंह आनंद
प्रतीक कवि जी॰ शंकर कुरुप:
कवींद्र रवींद्र पंत: डॉ॰ एन॰ चंद्रशेखरन नायर
घुटन (कहानी) मधु धवन
ठहरे आँसू (कहानी) नय्यर जावेद मलिक
चेकिंग (व्यंग्य) डॉ॰ तारिक असलम 'तसनीम'
चप्पल की प्रतिष्ठा (व्यंग्य) डॉ॰ रमाशंकर श्रीवास्तव
भारतीय राजनीति में बढ़ती सत्ता एवं संपत्ति
की लिप्सा और देश रत्न डॉ॰ राजेंद्र प्रसाद सिद्धेश्वर
बाबू गुप्त नाथ सिंह स्मृति ग्रंथ और
छात्रपति शिवाजी (समीक्षा) परमानंद 'दोषी',
करुणा का मार्ग दिखलाती लघुकथाएँ :
चरैवेति डॉ॰ शिवनारायण

सरदार पटेल : जिनके लिए देशहित सर्वोपरि डॉ॰ पी॰ दयाल
शिक्षा पर बढ़ती संकीर्ण राजनीति की काली छाया सिद्धेश्वर
16 एवं 17 नवंबर, 2002 को दिल्ली में आयोजित राष्ट्रीय अधिवेशन में निर्धारित विषय पर व्यक्त विचार :
सामाजिक समरसता और सांप्रदायिक सद्भावना के बिना राष्ट्रीय एकता ख़तरे में प्रो॰ कुमार रवींद्र , कृष्ण कुमार विद्यार्थ 'नूर', डॉ॰ विरेंद्र कुमार तिवारी, सिद्धेश्वर एवं रतनी कंत
वैश्वीकरण और अंतकवाद : आज की चुनौति प्रो॰ कुमार वीरेंद्र एवं ज्योति शंकर चौबे
बढ़ती आबादी पर अंकुश में युवाओं की भूमिका डॉ॰ पी॰एल॰ यादव एवं गोविंद शर्मा
भारतीय भाषाओं की वर्तमान स्थिति और राष्ट्रीय नीति डॉ॰ एन॰ सुरेश, डॉ॰ शिववंश पाण्डेय , डॉ॰ गुलाबचंद कोटिडिया, डॉ॰ कला नाथ मिश्र एवं डॉ॰ विद्या शर्मा
सत्ता के केंद्र नई दिल्ली की हलचल के बीच वैचारिक क्रांति की गूँज सिद्धेश्वर
और ग़रीब हुए बिहार के किसान नीलम

वर्ष-५ अंक १५ अप्रैल-जून, २००३

बुरे लोगों को महिमामंडित करने की प्रवृत्ति पर अंकुश लगे (संपादकीय) सिद्धेश्वर
एक सुहाना सपना : इंडिया विज़न 2020 सिद्धेश्वर
गृह-प्रवेश (कहानी) कृष्ण कुमार राय
बिंदा (कहानी) गिरीश चंद्र श्रीवास्तव
बालक मन : बेलगाम (संस्मरण) डॉ॰ शाहिद जमील
हिंदी अँग्रेज़ी की सहचरी या अनुचरी प्रो॰ शशि सिंह
'तस्वीरें' मध्यमवर्गीय जीवन की चित्रात्मकता व्यथा-कथाएँ मालती शर्मा
कल्पना चावला : जिसने आसमान की असीम ऊँचाइयों तक पहुँचने का सपना देखा सुनीता रंजन
पद्मश्री प्रो॰ शारदा सिन्हा : जिसने सांस्कृतिक परंपरा के बिसरते भाग को समेटा-संजोया अरुण कु॰ गौतम
इराक़ पर अमेरिका का हमला
बग़दाद पर बमों की बरसात संजय सौम्य
इराक़ : अतीत और वर्तमान धनंजय श्रोतिया
इराक़ जंग पर विश्व दंग सुधीर रंजन
मतदाताओं का अधिकार बरक़रार राजेश रोशन
चुनाव का वर्ष 2003 मनोज कुमार
अण्णा अजारे और बदली सूरत का उनका रालेगाँव सिद्धि अंजलि
सामाजिक परिवेश में भारतीय नारी ज्योति शंकर चौबे

वर्ष-५ अंक १६ जुलाई-सितंबर, २००३

आज़ादी के छप्पन वर्ष और हमारा संसदीय लोकतंत्र (संपादकीय) सिद्धेश्वर
आज की सभ्यता और अनास्था के चक्रव्यूह कुमार रवींद्र
कुछ पल अपने लिए (कहानी) गिरीश चंद्र श्रीवास्तव
अनवरत शोषण : एक मौलिक विचार डॉ॰ एस॰एस॰ सक्सेना 'त्यागी'
सामाजिक-राजनीतिक यथार्थ का चिंतन नवल किशोर गौड़
भारतीय हिंदू समाज और डॉ॰ अम्बेडकर राम चरित्र दास 'अचल'
आतंवाद का स्वरूप एवं अपराधमुक्ति के उपाय ज्योति शंकर चौबे
भारतीय संस्कृति का बिगड़ता स्वरूप सिद्धेश्वर
हिंदीप्रेमी-शो (व्यंग्य) डॉ॰ शाहिद जमील
डोन्ट टच माइ बॉडी मोहन रसिया डॉ॰ रमाशंकर श्रीवास्तव
राष्ट्र में शांति एवं सुरक्षा के लिए शांति मिसाइल की ज़रूरत डॉ॰ ए॰पी॰जे॰ अब्दुल कलाम
गीत चेतना के सृजनधर्मी कवि गोपीवल्लभ सत्यनारायण
टूट गई गीत परंपरा की एक और मज़बूत कड़ी सिद्धेश्वर

वर्ष-५ अंक १७ अक्टूबर-दिसंबर, २००३

गाँधी और पटेल आज पहले से ज़्यादा प्रासंगिक सिद्धेश्वर
दलित साहित्य में विद्रोह के संघर्षशील स्वर डॉ॰ रामदेव प्रसाद
भेगी बना जोगड़ा (कहानी) कृष्ण कुमार राय
छोरी कौ गाम (कहानी) डॉ॰ धमेंद्रनाथ 'अमन'
राष्ट्र की एकता को चिरंजीवी बनाती है हिंदी कविता वाचकनवी
क्या कामायनी का भाषा-संशोधन आचार्य शिवपूजन सहाय ने किया था? डॉ॰ दीनानाथ शरण
अद्वितीय राष्ट्रनिर्माता सरदार पटेल गुप्तनाथ सिंह
लोकनायक जयप्रकाश नारायण जिन्होंने राजनैतिक चिंतन की नई दिशा दी शैलजा सक्सेना
जे॰पी॰ की कालजयी प्रासंगिकता डॉ॰ लखनलाल सिंह 'आरोही'
अमीन साहेब : ज़मीन की लड़ाई बनाम स्वार्थ की लड़ाई (समीक्षा) दिनेश पंकज
भूत एवं वर्तमान के साथ भविरूश की दिशा को प्रतिबिंबित करता काव्य-संग्रह (समीक्षा) विपिन विप्लवी
'गीत तुम्हारे नाम' से 'मन वृंदावन' तक (,,) राजकिशोर राजन
अंतहीन अँधकार के आसार (समीक्षा) राम संजीवन शर्मा
रंगे सियारों का 'राष्ट्रवाद' (व्यंग्य) अग्निवाण
मनस् क्रांति ही परिवर्तन की बंनियाद मुनि लोकप्रकाश 'लोकेश'
बबुआ का दहेज (व्यंग्य) डॉ॰ रमाशंकर तिवारी

वर्ष-६ अंक १८ जवनीर-मार्च, २००४

सवाल आज बचपन बचाने का सिद्धेश्वर
तो फिर देश क्यों इतना लहूलुहान? सिद्धेश्वर
बच्चों के विकास में बाल साहित्य की सार्थकता सिद्धेश्वर
सलीब पर बचपन डॉ॰ लखन लाल सिंह 'आरोही'
लड़कियों के लिए ही क्यों ज़रूरी है शादी डॉ॰ दीनानाथ 'शरण'
बाल अधिकार डॉ॰ कलानाथ मिश्र
ऐसे सिखाइए अपने बच्चे को अब्राहम लिंकन
कामकाजी दंपति-परिवार में उपेक्षित व प्यार से वंचित होते बच्चे अंजलि
बाबा सालिक राम (कहानी) कृष्ण कुमार राय

आश्वस्त (कहानी) डॉ॰ विशमोहन कंमार शुक्ल
विगत स्मृतियाँ साक्षी हैं (बच्चन) डॉ॰ वंदना वीथिका
हाशिए पर जो नहीं है पुस्तक 'रेत के हाशिए पर'
कविता की 'कॉलोनी' में नई ईमारत (समीक्षा) डॉ॰ दीनानाथ शरण
हिंदी हाइकु लेखन का प्रभावी परिदृश्य (समीक्षा) डॉ॰ भगीरथ बड़ोल
भारतीयता, संस्कृति और संसदीय कार्यकलापों
को जोड़ती पुस्तक (समीक्षा) डॉ॰ एस॰एन॰ शर्मा
रंग मैले नहीं होंगे : गीत सृजन-सौंदर्य के (,,) कुमार रवींद्र
लोकतंत्र का बदला स्वरूप गणेश प्रसाद सिंह
भारतीय राजनीति पर नैतिक संकट की
काली छाया और सरदार पटेल डॉ॰ साधुशरण
कुरान को समझकर पढ़ने की हिदायत डॉ॰ शाहिद जमील
सद्दाम की गिरफ़्तारी प्राणेंद कुमार सिंह
वैचारिक क्रांति की संभावनाएँ तलाशती 'तलाश' मनोज कुमार
मेरे पति की ईमानदारी मुझे और मेरे परिवार
को प्रभावित करती है, कैसा? संगीता गोयल
किसानों की दुर्गति सरकारें निष्क्रय व समाज ख़ामोश डॉ॰ ईश्वर डाबरा

वर्ष-६ अंक १९ अप्रैल-जून, २००४

मौजूदा चुनाव की चुनौतियाँ सिद्धेश्वर
मुद्दों की तलाश : अयोध्या विवाद डॉ॰ मणि शंकर प्रसाद
प्रेस की समस्याएँ डॉ॰ रवींद्र कुमार वर्मा
दरार (कहानी) कृष्ण कुमार राय
पगली (कहानी) सुधा गुप्ता
ग़ज़ल शिल्प ज्ञान नासिर अली नदीम
राजनेता, चुनाव और मतदान सिद्धेश्वर
नया भारत : नया सवेरा डॉ॰ देवेंद्र आर्य
14 वीं लोकसभा : किसे वोट दें यू॰सी॰ अग्रवाल
जातीय नेया की पतवार चुनाव पर सवार उदित राज
तीसरे विकल्प की ऐतिहासिक परंपरा मस्तराम कपूर
निराला का क्रांतिकारी तेवर डॉ॰ चंद्रिका ठाकुर
तरंगिणी के तट पर (समीक्षा) डॉ॰ दीनानाथ शरण
आओ, दीवारों के घरें - परकोटों से
बाहर निकलें (समीक्षा) डॉ॰ ऋषभदेव शर्मा
सदा सुखी रहो डॉ॰ धमु धवन
सत्यदेव नारायण : क़लम से साहित्यकार
कैमरे से कलाकार (संस्मरण) डॉ॰ राष्ट्रबंधु
हिंदी एवं मगही नाट्य साहित्य के सशक्त
नाटककार थे बाबूरामसिंह 'लंगोड़ा' सिद्धेश्वर

वर्ष-६ अंक २० जुलाई-सितंबर, २००४

नई सरकार की प्राथमिकता सिद्धेश्वर
सूचना प्रौद्योगिकी से साहित्य को कोई ख़तरा नहीं डॉ॰ अमर सिंह वधान
राष्ट्रकवि रामधारी सिंह 'दिनकर' परमानंद 'दोषी'
जोगी दादा (कहानी) गिरीशचंद्र श्रीवासतव
राष्ट्रभाषा हिंदी : दशा और दिशा डॉ॰ डी॰आर॰ बह्मचारी
मूल्य-संकट और स्त्री की भूमिका कविता वाचक्नवी
महिलाएँ ही देश का उद्धार कर सकती हैं डॉ॰ श्याम सुंदर घोष
ज़माना है फ़िदा जल्व-ए-शू पर (व्यंग्य) डॉ॰ राजनारायण राय
जमुनादास की कुर्सी (व्यंग्य) डॉ॰ रमाशंकर श्रीवास्तव
बिहार में भ्रष्टाचार और चापलूसी
का राज कब तक? अखिलेश
स्वतंत्र भारत के तत्कालीन नेतृत्व की सबसे
भयानक भूल डॉ॰ जगपाल सिंह, संजीव मलिक व दिनेश पुंडीर
सरकार सांसदों और विधायकों को भ्रष्ट न करे डॉ॰ श्याम सुंदर घोष
अंतरात्मा की आवाज़ सिद्धेश्वर
शबद-शास्त्र के वृहस्पति : आचार्य सत्यव्रत
शर्मा 'सृजन' डॉ॰ मेधाव्रत शर्मा
गहरे सामाजिक सरोकारों वाले अंतर्मुखी एवं
निहायत संवेदनशील और मानवीय डॉ॰ मोहन सिंह सिद्धेश्वर

वर्ष-६ अंक २१ अक्टूबर-दिसंबर, २००४

राष्ट्रीय स्वाभिमान के चरित्र की विडंबना सिद्धेश्वर
कामायनी : पुनर्मूल्यांकन प्रो॰ नवल किशोर गौड़
सलाह (लघु कथा) डॉ॰ राज नारायण राय
तुम्हारे लिए (कहानी) गिरीश चंद्र श्रीवास्तव
प्रेमचंद साहित्य की प्रासंगिकता और
उसके संबंध में उठे विवाद कृष्ण कुमार राय
हाय! हिमालय (व्यंग्य) डॉ॰ श्यामसुंदर घोष
विवेक और कर्त्तव्य-बोध सिद्धेश्वर
आधुनिक हिंदी साहित्य में राष्ट्रीय चेतना डॉ॰ देवेंद्र आर्य
हिंदी का बाल साहित्य और राष्ट्रीय चेतना डॉ॰ किशोर काबरा
राष्ट्रीय एकता एवं राजभाषा हिंदी डॉ॰ बालशौरि रेड्डी
बीसवीं सदी का तेलुगु साहित्य (समीक्षा) डॉ॰ ऋषभदेव शर्मा
समाज की समस्याओं का विशद चित्रण
करते सेन्र्यू काव्य-संग्रह डॉ॰ सुधा गुप्ता
सरदार पटेल : भारत के एकलब्य डॉ॰ हेमंत पटेल
बहुभाषाविद् राष्ट्रकवि : सुब्रह्मण्य भारती परमानंद 'दोषी'
नई सरकार की नई भाषा नीति डॉ॰ पी॰के॰ बालासुब्रह्मण्यन
उदयराज सिंह : जीवन के हर मोड़ पर
जिसने नए दृश्य देखे (संस्मरण) सिद्धेश्वर
प्रो॰ श्यामनंदन शास्त्री : युग-चेतना को
प्रतिमानित करनेवाले साहित्य-शिल्पी सिद्धेश्वर
किशन पटनायक : समाजवाद के
प्रति समर्पित चिंतक सिद्धेश्वर
वर्तमान इतिहासकारों की बेचैनी और
एन॰सी॰इ॰आ॰टी॰ की किताबें देवनंदन सिंह

वर्ष-७ अंक २२ जनवरी-मार्च, २००५

दहशत के साए में आगामी विधानसभा चुनाव सिद्धेश्वर
संक्रांति-काव्य साकेत वंशीधर सिंह
भारत की पुकार : पाप से नफ़रत करो

With Best Wishes From

M/s. S.S. ASSOCIATES

A-1 B, Vishaukarma Colony,
M.B. Road, New Delhi-110044
Phone : 9810947540

पापी से नहीं — डॉ॰ जगपाल सिंह
सेनानी (कहानी) — युगल किशोर प्रसाद
ऐ मेरे प्यारे वतन — प्रो॰ शरद नारायण खेरे
भारत गणतंत्र और राष्ट्रीय एकता — डॉ॰ वैद्यनाथ शर्मा
लोकतंत्र के लिए कैसे मतदान करें — यू॰सी॰ अग्रवाल
एक ग़लती सुधारने के लिए दूसरी ग़लती, वाह क्या बात — पीयूष
बाल साहित्य में राष्ट्रवाद — डॉ॰ सुंदरलाल कथूरिया
हिंदी हाइकु : 2004 (समीक्षा) — डॉ॰ सुरंद्र वर्मा
नीर भरे नयना : मानवीय पीड़ा की अभिव्यक्ति (समीक्षा) — वंशीधर सिंह
कथ्य और शिल्प की कसौटी पर 'कसक' (") — डॉ॰ ब्रह्मजीत गौतम
राष्ट्रीय पर्व-त्योहार — पी॰आर॰ वासुदेव 'शेष'
धर्म और उसका राष्ट्रीय स्वरूप — डॉ॰ श्रीरंजन सूरिदेव
मानवीय मूल्यों की पुनर्स्थापना में लेखकों का योगदान : संदर्भ अणुव्रत — चंद्र कुमार 'सुकुमार'
जद (यू॰) की विफलता और बिखराव — सिद्धेश्वर

वर्ष-७ अंक २३ अप्रैल-जून, २००५

सर्वाजनिक जीवन में 'खोटे सिक्कों' का चलन — सिद्धेश्वर
राजनीति के अपराधीकरण से ख़तरे में लोकतंत्र — डॉ॰ शिवनारायण
रेत के फूल (कहानी) — गिरीश चंद्र श्रीवास्तव
फिरौती (कहानी) — कृष्ण कुमार राय
लहरों के चोर (कहानी) — सुनीता जाजोदिया
प्रेमचंद के कथा-साहित्य में आम आदमी — डॉ॰ लखन लाल सिंह 'आरोही'
इन्हें कुछ न कहें (समीक्षा) — डॉ॰ तपेश्वरनाथ
आम आदमी की बेचैनी और वेदना से भरपूर ग़ज़ल संग्रह (समीक्षा) — कृष्णानंद
'मेरी यूरोप यात्रा' में सैर का आनंद और परिवेश का अध्ययन (समीक्षा) — डॉ॰ राधाकृष्ण सिंह
'संतर्त' : यथार्थ की अतल गहराई का काव्य (") — बैद्यनाथ राय
चिंतन की रेखाएँ — डॉ॰ ऋषभदेव शर्मा
फ़ौजी की कहानी : उसी की ज़ुबानी — चितरंजन लाल भारती
भोजपूरी गितों के बादशाह 'विनय बिहारी' — अर्जुनदेवा महिमा आदि
भाषा अभिव्यक्ति का साधन है– पांडित का साध्य नहीं — संजय जोशी
अगली बार जब सरकार बनेगी ... (व्यंग्य) — विनय कुमार सिन्हा
रेणु की कहानियों में ग्रामीण जीवन के यथार्थ — डॉ॰ एन॰के॰पी॰ श्रीवास्तव
रजनीकांत : देहावसान एक बाल साहित्यकार का ... — सिद्धेश्वर

वर्ष-७ अंक २४ जुलाई-सितंबर, २००५

भारत-चीन संबंधों के नए दौर में सतर्कता ज़रूरी — सिद्धेश्वर
आचार्य रामचंद्र शुक्ल का मार्क्सवादी संस्कार — डॉ॰ ऋषभदेव शर्मा
धम्र-पिता दारोग़ा (कहानी) — कृष्ण कुमार राय
सरला डाम (कहानी) — हृषीकेश पाठक
जाति व्यवस्था : भारतीय समाज के पतन का कारण — सिद्धेश्वर
डॉ॰ रामविलास शर्मा : व्यक्ति और कार्य (समीक्षा) — डॉ॰ ऋषभदेव शर्मा
बँटे समाज की अखंडता की कथा : कोई वजह तो होगी (समीक्षा) — मोहन भारद्वाज
भावप्रवण रचना 'बूंद फूल और मैं' (समीक्षा) — युगल किशोर प्रसाद
हिंदी पत्रकारिता में अभिनव आयाम (समीक्षा) — डॉ॰ श्रीरंजन सूरिदेव
मेरे संशोधन की दिशा : भील 'लोक' — डॉ॰ भगवानदास पटेल
अल्प जन हित, अल्प जन सुखय — डॉ॰ कलानाथ मिश्र
असफलता सफलता का आधार-सतंभ है — अंजलि
बुज़ुर्गों को अब विदा करने का वक़्त — सिद्धेश्वर
'डायन' के बहाने औरतों पर अत्यरचार — अशोक कुमार सिन्हा
एक और जनता का पोप विदा (संस्मरण) — सिद्धेश्वर

वर्ष-७ अंक २५ अक्टूबर-दिसंबर, २००५

राष्ट्रीय एकता के समक्ष नई चुनौतियाँ — सिद्धेश्वर
अंतरात्मा का चिंतन — डॉ॰ ए॰पी॰जे॰ अब्दुल कलाम
वैचारिक क्रांति : क्यों और कैसे? — डॉ॰ महेश चंद्र शर्मा
कड़वा सच (कहानी) — स्मिता पाटिल
काला नाग (लघु कथा) — युगल किशोर प्रसाद
स्वीकृति (लघु कथा) — डॉ॰ शतीश राज पुष्करणा
लाचारी (लघु कथा) — डॉ॰ मिथिलेश कुमारी मिश्र
'विराट विमर्श' पर एक विमर्श — दिवाकर वर्मा
संभावनाओं की घरती पर उगी महेंद्रभटनागर की कविताएँ (समीक्षा) — राधेलाल बिजघावने
इतिहास और व्यक्तित्व पर बहस (समीक्षा) — रवींद्र वर्मा
अनोखा ऐतिहासिक उपन्यास (समीक्षा) — विश्वमोहन तिवारी
कविता में अशोक कुमार की पहचान (समीक्षा) — श्रीराम तिवारी
बंगभंग विरोधी आंदोलन का राष्ट्रीय स्वरूप — डॉ॰ शत्रुघन प्रसाद
जेन संस्कृति और इतिहास बोध — डॉ॰ ध्रुव कुमार
आधि आबादी पर अँकुश का औचित्य — सिद्धेश्वर
गाँधी और हम — राजेंद्र प्रसाद गुप्त
रूढ़ियाँ टालिए, परंपराएँ पालिए — सविता लखोटिया
छोटा होता ममता का आँचल और वात्सलय से वंचित होते बच्चे — अंजलि
यह हमारे लिए दुर्भाग्यपूर्ण — के॰सी॰ त्यागी
ऐसे बने शेखावत दस रुपये में उपराष्ट्रपति — सुशील शर्मा
छह वर्षों की मौन साधना और सहृदयता के पर्याय रघुनाथ प्रसाद 'विकल' — भागवती प्रसाद द्विवेदी

वर्ष-८ अंक २६ जवनरी-मार्च, २००६

बिहार में सत्ता परिवर्तन — सिद्धेश्वर
'सरफ़रोशी की तमन्ना अब हमारे दिल में है' का कवि कौन? — डॉ॰ शांति जैन
जाले में फँसी मकड़ी (कहानी) — डॉ॰ शाहिद जमील
आप हैं कार्यकर्ता (व्यंग्य) — सत्यनारायण भटनागर
इस्लाम में पड़ोसी के अधिकार और कर्त्तव्य — डॉ॰ ज़ाहिद अनवर
तुम चंदन हम पानी — डॉ॰ सुभाष शर्मा
सर्वथा उत्कृष्ट, अभिनव एवं

With Best Compliments From

R.K. ENTERPRISES

(Registered Govt. Contractor, Engineer & General Suppliers)

Specialist in :

All Electrical, Mechanical, Swimming Pool & Water Treatement Works

135-A, DDA Flats,
Gazipur, Delhi-110016
Ph. : 011-22772350, 9811095396 (M)

कमनीय कहानी (समीक्षा) परमानंद 'दोषी'
संवेदना के स्तर पर झकझोरती मयुरा
की रचनाएँ (समीक्षा) उदय कुमार 'राज़'
अपेक्षित पात्र को नायकत्व प्रदान
करता खण्डकाव्य (समीक्षा) भगवती प्रसाद द्विवेदी
संसद को शर्मसार किया बिकाऊ जनप्रतिनिधियों ने सिद्धेश्वर
बिहार की जनता के आहत स्वाभिमान का प्रश्न डॉ॰ कलानाथ मिश्र
संत आचार्य श्री तुलसी रतनलाल कोठारी
आलैकिक प्रेम का अद्‌भुत-चिरसमरणीय प्रतीक ताजमहल अंजलि
विमल वर्मा जिन्हें महारत थी संवेदनाओं को उकेरने में सिद्धेश्वर
अमृता प्रीतम जिनके अक्षरों की प्रतिध्वनी गूँजती रहेगी सिद्धेश्वर
मधु दंडवते जिनके जीवन में अंतिम घड़ी तक
समाजवाद प्रतिबिंति होता रहा सिद्धेश्वर
पूर्व राष्ट्रपति के॰आर॰ नारायणन : जिनका
राष्ट्रपतित्वकाल स्मरणीय रहेगा सिद्धेश्वर

वर्ष-८ अंक २७ अप्रैल-जून, २००६

'लाभ के पद' के सवाल पर राष्ट्रीय राजनीति गरमायी सिद्धेश्वर
अशांत आधुनिकता प्रो॰ प्रेम मोहन लखोटिया
बिहार का नव निर्मण और रेणु प्रो॰ नवल किशोर प्र॰ श्रीवास्तव
साहित्य और प्रेम के विविध रूप चंद्र मौलेश्वर प्रसाद
बिल्ली (कहानी) डॉ॰ अनुपमा
पहचान (कहानी) कमला प्रसाद 'बेख़बर'
गीत उत्तरार्द्ध : उत्कट जिजीविषा के
विमोह गीत (समीक्षा) विनय कु॰ चौधरी
प्रोफ़ेसर किंकर्त्तव्यविमूढ़ (व्यंग्य) राधाकांत भारती
क्यों मनाते हैं पहली अप्रैल को मूर्ख दिवस? डॉ॰ हरिकृष्ण प्र॰ गुप्त अग्रही
तुष्टिकरण की क्षुद्र राजनीति उदय कुमार 'राज़'
वर्तमान परिवेश में गृहिणी के समक्ष नई चुनौतियाँ अंजलि
भारतीय समाज : समस्या एवं समाधान डॉ॰ महेशचंद्र शर्मा
बिहार किस ओर सिद्धेश्वर
पद्मश्री डॉ॰ शैलेंद्रनाथ श्रीवास्तव : जिनकी साहित्य
और राजनीति में वरेण्यता सदैव बनी रही (संस्मरण) सिद्धेश्वर
बासुदेव नारायण : जिनका सान्निध्य सदैव
स्मरणीय रहेगा (संस्मरण) सिद्धेश्वर
आर॰पी॰ सिन्हा : हमारी आस्था के एक
और अग्रज अलविदा (संस्मरण) सिद्धेश्वर
क्या इतना नाज़ुक है हिंदू धर्म डॉ॰ बी॰बी॰ गिरी

वर्ष-८ अंक २८ जुलाई-सितंबर, २००६

मौजूदा लोकतंत्र में नागरिकों का
राष्ट्रीय दायित्व (संपादकीय) *सिद्धेश्वर*
समाज के निर्माण में साहित्य का अवदान *डॉ. महेश चंद्र शर्मा,*
मिस्टर नो बडी (कहानी) *सलाम बिन रज्ज़ाक*
तलाश (नाटक) *डॉ. एस. नारायण राम*
प्रलय से पूर्व की चंद निशानियां (अध्यात्म) *डॉ. शाहिद जमील*
नर्मदे हर (अध्यात्म) *डॉ. ब्रजभूषण सिंह आदर्श*
मेरे चतुर्दिक व्याप्त जीवनों ने मुझे-
एक रचना बनाया (साक्षात्कार) *डॉ. एवूरि भारद्वाज*
कहानियाँ, इंसानियत को अहमियत देने में सफल (समीक्षा)
डॉ. सुषमा शर्मा
सामाजिक उन्नति का आधार सहयोग *डॉ. रमेश चंद्र बेसावत,*
बुजुर्गों की दुनिया *डॉ. के.एन.पी. श्रीवास्तव*
रिश्तों में बढ़ती दूरियां *विनोद शंकर गुप्त*
राज सत्ता, भ्रष्टता एवं राज हिंसा *प्रो. के.के. सिन्हा*
बलात्कार संबंधी कानून : अंधा और एकतरफा
कमला प्रसाद 'बेखबर'
मनोहर श्याम जोशी : जिन्होंने धारावाहिक लिखकर
अपनी प्रतिभा का लोहा मनवाया *संसमरण सिद्धेश्वर*
डॉ. सहदेव सिंह 'पाचा', जिनकी कविताएं ही उनके
होने का अर्थ प्रतिपादित करती है (संस्मरण) *सिद्धेश्वर*
पद्मश्री विंध्यावाहिनी देवी : लोकगायिकी के
एक युग का अवसान (संस्मरण) *सिद्धेश्वर*
प्रमोद महाजन : जिनका निधन पारिवारिक
मूल्यों के टूटने का भयानक प्रतीक बना (संस्मरण) *सिद्धेश्वर*
नौशाद अली : जिसने आज की आंखों से
गुजरा हुआ कल देखने की कोशिश में (संस्मरण) *सिद्धेश्वर*
साहित्य, दर्शन और धर्म की त्रिवेणी बहाई
आचार्यश्री तुलसी ने *डॉ. एल.एम. सिंघल*

वर्ष-८ अंक २९ अक्टूबर-दिसंबर, २००६

आतंकवाद के साये में हमारी राष्ट्रीय चेतना सिद्धेश्वर
वंदे मातरम् आज़ादी का जयघोष देवेंद्र सवरूप
ज़रूरी है लेखक का स्वाभिमान डॉ॰ नरेंद्र शर्मा 'कुसुम'
कबाड़ में सिमटी ज़िंदगी (कहानी) कृष्ण कुमार राय
योद्धा (कहानी) डॉ॰ शाहिद जमील
हम साथ-साथ हैं (व्यंग्य) शुक्ला चौधरी
गहरे अँधेरों को शब्दों से मिटाने का
सफल प्रयास (समीक्षा) सिद्धेश्वर
कविवर तरुणके व्यक्तित्व व कृतित्व को
उजागर करती कृति (समीक्षा) डॉ॰ कुमार रजनीकांत रंजन
भक्तिमूलक चरित्र की प्रस्तुति (समीक्षा) डॉ॰ शत्रुध्न प्रसाद
माँ-बाप के प्रति संतान का कर्त्तव्य (अध्यात्म) डॉ॰ ज़ाहिद अनवर
'झूठा सच' में मुस्लिम मानसिकता (अध्यात्म) डॉ॰ मौलेश्वर प्रसाद
भारतीय राजनीति में पनपती वंशवाद की प्रवृत्ति सिद्धेश्वर
ये सुविधाभोगी सांसद राधाकांत भारती
प्रतिनिधिक लोकतंत्र के लिए पंचायती राज व्यवस्था सिद्धेश्वर
वर्तमान शैक्षिक व्यवस्था : समस्याएँ और
समाधान डॉ॰ नवल किशोर प्रसाद श्रीवास्तव

काश! सरदार पटेल होते उदय कुमार 'राज़'
उस्ताद बिस्मल्लाह ख़ाँ : गंगा-जमुनी तहज़ीब
की जीती-जागती मिसाल (संस्मरण) सिद्धेश्वर
नेपाली के साथ गुज़रे वे अवस्मरणीय दिन (,,) विमल राजस्थानी
सत्येंद्र नारायण सिंह : जिनकी आत्माकथा
अतीत में झाँकने का एक साधन बनेगी (संस्मरण) सिद्धेश्वर

वर्ष-९ अंक ३० जनवरी-मार्च, २००७

जनता में जागरूकता जगाने की ज़रूरत सिद्धेश्वर
प्रश्न साहित्य और नैतिक मूल्यों का प्रो॰ कुमार रवींद्र
घातक है अल्पसंख्यकवाद चरती लाल गोयल
बनवासी (कहानी) कृष्ण कुमार राय
शरारत का फल (प्रेरक लघुकथा) अलमास जमील
बंद का राष्ट्रीय महत्त्व प्रो॰ राम भगवान सिंह
एक कर्मयोगी की जीवन का जीवंत
चित्रण (समीक्षा) डॉ॰ मणिशंकर प्रसाद
हर कहानी वक़्त की पहचान (समीक्षा) डॉ॰ सुभाष शर्मा
जिजीविषा और संघर्ष के गीत (समीक्षा) डॉ॰ लवलीन थडानी
सतरंगी अनुभूतियों की सार्थक अभिव्यक्ति डॉ॰ रामनिवास 'मानव'
अहिंसा की कूटनीति मुनिश्री सुखलाल
पत्नी पर हाथ उठाने पर हथकड़ी कुमारी लक्ष्मी निषाद
बिहार का बदलता परिदृश्य सिद्धेश्वर
प्रजातंत्र और विकास चितरंजन भारती
बेटे के लिए त्राहिमाम् क्यों? सिद्धेश्वर
आज़ादी की दीवानी थी अज़ज़न बाई डॉ॰ सुधांशु द्विवेदी
कांशीराम : जो भारतीय दलितों की सबसे
बड़ी आवाज़ बनकर उभरे (संस्मरण) सिद्धेश्वर
कविवर मधुर शास्त्री : जिनके सान्निध्य में
हमने बहुत कुछ पाया (संस्मरण) सिद्धेश्वर

वर्ष-९ अंक ३१ अप्रैल-जून, २००७

भाषाई गुलामी से कब होगा मुक्त हमारा राष्ट्र सिद्धेश्वर
भारतीय संविधान में सामाजिक न्याय की
अवधारणा : कुछ चुनौतियाँ और उनके समाधान डॉ॰ जय प्रकाश खरे
दर्शन का स्वरूप तथा इसकी उपादेयता डॉ॰ महेश चंद्र शर्मा
लूट का अड्डा (कहानी) कृष्ण कुमार राय
चरित्र (कहानी) शुक्ला चौधरी
बेगम का फ़रमान (व्यंग्य) डॉ॰ मो॰ मोज़ाहेरुल हक़
कम ख़र्च में ग़रीबों का इलाज होमियोपैथि
में ही संभव (साक्षत्कार) डॉ॰ महेश प्रसाद से डॉ॰ शाहिद जमील
आज में कल की तलाश (समीक्षा) डॉ॰ बलराम तिवारी
साहित्य एवं संस्कृति चिंतन (समीक्षा) .....
कवि में दोहे के प्रति उत्कृट आकर्षण डॉ॰ कृष्ण गोपाल मिश्र
स्वाध्याय का अर्थ और महत्त्व ओम प्रकाश पाण्डेय
शाकाहारी क्यों होना चाहिए दिनेश रावत
अपने ही चक्रव्यूह में फँसे हैं भारतवासी डॉ॰ जगपाल सिंह
पूरब का ऑक्सफॉड – पुणे प्रो॰ लखन लाल सिंह 'आरोही'
भारत-नेपाल संस्कृतियों के आदान-प्रदान की रोमांचक यात्रा सिद्धेश्वर
परमानंद 'दोषी' : अकथनीय स्मृतियों के
दोराहे पर खड़ा जीवनीकार (संस्मरण) सिद्धेश्वर
कमलेश्वर : जो आम आदमी के दर्द को
आवाज़ लगाने वाले कथाकार थे (संस्मरण) सिद्धेश्वर
पं॰ ओम प्रकाश कौशिक : अणुव्रत आंदोलन से जुड़े
एक तपे-तपाए अणुव्रती का अवसान (संस्मरण) सिद्धेश्वर

वर्ष-९ अंक ३२ जुलाई-सितंबर, २००७

देश में बढ़ती धार्मिकता या आदमी की बीमार मनोवृति सिद्धेश्वर
सूखती संवेदना और मुरझाता राष्ट्र डॉ॰ राकेश कुमार सिंह
क़लम कमज़ोर पड़ चुकी है राजू रंजन
रात ढ़ल गई (कहानी) सुखदेव नारायण
दाग़ (कहानी) डॉ॰ शाहिद जमील
संस्मरण और राजस्थान का महिला संदर्भ डॉ॰ फ़रज़ाना सुलतान
लेखक के चिंतन पक्ष को उजागर
करती कृति (समीक्षा) डॉ॰ मंजूला गुप्ता
हर आँसू मुस्कान बना दे या अल्लाह (समीक्षा) उदय कुमार 'राज़'
कविता में काम चेतना (साक्षात्कार)
डॉ॰ महेंद्र भटनागर से डॉ॰ रमेश चंद्र द्विवेदी
साहित्यकारों को चाहिए न्याय प्रो॰ दीनानाथ 'शरण'
सड़ी डुकरियों और रंगदारी का समाजशास्त्र आर॰एस॰ पटेल
भारतीय संविधान के परिप्रेक्ष्य में आरक्षण का औचित्य सिद्धेश्वर
ख़तरे की कगार पर खड़ी क्षेत्रीय भाषाएँ सिद्धेश्वर
राष्ट्र कवि दिनकर : जो आग के
अक्षर लिखते थे (संसमरण) विमल राजस्थानी
कयों कैलाश! ऐसी जल्दी क्या थी? (संस्मरण) सत्यनारायण
हम कब आत्मसात करेंगे लोकतांत्रिक मूल्यों को सिद्धेश्वर
गृहस्थ जीवन की खुशहाली का राज़ जगदीश पाल सनपेडिया

वर्ष-९ अंक ३३ अक्टूबर-दिसंबर, २००७

स्वतंत्रा संग्राम के सेनानियों का सपना
और आज का भारत (संपादकीय) सिद्धेश्वर
राष्ट्र और राष्ट्रभक्त देवेंद्र कुमार 'देव'
नए फ़िरंगी (कहानी) विमल कुमार
आतंकवादी की माँ (कहानी) सुक्ला चौधरी
अनुतरित प्रशन (लघुकथा) पुष्पा जमुआर
सागर संध्या का शिल्प और संदेश वंशीधर सिंह
जब शब्द बने समिधा (समीक्षा) डॉ॰ रमाशंकर श्रीवास्तव
'और कुछ' कहानी संग्रह के लिए दो शब्द डॉ॰ जितेंद्र कुमार सिंह
प्रथम भारतीय स्वतंत्रा संग्राम और
हिंदी साहित्य प्रो॰ लखन लाल सिंह आरोही
स्वतंत्रा संग्राम में आलिमों और साहित्यकारों

With

Best

Compliments

From

R.K. Electricals

SUPPLIERS & CONTRACTORS

F-288/A, Lado Sarai
New Delhi-110 030

का योगदान — सलीम सेहर वर्दी
सिपाही विद्रोह या सवधीनता संग्राम — डॉ॰ वरुण मुकार तिवारी
लोकगीतों में 1857 का प्रथम स्वतंत्रा संग्राम — सिद्धेश्वर
भारतीय पुरुषार्थ का प्रतीक 1857 का विद्रोह दैनिक जागरण से
1857 का स्वतंत्रा संग्राम और पीर अली — अफ़ज़ल इंजीनियर
1857 राजस्थानी लोकगीतों में — राज चतुर्वेदी
1857 का वीर कुंर सिंह — प्रो॰ साधु शरण
भगत सिंह : पेन से पिस्तौल तक — ओमप्रकाश मंजुल
1857 की स्मृति का अर्थ — सीताराम येचुरी
नाटक और रंगमंच के आइने में 1857 — देवेंद्र राज अंकुर
1857 की विरासत — शिवकुमार मिश्र
1857 और बुद्धिजीवी समुदाय — डॉ॰ शाहिद जमील
सन् सत्तावन की क्रांति में पत्र--पत्रिकाओं की भूमिका — डॉ॰ धमेंद्रनाथ 'अमन'
लोक-चेतना में अठारह सौ सत्तावन — डॉ॰ खगेंद्र ठाकुर
1857 की क्रांति : छोटी सी चिंगारी जो भड़ककर शोला बन गई — सिद्धेश्वर
1857 की जन क्रांति : साझी शहादत की मिसाल — सिद्धेश्वर
सन् सत्तावन की जंगे आज़ादी की वीरांगनाएं — डॉ॰ आरती श्रीवास्तव
खूब लड़ी मर्दानी वह तो नारी थी या झांसीवाली रानी थी — सिद्धेश्वर
स्वाधीनता के साठ साल : एक विश्लेषण — उदय कुमार 'राज़'
हम आज भी गुलाम हैं — डॉ॰ हितेश कुमार शर्मा
तुष्टिकरण का परिणाम — डॉ॰ हितेश कुमार शर्मा
लौह पुरुष सरदार वल्लभभाई पटेल — डॉ॰ मधु धवन
राष्ट्रभाषा हिंदी और हमारी अमेरीकी यात्रा — सिद्धेश्वर
हिंदी में बालसाहित्य — डॉ॰ हरिकृष्ण देवसरे
विदेश में हिंदी की लोकप्रियता : हिंदी फ़िल्मों का संदर्भ — प्रो॰ निर्मल एस॰ मौर्य
विदेशों में हिंदी की भाषिक स्थिति और प्रवासी सृजन — कृष्ण किशोर
वैश्वीकरण, मीडिया और हिंदी — सिद्धेश्वर
मेवाड़ की शौर्य भूमि पर अहिंसा समवाय की यात्रा (यात्रा-वृतांत) — सिद्धेश्वर

वर्ष-१० अंक ३४ जनवरी-मार्च, २००८

अभिव्यक्ति की आज़ादी पर आँच (संपादकीय) — सिद्धेश्वर
समाज व बाज़ार के बीच समाचार — मुकेश कुमार
कोठे वाली का बेटा (कहानी) — धमेंद्र नाथ
अपने पराये (कहानी) — डॉ॰ शाहिद जमील
जुदा यात्रा के यात्री : बाबा नागार्जुन — रंजीत कुमार सौरभ
घोषणा (व्यंग्य) — डॉ॰ मो॰ मोज़ाहेरुल हक़
विचारों की दृष्टि से संग्रहणीय 'विचार दृष्टि' (समीक्षा) — चंद्र मौलेश्वर प्रसाद
राम मनोहर की मानस-मनस्विता (समीक्षा) — वंशीधर सिंह
विचारों के मज़बूत सूत्रों में पिरोयी कविताएँ — युगल किशोर प्रसाद
गुनगुनी धूप की गर्माहट का एहसास (समीक्षा) — उदय कुमार 'राज़'
'बस भारत माँ आबाद रहे, हम दिन चार रहें न रहें' — डॉ॰ एन॰एस॰ शर्मा
फीके पड़ रहे रिश्ते — सिद्धेश्वर
सीनियर सिटीजन के अधिकार और सिंगापुर के टिकट — विजय भास्कर
'उद्देश्यपूर्ण शिक्षा' के अलावा विश्व को बचाने का दूसरा कोई मार्ग नहीं है — जगदीश गाँधी
जीवन शैली दीप्तिमान बना सकती हैं पुस्तकें — सिद्धेश्वर
नीतीश सरकार के दो साल — सिद्धेश्वर
न्यायपालिका ही आमजन की आशा के दीप — अवधेश प्रसाद सिन्हा एवं कामेश्वर प्रसाद सिन्हा
कुर्रतुल ऐन हैदर : जो खुद आग का एक दरिया थीं (सं॰) — सिद्धेश्वर

वर्ष-१० अंक ३५ अप्रैल-जून, २००८

राष्ट्रीय एकता आज इस देश में क्यों आवश्यक — सिद्धेश्वर
मानुशी उत्तरदायित्वबोध : दश ओर दिश — प्रो॰ कुमार रवींद्र
टालेरेंस, मुक्ति (दो लघुकथाएँ) — डॉ॰ रामनिवास 'मानव'
यथार्थ और आदर्श का मणि-कंचन योग : यह सच है (समीक्षा) — प्रो॰ सुंदरलाल कथूरिया
युग-निर्माण और मूल्यबोध की कविताएँ (,,) — डॉ॰ मृत्युंजय उपाध्याय
समय की वास्तविकता दर्शाती कृति (समीक्षा) — डॉ॰ सुभाष शर्मा
नयी साहित्यिक पत्रिका वाक् : हिंदी का 'हिंदीपन'
नष्ट करने की साज़िश (समीक्षा) — प्रो॰ कमल किशोर गोयनका
श्रद्धा, आस्था और भाईचारे की मिसाल दरगाह की इबादत यात्रा (यात्रा-वृतांत) — सिद्धेश्वर
'भारत रत्न' को मख़ौल बनाया राजनेताओं ने — सिद्धेश्वर
भारत की सांस्कृतिक एकता साध्य और साधन — एच॰बी॰ मुरकूट
भारत राष्ट्र : वर्तमान चिंताएँ : साहित्यिक परिदृश्य — डॉ॰ सुंदरलाल कथूरिया
बलात्कार : महिलाएँ सवयं भी ज़िममेदार — डॉ॰ हितेश कुमार शर्मा
छूटता जा रहा है आत्मीय संबंधों से बना अतीत — सिद्धेश्वर
भारतीय संविधान में सामाजिक न्याय की अवधारना : चुनौतियाँ और समाधान — डॉ॰ जय प्रकाश खर
अहिंसक समाज-रचना के सूत्र — डॉ॰ नरेंद्र शर्मा 'कुसुम'
आज देश के नागरिक व्यक्ति नहीं, वोट बैंक — सिद्धेश्वर

वर्ष-१० अंक ३६ जुलाई-सितंबर, २००८

राजनीति के छल-छद्मों में उलझी राष्ट्रभाषा हिंदी — सिद्धेश्वर
'फूलों से भी दोस्ती है और काँटों से भी यारी है, कैसे मज़े में प्यारी ज़िंदगी हमारी है!' — जगदीश गाँधी
न्याय सिर्फ़ प्रभावशाली के हाथों की कठपुतली — कामेश्वर प्र॰ सिन्हा
बड़ी सरकार के नाम (उर्दू कहानी) — अहमद नदीक क़ासमी अनुवाद डॉ॰ शाहिद जमील
सृजनशीलता में समुद्री लहरों-सी उठान (समीक्षा) — डॉ॰ शाहिद जमील
जिजीविषा एवं व्यवधानों के बीच द्वंद्व (समीक्षा) — अश्विनी कुमार आलोक
'शब्दों के घेरे में घिरा नहीं' त्रिलोचन (समीक्षा) — चंद्र मौलेश्वर प्रसाद

अपने-अपने अधबीच (व्यंग्य)
सुरेंद्र वर्मा
बढ़ी बालिका वधुएँ
प्रो॰ प्रेम मोहन लाखोटिया
अँग्रेज़ी से इतना मोह क्यों?
सिद्धेश्वर
राष्ट्रीय चेतना जाग्रत करने में अहम भूमिका निभा रही
है 'विचार दृष्टि' (साक्षात्कार) श्री नंदलाला से उदय कुमार 'राज़'
राष्ट्रीय भावना से प्रेरित होता है दक्षिण में हिंदी भाषा का
प्रचार (साक्षात्कार) डॉ॰ बाल शौरि रेड्डी से संपादक सिद्धेश्वर
उर्ध्वमुखी व्यक्तित्व : बाल शौरि रेड्डी
डॉ॰ मधु धवन बाल शौरि रेड्डी : दक्षिण में बहता हिंदी का झरना
डॉ॰ पी॰वी॰ नरसा रेड्डी
बाल शौरि रेड्डी और उनकी कहानियाँ
विष्णु प्रभाकर
श्री 105 बाल शौरि : एक काव्यात्मक प्रतिक्रिया
महेश्वरी सिंह 'महेश'
समन्वय-सूत्र की एक कड़ी :बाल शौरि रेड्डी गोपालकृष्ण कौल
अग्रज का अभिनंदन अपना ही अभिनंदन
डॉ॰ पांडुरंग राव
सृजन के क्षणों में मेरा अपना कोई अस्तिव नहीं होता
डॉ॰ बाल शौरि रेड्डी
बाल शौरि रेड्डी : व्यक्तित्व एवं कृतित्व
डॉ॰ पी॰के॰ बालसुब्रह्मण्यम
डॉ॰ बाल शौरि रेड्डी के साथ एक सुबह
प्रबोध कुमार
दरकती रिश्तों की दीवारें
सिद्धेश्वर
क्या आत्महत्या जैसी समस्या का कोई अंतिम पूर्वानुमान है?
उदय कुमार 'राज़'
मंहगाई ने छीना आम आदमी का जीना
प्रो॰ पी॰के॰ झा 'प्रेम'
भारतीय राजनीति मिठास का ज़रिया बने
सिद्धेश्वर
क्षेत्रवाद की चुनौतियाँ और हमारा दायित्व
सिद्धेश्वर

संपर्क : आवास सं॰-सी॰/ 6, पथ सं॰-5, आर॰ ब्लॉक,
पटना-800001
दूरभाषा सं॰ 09430559161 एवं 0612-2226905

राष्ट्रीय विचार मंच की ओर से

लौह पुरुष सरदार वल्लभभाई पटेल के १३३वें जन्म दिवस के

पावन अवसर तथा मंच के मुख-पत्रा

'विचार दणष्टि' के सफलतापूर्वक दस वर्ष पूरे होने पर

३० एवं ३१ अक्टूबर, २००८ को नई दिल्ली में आयोजित

राष्ट्रीय अधिवेशन की सफलता के लिए हमारी

हार्दिक शुभकामनाएँ

डॉ. बाल शौरि रेड्डी

उपाधयक्ष, राष्ट्रीय विचार मंच,
२७, वार्ड वेलिपुरम, वेस्ट मांबलम, चेन्नई

बड़ी मछली छोटी को न खा पाए, इसका रखना होगा ध्यान -अमर्त्य सेन

पिछले दिनों 11 अगस्त 2008 को नई दिल्ली में संसद के केंद्रीय कक्ष में 'सामाजिक न्याय की माँग, विषय पर आयोजित हीरेन मुखर्जी स्मृति व्याख्यानमाला में नोबल पुरस्कार से सम्मानित प्रख्यात अर्थशास्त्री डॉ० अमर्त्य सेन ने सत्ता के शीर्ष पर बैठे लोगों से आग्रह किया कि वे इस बात का ध्यान रखें कि बड़ी मछली छोटी मछली को न खा पाए। साथ ही वे तात्कालिक मुद्दों की बजाय अभाव व अन्याय का कारण बन रही दीर्घकालिक समस्याओं के हल पर ध्यान केंद्रीत करें। इस अवसर पर उपराष्ट्रपति हामिद अंसारी, प्रधान मंत्री डॉ. मनमोहन सिंह और लोकसभाध्यक्ष सोमनाथ चटर्जी भी उपस्थित थे।

-संजीव कुमार, दिल्ली से

●

मंच की कोर कमिटी की बैठक संपन्न

विगत 13 अगस्त 2008 को नई दिल्ली के रिंग रोड स्थित भारतीय लोक प्रशासन संस्थान के प्रांगण में राष्ट्रीय विचार मंच की कोर कमिटी की एक बैठक डॉ. धर्मेन्द्र नाथ 'अमन की अध्यक्षता में हुई जिसमें मंच के राष्ट्रीय महासचिव सिद्धेश्वर ने पिछले 24 जुलाई से 10 अगस्त, 2008 की अवधि में मंच के एक चार सदस्यीय दल के द्वारा दक्षिण भारत के चारों राज्यों में की गई यात्रा का पूरा ब्योरा प्रस्तुत किया तथा इस यात्रा को यादगार और सफल बताया, क्योंकि यह यात्रा न केवल नई दिल्ली में आयोजित मंच के राष्ट्रीय अधिवेशन की पीठिका तैयार कर गई, बल्कि एक नई विचार क्रांति के प्रति साहित्य और राष्ट्रीय एकता से सरोकार रखने वालों को सजग कर गई। बैठक में अधिवेशन के कार्यक्रमों पर विचार किया गया तथा विभिन्न समितियों के संयोजक के नामों पर विचार-विमर्श हुआ। मंच के सचिव ने कार्यक्रम का संचालन तथा आभार व्यक्त किया।

-उदय कुमार 'राज', दिल्ली से।

●

अन्नपूर्णा का स्वयंवर

विगत 3 जुलाई को छत्तीसगढ़ के दुर्ग जिलांतर्गत लोद जनपद स्थित घुमका निवासी रामरतन हल्बा की चौथी संतान कुमारी अन्नपूर्णा ने अपने पिता के निर्देश पर बिरादरीवालों के गहन विरोध करने के बावजूद एक स्वयंबर की घोषणा की है जिसके तहत पाँच विद्वानों के बीच वह पाँच प्रश्न पूछेगी और स्वयंबर में पधारे जो युवक पाँच प्रश्नों के सही-सही उत्तर देंगे उसी से वह शादी रचाएगी। अन्पूर्णा के इस ऐतिहासिक कदम की वजह से वह इन दिनों 'घुमका की सीता' कही जा रही है।

-किसान दीवान, छतीसगढ़ से।
संरक्षक, नवशोक्ति युवा मंच,
ग्रा०-नरा (बागबाहरा)
जिला-महासंमुद छत्तीसगढ़

●

हिंदी भाषा व साहित्य के विस्तार पर पटना में संगोष्ठी

पिछले दिनों 28 अगस्त 2008 को संध्या 4 बजे पटना में बोरींग रोड के पुष्पांजलि अपार्टमेंट स्थित प्रो० वीणा रानी श्रीवास्तव के फ्लैट नं० 407 में एक साहित्यिक लघु संगोष्ठी हुई जिसकी अध्यक्षता प्रो० (डॉ०) साधुशरण ने की। इस अवसर पर 'विचार दृष्टि' के संपादक सिद्धेश्वर ने निरंतर भारत की समग्र चेतना को वाणी देने वाली राष्ट्रभाषा हिंदी को आजतक अँग्रेजी की सहचरी भाषा रहने पर चिंता व्यक्त करते हुए इसे माथे की बिंदी बनाने के कई सुझाव प्रस्तुत किए। अपने आलेख पाठ के क्रम में उन्होंने त्रिभाषा सूत्र के नहीं लागू होने के पीछे नौकरशाहों एवं तकनीकीशाहों की अँग्रेजी मानसिकता तथा हिंदी भाषा-भाषी क्षेत्रों के वासियों को जिम्मेवार बताया तथा सुझाव दिया कि इसके स्थान पर द्विभाषा सूत्र यथा एक क्षेत्रीय भाषा और दूसरे संपर्क भाषा के रूप में राष्ट्रभाषा हिंदी को लागू किया जाए।

पटना विश्वविद्यालय की पूर्व हिंदी विभागाध्यक्ष डॉ० वीणा रानी श्रीवास्तव ने भी अपने विचार व्यक्त करते हुए कहा कि सुविधाभोगी अँग्रेजी मानसिकता के लोग समाज में अपना वर्चस्व बरकरार रखने के ख्याल से हिंदी को लागू होना देना नहीं चाहते जो एक सोची-समझी साजिश है जिसके परिणामस्वरूप हिंदी पूर्णत: सक्षम होते हुए भी सार्वभौम राष्ट्र की भाषा नहीं बन पा रही है। राष्ट्रीय विचार मंच, बिहार की ओर से आयोजित इस संगोष्ठी में राजभवन सिंह, हरिद्वार राय पटेल तथा युगल किशोर प्रसाद ने भी हिंदी को माथे की बिंदी बनाने के लिए कई सुझाव प्रस्तुत किए। अपने अध्यक्षीय उद्‌बोधन में प्रो. साधुशरण ने कहा कि राष्ट्र को एकता के सूत्र में बाँधने के लिए हिंदी एकमात्र संपर्क भाषा के रूप में इस्तेमाल की जा सकती है।

-राजभवन सिंह, पटना से

नृपेन्द्र नाथ गुप्त के अमृत महोत्सव पर अभिनंदन

विगत 1 सितंबर 2008 को पटना के इंडस्ट्रीज एशोसियेशन हॉल में साहित्य-सेवी नृपेन्द्र नाथ गुप्त के 75वें जन्म दिवस पर बिहार विधान परिषद् के सभापति प्रो० अरुण कुमार की उपस्थिति में आयोजित अमृत महोत्सव में उन्हें श्री कुमार द्वारा लोकार्पित 'भाषा भारती प्रहरी' तथा 'राष्ट्रभाषा के अनन्य सेवी' नाम्नी दो ग्रंथ प्रदान कर सम्मानित किया गया जिसके प्रधान संपादक क्रमश: डॉ० पी.एन. विद्यार्थी तथा गिरिजा बरनवाल हैं। साहित्य और संस्कृति के प्रति समर्पित अनिल सुलभ की अध्यक्षता में संपन्न समारोह के अवसर पर डॉ० जगदीश पाण्डेय, प्रो० राम बुझावन सिंह, उपेन्द्र प्र० वर्मा, नरेश पाण्डेय 'चकोर', डॉ० रामशोभित प्र० सिंह, डॉ० शिवनारायण, डॉ० रामकरण पाल, डॉ० कुमार इन्द्रदेव, सिद्धेश्वर, जे.पी. मिश्र, डॉ० रेखा मिश्र, युगल किशोर प्रसाद आदि ने श्री गुप्त के प्रति सम्मान अर्पित किए। डॉ० शाहिद जमील ने कार्यक्रम का संचालन तथा डॉ० नीलू ने अतिथियों के प्रति आभार व्यक्त किए।

-युगल किशोर प्रसाद, पटना से

●

'अपनी अस्मिता की पहचान और

प्रगति के लिए जूझता बिहार' पर एक जीवंत एवं सार्थक परिचर्चा

31 अगस्त, 2008 को राष्ट्रीय विचार मंच की बिहार इकाई की ओर से पटना के सोन भवन स्थित सभागार में ''अपनी अस्मिता की पहचान और प्रगति के लिए जूझता बिहार'' विषय पर आयोजित चर्चा-परिचर्चा में नगर के अनेक प्रबुद्धजनों, साहित्यकारों, पत्रकारों तथा सजग नागरिकों ने बिहारवासियों द्वारा समाज व राज्य के उत्थान का लक्ष्य भूलाकर आत्मकेंद्रीत हो आत्मपुष्टि था स्वार्थ-साधन के लिए व्यग्र होते चले जाने पर चिंता व्यक्त करते हुए यहाँ के वासियों को अपना मन बदलने तथा लोगों में एक नया विश्वास जगाने पर बल दिया।

'विचार दृष्टि' के संपादक तथा मंच की बिहार शाखा के अध्यक्ष सिद्धेश्वर की अध्यक्षता में संपन्न इस परिचर्चा को अपने विचारों व सुझावों से जीवंत एवं सार्थक बनाया डॉ. एल. एन.शर्मा, प्रो० साधु शरण, राम उपदेश सिंह 'विदेह', डॉ० एस.एफ. रब, कर्नल एस.एस. राय, युगल किशोर प्रसाद, डॉ. वीणा रानी श्रीवास्तव, उषा किरण खान, उमेश्वर सिंह, हरिद्धार राय पटेल आदि ने। इन सभी विद्वतजनों ने बिहार के अतीत को गौरवमयी एवं स्वर्णिम बताते हुए इसकी अस्मिता की पहचान और विकास के लिए आम जनमानस में संकुचित राजनीतिक सोच, जातियता तथा धार्मिक संकीर्णता से उबरने तथा लोगों में चेतना जागृत करने पर जोर दिया।

प्रारंभ में परिचर्चा के अध्यक्ष सिद्धेश्वर ने निर्धारित विषय पर एक बीज वक्तव्य प्रस्तुत करते हुए पिछले तकरीबन दो दशक से बिहार में बिगड़ी व्यवस्था की वजह से मंद होती विकास की गति पर चिंता जाहिर की और कई तरह से विकलांग व रोग ग्रस्त राज्य को स्वस्थ और प्रगति को पटरी पर लाने के लिए संरचनात्मक परिवर्तन की आवश्यकता पर बल दिया जिसके लिए जमीनी स्तर पर प्रबंधन और विकास की विशेष इकाइयों को प्रतिस्पर्धात्मक बनाने का सुझाव दिया। यही नहीं सभी संस्थानों एवं प्रतिष्ठानों द्वारा अपने कर्मचारियों व अधिकारियों के ज्ञान और कुशलता में निरंतर निखार लाने के लिए स्थाई उपाय सोचा जाना जरूरी बताया गया। विकास का ऐसा मॉडल तैयार हो जिसकी बुनियाद सहयोग और भागीदारी पर आधारित हो।

इस परिचर्चा के दौरान मंच की ओर से बिहार की अस्मिता और प्रगति को लेकर इसके 35 आयामों पर वितरित एक प्रश्नावलि परिचर्चा में भाग लेने वालों से उनके उत्तर पूछे गए और सभी के उत्तर सार्थक और समाज तथा सत्ता पर विराजमान हुक्मरान के लिए सही मार्गदर्शन करने वाले थे। हाँ, वर्तमान सरकार के प्रयास के बावजूद भ्रष्टाचार पर अंकुश नहीं लग पाने पर अवश्य चिंता व्यक्त की गई, क्योंकि भ्रष्टाचार पर अंकुश लगाए बिना योजनाओं को साकार करना बेमानी जैसा लोगों ने समझा। जिन प्रबुद्धजनों व सजग नागरिकों ने परिचर्चा में भाग लेकर इसे जीवंत व सार्थक बनाया उनमें डॉ० एल. एल. शर्मा, राम उपदेश सिंह 'विदेह', डॉ० एस. एफ. रब, डॉ० साधुसरण, उमेश्वर सिंह, युगल किशोर प्रसाद, अर्जुन प्रियदर्शी, दीपक मेहता, हरे राम, बालेश्वर विद्रोही, अधिवक्ता योगेश तथा सुभाष, डॉ० रामकरण पाल, अरुण कुमार सिन्हा आदि का नाम उल्लेखनीय है।

संचालक द्वारा परिचर्चा में भाग लेने वालों से अनेक प्रश्नों के उत्तर पूछे गए जिसके उत्तर में उन्होंने कहा कि अपनी अस्मिता और प्रगति के संकट से गुजर रहे बिहार की तस्वीर बदलने के लिए इसके मुखिया की इच्छाशक्ति, नीयत और संकल्प दृढ़ हैं, क्योंकि सामाजिक एवं राजनीतिक मूल्यों की वापसी के ये पक्षधर हैं। मंच की बिहार शाखा के महासचिव डॉ. शाहिद जमील ने संचालन के क्रम में कहा कि जिंदा समाज ही संकटों से जूझता है, दवाबों से टकराता है और लगातार परिवर्तन की तलाश में रहता है। इसलिए समय का तकाज़ा है कि बिहार आज जिस चौराहे पर खड़ा है, अपने परिवर्तन के हर आयाम को भलिभाँति समझे और उसके कारण-परिणाम के ग्रॉफ को भी अपनी चिंता का विषय बनाए।

प्रारंभ में बालेश्वर विद्रोही की एक विद्रोही कविता के पूर्व मंच के साहित्य मंत्री तथा संयुक्त आयुक्त, राज्य निर्वाचन आयोग रघुवंश कुमार सिन्हा ने परिचर्चा में भाग लेने वालों का स्वागत किया तथा पूर्व अपर समाहर्त्ता लाल दास पासवान ने उनके प्रति आभार व्यक्त किया।

●

डॉ0 नामवर सिंह को परंपरा विशिष्ट सम्मान

दिल्ली के उप राज्यपाल तेजेन्द्र खन्ना ने हिंदी साहित्य के सुप्रसिद्ध आलोचक डॉ. नामवर सिंह को 'परंपरा विशिष्ट सम्मान' तथा वीर सक्सेना को 'परंपरा ऋतुराज सम्मान' से सम्मानित किया। पुरस्कार प्राप्त करने के बाद डॉ. नामवर सिंह ने कहा कि लेखक पुरस्कार के नहीं, बल्कि भाव के भूखे होते हैं, क्योंकि वह अभाव में भी जीते हुए भाव के करीब होते हैं।

●

विष्णु प्रभाकार को शब्द साधक शिखर सम्मान

गाँधीवादी चिंतक और आवारा मसीहा जैसी कालजयी कृति के रचयिता विष्णु प्रभाकर को शब्द साधक शिखर सम्मान से नवाजा गया। यह सम्मान जगदीश चंद्र जोशी स्मृति साहित्य पुरस्कारों की शृंखला में दिया जाता है। प्रेमचंद की पीढ़ी के साक्षी रहे विष्णु प्रभाकर पद्म विभूषण से भी सम्मानित किए जा चुके हैं। इस साहित्य साधक पर पचास से ज्यादा छात्र शोध कर पीएच.डी. हासिल कर चुके हैं। इनकी अन्य कृतियों में 'मगर धरती अब भी घूम रही है तथा अर्द्धनारीश्वर उल्लेखनीय हैं।

●

श्रद्धांजलि

कविवर दरवेश का निधन

फिलिस्तीन में राष्ट्र कवि के रूप में सराहे जाने वाले तथा फिलिस्तीनियों के दु:ख और पीड़ा को अपनी कविताओं के जरिए आवाज देने वाले जाने माने कवि महमूद दरवेश का पिछले 10 अगस्त, 2008 को अमेरिका के ह्यूस्टर अस्पताल में निधन हो गया। 67 वर्षीय इस वयोवृद्ध कवि ने अपनी

ओजपूर्ण कविताओं के जरिए फिलिस्तीनी मुक्ति संघर्ष की गौरवगाथा, फिलिस्तीनियों की पीड़ा और उनकी भावनाओं को जिस मर्मस्पर्शी तरीके से व्यक्त किया वह आज भी एक मिसाल है। इनकी अन्य कविताओं में मानवीय विषयों के हर संवेदनशील पहलू को छूने की कोशिश की गई है। पुरानी से लेकर युवा पीढ़ी तक हर वेश की कविताएँ आज भी उतनी ही लोकप्रिय हैं जितनी पहले थीं। दरवेश को 1948 के इस्राइल के गठन के साथ ही विस्थापन का दंश झेलना पड़ा था। ऐसे जुझारू कवि दरवेश को श्रद्धांजलि। –संपादक

●

श्रद्धांजलि
के0 के0 बिड़ला का देहावसान

देश के मजबूत औद्योगिक ढाँचे की बुनियाद रखने वाले शीर्षस्थ उद्योगपतियों में से एक कृष्ण कुमार बिड़ला का पिछले 30 अगस्त, 2008 को 90 साल की उम्र में कोलकाता में निधन हो गया। राजस्थान के पिलानी में 11 नवंबर, 1918 को घनश्याम दास बिड़ला के पुत्र के रूप में जन्में के. के. बिड़ला ने कलकत्ता, पंजाब और दिल्ली विश्वविद्यालय में शिक्षा ग्रहण की। बिड़ला भारतीय चीनी उद्योग के संस्थापक सदस्यों में से एक थे। फिर खाद, भारी उद्योग, वस्त्र, शिपिंग और समाचार जैसे विभिन्न क्षेत्रों में भी अपना औद्योगिक साम्राज्य स्थापित किया। वे राज्य सभा के सदस्य भी रहे तथा उन्होंने कई किताबें भी लिखीं। 'विचार दृष्टि' की ओर से श्रद्धांजलि।

–पी. के. झा 'प्रेम', दिल्ली से

●

श्रद्धांजलि
स्त्रीवादी लेखिका प्रभा खेतान का देहावसान

सुप्रसिद्ध स्त्रीवादी लेखिका डॉ. प्रभा खेतान का विगत 19 सितंबर 2008 की रात देहावसान हो गया। 66 वर्षीय डॉ. खेतान को सांस में तकलीफ होने के बाद कोलकाता के सल्टलेक स्थित आमरी अस्पताल में उनकी बाई पास सर्जरी हुई, पर वह बच नहीं पाईं। 1 नवम्बर 1942 को जन्मी प्रभा खेतान ने प्रसीडेंसी कॉलेज से एम.ए. दर्शनशास्त्र में करने के बाद पी.एच. डी. किया था। गद्य-पद्य दोनों में तकरीबन उनकी डेढ़ दर्जन पुस्तकें प्रकाशित हुईं। उद्योग जगत में भी इन्होंने अपनी पहचान बनाई थी तथा खेतान फाउंडेशन के सहारे वे सामाजिक सरोकारों से जुड़ी रहीं। ऐसी साहित्यिक एवं सामाजिक विभूति के निधन पर 'विचार दृष्टि' परिवार की ओर से हार्दिक श्रद्धांजलि।

–संपादक

सम्मान

'विचार दर्ष्टि' के संपादक संस्औत शिक्षा बोर्ड के अण्यक्ष बने

'विचार दृष्टि' के यशस्वी संपादक एवं साहित्यकार सिद्धेश्वर जी को बिहार संस्कृत शिक्षा बोर्ड का अध्यक्ष बनाया गया है। इस आशय की संसाधन विकास

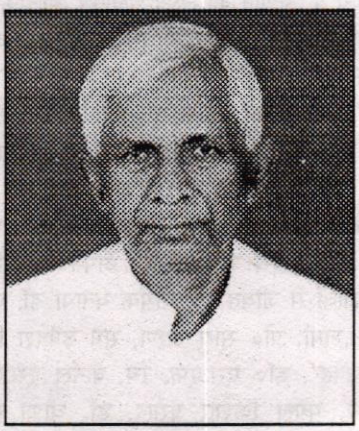

विभाग की ओर जारी होने के बाद सिद्धेश्वर प्रसाद जी ने 15 सितंबर 2008 को ही पदभार ग्रहण कर बोर्ड के कार्यों का संचालन प्रारंभ कर दिया है और इसके अपने भवन की उनुपलब्धता, परीक्षाओं में गड़बड़ी तथा कागजी विद्यालय जैसी बोर्ड के संमक्ष खड़ी समस्याओं को इन्होंने चुनौती के रूप में स्वीकार करते हुए बिहार के मुख्यमंत्री नीतीश कुमार की आशा और विश्वास के अनुरुप खरा उतरने का भरोसा इन्होंने सरकार और बिहार की जनता को दिलाया है। यही नहीं भारतीय भाषाओं की जननी संस्कृत भाषा और साहित्य प्रचार-प्रसार को बढ़ावा देने का भी वे हर संभव प्रयास करेंगे। भारतीय लेखा एवं लेखा परीक्षा विभाग के अनुभव का लाभ इन्हें मिलेगा। हिंदी में इनकी अबतक विभिन्न विधाओं की पंद्रह पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। 'विचार दृष्टि' परिवार की ओर से श्री प्रसाद का हार्दिक शुभकामनाएं

–डॉ. शाहिद जमील
उप संपादक

लौह पुरुष सरदार पटेल की
१३३वीं जयंती पर हमारी
हार्दिक शुभकामनाएँ

विनोद कुमार

मे. सतोष सीमेन्ट
खगौल रोड, मीठापुर,
पटना-१

With Best Compliments From

PARADISE ENTERPRISES

Contractors, Decorators

&

General Order Suppliers

F-257/3, Lado Sarai, New Delhi-110030

Tel. 29523010 (M) 09811374416

साभार स्वीकार

पुस्तकें:-

1. चेहरे ख़्याल (ग़ज़ल संग्रह) शायर इफ़्तेख़ार राग़िब
2. मर्दम गज़ीदा (कथा संग्रह), कथाकार: इकबाल हसन आज़ाद
3. दरमियाँ कोई तो है (कथा संग्रह), कथाकार: अहमद सग़ीर
4. कड़राना का मौसम (ग़ज़ल संग्रह), ग़ज़लकार: शमीब मसमी
5. धूप के साए में (ग़ज़ल संग्रह), ग़ज़लकार : जफ़र मोजीबी
6. दारोरसन कैफी आजमी की शायरी, लेखक: अनवर दूरज
7. विषाद अर्जुन का (खण्ड काव्य), कवयित्री: डॉ० उर्मिला कौल, आरा
8. चल पहाड़ की ओर, डॉ० उमिला कौल, आरा
9. 1857 हिंदुस्तान की जम्हूरियत का पहला पैगाम, लेखक: ज्योति शंकर चौबे
10. फूल और अंगारे (काव्य-संग्रह), कवि: विमल राजस्थानी, राम मड़ैया, लाल बाजार, बेतिया-845438
11. वक़्त की आवाज़, ग़ज़लकार: आजाद कानपुरी, 1144, एल.आईजी आवासीय विकास पनेकी, कानपुर-208017
12. केरल की हिंदी पत्रकारिता का इतिहास, लेखिका: डॉ. पी. लता, रीडर, हिंदी विभाग, सरकारी महिला महाविद्यालय, तिरुवनंतपुरम-695014
13. काव्य सुमन, कवयित्री: श्रीमती आर. राजपुष्पम, हिंदी प्रचारिका, जयमाता हिंदी विद्यालय, एलसी भवन, टी.सी. -9/836, वेल्लयंबलम, तिरुवनंतपुरम-695010
14. अचानक की एक मुलाकात (कविताएँ), कवि: रवीन्द्रनाथ श्रीवास्तव, हैदराबाद
15. क्षण के घेरे में घिरा नहीं (संस्मरण), प्र. संपादक: देवराज, नजीबाबाद (उ.प्र.)
16. मुस्काता जीवन, लेखक: डॉ. के. दिनेश वाष्णेर्य, M/s Maa Real Estate, 5, Lala House, Venkatesh Nagar, 2nd Street, Opp.-EB Semblam, Chennai-600011, Ph. :044-25580985
16. आनंद शंकर माधवन के साहित्य का अनुशीलन, लेखिका: डॉ. के.एस. विजयलक्ष्मी, तिरुवनंतपुरम
17. फाँस (लघुकथा संकलन), संपादक: राज केसरवानी, चेन्नई
18. बीसवीं सदी का तेलुगु साहित्य, लेखक: डॉ. आई.एन. चंद्रशेखर रेड्डी, प्राध्यापक, हिंदी विभाग, बेंकटेश्वर विश्वविद्यालय, तिरुपति-517502 आँप्र.
19. आँध की विप्लवी ज्योजि अल्लूरी सीताराम राजू, लेखक: डॉ. जी. पद्मजो देवी, हिंदी विभागाध्यक्ष, एस.वी.वि.वि.
20. हिंदी-तेलुगु समरूपी समानार्थी शब्द, लेखिका: डॉ. पद्मजा देवी, तिरुपति
21. आँध्र के मिथकीय लोक कथा गीत और संस्कृत, लेखक: डॉ. आई. एन. चंद्रशेखर रेड्डी
22. राज-मुक्ति, लेखक: श्याम सुंदर गुप्ता, पूर्व सांसद, पी-3, सी.आई.टी. रोड, मौलाअली, कोलकाता-700014 फोन: 033-22651104, मो०: 09433306268
23. आजाद तंत्र, कृष्ण क्रांति, जागने से पहले, आघात, नवजीवन (बाल एकांकी संग्रह) लेखक: किसान दीवान, लोकहित प्रकाशन, दिल्ली
24. रोली अक्षत, लेखक: रमेश कुमार सोनी, वैभव प्रकाशन, रायपुर (छतीसगढ़)
25. बीच, युद्ध से (कविता संग्रह), कवि: विपिन बिहारी 'सुमन'
26. सुमन रश्मियाँ (बाल गीत), कवि: विपिन बिहारी 'सुमन', देहरादून-248001
27. सौरभ, कवि: श्यामलाल उपाध्याय, भारतीय वाङमय पीठ, कोलकोता
28. Business Success Secrets by Petwal N. Dutt Sharma, Dehradun-248001
29. हवा आवाज देती है (हिन्दी ग़ज़लों का संग्रह), कवि: चंद्रभान भारद्वाज
30. बेटी के आँसु, कवि: पं. हरिशंकर शर्मा 'अकेला'
31. नियति-निक्षेप, रचनाकार: श्यामलाल उपाध्याय, भारतीय वाङमय पीठ, कोलकाता

पत्रिकाएं:-

1. भाषा-भारती संवाद, अप्रैल-जून 2008 प्र० संपादक: नृपेन्द्र नाथ गुप्त, पटना
2. दस्तावेज (2.5), संपादक: प्रो० असलम आजादी, बिहार विधान परिषद्
3. अणुव्रत पाक्षिक जून-सितंबर 08, संपादक: डॉ. महेन्द्र कर्णावट अणुव्रत भवन, नई दिल्ली
4. कू. अ०जागरण-जुलाई-अगस्त 08, प्र० संपादक: पटेल जे.पी. कनौजिया, कानपुर
5. अलका मागधी-जून-सितंबर 08, संपादक: अभिमन्यु मौर्य, पटना
6. साहित्य प्रभा, संपादक: डॉ. चंद्रसिंह तोमर 'मयंक', देहरादून, उत्तराखंड
7. बिहार समाचार-अप्रैल 2008, प्र. संपादक: राजेश भूषण, सूचना एवं जन संपर्क विभाग, बेली रोड, सूचना भवन, पटना-1
8. गाँधी-मार्ग, जुलाई-अगस्त, 08, संपादक : अनुपम मिश्र, गाँधी शांति प्रतिष्ठान, दिल्ली ।
9. मैसूर हिंदी प्रचार परिषद पत्रिका, जून-08, प्र. संपादक : डॉ. बि. रामसंजीवय्या, बैंगलुरु-10
10. अणुव्रत : जुलाई-सितम्बर-08, संपादक: डॉ. महेन्द्र कर्णावट, दिल्ली-2
11. बच्चों का देश, जुलाई-08, संपादक: कल्पना जैन, 7, उषा कॉलोनी, मालवीय नगर, जयपुर-17

12. कु.अ. जागरण-जुलाई 08, प्र. संपादक: पटेल जे.पी. कनौजिया, कानपुर
13. हिंदी प्रचार वाणी, अप्रैल-08 से जुलाई-08, प्र. संपादिका: सुश्री बी. एस. शांताबाई, कर्नाटक महिला हिंदी सेवा समिति, 178, चौथा मेन रोड, 6ठा क्रॉस चामराज पेट, बैंगलुरु-18, दूरभाष: 26617777
14. भाषा-पीयूष, मार्च-जून-08, संपादक: श्री ना. नागप्पा, कर्नाटक हिंदी प्रचार समिति, जयनगर, बैंगलुरु-11
15. साहित्यादित्य, अप्रैल-06 से जुलाई-08, संपादक: अल्ताफ अहमद, सत्यशील बाबा पथ, 73 अप्पू स्ट्रीट, मिलपुर, चेन्नई-4
16. कोंग निधि-मार्च 08, प्र. संपादक: डॉ. सी. जयशंकर, सहायक निदेशक, कर्मचारी भविष्य निधि संगठन क्षेत्रीय कार्या., डॉ. बाल सुंदरम रोड, कोयंबटूर, तमिलनाडु-641018
17. केरल हिंदी साहित्य अकादमी शोध पत्रिका, अक्टूबर-07, संपादक: डॉ. एन. चंद्रशेखरन नायर, तिरुवनंतपुरम
18. वाग्धारा (जनवरी-मार्च-08), संपादक: राज केसरवानी, डी-1989, सुदामानगर, इंदौर-452009
19. रामायण संदर्शन, अंक-8, संपादक: डॉ. ऋषभदेव शर्मा, हैदराबाद
20. साहित्य प्रभा, अप्रैल-जून-08, संपादक: चंद सिंह तोमर 'मयंक', देहरादून-248008
21. अंकुर स्मारिका, संपादक: रमेश कुमार सोनी
22. कैपिटल रिपोर्टर, कार्यकारी संपादक: सुरजीत सिंह जोबान
23. उत्तरा खण्ड भारती, संपादक: डॉ. एम.आर. सकलानी
24. श्रीप्रभा (होली अंक), अप्रैल-08, प्रधान संपादक: डॉ. रमाशंकर श्रीवास्तव
25. पूर्वांकुर, अंक-18, अप्रैल-जून-08, प्रधान संपादक: डॉ. रमाशंकर श्रीवास्तव

रचनाकारों से

१. रचना भेजने के लिए कोई शर्त नहीं है, सभी रचनाकारों का हम हार्दिक स्वागत करते हैं। उदीयमान रचनाकारों को विशेष रूप से प्रोत्साहित किए जाने का प्रयास रहेगा।
२. राष्ट्रीय भावनाओं पर आधारित तथा वैचारिक रचनाओं को प्राथमिकता दी जाएगी।
३. रचना एक तरफ / कम्प्यूटर पर कम्पोज्ड अथवा सुवाच्य स्पष्ट लिखी होनी चाहिए। प्रयास यह हो कि रचना कम्प्यूटर पर कम्पोज़ कराने के बाद उसका सी॰डी॰ कोरियर से भेजें अथवा उसे ईमेल द्वारा भेजें।
४. रचना के अंत में उसके मौलिक अप्रकाशित व अप्रसारित होने के प्रमाण पत्र के साथ रचनाकार का नाम व पूरा पता अवश्य लिखा होना चाहिए।
५. रचना के साथ पासपोर्ट / स्टाम्प आकार की श्वेत एवं श्याम तस्वीर की दो प्रतियाँ अवश्य संलग्न करें।
६. प्रकाशित रचनाएँ वापस नहीं की जातीं, कृपया उसकी प्रति अवश्य रख लें।
७. प्रकाशित रचनाओं पर फिलहाल पारिश्रमिक देने की कोई व्यवस्था नहीं है, हाँ, रचना प्रकाशित होने पर अंक की प्रति अवश्य भेजी जाऐगी।
८. किसी भी विधा की गद्य रचनाएँ 1500 शब्दों अथवा दो पृष्ठों की मर्यादा में ही स्वीकार्य होंगी।
९. समीक्षार्थ पुस्तक की दो प्रतियाँ भेजना आवश्यक है।

संपादक

'दृष्टि' ६, विचार बिहार, यू-२०७, शकरपुर, विकास मार्ग, दिल्ली-९२,
दूरभाष: (०११) २२५३०६५२, २२०५९४१०
email- sidheshwar66@ yahoo. com

स्व. सिद्धेश्वर सिंह विचार दृष्टि
से आजीवन जुड़े रहे। इसके नियमित प्रकाशन
में उनका सदैव सहयोग रहा।
लौह पुरुष सरदार पटेल की १३३वीं जयंती पर प्रकाशित विचार
दृष्टि नियमित प्रकाशन का विचार दृष्टि
के पाठकों को सिद्धेश्वर कॉम्पलेक्स की ओर
से हार्दिक शुभकामनाएँ

प्रोपराइटर
सिद्धेश्वर कॉम्पलेक्स

सिद्धेश्वर कॉम्पलेक्स
खगौल रोड, मीठापुर, पटना-१

बाल दिवस पर विशेष

वर्तमान बाल साहित्य के विकास में अवरोधक तत्त्व और समाधान

○ सिद्धेश्वर

इक्कीसवीं सदी का प्रथम दशक भी बीतने के कगार पर है और आजादी के छह दशक भी हमने पूरे कर लिए हैं, किंतु इस अवधि की आरेखित कमियों, खामियों, भ्रमों, उलझनों तथा समस्याओं का निदान-समाधान दिए बिना इस देश की स्पष्ट तस्वीर हम नहीं देख सकते। जब बचपन भूखा, निराश, अस्वस्थ हो, कुपोषण का शिकार हो, तो उसके उज्ज्वल भविष्य की कल्पना हम कैसे कर सकते हैं? आजादी मिलने के बाद जब बच्चों ने नई और खुली हवा में सांस ली, तो उन्हें सचमुच लगा कि वे पक्षियों और तितलियों की तरह आजाद होकर मुक्त गगन में विचरण कर सकते हैं। उन्हें यह नया सपना देने का दायित्व था राष्ट्र के तत्कालीन कर्णधारों पर। उन्हें देश की भावी पीढ़ी के साथ-साथ देश के भविष्य को भी संवारना था। प्रतिवर्ष 14 नवंबर को नेहरू जी के जन्म दिवस पर उनके भतीजे बाल दिवस तो अवश्य मनाते हैं, मगर स्वाधीन भारत के लाखों भूखे भतीजों के चेहरे चाचा नेहरू के मुस्कराते चेहरे और उनके अचकन के सामने टँगे गुलाब की तलाश कर रहे हैं, जिन्हें दो जून की रोटी भी नसीब नहीं हो पाती। एक बार चाचा नेहरू ने जापानी बच्चों को हाथी भेंट किया था। पूर्वी पाकिस्तान से आया एक शरणार्थी बच्चा तड़प उठा था और उसने भूख से बिलबिलाकर नेहरू जी को एक पत्र लिखा था, जिसे शब्दों में बाँधा था कवि उमाकांत मालवीय ने–

"चाचा जापानी बच्चों को भेजो हाथी
पर मुझे दूध की जगह धान का धोवन ही बस
एक निवाला चावल भेजो खैराती।'

इस राष्ट्र के हजारों-हजार बच्चे आज भी चाउमिन खाने वाले बच्चों की ललचाई आँखों से निहारते एक निवाला चावल के लिए तरस रहे हैं, धूल फाँक रहे हैं। चाउमिन खाने वाले या 'वीडियो गेम' खेलने वाले बच्चे क्या कभी समझ पाएँगे उन बच्चों के दर्द को, जो गहराती हुई भूख लुकाछिपी खेलते हैं, कुलबुलाती आंतों की ऐंठन से इनका परिचय होता है। इन बच्चों के बारे में भी हमें सोचना इसलिए आवश्यक है, क्योंकि इन बच्चों से ही राष्ट्र की पूरी शक्ल बनती है और इन बच्चों के सपनों

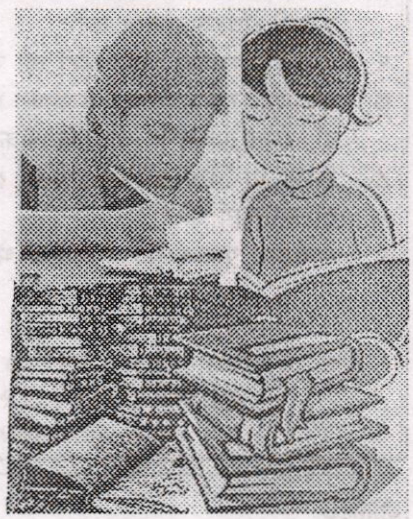

को ही मूर्तरूप देकर 'इंडिया वीजन 2020' का स्वप्न पूरा किया जा सकता है और इनके शक्ल को ही साफ-सुथरा कर देश के आइने को धुंधला होने से बचाचा जा सकता है। देश का भविष्य आखिर इन्हीं बच्चों के हाथों में ही तो है। इसलिए हम बड़ों को बच्चों के निकट आना होगा और उनके मन को समझना होगा। कवि वर्ड्सवर्थ ने भी कहा है– 'चाइल्ड इज फादर ऑफ द मैन'। सचमुच सरलता, निश्छलता, निर्मलता एवं भोलेपन की क्षमता की दृष्टि से बच्चे मनुष्य के पिता ही हैं। हम बड़े लोग झूठ बोल सकते हैं, पर बच्चा सदैव सत्य ही बोलेगा। इसी वजह से बालकों को नागरिकता की दिशा में प्रशिक्षित करने के लिए औपचारिक एवं अनौपचारिक शिक्षा के रूप में बाल साहित्य और उसके विकास की महती आवश्यकता है।

मगर सच्चाई यह है कि बच्चों की किसी को परवाह नहीं है। आखिर तभी तो यूनिसेफ की एक रिपोर्ट में कहा गया है कि बच्चों की परवाह किसी को इसलिए नहीं है, क्योंकि वे वोट नहीं दे सकते। तो जब बच्चों की ही किसी को परवाह नहीं है, तो उनके लिए लिखे गए साहित्य की बात कौन करे? लेकिन स्थिति बदलेगी। जॉन कैथलिन रॉलिंग द्वारा पाँच भागों में विरचित 'हैरी पॉटर' उपन्यास के प्रकाशन और इसकी बिक्री के जादुई कीर्तिमान से यह सिद्ध हो गया है कि बच्चों के लिए लिखी गई कोई किताब भी सेलिब्रिटी का स्टेटस पा सकती है। पचपन भाषा में अनुदित इस बाल साहित्य की अब तक बीस करोड़ से अधिक प्रतियाँ बिक चुकी हैं और इससे अर्जित संपत्ति ने इसकी लेखिका कैथलिंग रोलिंग को ब्रिटेन की महारानी से भी अधिक धनी बना दिया। मुंबई में प्रति मिनट से हुई बिक्री ने तो यह साबित कर दिया है कि बाल साहित्य सृजन बीते समय की बात नहीं है, बल्कि बाल साहित्य का समय है और खासकर हिंदी के वैसे वरिष्ठ लेखक इससे प्रेरणा ले सकते हैं, जो आज भी इस मानसिकता से उबर नहीं पाए हैं कि बच्चों के लिए लिखना दोयम दर्जे का काम है। हालांकि हिंदी के अतिरिक्त अन्य भारतीय भाषाओं में ऐसी स्थितियाँ नहीं हैं। मराठी, गुजराती, बांग्ला आदि भाषाओं के प्रायः सभी श्रेष्ठ साहित्यकारों ने बच्चों के लिए काफी लिखा है। बल्कि सच तो यह है कि एक बार बाल साहित्यकार देवेन्द्र कुमार से बंगला बाल पत्रिका 'आनंद मेला' के संपादक व लेखक नरेन्द्रनाथ चक्रवर्ती ने कहा कि अभी वह स्वयं को संपूर्ण लेखक नहीं मानते, क्योंकि अभी वह बच्चों के लिए नहीं लिखते। यानी बंगला में जबतक बच्चों

के लिए कोई लेखक नहीं लिखता, तबतक वह संपूर्ण लेखक नहीं माना जाता। यह बात अपने में आँखें खोलने वाली है खासकर हिंदी के वरिष्ठ लेखकों की आँखें अवश्य खुलनी चाहिए। वास्तव में बच्चों के लिए लिखने में एक गहन संवेदनापूर्ण दृष्टि, सरल भाषा-शैली और मौलिक रचना-शक्ति चाहिए।

जहाँ तक वर्तमान बाल साहित्य के विकास के अवरोधक तत्त्वों का सवाल है, बाल साहित्य एक चुनौती भरा लेखन बन गया है, क्योंकि टी.वी. का इतना प्रभाव बढ़ गया है कि वह न केवल बच्चों को जानकारी मुहैया करा रहा है, बल्कि उनके मस्तिष्क में अनेक जिज्ञासाएँ भी जगा रहा है। दूसरी ओर मनोरंजन के कार्यक्रम भी बच्चों को भरपूर मिलते हैं। इस दृष्टि से बाल साहित्य का लेखन अब आसान नहीं रह गया है। इसलिए बाल साहित्य के लेखकों की सोच में आधुनिकता का होना अनिवार्य है। आज बच्चों की रुचियाँ बदल रही हैं, उनका परिवेश बदल रहा है, जो चीजें, जो बिंब कल के बच्चों को आकर्षित करती थीं, वे आज आकर्षित नहीं करतीं, इसलिए वे बच्चों के साहित्य का विषय भी नहीं बन पातीं। कल तक बच्चों के आदर्श पुरुष बापू, नेहरू, पटेल, तिलक और आजाद थे और, आज उनके स्थान पर 'बेट मैन' या 'सुपर मैन' आ गए हैं। पहले बच्चों की कल्पना में परियाँ थीं, राक्षस थे, राजा थे, रानी थी, फल-फूल थे, तितलियाँ और पशु-पक्षी थे जिनमें उनकी रुचियाँ थीं, मगर उनमें परिवर्तन आया है। नेहरु, गाँधी और पटेल की जगह माइकल जैक्सन है। यही बाल साहित्य के विकास के समक्ष संकट है। कारण निरंतर बदलते परिवेश को आत्मसात करने में बाल साहित्यकार को भी समय लगेगा।

आज एक तरफ जहाँ इलेक्ट्रॉनिक मीडिया खासकर टी.वी., मोबाइल, इंटरनेट, बच्चों की रुचियों को बिगाड़ रहा है, तो दूसरी तनफ बच्चों के सिर पर कैरियरिज्म का बोझ है, उनके बस्ते लगातार भारी होते जा रहे हैं। ऐसे में बच्चों को दिशा देने में बाल साहित्यकारों की बहुत ज्यादा जिम्मेदारी है। किंतु ऐसे समय में भी बच्चों के समक्ष जो कुछ बाल साहित्य के नाम पर परोसा जा रहा है, उसे कूड़ा कहना यथोचित होगा। मसलन लेखक व प्रकाशक को सिर्फ बाल साहित्य को छपने और बेचने में दिलचस्पी है उसकी गुणवत्ता में नहीं। अगर श्रेष्ठ बाल

साहित्य को इलेक्ट्रॉनिक मीडिया के जरिए पेश किया गया होता, या कम-से-कम अच्छे बाल साहित्य को रेखांकित किया गया होता, तो उसकी तरफ जरूर लोगों का ध्यान जाता। हालांकि यह भी सच है कि विभा देवसरे, हरिकृष्ण देवसरे, बालकराम नागर, बाल शौरि रेड्डी, डॉ० श्याम सिंह शशि तथा दामोदर अग्रवाल जैसे बाल साहित्यकार लगातार इस दिशा में प्रयत्नशील हैं, पर अभी बहुत कुछ करने की जरूरत है। दरअसल, आज अच्छे बाल साहित्य को पहचानने की कोशिश भी नहीं की गई है। जैसे बाल-साहित्य में आज नाटकों की कमी है, आलोचना लगभग अनुपस्थित है। इसी प्रकार प्रकाशकों ने भी बाल साहित्य का व्यापार तो किया, लेकिन लेखकों को अपेक्षित सम्मान नहीं दिया। दूसरी बात यह है कि यह सोचने पर ज्यादा ध्यान नहीं दिया जाता कि बच्चे वस्तुत: क्या चाहते हैं; उनका मनोविज्ञान क्या माँग करता है।

वर्तमान बाल साहित्य के विकास के अवरोधक तत्त्वों में मैं एक तत्त्व इसे भी मानता हूँ या इसे दुष्चक्र कहा जाए कि बड़ों के लेखक बच्चों के लिए नहीं लिखते जिसकी वजह से बाल साहित्य में स्तरीय रचनाओं की कमी हो गई है। दूसरी ओर पत्र-पत्रिकाओं को बच्चों के पन्ने पर वही छापना पड़ता है जो सर्वसुलभ हो। यही कारण है कि स्तरहीन लोककथा भूमिवाली रचनाओं की बहुलता है। उन्हें देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि जैसे बाल-साहित्य के एक बड़े अंश में ठहराव आ गया हो। वर्तमान बाल साहित्य के विकास में एक विरोधाभास यह भी देखने को मिल रहा है कि अँग्रेजी, जर्मन, फ्रेंच, डच, रूसी आदि प्रमुख विदेशी भाषाओं में जैसी लोक साहित्य की धारा को एक निश्चित परिभाषा और दिशा दृष्टि मिल गई है, और वहाँ के प्राचीन लोक साहित्य को बाल-साहित्य का भ्रामक स्वरूप देने की गलती नहीं की जाती, मगर भारतीय लोक परंपरा में पौराणिक अप्सराओं और परियों की कल्पना है। अप्सराएँ मन की गति से उड़ती हैं। वे भारतीय बाल साहित्य में लोक कथा और लोकगाथा साहित्य के इस आधिक्य के कई दुष्परिणाम हुए हैं। ये कथाएँ अपने को दुहराती हुई प्रतीत होती है। अधिकतर रचनाएँ सुनी-सुनाई और बहुप्रचारित, अनेक बार प्रकाशित लोककथाओं के नए-नए संस्करण ही हैं। अन्यथा क्या कारण हैं कि हिंदी में बच्चों के मौलिक नाटक और उपन्यास नहीं के बराबर लिखे जा रहे हैं। नाटक और उपन्यास मौलिक रचनाकर्म की माँग करते हैं।

दरअसल, आज भी बाल साहित्यकार अपने पुरानपंथी ढर्रों से उबर नहीं पा रहे हैं। बाल रचनाकारों की कुपमंडूकता एवं सतही ज्ञान की वजह से एक ही बिंबों को घूमा-फिराकर बच्चों के समक्ष प्रस्तुत किया जा रहा है जिसके परिणामस्वरूप बाल पाठक एक खीझ और निराशा से उपजी मिली-जुली प्रतिक्रिया से गुजरता है। उसे तो कुछ नया चाहिए, जिसे वह स्वयं नहीं समझ पा रहा है। इस बात को बाल रचनाकार गंभीरता से समझें और अपनी लेखनी चलाएँ, तभी इसका निदान निकल सकता है।

सच तो यह है कि वर्तमान बाल साहित्य में बार-बार रूढ़ एवं परंपरावादी विचारों को बच्चों पर थोपने के हम आदी

हो गए हैं। बच्चों को आदर्श बनाने के चक्कर में हम वहीं घिसी-पिटी जातक पुराण की कथाओं को बच्चों के सामने पेश करते जा रहे हैं जिससे बच्चे अभिप्रेरित होकर कुछ नहीं बनते। इसके स्थान पर यदि सामाजिक-पारिवारिक स्थितियों, जिस परिवेश में बच्चा पलता-बढ़ता है, बच्चा अपने ढंग से कुछ करना-सीखना चाहता है, पर, रचनाओं को केंद्रीत किया जाए, तो वह अधिक महत्त्वपूर्ण होगा। इस पर बाल साहित्यकारों ने बहुत कम ध्यान केंद्रीत किए हैं। फलत: बाल साहित्यि के बदले आज चटपटे कॉमिक्स खरीदकर बच्चे खूब चाव से पढ़ते हैं और टी.वी. पर भी कार्टूनवाली धारावाहिक देखने में ज्यादा अभिरुचि लेते हैं। ऐसी स्थिति में बाल साहित्यकारों का दायित्व बन जाता है कि श्रेष्ठ तथा संवेदनशील रचनाओं से बाल साहित्य के भंडार को विपुल बनाएँ, ताकि बच्चे अपना बचपन बरकरार रख सकें। बच्चे रचनाओं में अपना लगाव महसूस कर सकें, ऐसी कालजयी रचनाओं का सृजन आवश्यक है। सामंती कथाओं और अवास्तविक एवं कपोल कल्पित साहित्य भी अपेक्षित नहीं है। ग्रामीण बालक, घर में नौकरी करते बाल मजदूरी से संत्रस्त, कूड़े के ढेर पर प्लास्टिक उठाते या ढाबे में प्लेटें धोते बच्चे भी कथा साहित्य के नायक हो सकते हैं। इससे बच्चों का मानसिक विस्तार होगा। अत: अभिभावक भी बालकों को बाल-साहित्य से जोड़ें। हमारे कहने का अर्थ यह है कि वर्तमान बाल साहित्य की धारा में जो ठहराव और दिशाहीनता व जड़ता के भाव सहज ही नजर आ रहे हैं, उससे उन्मुक्त हो उसके बहाव में गति लाने का दायित्व बाल रचनाकारों का है। उनका यह भी दायित्व बनता है कि वे रचनाएँ तैयार कर प्रकाशन की प्रतीक्षा में ही न बैठे रहें, बल्कि बाल साहित्यकार स्वयं प्रकाशकों के पास जाएँ, अपनी रचना पढ़वाएँ और सुनाएँ। सुनाने और सुनने की परंपरा की शृंखला बीच में ही सरस्वती की धारा की तरह लुप्त हो गई है, टूट-बिखर गई है। लिखने से लेकर पढ़ने, सुनने और छपने की इस लेखकीय-प्रकाशकीय प्रक्रिया में लेखकों को अपनी भागीदारी और अधिक मुखर करनी होगी। केवल लिखने भर से ही काम नहीं चलेगा। पत्रिकाओं के प्रकाशन में केरल सबसे आगे है। राज्य में बच्चों की करीब 25 पत्रिकाएँ प्रकाशित होती हैं जिनमें कुछ की प्रसार संख्या दो लाख प्रतियों तक है। नेशनल बुक ट्रस्ट, प्रकाशन विभाग, साहित्य अकादमी आदि संस्थाओं को सभी भारतीय भाषाओं में अच्छी पांडुलिपियों का चयन कर उनका अन्य भारतीय भाषाओं में अनुवाद कराने की व्यवस्था करनी चाहिए।

वर्तमान बाल साहित्य के विकास में बाल साहित्य में सृजनात्मक समीक्षा और स्तरीय शोध सामग्री की कमी भी एक अवरोधक तत्त्व है। पिछले पाँच-छह दशकों में बाल साहित्य के क्षेत्र में हुए विपुल लेखन और शोधकार्य की सामग्री पर तटस्थ आलोचकीय दृष्टि से विचार किए जाने की जरूरत है और बदलते परिप्रेक्ष्य में उसका पुनर्मल्यांकन भी किए जाने की आवश्यकता है। विदेशों में 'बुक्स इन प्रिंट' शृंखला में हर साल प्रकाशित पुस्तकों के संदर्भ ग्रंथ प्रकाशित होते हैं। भारत में बाल-साहित्य के क्षेत्र में ऐसे कदम उठाना अब भी शेष हैं।

वर्तमान बाल साहित्य के विकास के अवरोधक तत्त्वों की जब हम चर्चा करते हैं, तो बाल साहित्यकार के गुटों में बँटे होने के कारण भी बाल साहित्य का विकास नहीं हो पा रहा है। बाल साहित्य भी तो पूरी दुनिया न होकर साहित्य की दुनिया का एक छोटा-सा हिस्सा है। इस छोटी-सी दुनिया का भी ध्रुवण (पोलराइजेशन) हो गया है। यह स्थिति केवल बाल साहित्यकारों के बीच ही नहीं, बल्कि संपादकों के बीच भी हो गई है। दूसरी बात यह है कि आज बाल साहित्यकार को मंच नहीं मिल रहा है जिसकी वजह से वह परेशान और दु:खी है या फिर किसी ऐसे फंदे में पड़ चुका है जिससे वह बाहर नहीं निकल पा रहा है। इसके चलते भी बाल-साहित्य के विकास में बाधा उत्पन्न हो रही है।

आज के साहित्यकार बच्चों के बीच जीते हुए भी उनके लिए लिखने में रुचि नहीं ले रहे हैं। हिंदी फिल्मों में जो दशा एक विदूषक की है वहीं आज हिंदी साहित्य में बाल साहित्य की होती जा रही है। अच्छे साहित्य के अभाव में बाल साहित्य को लिखने वाले अब दूसरी विधाओं के साहित्य सृजन में व्यस्त हैं। साहित्यकारों का बच्चों से सीधा, नजदीकी और आत्मीयतापूर्ण लगाव भी नहीं है। आज का साहित्यकार मात्र अपनी कल्पना से महज छपने के लिए और पुरस्कार पाने के लिए लिख रहा है और वह अपने पंचतंत्र की कहानियों को ही बेहतर समझता है जबकि नई सदी का बाल साहित्य सूरज, चंद्रमा, तोता-बिल्ली एवं परियों से ऊपर उठकर कंप्यूटर, ई-मेल, इंटरनेट, पशु-पक्षियों की क्लोनिंग जैसे विषयों पर आधारित हो गया है। इसलिए जरूरत इस बात की है कि आज के बाल साहित्यकार बदलते हुए वैज्ञानिक परिवेश में बाल मनोविज्ञान की नई दिशाओं का अध्ययन करें। तभी वे बालकों के लिए रोचक, प्रेरक एवं सोद्देश्य बाल साहित्य का सृजन कर सकेंगे। यदि हम बच्चों में बच्चा बनकर उनके मानसिक स्तर से सोच-समझकर लिखेंगे, तो निश्चय ही वह बच्चों को पसंद आएगा और वही सच्चा बाल साहित्य होगा। आज इक्कीसवीं सदी में यह समय की माँग है कि जिन्होंने अबतक कुछ ढंग का नहीं लिखा, वे कम से कम इक्कीसवीं सदी का सम्मान करते हुए ही कुछ महत्त्वपूर्ण बाल साहित्य की रचना करें, ताकि आगे आने वाली पीढ़ियों को बाल-साहित्य की एक महत्त्वपूर्ण विरासत सौंपी जा सके।

संपर्क : 'दृष्टि' यू-207, शकरपुर, विकास मार्ग, दिल्ली-92
दूरभाष : 011-22530652, 22059410

Tele.: 0612-2352480

THE PEOPLE'S CO-OPERATIVE HOUSE CONSTRUCTION SOCIETY LTD.

KANKERBAGH, PATNA-800020.

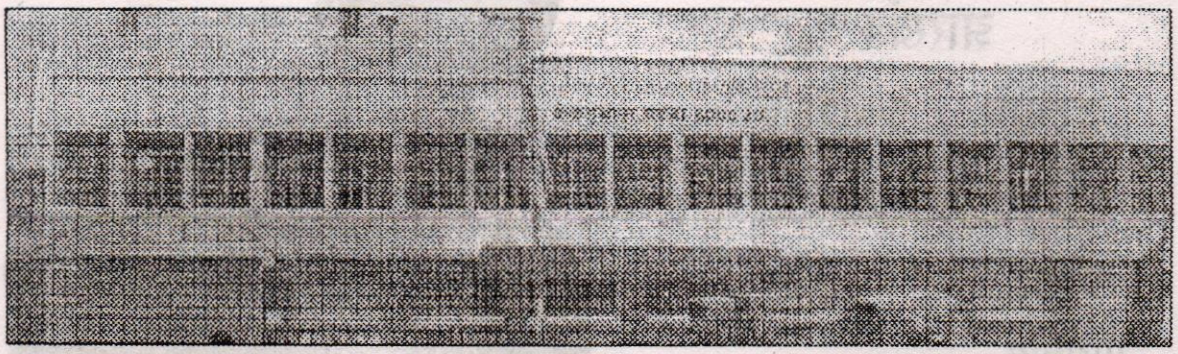

HIGHLIGHTS:

1. For members of lower & middle income group of people this society is said to be one of the largest co-operative house construction societies in Asia.
2. In the first phase 131.12 acres of land acquired by Government of Bihar were handed over to this society.
3. The society has got an opportunity to attract 1730 members from lower income group of people.
4. In all 1600 plots were bifurcated in planning out of which 10 plots were reserved for community hall, office building, godown and four-storied building for common utilities.
5. 1400 houses have so far been constructed by the members.
6. 500 members have been given housing loan through this society.
7. Boundary walls in 15 parks have already been constructed by the society.
8. In most of the sectors metalled & cemented roads have also been construcred.
9. Efforts are being made to improve the drainage system, to have plantation and lighting facilities.
10. In the second phase 7 acres of land have been purchased at Jaganpura village in which six houses have been constructed so far.
11. Out of 96 plots 95 plots have already been allotted to the members and one plot has been reserved for common utilities.
12. The society makes available its community hall to the members on priority basis for the marriage ceremony of their sons & daughters at half of the preseribed charges.
13. As far as possible the society tries to provide street light, maintain roads, clean manholes, construct park and other development activities.
14. All those members who have not filled up their nominee forms as yet are requested to deposit the forms duly filled in after getting the forms from the office of the society.

WITH REGARDS TO THE MEMBERS.

L.P.K. Rajgrihar	**Sidheshwar Prasad**	**Prof. M.P. Sinha**
Chairman	Vice Chairman	Secrectary

त्रिमूर्ति ज्वेलर्स

बाईपास रोड, चास, बोकारो

झारखंड

दूरभाष : ६५७६५

फैक्स : ६५१२३

परीक्षा

प्रार्थनीय

सुरेश एवं राजीव

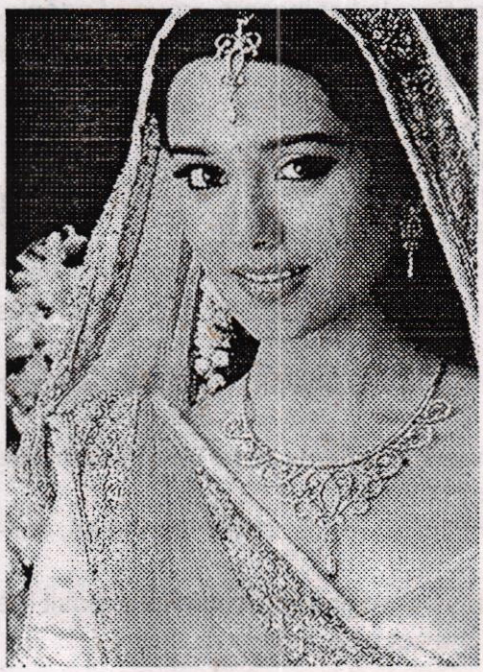

त्रिमूर्ति अलंकार

त्रिमूर्ति पैलेस

(रुपक सिनेमा के पूरब)

बाकरगंज,

पटना-८००००४

दूरभाष : २६६२८३७

आधुनिक आभूषणों के निर्माता, नए डिजाइन, शुद्ध सोने-चाँदी तथा हीरे के गहनों का प्रमुख प्रतिष्ठान

With Best Compliments From

M/s. Satya Prakash & Bros. Pvt. Ltd

Government contractors & Engineers

Head Office :

A-1, C.C. Colony, Opp. R.P. Bag, Delhi-7

Phone : 011-27434507 T.Fax : 011-27437971

Mobile : 098100-69600

E-mail : spb1234@gmail.com

वर्ष : 10 अंक : 37 अक्टूबर-दिसंबर 2008 RNI REG. NO. : DEL HIN/1999/791

With Best Compliments From

A.K. Mehta & Co.

Engg. & Contractors

Mob. : 9810020044, 931102044

प्रकाशक, मुद्रक व स्वामी सिद्धेश्वर द्वारा 'दृष्टि', यू-207, विकास मार्ग, शकरपुर, दिल्ली-92 से प्रकाशित एवं प्रोलिफिक इनकारपोरेटिड, एक्स-47, ओखला फेस-2, नई दिल्ली-110020 से मुद्रित। संपादक-सिद्धेश्वर